"विशाखदत्तप्रणीत मुद्राराक्षस : एक आलोचनात्मक अध्ययन"

इलाहाबाद विश्वविद्यालय की डी० फिल्० उपाधि के लिए प्रस्तुत

शोध-प्रबन्ध
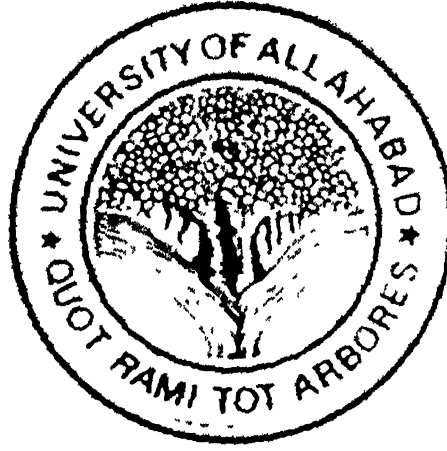
निर्देशिका
डॉ० मृदुला त्रिपाठी
आचार्य एवं अध्यक्ष
संस्कृत-विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय
इलाहाबाद

प्रस्तुति-कर्त्री
दिव्या द्विवेदी
शोधच्छात्रा
सस्कृत विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय,
इलाहाबाद

संस्कृत-विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय
इलाहाबाद

प्रमाण-पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि *दिव्या द्विवेदी* शोधच्छात्रा, संस्कृत-विभाग इलाहाबाद विश्वविद्यालय ने *"विशाखदत्तप्रणीत मुद्राराक्षसः एक आलोचनात्मक अध्ययन"* विषय पर मेरे निर्देशन में शोध कार्य किया है। इन्होंने इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद द्वारा निर्धारित सभी नियमों एवं शर्तों का पालन किया है।

यह शोध-प्रबन्ध इनके मौलिक चिन्तन एवं अध्ययन का परिणाम है। मैं इसे डी0 फिल् उपाधि हेतु परीक्षणार्थ प्रस्तुत करने के लिए अग्रसारित करती हूँ।

पर्यवेक्षिका

दिनाङ्क

28-6.03

मृदुला त्रिपाठी

प्रो0 मृदुला त्रिपाठी

आचार्य एवं अध्यक्ष
संस्कृत-पालि-प्राकृत
एवं प्राच्यभाषा-विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय
इलाहाबाद

प्राक्कथन

मुद्राराक्षस कालजयी कृति है। नाटककार विशाखदत्त ने विशुद्ध कूटनीतिक प्रयोग को इस नाटक के प्रतिपाद्य के रूप मे प्रस्तुत कर नाटको के क्षेत्र मे एक अभिनव प्रयोग किया है। इसमे तत्कालीन राजनैतिक परिस्थिति को अभिव्यक्त करने के लिए चाणक्य एवं चन्द्रगुप्त की राजनीति का जो वर्णन किया गया है वह आज भी प्रासङ्गिक है। इस नाटक मे दृढ सैद्धान्तिक आधार पर प्रतिष्ठित व्यावहारिक राजनीति को प्रस्तुत करने के साथ-साथ नाटककार ने अन्य समस्त नाटकीय गुणो का अद्‌भुत सामञ्जस्य प्रस्तुत किया है जिसके कारण विशाखदत्त की यह कृति आज भी विद्वानो के आकर्षण का केन्द्र बनी हुई है। नाटककार के 'द्वारा सर्वधर्मसमभाव की जो भावना प्रस्तुत की गयी है वह आज के सदर्भ मे अत्यन्त प्रासङ्गिक एव उपयोगी है। मुद्राराक्षस के इन्ही गुणो के कारण इस विषय पर अनुसन्धान करने के लिए मै प्रवृत्त हुई।

मुद्राराक्षस की आलोचना का यह मेरा प्रयास प्रथम प्रयास नही है, अपितु इस नाटक पर अनेक समर्थ विद्वानो ने अपनी लेखनी चलाई है। यही इसके महत्ता का प्रमाण है। इस संदर्भ मे प्राचीन व्याख्याकार ढुण्ढिराज तथा आधुनिक व्याख्याकारो मे दीवान बहादुर के. एच. ध्रुव, एम. आर काले, जी डी देवस्थली, निरूपण विद्यालङ्कार आदि का नाम उल्लेखनीय है जिन्होने मुद्राराक्षस की व्याख्या कर उसकी महत्ता अभिव्यक्त की है। इनकी व्याख्याओ का मैने अपने शोध प्रबन्ध मे यथावसर उपयोग भी किया है। किन्तु मुद्राराक्षस की व्यवस्थित सम्पूर्ण आलोचना का अभी भी अभाव था, अत मै इस कार्य मे प्रवृत्त हुई।

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध के विषय चयन से लेकर उसकी पूर्णता तक प्रोफेसर मृदुला त्रिपाठी, आचार्य एव अध्यक्ष, संस्कृत विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद ने मेरा सफल शोधनिर्देशन किया है इसके लिए मै उनके प्रति हृदय से कृतज्ञता ज्ञापित करती हूँ। शास्त्रीय गुत्थिओ को सुलझाने मे प्रोफेसर सुरेशचन्द्र पाण्डे, नेशनल फेलो भारतीय उच्च अध्ययन संस्थान,

शिमला ने मेरा पूर्ण सहयोग किया है इसके लिए मै उनके प्रति भी कृतज्ञता-ज्ञापन अपना परम कर्तव्य समझती हूॅ। मेरे पति डॉ० हरिराम मिश्र, सहायक आचार्य, सस्कृत अध्ययन केन्द्र, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली, ने भी इस शोध-प्रबन्ध मे प्रसङ्गत प्राप्त विभिन्न शास्त्रीय समस्याओ को सुलझाने मे मुझे अपना पूर्ण सहयोग प्रदान किया है। इनके अतिरिक्त मेरी सास श्रीमती प्रभावती, मेरे पिता श्री यादवेश सुन्दर द्विवेदी, सेवानिवृत्त उपसचिव, माध्यमिक शिक्षा परिषद उ०प्र०, तथा मेरी माता श्रीमती नलिनी द्विवेदी ने भी मुझे शोध प्रबन्ध को पूर्ण करने के लिए समय-समय पर प्रोत्साहित किया इसके लिए मै इनके प्रति भी हृदय से आभार व्यक्त करती हूॅ।

पुस्तकालयो के विना शोध प्रबन्ध का पूर्ण होना सम्भव नही है। इस सदर्भ में इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद, जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली एव गगानाथ झा केन्द्रीय (शोध-संस्थान) इलाहाबाद आदि के पुस्तकालयो का मैने उपयोग किया है एतदर्थ वहॉ के अधिकारियो एवं कर्मचारियो को धन्यवाद ज्ञापित करना मै अपना परम कर्तव्य मानती हूॅ।

साफ एव सुन्दर टङ्कण के लिए श्री विनोद कुमार द्विवेदी जी को मै धन्यवाद देती हूॅ। प्रूफ संशोधन के लिए श्री मनोज कुमार मिश्र, शोधच्छात्र, संस्कृत विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद तथा रविप्रकाश पाण्डेय, शोधच्छात्र गंगानाथ झा शोध-संस्थान इलाहाबाद को भी मै धन्यवाद देती हूॅ।

दिनाङ्क -
28·6·03

दिव्या द्विवेदी
(दिव्या द्विवेदी)
शोधच्छात्रा
संस्कृत विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय,
इलाहाबाद

विषय-सूची

प्रथम अध्याय

नाटककार का जीवन और कर्तृत्व

नाटककार का जीवन और कर्तृत्व

(१) **मुद्राराक्षस का सामान्य परिचय** - सस्कृत नाटको की परम्परा मे मुद्राराक्षस अपने ढंग का एक निराला नाटक है। इसके लेखक महाकवि विशाखदत्त है। सस्कृत नाटकों मे प्राय प्रणयचित्रण को ही विषयवस्तु के रूप मे प्रस्तुत किया गया है, किन्तु भवभूति का उत्तररामचरितम् तथा विशाखदत्त का मुद्राराक्षस इसके अपवाद है 'एक एव भवेदङ्गी शृङ्गारोवीर एव वा'[१] इस नाट्यशास्त्रीय नियम के अनुसार वीर अथवा शृङ्गार रस को ही नाटक मे अङ्गीरस के रूप में प्रयुक्त करना चाहिए। किन्तु भवभूति ने इस सिद्धान्त की उपेक्षा करते हुए करुण रस को ही प्रधान रस के रूप मे स्वीकार किया है तथा उत्तररामचरितम् मे उसी का आद्योपान्त निर्वाह किया है। जब कि नाट्य-सिद्धान्त को स्वीकार करते हुए मुद्राराक्षस में वीररस को अङ्गी रस माना गया है किन्तु इस नाटक में शृङ्गार रस के प्रयोग का कोई अवसर नहीं उपस्थित किया गया।

नाटककार विशाखदत्त के द्वारा विशुद्ध कूटनीतिक राजनीति को आधार बनाकर मुद्राराक्षस का प्रणयन किया गया है। इसमें नन्द वश का विनाश करने के अनन्तर भारत देश के महान् कूटनीतिज्ञ चाणक्य के द्वारा अपनी प्रतिभा एव षड्यन्त्र के प्रयोग से विना किसी रक्तपात के नन्दों के महामात्य, पराक्रमी राक्षस को वश में करके मौर्यसाम्राज्य की स्थापना का वर्णन किया गया है। मुद्राराक्षस में मौर्ययुगीन भारत की राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक एवं नैतिक दशा का यथार्थ चित्र खींचकर आदर्शोन्मुख यथार्थ की स्थापना की गई है। इसमें घटनाओं का गत्यात्मक घात प्रतिघात, उनकी एकता और सार्थकता, चरित्र-चित्रण एव स्वाभाविकता ये सभी नाटकीय गुण विद्यमान हैं।

---

१ साहित्यदर्पण, षष्ठ परिच्छेद, सूत्र-१०

सस्कृत के अन्य नाटको के विपरीत मुद्राराक्षस में विदूषक का प्रयोग नहीं किया गया है। इतना ही नहीं कथावस्तु में राजनीति की प्रधानता के कारण इसमे स्त्री पात्रों के लिये भी कोई स्थान नहीं था। चन्दन दास की पत्नी से सम्बद्ध प्रसङ्ग अत्यन्त संक्षिप्त है। यह स्त्रीपात्र भी शृङ्गारमयी भावनाओं को उद्‌बुद्ध करने अथवा पारिवारिक गुणों का विकास करने के लिए नहीं अपितु अपने पति के प्रति आत्मत्याग एवं कठोर कर्तव्य की दृढ भावना से ओतप्रोत होकर रङ्गमञ्च पर उपस्थित होता है। वस्तुत मुद्राराक्षस के सभी पात्र अपने अपने नियत कर्तव्यों के पालन की दृढ भावना से युक्त हैं। चाणक्य की सम्पूर्ण कूटनीति का उद्देश्य है विनष्ट नंदवश के विश्वस्त अमात्य राक्षस के साथ मैत्री स्थापित कर उसे चन्द्रगुप्त के प्रधानामात्य पद पर प्रतिष्ठित करना। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए चाणक्य ने जिस कूटनीति का प्रयोग किया है वह नाटक की कथावस्तु के समान बहुत ही संश्लिष्ट है।

मुद्राराक्षस की समाप्ति राक्षस के आत्मसमर्पण एव साम्राज्य पर मौर्य वश की प्रतिष्ठा से होती है। सम्पूर्ण नाटक मे जीवत्ता है, क्रियाशीलता है। नाटक की विस्तृत कथावस्तु अपने आप में बडी संश्लिष्ट है। नाटक की योजना इस प्रकार की गयी है कि व्यापार की गतिशीलता कहीं पर भी बाधित नहीं होती। घटनाओं की एकता का प्रदर्शन व्यवस्थित एवं सुन्दर रीति से किया गया है। सम्पूर्ण नाटक मे घटनाओ के निर्वाह मे कही पर भी शिथिलता दृष्टिगत नहीं होती। नाटक में प्रस्तुत प्रत्येक घटना नाटक के परिणाम के साथ घनिष्ठ रूप से सम्बद्ध है। इस रूप में प्रत्येक घटना सार्थक है। सभी क्रियायें एवं सभी गतिविधियॉ राजनैतिक उद्देश्य की पूर्ति के लिए अङ्ग के रूप में प्रयुक्त हुई है। घटना सामञ्जस्य की दृष्टि से मुद्राराक्षस नाटक साहित्य में अपने ढंग का निराला है, अद्वितीय है।

(२) लेखक के रूप में विशाखदत्त का उल्लेख - सस्कृत नाटको में सुप्रसिद्ध अपने ढंग के निराले मुद्राराक्षस नाटक के लेखक विशाखदत्त के विषय में संस्कृत साहित्य के अन्य लेखकों के समान ही बहुत कम सामग्री उपलब्ध होती है। कवि ने मुद्राराक्षस की प्रस्तावना में सूत्रधार के मुख से

अपना अत्यन्त सक्षिप्त परिचय प्रस्तुत किया है।[1] प्रस्तावना से यह ज्ञात होता कि मुद्राराक्षस नाटक के लेखक विशाखदत्त है। 'कुछ हस्तलिखित प्रतियो मे प्रस्तावना मे विशाखदत्त के स्थान पर विशाखदेव[2] यह पाठान्तर भी प्राप्त होता है। इससे यह प्रतीत होता है कि इन्होने देव उपाधि स्वत धारण कर ली होगी। किन्तु देव उपाधि अधिक प्रचलित नही हुई। प्रस्तावना में विशाखदत्त के वश का जो उल्लेख मिलता है उससे विशाखदत्त नाम की ही प्रामाणिकता सिद्ध होती है। अतएव सस्कृत-साहित्य मे अधिकतर विशाखदत्त नाम का ही प्रयोग किया गया है।

(३) विशाखदत्त के वंश का निर्धारण - विशाखदत्त किस वंश से सम्बद्ध थे इसकी सक्षिप्त जानकारी प्रस्तावना में प्राप्त होती है। प्रस्तावना से इतना स्पष्ट है कि इनके पितामह का नाम श्री वटेश्वरदत्त था कुछ प्रतियो मे वटेश्वर के स्थान पर वत्सेश्वर का भी उल्लेख प्राप्त होता है[3] वटेश्वरदत्त उत्तरभारत के किसी क्षेत्र के सामन्त थे। इस प्रस्तावना के अनुसार विशाखदत्त के पिता का नाम पृथु था। किन्तु मुद्राराक्षस की अधिकतर प्रतियो में पृथु के स्थान पर भास्करदत्त नाम का उल्लेख प्राप्त होता है।[4] वस्तुत भास्करदत्त नाम ही अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है। क्योकि इनके पितामह के नाम में दत्त शब्द का उल्लेख हुआ है तथा विशाखदत्त में भी दत्त शब्द का प्रयोग किया गया है अत. इनके पिता का नाम निश्चित रूप से भास्करदत्त रहा होगा। दीवान बहादुर के० एच० ध्रुव० ने भी स्वीकार किया है कि विशाखदत्त ऐसे परिवार में

---

१ आज्ञापितोऽस्मि परिषदा यथाद्य त्वया सामन्तवटेश्वरदत्तपौत्रस्य महाराजपदभाक्पृथुसूनो कवेर्विशाखदत्तस्य कृतिरभिनव मुद्राराक्षस नाम नाटक नाटयितव्यम्। मुद्राराक्षस, प्रस्तावना पृ०-१३

२ कवेर्विशाखदेवस्य। मुद्राराक्षस, फुटनोट सटेत ३, पृष्ठ- १३

३ सामन्तवत्सेश्वरदत्त पौत्रस्य। मुद्राराक्षस, फुटनोट सटेत २ पृ० १३

४ (१) मुद्राराक्षस दीवान बहादुर के एच ध्रुव, ओरियन्टल बुक एजेन्सी पूना १९३०, (२) निरूपण विद्यालड्कार, साहित्य भण्डार, मेरठ १९६७, (३) जगदीशचन्द्र मिश्र, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी १९७६

उत्पन्न हुए थे जिसमें नाम के साथ दत्त शब्द के प्रयोग का प्रचलन था।[१] जर्मन विद्वान् हिलीब्रान्ड ने भी स्वत. सम्पादित मुद्राराक्षस मे पृथु के स्थान पर भास्करदत्त नाम को ही प्रामाणिक माना है।[२]

प्रस्तावना मे जहॉ विशाखदत्त के पितामह को एक क्षेत्र का सामन्त बताया गया है वही इनके पिता भास्करदत्त को महाराज की पदवी से विभूषित किया गया है। एक सामन्त का पुत्र महाराज कैसे कहलाने लगा इसका कोई प्रमाण नहीं प्राप्त होता। सम्भव है ये लोग किसी राजघराने से सम्बद्ध रहे हों, जिससे इन्हें राज्य प्राप्त हुआ हो और इन्हें महाराज की पदवी से विभूषित किया गया हो। कुछ विद्वानों[३] ने किसी 'दत्त' राजंवश से इनके सम्बन्ध को स्थापित करने का प्रयास किया है, किन्तु दत्त राजवंश का कोई ऐतिहासिक प्रमाण नहीं प्राप्त होता। फिर भी यह बात निश्चित रूप से कही जा सकती है कि भले ही 'दत्त' राजवंश की ऐतिहासिकता संदिग्ध है किन्तु विशाखदत्त निश्चित रूप से तत्कालीन शासक के आधिपत्य में किसी प्रदेश के राजकाज को सम्हालने वाले एक अत्यन्त प्रतिष्ठित राजघराने से सम्बद्ध थे, क्योकि इनके पितामह को 'सामन्त' की उपाधि से तथा पिता को महाराज की पदवी से विभूषित किया गया था। इससे भी बडी बात यह कि मुद्राराक्षस मे विशाखदत्त ने जिस राजनैतिक उथलपुथल, दॉवपेंच, गुप्तचरो का तानाबाना, निर्मम हत्याओं आदि का विस्तृत वर्णन प्रस्तुत किया है वह किसी सामान्य कवि के वश का नहीं है। किसी राजघराने से घनिष्ठ रूप से सम्बद्ध वह व्यक्ति ही इस तरह की राजनैतिक घटनाओं का वर्णन प्रस्तुत कर सकता है जिसने कि निकट से ऐसी घटनाओं को घटते देखा हो। यह सम्भव है कि राजपरिवार में कनिष्ठ होने के कारण इन्हें राज्य के शासन के कार्यो से मुक्त रखा गया

---

१ Visakhadatta the author of the Mudrarakshasa belonged to the family of the ruling class bearing the nominal ending Datta मुद्राराक्षस, के० एच० ध्रुव०, Introduction ist 1

२ मुद्राराक्षस, प्रस्तावना, हिली ब्रान्ड

३ मुद्राराक्षस प्रस्तावना पृ०-१ डा० निरूपण विद्यालड्कार, साहित्य भण्डार मेरठ

होगा, जिससे लेखन कार्य की ओर प्रवृत्त होकर इन्होने अपनी काव्य-सर्जना की प्रतिभा के द्वारा मुद्राराक्षस एव अन्य कृतियो की रचना की।

(४) विशाखदत्त का निवास-स्थान. नाटक का केन्द्र पाटलिपुत्र - मुद्राराक्षस मे कही पर भी लेखक के निवास-स्थान के बारे मे कोई स्पष्ट उल्लेख नहीं प्राप्त होता है। यह अवश्य है कि मुद्राराक्षस नाटक की सम्पूर्ण कथावस्तु के केन्द्र मे कुसुमपुर नगर विद्यमान है। जिससे यह सिद्ध होता है कि लेखक इसी क्षेत्र से सम्बद्ध थे। कुसुमपुर अर्थात् पाटलिपुत्र आधुनिक पटना तत्कालीन मगध देश के शासक की राजधानी थी। प्राचीनकाल मे बहुत दिनों तक पाटलिपुत्र से ही सम्पूर्ण भारत में शासन सूत्र सञ्चालित होते थे। मगध की राजधानी होने के कारण तथा तत्कालीन विश्व का प्रमुख शिक्षा केन्द्र होने के कारण यह नगर पूरे विश्व मे प्रख्यात था तथा स्वदेशी एव विदेशी विद्वानो के आकर्षण का केन्द्र था। विशाखदत्त ने मुद्राराक्षस मे पाटलिपुत्र का एक प्रसिद्ध, गौरवशाली, अत्यन्त समृद्ध नगर के रूप मे वर्णन प्रस्तुत किया है। नाटक मे पाटलिपुत्र[१] के लिए कुसुमपुर[२] अथवा पुष्पपुर नामो का प्रयोग किया गया है।

प्राचीन काल के अन्य विवरणो से भी पाटलिपुत्र के गौरव एव समृद्धि के प्रमाण प्राप्त होते है। यह स्थान बुद्ध धर्म का केन्द्र था। उस समय बुद्ध धर्म का प्रसार भारत के बाहर भी अनेक देशो मे हो चुका था, अत उससे प्रभावित होकर उसके ज्ञान के लिए कई विदेशी विद्वान् पाटलिपुत्र आए। इन विदेशी विद्वानो ने अपने यात्रा विवरण मे पाटलिपुत्र के गौरव एव समृद्धि का वर्णन किया है। चीनी यात्री फाह्यान भगवान् बुद्ध की पावनभूमि के दर्शन,

---

१ (१) एष करभकस्त्वरयन् पाटलिपुत्रादागत इति। मुद्रा० पृ० ९७
(२) ततो मया पाटलिपुत्र गत्वा श्रावित । वही, पृ० १०३
(३) चलितोऽस्मि किल पाटलिपुत्रम्। वही, पृ० ११५

२ (१) अन्विष्यते च कुसुमपुरवासिना नन्दामात्यसुहृदा निपुण प्रचारगतम्। वही, प्रथम अ०, पृ० २५
(२) कुसुमपुराभियोग प्रति अनुदासीनो राक्षस इति । वही,द्वि० अ० पृ० ५२
(३) अये कुसुमपुरवृत्तान्तज्ञो भवत्प्रणिधिरिति गाथार्थ । वही, द्वि० अ० पृ० ५६

पुर्वी भाग तथा बंगाल का पश्चिमी भूभाग है। कवि ने मुद्राराक्षस में धान की खेती की विशेषता का प्रतिपादन विशेष अभिप्राय से किया है। नाटक के मञ्चन के अवसर पर अभिनय देखने के लिए उपस्थित दर्शक भी धान की खेती की इस विशेषता से पूर्ण परिचित हैं तभी उनके सम्मुख इस वैशिष्ट्य का प्रतिपादन सार्थक सिद्ध होता है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि कवि इसी क्षेत्र का रहने वाला था।

कवि विशाखदत्त का निवास पूर्वी बिहार अथवा पश्चिमी बंगाल में ही था इस बात के साधक और भी तर्क है। विशाखदत्त गौड देश की प्रथाओं वहाँ की कामिनियो के प्रसाधनो तथा उनके आकार प्रकार से पूर्ण परिचित थे। मुद्राराक्षस के पाँचवे अङ्क मे कवि ने गौड देश की स्त्रियो के लोध्रनामक पुष्प के पराग की सुगन्धि से व्याप्त कपोलो तथा भौरों के समूह की कान्ति के समान काले, घुघराले बालो का वर्णन किया है।[१]

कवि ने पर्वतक राजा के पुत्र मलयकेतु की जिस सेना का वर्णन किया है उसमें खस, मगध गणो के लोग सेना के मुख्य भाग मे आगे रखे गये थे। मध्य में यवनों के साथ गान्धार देश की सेनाओं को रखा गया था तथा चीनो हूणों एवं शकों की सेनाओं को पीछे रखा गया था।[२] इस सैन्य समूह मे खशो एवं मगधों को अत्यधिक प्रधानता दी गयी है। स्पष्ट है कि इन्हें सेना में प्रधानतम योद्धा तथा भरोसेमन्द माना जाता था। इन्हे सेना के मुख्य भाग मे रखा जाता था। इसी लिए चन्द्रगुप्त से पाटलिपुत्र मे युद्ध करने के लिए राक्षस इन्हें अपने साथ रखने की व्यवस्था करता है। खस जातियाँ भारत के पूर्वी प्रदेश खसिया में रहने वाली थीं। मगध जातियाँ भी आधुनिक बिहार में रहती

---

१ गौडीनां लोध्रधूलीपरिमलबहुलान् धूमयन्त कपोलान्,
क्लिश्नन्त कृष्णिमान भ्रमरकुलरुच कुञ्चितस्यालकस्य। मुद्रा० ५/२३ ,पृ०-/३६

२ प्रस्थातव्य पुरस्तात् खसमगधगणैर्मामनुव्यूह्य सैन्यै-
र्गान्धारैर्मध्ययाने सयवनपतिभि सविधेय प्रयत्न ।
पश्चात्तिष्ठन्तु वीरा शकनरपतय सभृताश्चीणहूणै
कौलूताद्यश्च शिष्ट पथि पथि वृणुयाद्राजलोक कुमारम्। मुद्रा० ५/११, पृ०-१२८

पुर्वी भाग तथा बगाल का पश्चिमी भूभाग है। कवि ने मुद्राराक्षस मे धान की खेती की विशेषता का प्रतिपादन विशेष अभिप्राय से किया है। नाटक के मञ्चन के अवसर पर अभिनय देखने के लिए उपस्थित दर्शक भी धान की खेती की इस विशेषता से पूर्ण परिचित है तभी उनके सम्मुख इस वैशिष्ट्य का प्रतिपादन सार्थक सिद्ध होता है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि कवि इसी क्षेत्र का रहने वाला था।

कवि विशाखदत्त का निवास पूर्वी बिहार अथवा पश्चिमी बगाल मे ही था इस बात के साधक और भी तर्क है। विशाखदत्त गौड देश की प्रथाओ वहॉ की कामिनियों के प्रसाधनों तथा उनके आकार प्रकार से पूर्ण परिचित थे। मुद्राराक्षस के पॉचवे अङ्क मे कवि ने गौड देश की स्त्रियो के लोध्रनामक पुष्प के पराग की सुगन्धि से व्याप्त कपोलों तथा भौंरों के समूह की कान्ति के समान काले, घुंघराले बालों का वर्णन किया है।[१]

कवि ने पर्वतक राजा के पुत्र मलयकेतु की जिस सेना का वर्णन किया है उसमें खस, मगध गणों के लोग सेना के मुख्य भाग में आगे रखे गये थे। मध्य में यवनों के साथ गान्धार देश की सेनाओं को रखा गया था तथा चीनों हूणों एव शकों की सेनाओं को पीछे रखा गया था।[२] इस सैन्य समूह में खशो एवं मगधों को अत्यधिक प्रधानता दी गयी है। स्पष्ट है कि इन्हें सेना में प्रधानतम योद्धा तथा भरोसेमन्द माना जाता था। इन्हें सेना के मुख्य भाग मे रखा जाता था। इसी लिए चन्द्रगुप्त से पाटलिपुत्र में युद्ध करने के लिए राक्षस इन्हें अपने साथ रखने की व्यवस्था करता है। खस जातियॉ भारत के पूर्वी प्रदेश खसिया मे रहने वाली थीं। मगध जातियॉ भी आधुनिक बिहार में रहती

---

१ गौडीना लोध्रधूलीपरिमलबहुलान् धूमयन्त. कपोलान्,
क्लिश्नन्त कृष्णिमान भ्रमरकुलरुच कुञ्चितस्यालकस्य। मुद्रा० ५/२३ ,पृ०-/३६

२ प्रस्थातव्यं पुरस्तात् खसमगधगणैर्मामनुव्यूह्य सैन्यै-
र्गान्धारैर्मध्ययाने सयवनपतिभि. सविधेय प्रयत्न:।
पश्चात्तिष्ठन्तु वीरा शकनरपतय सभृताश्चीणहूणै.
कौलूताद्यश्च शिष्ट पथि पथि वृणुयाद्राजलोक कुमारम्। मुद्रा० ५/११, पृ०-१२८

थी। मुद्राराक्षस मे कवि ने जिस प्रमुखता के साथ इन जातियो का वर्णन सेना के प्रमुख अङ्ग के रूप मे किया है इससे यह परिलक्षित होता है कि कवि इनके सैन्य गुणों से पूर्ण परिचित था। यह तभी सम्भव है जब वह इनके पास पडोस का रहने वाला हो।

मुद्राराक्षस की कथावस्तु को प्रस्तुत करने के लिए कवि ने वैदर्भी रीति का आश्रय न लेकर विषय वस्तु के अनुकूल गौडी रीति का आश्रय लिया है। गौडी रीति में ओजोव्यञ्जक वर्णो का प्रयोग होता है। प्रत्येक वर्ग के प्रथम वर्ण का द्वितीय वर्ण के साथ तथा तृतीय वर्ण का चतुर्थ वर्ण के व्यवधान रहित योग होने पर, 'र्' का हल् वर्णो के साथ योग होने पर, समान वर्णो का योग होने पर, ण को छोडकर टवर्ग का प्रयोग होने पर शकार एवं षकार का प्रयोग होने पर तथा दीर्घ समास का प्रयोग होने पर ओज की अभिव्यक्ति होती है।[१] इस प्रकार के वर्णो के प्रयोग में वामन के मत में गौडी रीति होती है। जबकि आदि आचार्यों के मत में यही परुषा वृत्ति है। गौडी रीति गौड देशवासियों में अधिक प्रिय है। इसीलिए इस रीति का नाम गौडी प्रयुक्त होने लगा। विशाखदत्त द्वारा गौडी रीति का आश्रय लेने से यह सिद्ध होता है कि इनका निवास स्थान पूर्वी बिहार अथवा बंगाल के पश्चिमी भूभाग में कहीं रहा होगा।

नाटककार विशाखदत्त ने मुद्राराक्षस के तृतीय अङ्क मे शरद् ऋतु के सौन्दर्य का वर्णन करने के लिए काशकुसुमो तथा राजहंसों का उल्लेख किया है[२]। काशपुष्प तथा राजहंस अधिकांशत: उत्तर भारत की नदियो के ही

---

१ योग आद्यतृतीयाभ्यामन्त्ययो रेण तुल्ययो ।
टादि शषौ वृत्तिदैर्ध्य गुम्फ उद्धत ओजसि।। , ,
वर्गप्रथमतृतीभ्यामन्त्ययो द्वितीयचतुर्थयो रेफेण अध उपरि उभयत्र वा यस्य कस्यचित् तुल्ययोस्तेन तस्यैव
सम्बन्ध, टवर्गोऽर्थात् णकारवर्ज, शकारषकारौ, दीर्घसमास,
विकटा सङ्घटना ओजस । काव्यप्रकाश ८/९९ पृ० ३९४

२ आकाशं काशपुष्पच्छविमभिवता भस्मना शुक्लयन्ती.

आसपास पाये जाते है। इससे भी यह प्रमाणित होता है कि विशाखदत्त उत्तरभारत के ही किसी स्थान मे निवास करते थे।

इस प्रकार धान की खेती की क्षेत्रीय विशेषता, के वर्णन करने गौड़ देश की स्त्रियो के प्रसाधन तथा उनके आकार-प्रकार आदि के वर्णन करने, पूर्वी भारत की खस एवं मगध जातियो का सेना के प्रमुख अङ्ग के रुप मे उल्लेख करने, नाटक मे गौडी रीति का आश्रय लेने तथा काशपुष्पो एवं राजहंसो के यथार्थ वर्णन करने के आधार पर यह निष्कर्ष निकलता है कि विशाखदत्त पूर्वी बिहार अथवा बंगाल के पश्चिमी भूभाग मे किसी स्थान मे निवास करते थे।

प्रो० विल्सन का मत, एवं उसका निराकरण :- प्रो० विल्सन ने विशाखदत्त को अजमेर का निवासी सिद्ध करने का प्रयास किया है। मुद्राराक्षस के विभिन्न संस्करणो मे विशाखदत्त के पिता भास्करदत्त के नाम के स्थान पर पृथु नाम का उल्लेख प्राप्त होता है[१]। इसके आधार पर प्रो० विल्सन ने यह निष्कर्ष निकालने का प्रयास किया है कि मुद्राराक्षस की प्रस्तावना मे उल्लिखित पृथु एवं अजमेर (राजस्थान के एक नगर) के पृथुराज या पृथुराय अभिन्न है।[२] किन्तु काशीनाथ त्र्यम्बक तैलङ्ग ने मुद्राराक्षस की भूमिका मे विल्सन के मत का खण्डन किया है। तैलङ्ग के अनुसार प्रस्तावना मे विशाखदत्त के पिता के रूप मे उल्लिखित पृथु को महाराज पदवी से विभूषित किया गया है। जब कि अजमेर के पृथु केवल पृथुराज या पृथुराय है। अतः इन दोनो को एक नही माना जा सकता। ये दोनो नितान्त पृथक् व्यक्ति है।[३] वैसे प्रस्तावना में उल्लिखित पृथु शब्द ही प्रामाणिक नही है। क्योकि

शीतांशोरंशुजालैर्जलधरमलिनां क्लिश्नती कृत्तिभैमीम्।
कापालीमुद्वहन्ती स्रजमिव धवलां कौमुदीमित्यपूर्वा
हासश्रीराजहंसा हरतु तनुरिव क्लेशमैशी शरद्वः।। मुद्रा० ३/२०

१ प्रस्तावना पृ० १३, मुद्राराक्षस, एम० आर० काले, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली

२ Theatre, prof Wilson, 11-P 128,

३ मुद्राराक्षस की भूमिका, सम्पादित कान्तानाथ शास्त्री त्र्यम्बक तैलङ्ग, पृ० १२

बटेश्वरदत्त एवं विशाखदत्त के नाम से स्पष्टतः ज्ञात होता है कि इनके परिवार मे नाम के अन्त मे दत्त शब्द के लिखने का प्रचलन था। अतः पृथु के स्थान पर भास्करदत्त नाम अधिक संगत प्रतीत होता है जर्मन विद्वान् हिलीब्रान्ड ने भी अपने द्वारा सम्पादित मुद्राराक्षस मे विशाखदत्त के पिता के रूप मे पृथु के स्थान पर भास्करदत्त नाम को अधिक प्रामाणिक माना है। इस प्रकार पृथु के स्थान पर भास्करदत्त नाम स्वीकार कर लेने पर पृथु को पृथुराय से अभिन्न मानकर विशाखदत्त का सम्बन्ध अजमेर से स्थापित करने का विल्सन का मत स्वतः निरस्त हो जाता है विल्सन ने स्वतः माना भी है कि वटेश्वरदत्त मे प्रयुक्त दत्तशब्द विशाखदत्त के पिता के रूप मे पृथु को स्वीकार करने मे बाधक है।[१]

विशाखदत्त का स्थितिकाल- अन्य प्राचीन रचनाकारो के समान ही **विशाखदत्त ने भी अपने स्थितिकाल के सम्बन्ध में कुछ नही लिखा है। अत** एव इनके स्थितिकाल का निर्धारण अत्यन्त दुष्कर सा हो गया है। स्पष्ट उल्लेख के अभाव मे अन्तः साक्ष्य एवं बाह्यसाक्ष्यो के आधार पर कुछ विद्वानो ने इनके स्थितिकाल का निर्धारण करने का प्रयास किया है। किन्तु अन्तः साक्ष्य एवं बाह्यसाक्ष्य को आधार बनाकर जिन विद्वानो ने विशाखदत्त के काल को निर्धारित किया है उनमे परस्पर पर्याप्त मतभेद दृष्टिगत होता है।

अन्तःसाक्ष्यः विशाखदत्त ने नाट्यपरम्परा का निर्वाह करते हुए मुद्राराक्षस के अन्त मे जो भरतवाक्य[२] प्रस्तुत किया है, उससे लेखक के कालनिर्धारण मे कुछ सहायता अवश्य मिलती है, किन्तु कुछ मुद्रित एव हस्तलिखित प्रतियों में पार्थिवश्चन्द्रगुप्त के स्थान पर 'पार्थिवोऽवन्तिवर्मा,'[३]

---

१ Theatre, prof Wılson, 11 p 128

२ वाराहीमात्मयोनेस्तनुमवनविधावास्थितस्यानुरूपा
यस्य प्राग्दन्तकोटि प्रलयपरिगता शिश्रिये भूतधात्री।
म्लेच्छैरुद्विज्यमाना भुजयुगमधुना सश्रिता राजमूर्ते
स श्रीमद्बन्धभृत्यश्चिरमवतु मही पार्थिवश्चन्द्रगुप्त ।। मुद्रा० ७/१९

३ मुद्रा० ७/१८, पृ० १०२ के एच० ध्रुव, ओरियन्टल बुक एजेन्सी, पूना १९३०,

'पार्थिवो दन्तिवर्मा' एव पार्थिवो रन्तिवर्मा[1] इस रूप मे पाठ भेद प्राप्त होने से निश्चित रूप से यह कहना कठिन हो जाता है कि विशाखदत्त ने किस राजा के आश्रय मे रहकर मुद्राराक्षस की रचना की थी। इनके आश्रयदाता का यदि ठीक निर्धारण हो जाय तो इनके स्थिति काल के बारे मे कुछ निश्चित रूप से कहा जा सकता है। मुद्राराक्षस के अध्ययन से इतना तो स्पष्ट हो जाता है कि विशाखदत्त निश्चित रूप से राजपरिवार से निकट रूप से सम्बद्ध थे। तभी इन्होने नाटक में राजनैतिक उथल-पुथल, दावॅपेंच, गुप्तचरो का प्रयोग, निर्मम हत्याओं आदि का विस्तृत वर्णन प्रस्तुत किया है। इसी प्रकार उनके पितामह को प्रस्तावना मे सामन्त बताया गया है। यह तभी सम्भव है जब ये त्तकालीन किसी शक्तिशाली राजघराने से सम्बद्ध रहे हो। विशाखदत्त ने किस राजा के आश्रय में रहकर मुद्राराक्षस की रचना की थी? यहॉ पर यह विचारणीय प्रश्न है।

पार्थिवोऽवन्तिवर्मा पाठ का विवेचन - मुद्राराक्षस के कुछ प्रमुख समीक्षक विद्वानों के द्वारा मुद्राराक्षस के भरत वाक्य के अन्त मे पार्थिवश्चन्द्रगुप्त. के स्थान पर पार्थिवोऽवन्तिवर्मा पाठ को अधिक प्रामाणिक मानकर विशाखदत्त को शासक अवन्तिवर्मा का समकालीन सिद्ध किया गया है। चूॅकि भारतीय इतिहास में अवन्तिवर्मा नाम के दो राजाओं का उल्लेख प्राप्त होता है- (i) कन्नौज राज्य के मौखरियो के वंश मे उत्पन्न अवन्तिवर्मा जिन्होने सातवीं शताब्दी मे कन्नौज पर शासन किया था। इन्हीं के पुत्र ग्रहवर्मा का विवाह थानेश्वर के शासक हर्षवर्धन की बहन राज्यश्री से हुआ था। (ii) कश्मीर देश के शासक अवन्तिवर्मा जिन्होंने ८५५ से ८६३ ई० सन् तक नवम शताब्दी के मध्य मे शासन किया था। अत इन दोनों मे से कौन अवन्तिवर्मा विशाखदत्त का आश्रयदाता था यह भी विवाद का विषय बन जाता है।

---

[1] मुदाराक्षस ७/१९ पृ० १६५, फुट नोट सकेत-६,एम० आर० काले, मोतीलाल बनारसी दास, दिल्ली।

कश्मीर नरेश अवन्तिवर्मा - मुद्राराक्षस मे प्रथम अक की प्रस्तावना मे चन्द्रग्रहण का उल्लेख किया गया है-

क्रूरग्रह सकेतुश्चन्द्रगसम्पूर्णगण्डलमिदानीम् ।

अभिभवितुमिच्छति बलात् रक्षत्येन तु बुधयोग ।।[१]

इसका अभिप्राय है कि क्रूरग्रह राहु बलात् चन्द्रग्रहण करना चाहता है, किन्तु बुध का योग चन्द्रमा की रक्षा करता है।

प्रो० जेकब के अनुसार मुद्राराक्षस मे जिस 'चन्द्रग्रहण का उल्लेख प्राप्त होता है वह २ दिसम्बर ८६० ई० सन् को हुआ था। कश्मीर के नरेश अवन्तिवर्मा के मन्त्री सूर ने इसी चन्द्रग्रहण के अवसर पर विशाखदत्त रचित मुद्राराक्षस का मञ्चन कराया था। इसी के आधार पर इन्होने यह निष्कर्ष निकाला है कि इसी कश्मीरनरेश अवन्तिवर्मा के शासनकाल मे नवम शताब्दी के मध्य में विशाखदत्त ने मुद्राराक्षस की रचना की है। डा० कीथ एव दासगुप्ता भी इन्हें काश्मीरनरेश अवन्तिवर्मा के शासन काल मे हुआ स्वीकार करते है। डा० कीथ ने स्वीकार किया है कि मुद्राराक्षस नाटक निश्चित रूप से नवी शताब्दी से पहले का है। इनके अनुसार यह नाटक मृच्छकटिक एवं शिशुपालवध के रचना काल के बाद का है। अथवा नवम शताब्दी में लिखा गया है, अथवा इससे भी प्राचीन है। किन्तु डा० कीथ किसी निश्चित निष्कर्ष पर नहीं पहुँच पाते। इन्होंने लिखा है There is nothing that prevents a date in the 9th Century Though the work may be earlier [2] किन्तु यह मत प्रामाणिक नहीं प्रतीत होता। मुद्राराक्षस में वर्णित ग्रहण उपर्युक्त तिथि मे हुआ था इसका कोई ज्योतिष शास्त्रीय प्रमाण नहीं प्राप्त होता। वस्तुत यह सत्य न होकर केवल चन्द्रगुप्त मौर्य के ऊपर मलयकेतु के आक्रमण के प्रसङ्ग के साथ चाणक्य को रङ्गमञ्च पर उपस्थित करने का उपक्रम मात्र है। बुध कभी भी सूर्य से ९० अश से अधिक दूर नही हो सकता। इससे भी अधिक

---

१ मुद्राराक्षस १/६

२ History of Sanskrit Littcrature by Dr A B Keeth P 480

पास मे हो सकता है। 'क्रूरग्रह सकेतु' श्लेषमूलक इस अलङ्कार में शाब्दी ध्वनि है। राहु के लिए मलयकेतु अर्थ को प्रतिपादित करने वाले केतु शब्द का तथा सूर्य के लिए चाणक्य को प्रतिपादित करने वाले बुध शब्द का प्रयोग किया गया है। इस प्रकार सूर्य के सन्निकटवर्ती बुध का चन्द्रमा से योग बताकर ग्रहण का निषेध बताया गया है। वराहमिहिर द्वारा रचित बृहत्संहिता मे बुध के योग से पूर्णग्रहण होने मे विप्रतिपत्ति दिखलायी गयी है[1]। उनके द्वारा इसका प्रबल खण्डन किया गया है। इससे यह सिद्ध होता है कि मुद्राराक्षस की रचना का समय बराह मिहिर के पूर्व का होना चाहिए। वराहमिहिर का समय लगभग ४९० ई० सन् है।

इस प्रकार यह नहीं कहा जा सकता कि मुद्राराक्षस की रचना काश्मीर नरेश अवन्तिवर्मा के शासन काल में हुई थी। इससे भी यह मत असङ्गत सिद्ध होता है कि प्रस्तावना में विशाखदत्त को सामन्त का पौत्र तथा महाराज का पुत्र बताया गया है तथा इनका निवास स्थान बिहार के पूर्वी भूभाग अथवा बंगाल के पश्चिमी भूभाग में कहीं पर निर्धारित किया गया है। काश्मीर नरेश अवन्तिवर्मा का राज्य इतना बडा नहीं था कि विशाखदत्त के पिता अथवा पितामह को इनका राजा या सामन्त माना जा सके। इससे भी बढकर आपत्ति यह है कि लेखक ने पाटलिपुत्र मे चन्द्रगुप्त से युद्ध करने के लिए राक्षस का अनुसरण करने वाले, मलयकेतु के विश्वसनीय, विभिन्न देशों के जिन राजाओं का उल्लेख किया है उनमें कश्मीर के राजा पुष्कराक्ष के नाम की भी चर्चा की गयी है[2]। इस काश्मीराधिपति को मुद्राराक्षस में 'म्लेच्छ'[3] विशेषण से

---

१ बृहत्संहिता, बराहमिहिर प्रथम अध्याय ३६,

२ कौलूतश्चित्रवर्मा मलयनरपति सिहनादो नृसिह
काश्मीर पुष्कराक्ष क्षतरिपुमहिमा सैन्धव सिन्धुषेण ।
मेघाख्य पञ्चमोऽस्मिन् पृथुतुरगबल पारसीकाधिराजो
नामान्येषा लिखामि ध्रुवमहमधुना चित्रगुप्त प्रमार्ष्टु ।। मुद्रा० १/२०

३ उपलब्धवानस्मि प्रणिधिम्यो यथा तस्य राजलोकस्य मध्यात्प्रधानतमा पञ्च राजान परया सुहृत्तया राक्षसमनुवर्तन्ते। मुद्रा० -श्लोक स० १/१९ का गद्यभाग पृ० ३४

सम्बद्ध किया गया है। संस्कृत साहित्य मे म्लेच्छो को आर्यो से इतर कुछ घृणित कोटि का माना गया है। ऐसी स्थिति मे यह सम्भव नहीं है कि विशाखदत्त जैसा सर्वशास्त्र-विशारद कवि अपने आश्रयदाता काश्मीर के राजवश का परिगणन म्लेच्छ राजाओं के मध्य करता।

काश्मीर नरेश अवन्तिवर्मा को विशाखदत्त का आश्रयदाता स्वीकार करने मे दूसरी आपत्ति यह है कि कश्मीर नरेश अवन्तिवर्मा ने अपने शासनकाल ८५५ ई० सन् से ८८३ ई० सन् के मध्य में किसी विदेशी राजा को पराजित कर भारत भूमि की विदेशियो के आक्रमण से रक्षा की हो, इसका कोई ऐतिहासिक प्रमाण नहीं प्राप्त होता। जब कि मुद्राराक्षस के भरतवाक्य में विशाखदत्त के आश्रयदाता के रूप में उस शासक के गुणों का कीर्तन किया गया है जिसने भारत भूमि को आक्रमण से अस्तव्यस्त कर देने वाले म्लेच्छों को पराजित कर भारत के भूभाग की रक्षा की थी[१] अत कथमपि काश्मीर नरेश अवन्तिवर्मा को विशाखदत्त का आश्रयदाता नहीं स्वीकार किया जा सकता।

श्री कातानाथ शास्त्री तैलङ्ग महोदय ने इस आधार पर भी काश्मीर नरेश अवन्तिवर्मा को विशाखदत्त का आश्रयदाता नहीं स्वीकार किया कि मुद्राराक्षस की हस्तलिखित प्रतियॉ काश्मीर से बहुत दूर प्राप्त हुई हैं[२]।

कन्नौज नरेश अवन्तिवर्मा - अवन्तिवर्मा पाठ को ही प्रामाणिक मानने वाले कुछ विद्वानों का एक दूसरा दल भी है। किन्तु इन्होंने मुद्राराक्षस के भरतवाक्य मे प्रयुक्त अवन्तिवर्मा पाठ के आधार पर कन्नौज नरेश अवन्तिवर्मा को विशाखदत्त का आश्रयदाता स्वीकार किया है अवन्तिवर्मा के पुत्र ग्रहवर्मा का विवाह स्थाण्वीश्वर राजा हर्षवर्धन की बहन राज्यश्री के साथ हुआ था। ऐतिहासिको के अनुसार राजा हर्षवर्धन का शासन काल ६०६ ई० सन् से ६४८ ई० सन् के मध्य निर्धारित किया गया है। इन दोनों सम्बन्धी राज्यों ने मिलकर हूणों से भारत की रक्षा की थी।

---

१ म्लेच्छैरुद्विज्यमाना भुजयुगमधुना सश्रिता राजमूर्ते ।
स श्रीमद्बन्धुभृत्यश्चिरमवतु महीं पार्थिवश्चन्द्रगुप्त ।। मुद्रा० ७/१९

२ मुद्राराक्षस Introductıon] by K T Talang

प्राचीन काल मे तोरमाण तथा उसके पुत्र मिहिरकुल ने हूण साम्राज्य की स्थापना की थी। इनका महाराज यशोवर्मा से दशपुर आधुनिक मन्दसौर में ५२८ ई० सन् मे युद्ध हुआ था। इस युद्ध में महाराज यशोवर्मा के हाथो हूण साम्राज्य नष्टभ्रष्ट होकर छोटे-छोटे राज्यो मे विभक्त हो गया। इनमे से पजाब मे शाकल आधुनिक स्यालकोट राज्य, पश्चिमी राजपूताना तथा गुजरात मे पूर्वी गूर्जर राज्य प्रमुख थे। विखरे हुऐ हूण राज्य भी स्थण्वीशवर एवं कान्यकुब्ज के राजाओं से शत्रुता मानते थे। कन्नौज के मौखरिवंशीय ईशानवर्मा तथा सर्ववर्मा की इन हूण राजाओं से लडाइयॉ हुई, जिनमे स्थाण्वीश्वर के राजाओं की सैनिक सहायता से मौखरिवंशीय उपर्युक्त राजाओं ने हूणों को पराजित किया। फिर भी हूणो का पूर्ण विनाश नहीं हुआ एवं शाकल के हूणवंशीय राजा स्थाण्वीश्वर के भी शत्रु बन गये। किन्तु बाद में स्थाण्वीश्वर के महाराज प्रभाकरवर्धन और उनके सम्बन्धी कन्नौज के शासक महाराज अवन्तिवर्मा ने मिलकर हूणों को नष्ट कर दिया। महाकवि बाण ने हूणो पर प्रभाकरवर्धन की विजय से प्रभावित होकर इनकी विजय प्रशस्ति भी लिखी है।

इसी प्रकार हूणों को पराजित करने के कारण ही विशाखदत्त ने भी अपने मुद्राराक्षस के भरतवाक्य में अवन्तिवर्मा की प्रशस्ति करते हुए लिखा है–

म्लेच्छैरुद्विज्यमाना भुजयुगमधुना संश्रिता राजमूर्तेः।

स श्रीमद्‌बन्धुभृत्यश्चिरमवतु महीं पार्थिवोऽवन्तिवर्मा।।

ये अवन्तिवर्मा प्रभाकरवर्धन के सम्बन्धी तथा उनके परम सहायक थे। कुछ विद्वानों के मत में मुद्राराक्षस के भरतवाक्य में उद्धृत अवन्तिवर्मा कन्नौज के महाराज अवन्तिवर्मा ही हैं। कन्नौज के महाराज अवन्तिवर्मा ने निश्चित रूप से ५८२ ई० सन् में हूणों पर विजय प्राप्त की थी। इस प्रकार इनके मत मे चूॅकि कन्नौजनरेश अवन्तिवर्मा को विशाखदत्त का आश्रयदाता स्वीकार किया गया है, अत मुद्राराक्षस नाटक के रचयिता का समय छठी शताब्दी ई० सन् के उत्तरार्ध का अन्तिम भाग स्वीकार किया जाता है। इस मत का प्रतिपादन काशीनाथ त्र्यम्बक तैलंग महोदय ने किया है।

तैलंग महोदय ने भरतवाक्य मे **'पार्थिवोऽवन्तिवर्मा'** पाठ को ही प्रामाणिक माना है तथा अवन्तिवर्मा नाम से मौखरिवंशीय कन्नौजनरेश अवन्तिवर्मा को ही विशाखदत्त का आश्रयदाता स्वीकार किया है। मौखरिनरेश अवन्तिवर्मा के पुत्र ग्रहवर्मा का विवाह स्थाण्वीश्वर राजा हर्षवर्धन की बहिन राज्यश्री से हुआ था उन्हें पश्चिमी विहार अथवा मगध का शासक मानने मे कोई आपत्ति नहीं है। मुद्राराक्षस के लेखक विशाखदत्त का निवास स्थान पश्चिमी बिहार अथवा मगध का कोई स्थान था यह अनेक युक्तियो से सिद्ध किया जा चुका है। इस प्रकार तैलग के अनुसार विशाखदत्त का सम्बन्ध मौखरि नरेश अवन्तिवर्मा से ही सिद्ध हो पाता है। इसी लिए भरतवाक्य की अन्तिम पङ्क्ति मे चन्द्रगुप्त के स्थान पर अवन्तिवर्मा का उल्लेख प्राप्त होता है। इस अवन्तिवर्मा का काल छठी शताब्दी का उत्तरार्ध है अत विशाखदत्त का काल भी छठी शताब्दी का अन्तिम समय मानना चाहिए।

प्रोफेसर विन्टरनित्ज ने भी अवन्तिवर्मा पाठ को ही प्रामाणिक मानकर विशाखदत्त को छठी शताब्दी के अन्तिम भाग मे शासन करने वाले मौखरि नरेश अवन्तिवर्मा का समसामयिक ही स्वीकार किया है[१]। विन्टरनित्ज के अनुसार विशाखदत्त के द्वारा लिखित देवीचन्द्रगुप्तम् की कुछ अंशों में उपलब्ध कथावस्तु को देखते हुए विशाखदत्त को कथमपि चन्द्रगुप्त द्वितीय 'विक्रमादित्य का समसामयिक नहीं स्वीकार किया जा सकता।

देवीचन्द्रगुप्तम् नामक नाटक के उपलब्ध अंशो के अध्ययन से ज्ञात होता है कि समुद्रगुप्त के पश्चात् उनके पुत्र रामगुप्त ने साम्राज्य का शासनकार्य सञ्चालित किया था। सम्राट् रामगुप्त अत्यन्त कायर थे। उन्होंने तत्कालीन शक शासक के आक्रमण से भयभीत होकर उससे सन्धि कर ली थी। सन्धि में अपनी पत्नी रानी ध्रुवदेवी को उस शकनरेश को देने का वचन दे दिया था। किन्तु रामगुप्त के छोटेभाई कुमार चन्द्रगुप्त ने रानी ध्रुवदेवी का वेश धारण कर शकनरेश के पास पहुँचकर कूटनीति के द्वारा शकनरेश को मार डाला और वहाँ से सफलता पूर्वक वापस लौट आया। इसके बाद कुमार

---

१ मुद्राराक्षस की भूमिका कान्तानाथ शास्त्री त्रयम्बक तैलङगद्धारा सम्पादित पृ०-१५

चन्द्रगुप्त ने अपने बडे भाई रामगुप्त की भी हत्या कर दी तथा स्वत गुप्त साम्राजय का अधिपति बन गया। चन्द्रगुप्त के अनुपम साहस से ध्रुवदेवी उस पर आसक्त हो गयी। जिससे चन्द्रगुप्त ने ध्रुवदेवी से विवाह कर लिया। देवीचन्द्रगुप्तम् नाटक के इस कथानक को देखकर यह सम्भव नहीं प्रतीत होता कि इस नाटक के लेखक विशाखदत्त ने चन्द्रगुप्त अथवा कुमारगुप्त के आश्रय मे रहकर ऐसे कथानक की रचना की हो जिसमे चन्द्रगुप्त ने अपने सगे बडे भाई की हत्या कर उसकी रानी से विवाह कर लिया है। इससे यही प्रमाणित होता है कि मौखरिनरेश अवन्तवर्मा के शासनकाल मे विशाखदत्त ने मुद्राराक्षस एवं देवी चन्द्रगुप्तम् नाटकों की रचना की है अत इस आधार पर इन्होंने विशाखदत्त को छठी शताब्दी के उत्तरार्ध का ही स्वीकार किया है।

विशाखदत्त छठी शताब्दी के अन्तिम भाग मे हुए थे इसमें एक अन्य यह भी प्रमाण है कि विशाखदत्त ने एक श्लोक में महाकवि भारवि का अनुकरण किया है। इससे विशाखदत्त का भारवि से परवर्ती होना सिद्ध होता है परन्तु विशाखदत्त निश्चित रूप से शिशुपालवध के रचयिता माघ के पूर्ववर्ती हैं क्योंकि महाकवि माघ ने मुद्राराक्षस की इस बात को परिवर्तित रूप में ग्रहण किया है कि सम्राट् चन्द्रगुप्त चाणक्य की मन्त्रशक्ति के द्वारा तन्त्रावाप से युक्त होकर राक्षस रूप दर्पोन्मत्त नाग को वश में कर लेता है और वह मन्त्रबद्धवीर्य की भॉति नतानन हो जाता है। शिशुपालवध में इसी बात को इस रूप में कहा गया है-

तन्त्रावापविदायोगैर्मण्डलान्यधितिष्ठता

सुनिग्रहा नरेन्द्रेण फणीन्द्रा इव शत्रवः[१]।।

इन प्रमाणों के आधार पर यह स्वीकार किया जाता है कि विशाखदत्त भारवि के बाद तथा माघकवि के पूर्व हुए थे।इन दोनों महाकवियों के मध्य का समय छठी शताब्दी का उत्तरार्ध ही सिद्ध होता है। विभिन्न प्रमाणो के आधार पर भारवि का समय ४५० ई० सन् के आसपास पॉचवी शताब्दी के मध्य में

---

१ शिशुपालवधम् २ ८८

स्थिर किया जा सकता है। इसका मुख्य प्रमाण यह है कि दक्षिण के चालुक्यवंशी नरेश पुलकेशी द्वितीय के शासन काल में 'ऐहोल' के शिलालेख में कालिदास के साथ भारवि के नाम का उल्लेख प्राप्त होता है[१]। इस शिलालेख का समय ६३४ ई० सन् है। इसी प्रकार दुर्विनीत (गंगनरेश) के समय के शिलालेख से यह ज्ञात होता है कि दुर्विनीत ने किरार्तार्जुनीयम् के १५वें सर्ग पर टीका लिखी थी[२]। गगनरेश दुर्विनीत का समय ४८१ ई० सन् के आसपास स्वीकार किया जाता है। इसी प्रकार माहकवि माघ के शिशुपाल वध महाकाव्य से आचार्य आनन्दवर्धन ने ध्वन्यालोक में उदाहरण के रूप में दो श्लोको को उद्धृत किया है। ध्वन्यालोक में शिशुपाल वध से उद्धृत श्लोक है- (१) रम्या इति प्राप्नुवती पताका[३] तथा (२) त्रासाकुल परिपतन्[४] इत्यादि। आनन्दवर्धन का समय नवम शताब्दी का पूर्वार्ध है। अत. माघ आनन्दवर्धन के पूर्ववर्ती है। इसी प्रकार डा० कीलहार्न को राजपूताने के वसन्तगढ नामक किसी स्थान से वर्मलात राजा का एक शिलालेख प्राप्त हुआ है। शिलालेख का समय ६२५ ई० सन् है। कीलहार्न के अनुसार शिशुपालवध की हस्तलिखित प्रतियो में सुप्रभदेव के आश्रयदाता वर्मलात का उल्लेख प्राप्त होता है। वर्मलात पाठ ही प्रामाणिक है। अत सुप्रभदेव का भी समय ६२५ ई० सन् के आसपास का है[५]। सुप्रभदेव माघ के पितामह थे। अत. माघ का समय ६५० ई० सन् से ७०० ई० सन् के मध्य का स्वीकार किया जाता है। इस प्रकार भारवि के पद्य का अनुकरण करने के कारण तथा माघ द्वारा मुद्राराक्षस की कथावस्तु को आधार बनाकर उपर्युक्त श्लोक को प्रस्तुत करने के कारण विशाखदत्त इन दोनों भारवि एवं

---

१ येनायोजिनवेश्म स्थिरमर्थविधौ विवेकिना जिनवेश्म।
स विजयता रविकीर्ति कविताश्रितकालिदास भारविकीर्ति ।।
बलदेव उपाध्याय, सस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ० १८२

२ शब्दावतारकारेण देवभारतीनिबद्धवड्ढकथेन किरातार्जुनीयपञ्चदशसर्गटीकाकारेण दुर्विनीत नामधेयेन। वहीं पृ० १८२ पर उद्धृत

३ शिशुपालवधम् ३/५३

४ वही ५/२६

५ सस्कृत साहित्य का इतिहास, आचार्य बलदेव उपाध्याय, पृ० १८३

माघ के मध्यवर्ती सिद्ध होते है। अत इनके आविर्भाव का काल छठी शताब्दी स्वीकार किया जाता है।

कन्नौज के मौखरिनरेश अवन्तिवर्मा को विशाखदत्त का आश्रयदाता मानकर विशाखदत्त के स्थिति काल को छठी शताब्दी ईस्वी का सिद्ध करने मे भी अनेक आपत्तियॉ है-

(क) मौखरिनरेश अवन्तिवर्मा सम्पूर्ण भारत अथवा अधिकाश भारत का एकछत्र सम्राट् कभी नहीं रहा। उसे केवल कन्नौज का शासक माना गया है। जबकि मुद्राराक्षस के तृतीय अङ्क मे -

'आशैलेन्द्राच्छिलान्तस्खलितसुरनदीसीकरासारशीतात्

तीरान्तान्नैकरागस्फुरितमणिरुचो दक्षिणस्यार्णवस्य।

आगत्यागत्य भीतिप्रणतनृपशतैः शश्वदेव क्रियन्ताम्

चूडारत्नांशुगर्भास्तव चरणयुगस्याङ्गुलीरन्ध्रभागाः'[१]।

अर्थात् शिलाओ के मध्य में आकाश से गिरी हुई गङ्गा की नन्हीं-नन्ही जल की बूदो की निरन्तर वर्षा से शीतल हिमालय से लेकर अनेक वर्णवाली चमकीली मणियों की कान्ति वाले दक्षिण सागर के तट से आ-आकर भय से झुके हुए सैकडों राजाओं से तुम्हारे दोनो चरणों की अङ्गुलियों के छिद्र सर्वदा ही मुकुटो की मणियों की कान्ति से पूर्ण किये जॉय। तथा

अम्भोधीनां तमालप्रभवकिसलयश्यामवेलावनानाम्

आपारेभ्यश्चतुर्णां चटुलतिमिकुलक्षोभितान्तर्जलानाम्।

मालेवाज्ञा सपुष्पा तव नृपतिशतैरुह्यते या शिरोभिः

सा मय्येव स्खलन्ती कथयति विनयालङ्कृतं ते प्रभुत्वम्[२]।

मुद्रा० ३/१९
मुद्रा० ३/२४

अर्थात् तमाल नामक वृक्षो से निकले हुए कोमल पत्तों से श्यामवर्ण तट के वनो वाले चञ्चल मत्स्यसमूह से विक्षुब्ध अन्तर्जल वाले, चारो सागरों के पार से आए हुए सैकडो राजाओं के द्वारा तुम्हारी आज्ञा, ताजे फूलों की मालाओं के समान मस्तकों से धारण की जाती है। वह मुझमे बाधित होती हुई भी विनय से सुशोभित तुम्हारी प्रभुता को ही बतलाती है। विशाखदत्त ने चाणक्य की इन उक्तियों के माध्यम से जिस नरेश का वर्णन किया है उसको सम्पूर्ण भारत का एक छत्र सम्राट् बताया है। इसी प्रकार विशाखदत्त ने तृतीय अङ्क मे द्वितीय वैतालिक के द्वारा अपने आश्रयदाता राजा की सार्वभौमता का कथन कराया है[१]। अत कन्नौजनरेश अवन्तिवर्मा विशाखदत्त का आश्रयदाता नही हो सकता।

(ख) कन्नौज नरेश अवन्तिवर्मा ने ऐतिहासिक दृष्टि से महत्वपूर्ण ऐसा कोई उल्लेखनीय कार्य भी नहीं किया कि जिसके आधार पर इन्हें भगवान् विष्णु का पृथ्वीरक्षक अवतार स्वीकार किया जाय जबकि विशाखदत्त ने भरतवाक्य मे जिस राजा का उल्लेख किया है, वह भगवान् विष्णु के पृथ्वीरक्षक अवतार के रूप मे कल्पित है।[२] अत कन्नौज नरेश अवन्तिवर्मा को विशाखदत्त का आश्रयदाता मानना भरतवाक्य में प्रस्तुत भावना से मेल नहीं खाता।

(ग) नाटक मे प्रयुक्त म्लेच्छ शब्द के आधार पर भी हूणो को पराजित करने वाले अवन्तिवर्मा को विशाखदत्त का आश्रयदाता नहीं स्वीकार किया जा सकता। इस नाटक के भरतवाक्य में प्रयुक्त 'म्लेच्छ' शब्द से केवल 'हूण' अर्थ नहीं लिया जा सकता क्योंकि नाटककार कुलूत देश के अधिपति चित्रवर्मा, मलय देश के राजा सिंहनाद, कश्मीर देश के नरेश पुष्कराक्ष,

---

१ नाज्ञाभङ्ग सहन्ते नृवरनृपतयस्त्वादृशा सार्वभौमा । मुद्रा० ३/२२

२ वाराहीमात्मयोनेस्तनुमवनविधावास्थितस्यानुरूपाम्
यस्य प्राग्दन्तकोटि प्रलयपरिगता शिश्रिये भूतधात्री।
म्लेच्छैरुद्विज्यमाना भुजयुगमधुना सश्रिता राजमूर्ते
स श्रीमद्बन्धुभृत्यश्चिरमवतु महीं पार्थिवश्चन्द्रगुप्त ।। मुद्रा० ७/१९

सिन्धदेश के राजा सिन्धुषेण तथा पारस के राजा मेघ के लिए भी म्लेच्छ शब्द का प्रयोग करता है। पर्वतेश्वर तथा उसका पुत्र मलयकेतु भी म्लेच्छ ही थे।[१] इसके अतिरिक्त नाटककार विशाखदत्त शको, यवनो, किरातो, कम्बोज देशवासियो पर्शियनो तथा बह्लीको से भी पूर्णत परिचित थे।[२]

ये सभी म्लेच्छराज पर्वतक की सेना के अङ्ग थे। ये पराक्रम के लिए सर्वत्र प्रसिद्ध थे। इन पर अवन्तिवर्मा जैसा साधारण राजा विजय प्राप्त नहीं कर सकता था। इस प्रकार विशाखदत्त ने मुद्राराक्षस में जिस राजा की महत्ता एव अप्रतिमशक्तिशालिता का वर्णन किया है वह मौखरिवंशीय कन्नौजनरेश अवन्तिवर्मा नही हो सकता।

(घ) महाकवि बाण ने स्थाण्वीश्वर के महाराज प्रभाकरवर्धन की यशोगाथा का गान किया है। कन्नौज नरेश अवन्तिवर्मा प्रभाकरवर्धन के सम्बन्धी एवं समकालिक हैं। यदि इस अवन्तिवर्मा के आश्रय में विशाखदत्त रहे होते तो निश्चित रूप से महाकवि बाण से परिचित होते जबकि दोनों में से किसी ने भी एक दूसरे के बारे में अपनी कृतियों में सङ्केतमात्र तक नहीं किया है। यदि इन्हें समसामयिक माना जाय तो समसामयिक होते हुए भी बाण एवं विशाखदत्त आपस में एक दूसरे से अपरिचित क्यो रहे? इसका कोई समाधान नहीं है।

(ङ) मुद्राराक्षस में जिस काव्यशैली का प्रयोग किया गया है उसके लक्षण छठी अथवा उसके बाद की शैली से साम्य नहीं रखते। मुद्राराक्षस की शैली पञ्चम शताब्दी से बाद की नहीं हो सकती। इसमें प्रलम्ब समासों का अभाव है तथा इसकी भाषा में कृत्रिमता नगण्य है।

---

१ उपलब्धवानस्मि प्रणिधिभ्यो यथा तस्य म्लेच्छारजलोकस्य मध्यात् प्रधानतमा. पञ्च राजान· परया सुहृत्तया राक्षसमनुवर्तन्ते ते यथा– कौलूतश्चित्र वर्मा आदि श्लोक। वही १ २०

२ अस्ति तावत् शकयवनकिरातकाम्बोजपारसीकबाह्लीकप्रभृतिभिश्चाणक्य-मतिपरिगृहीतै । वही पृ० ५८

नाटक में बौद्धों के उल्लेख से विशाखदत्त का कालनिर्धारण - मुद्राराक्षस के सप्तम अङ्क के एक पद्य मे चन्दन दास के द्वारा अपने मित्र राक्षस के लिए अपने प्राणो का भी त्याग करने के लिए उद्यत होने का वर्णन किया गया है। वह पद्य इस प्रकार है-

दुष्कालेऽपि कलावसज्जनरुचौ प्राणै. परं रक्षता
नीतं येन यशस्विनातिलघुतामौशीनरीयं यश.।
बुद्धानामपि चेष्टितं सुचरितै. क्लिष्टं विशुद्धात्मना
पूजार्होऽपि स यत्कृते तव गतो वध्यत्वमेषोऽस्मि स:[१]।।

यह राक्षस की उक्ति है। इसका अभिप्राय है कि अनुचित लोकप्रवृत्तिवाले पापी इस कलियुग मे भी अपने प्राणों से दूसरे की रक्षा करते हुऐ जिस यशस्वी ने शिवि के यश को भी तुलना में अत्यन्त लघु बना दिया है तथा जिस पवित्र आत्मा चन्दनदास ने अपने पुनीत आचरणों से बुद्धों के भी आचरणो को तिरस्कृत कर दिया है, पूजा के योग्य भी वह महात्मा जिसके लिए तुम्हारा अर्थात् चाणक्य का शत्रु बन गया है वही यह मैं उपस्थित हूँ। उपर्युक्त पद्य मे चन्दनदास के इस त्याग की भावना को बौद्धो के सुचरितो से भी बढकर दिखाया गया है। भगवान् बुद्ध के साथ चन्दनदास की तुलना करने से यह पता चलता है कि जब भारतवर्ष में बुद्ध धर्म का अस्तिव एव महत्त्व था उस समय मुद्राराक्षस की रचना की गयी। मुद्राराक्षस के चतुर्थ अङ्क में कवि ने जीवसिद्धि के लिए क्षपणक शब्द का प्रयोग किया है[२]। प्रोफेसर विल्सन ने क्षपणक शब्द का अर्थ बौद्ध माना है[३]। संस्कृत साहित्य मे यह शब्द बौद्ध एव जैन दोनो सन्यासियों के लिए प्रयुक्त होता था। इसी प्रकार क्षपणक के लिए प्रयुक्त भदन्त विशेषण बौद्ध एव जैन दोनों के लिए प्रयुक्त होता था। इससे एम

---

१ मुद्रा०, ७/५

२ राक्षस -कथ प्रथममेव क्षपणक । पुरुष -जीवसिद्ध । मुद्रा० पृ० ११२,

३ Theatre, Wılson 11,P 132

आर काले भी सहमत हैं। इसी प्रकार अर्हत् शब्द भी है।[1] यह क्षपणक श्रमणक का परिवर्तित रूप हो सकता है। इस शब्द का बौद्धो के लिए भरपूर प्रयोग हुआ है। मृच्छकटिक मे भी बौद्ध सन्यासी को श्रमणक या भिक्षु कहा गया है। मुद्राराक्षस मे बौद्ध धर्मावलम्बी क्षपणक जीवसिद्धि को चाणक्य एव राक्षस के निकट रहने वाला बताया गया है। राक्षस क्षपणक के आगमन मे अपशकुन देखता है एव असहजता का अनुभव करता है। इस प्रकार राक्षस, चाणक्य आदि ब्राह्मणो के बौद्ध सन्यासी क्षपणक जीवसिद्धि के प्रति घृणाभाव को देखकर भी कुछ विद्वानों ने यह निष्कर्ष निकाला है कि मुद्राराक्षस की रचना के समय में बुद्धधर्म का अस्तिव था किन्तु वह क्षीण हो रहा था इसी लिए मुद्राराक्षस में इसके प्रति उपेक्षा का भाव प्रदर्शित है। बौद्ध मतों का ह्रास ७वीं शताब्दी से हुआ है। अत इसके पहले ही छठी शताब्दी के उत्तरार्ध में मुद्राराक्षस की रचना हुई थी।

कातानाथ शास्त्री त्र्यम्बक तैलङ्ग महोदय ने इसी मत को स्वीकार किया है। इनका विचार है कि मुद्राराक्षस में बौद्ध धर्म के विषय में जो सङ्केत प्राप्त होता है वह भारत से बौद्ध धर्म के सर्वथा लुप्त हो जाने से काफी पहले से सम्बद्ध है। यद्यपि विशाखदत्त ब्राह्मण धर्म का अनुयायी है।, वह बौद्धधर्म को निश्चित रूप से नहीं मानता। फिर भी उसने बौद्धधर्म का सम्मान के साथ उल्लेख किया है। विशाखदत्त द्वारा बौद्धधर्म का इस प्रकार से उल्लेख करना इस तथ्य का सूचक है कि चन्दनदास का चरित जिन बौद्ध धर्मावलम्बियों से बढचढ़ कर निदर्शित है वह भारत में लुप्त होते हुए बौद्धों से बहुत पूर्व का है। आठवीं एवं नवीं शताब्दी में बौद्ध धर्म पूर्णत लुप्त हो चुका था मुद्राराक्षस की बौद्ध विषयिणी चर्चा इस समय की नहीं हो सकती। इस समय बौद्ध धर्म को न तो राज्याश्रय प्राप्त था, न ही इसमें जनसामान्य को अपनी ओर आकृष्ट करने का सामर्थ्य बचा था अत. मुद्राराक्षस की रचना निश्चित रूप से इस समय से पूर्व अर्थात् छठी शताब्दी के उत्तरार्ध में हो चुकी थी।

---

[1] मुद्रा० Introductıon M R Kale P 9

किन्तु मुद्राराक्षस के सप्तम अङ्क में चन्दनदास के शीलसौजन्य को बुद्धों के शील सौजन्य से बढाकर बताना इस बात का प्रमाण है कि जब बौद्ध धर्म अत्यन्त उन्नत अवस्था में था तब मुद्राराक्षस की रचना हुई होगी। यह समय चौथी शताब्दी का उत्तरार्ध हो सकता है। वस्तुत बुद्धों से भी चन्दनदास की उत्कृष्टता का वर्णन छठी अथवा उसके बाद की शताब्दी के भारत की धार्मिक भावनाओं के साथ मेल नहीं खाता। इसी प्रकार क्षपणक को अपशकुन मानने वाला राक्षस क्षपणक को सम्मान पूर्वक भदन्त[१] सम्बोधन से सम्बोधित करता है। क्षपणक को जीवसिद्धि अर्थात् जीवन की रक्षा करने वाला बताया गया है[२]। क्षपणक के मुख से अर्हतों को मोहरूपी व्याधि का वैद्य बताया गया है। इन बौद्ध संन्यासियों के वचनों के पालन की अनिवार्यता बतायी गयी है। ये प्रथमत सुनने में थोडी देर तक कटु प्रतीत होने वाले किन्तु पथ्यकारी वचनों का उपदेश करते हैं[३]। इस रूप में कवि विशाखदत्त ने अपने नाटक में बौद्ध न होने पर भी बौद्ध धर्म की एवं बौद्धधर्म के अनुयायियों की प्रशंसा की है। जिससे यही सिद्ध होता है कि मुद्राराक्षस की रचना के समय बौद्ध धर्म का ह्रास नहीं हुआ था अपितु वह अपनी उन्नत अवस्था में था। बौद्ध धर्म की उन्नत अवस्था भारत में चतुर्थ शताब्दी में थी उसके बाद उसमे निरन्तर ह्रास होता गया। अत कन्नौज नरेश अवन्तिवर्मा को विशाखदत्त का आश्रयदाता नहीं स्वीकार किया जा सकता, क्योकि इस अवन्तिवर्मा का समय छठी शताब्दी का उत्तरार्ध निर्धारित किया गया है। जबकि विशाखदत्त का स्थिति काल चतुर्थ शताब्दी का उत्तरार्ध भाग स्वीकार किया जाना चाहिए।

पार्थिवो दन्तिवर्मा पाठ का विवेचन – मुद्राराक्षस के भरतवाक्य मे पार्थिवश्चन्द्रगुप्त के स्थान पर कुछ रामास्वामी आदि विद्वानो ने 'पार्थिवों दन्तिवर्मा' पाठ को स्वीकार किया है। सी० आर० देवधर ने अपनी मुद्राराक्षस

---

१ राक्षस -भदन्त निरूप्यता तावदस्मत्प्रस्थानदिवस । मुद्रा० पृ० १११

२ पुरुष -जीवसिद्धि (क्षपणक) मुद्रा० पृ० १११

३ शासनमर्हता प्रतिपद्यध्व मोहव्याधिवैद्यानाम्।
ये मुहूर्तमात्रकटुक पश्चात् पथ्यमुपदिशन्ति। मुद्रा० ४/१८

की भूमिका में लिखा है कि मालाबार में प्राप्त होने वाली मुद्राराक्षस की एक अत्यन्त प्राचीन एव विश्वसनीय हस्तलिखित प्रति में दन्तिवर्मा पाठ उपलब्ध होता है। 'पार्थिवोदन्तिवर्मा पाठ को प्रामाणिक मानकर रडस्वामी सरस्वती ने विशाखदत्त का सम्बन्ध पल्लवनरेश दन्तिवर्मा से जोडने का प्रयास किया है।[१] दक्षिण मे दन्तिवर्मा नाम के पल्लवनरेश ने ७७९ ई० सन् से ८३० ई० सन् के मध्य शासन किया था। यदि इस दन्तिवर्मा से विशाखदत्त का सम्बन्ध था तो विशाखदत्त का समय आठवीं शताब्दी का अन्तिम भाग अथवा नवी शताब्दी का पूर्वार्ध माना जा सकता है।

किन्तु 'पार्थिवो दन्तिवर्मा' पाठ मानने मे अनेक कठिनाइयॉ उपस्थित हो जाती है। भारतीय इतिहास मे दक्षिण में दन्तिवर्मा नाम के अनेक शासक हुए है। यथा-

(क) पल्लवनरेश दन्तिवर्मा-७७९-८३० ई० सन्।

(ख) राष्ट्रकूट राजा दन्तिवर्मा ६०० ई० सन् । तथा

(ग) लाट देश का राजा दन्तिवर्मा ८५० ई० सन्।[२]

इनमें से किस दन्तिवर्मा के साथ विशाखदत्त का सम्बन्ध रहा होगा, निश्चित रूप से यह कह पाना कठिन है। इनमें से किसी को स्वीकार भी कर लिया जाय तो विशाखदत्त का समय सातवीं शताब्दी से लेकर नवमशताब्दी के पूर्वार्ध तक किसी भी समय स्वीकार करना पडेगा। यदि दक्षिण के पल्लवनरेश दन्तिवर्मा से विशाखदत्त का सम्बन्ध मान लिया जाय तो मुद्राराक्षस का रचनाकाल आठवीं शताब्दी माना जा सकता है। किन्तु पल्लव नरेश दन्तिवर्मा को विशाखदत्त का आश्रयदाता स्वीकार करने में अनेक कठिनाइयॉ उपस्थित होती है। विशाखदत्त का निवास स्थान पूर्वी बिहार अथवा बंगाल का पश्चिमी भूभाग स्वीकार किया गया है। इनके पिता एवं पितामह राजकार्य से साक्षात्

---

[१] Ranga Swamı Saraswatı, JMY,XIII 686, EI, IV, 180

[२] C J Dubruıl, ancıent Hıstory of the Deccan, 74 (2) The Pallavas 54,65,72,T A. Gopanatha Rao (3) The pallavas and the Ganga Pallavas (chrıstıancollege magzıne)

सम्बद्ध माने गये है। ये निश्चित रूप से दाक्षिणात्य नही थे। न ही पल्लवनरेश दन्तिवर्मा ने पूर्वी बिहार अथवा पश्चिम बगाल के पश्चिमी भूभाग पर शासन किया था। अत विशाखदत्त को पल्लवनरेश दन्तिवर्मा से सम्बद्ध नहीं किया जा सकता।

इसी प्रकार ऐसा कोई भी उल्लेख नहीं प्राप्त होता कि पल्लवनरेश दन्तिवर्मा के समय मे किसी भी आक्रमणकारी म्लेच्छ ने दक्षिण पर आक्रमण किया था जिस के उत्पीडन से पृथ्वी की रक्षा के लिए विशाखदत्त पल्लवनरेश से प्रार्थना करता। ऐसा भी कोई प्रमाण नहीं मिला कि कभी भी इस दन्तिवर्मा ने म्लेच्छों के अत्याचार से पृथ्वी की रक्षा की हो। मुद्राराक्षस में जिन्हे म्लेच्छ कहा गया है उनका दक्षिण भारत से किसी प्रकार का कोई सम्बन्ध नहीं था। हूण आदि उस समय लगातार उत्तर भारत पर ही आक्रमण कर रहे थे। उत्तर भारत के ही राजा इनसे लडभिड कर भारतभूमि की इनके आक्रमण से रक्षा कर रहे थे। जबकि मुद्राराक्षस के भरतवाक्य में यह स्पष्ट हो जाता है कि विशाखदत्त ने जिस राजा की स्तुति की है वह म्लेच्छों से भारत की रक्षा करने वाला था। इस कारण भी दन्तिवर्मा को विशाखदत्त का आश्रयदाता नहीं माना जा सकता।

पल्लवनरेश दन्तिवर्मा को विशाखदत्त का आश्रयदाता इसलिए भी नहीं स्वीकार किया जा सकता कि विशाखदत्त का आश्रयदाता भगवान् विष्णु का पृथ्वीरक्षक अवतार माना गया है, जबकि पल्लवनरेश सामान्यत शिव की उपासना करने वाले थे फिर दन्तिवर्मा को वैष्णव कैसे माना जा सकता है। क्योंकि इनके वैष्णव होने का कोई प्रमाण प्रमाण नहीं प्राप्त होता। प्रो० ध्रुव का स्पष्ट मत है कि पल्लवनरेश कट्टर शैव मत को मानने वाले थे। उपर्युक्त कारणों के आलोक में प्राय सभी प्रमुख विद्वानो ने पार्थिवो दन्तिवर्मा पाठ को अप्रामाणिक स्वीकार किया है।

पार्थिवों रन्तिवर्मा - मुद्राराक्षस की एक हस्तलिखित प्रति मे भरतवाक्य में पार्थिवश्चन्द्रगुप्त के स्थान पर पार्थिवो रन्तिवर्मा का उल्लेख प्राप्त होता है। किन्तु भारतीय इतिह्रास के प्राचीन अथवा मध्ययुगीन समय मे इस नाम का

कोई उल्लेखनीय व्यक्ति नहीं प्राप्त होता। अत यह पाठ अशुद्ध है। यही मत तैलङ्ग एवं दास गुप्ता का भी है। इनके अनुसार भारतीय संदर्भो में कहीं पर रन्तिवर्मा का उल्लेख नहीं प्राप्त होता पार्थिवोऽवन्तिवर्मा अथवा पाथिवो दन्तिवर्मा के स्थान पर सम्भवत प्रतिलिपि करते समय पार्थिवो रन्तिवर्मा यह गलत पाठ लिख दिया गया होगा। कालिदास ने रन्तिवर्मा से मिलत-जुलते रन्तिदेव का अपने गीतिकाव्य 'मेघदूतम्' मे उल्लेख किया है। पूर्वमेघ में यक्ष ने मार्ग का निर्देश करते हुए मेघ से राजा रन्तिदेव के गवालम्भ यज्ञ की कीर्तिस्वरूप चर्मण्वती नदी का आदर करने का अनुरोध किया है[१]। यदि कालिदास द्वारा उल्लिखित रन्तिदेव एव मुद्राराक्षस के भरतवाक्य में उल्लिखित रन्तिवर्मा को एक मान लिया जाय तो विशाखदत्त को कालिदास का समसामयिक माना जा सकता है। किन्तु इतिहासविद् विद्वान् इस सम्बन्ध में एकमत हैं कि रन्तिवर्मा पाठ अप्रामाणिक है अत इसके आधार पर विशाखदत्त के काल का निर्धारण नहीं किया जा सकता।

पार्थिवश्चन्द्रगुप्त - मुद्राराक्षस के भरतवाक्य के अन्त में 'पार्थिवश्चन्द्रगुप्त' यह पाठ ही सर्वाधिक प्रमाणिक माना गया है। विभिन्न युक्तियों द्वारा 'पार्थिवोऽवन्तिवर्मा' पार्थवो दन्तिवर्मा तथा पार्थिवो रन्तिवर्मा इन पाठों के आधारपर कश्मीर नरेश अवन्ति वर्मा, कन्नौज नरेश अवन्तिवर्मा, पल्लवनरेश दन्तिवर्मा तथा ऐतिहासिक दृष्टि से अप्रामाणिक रन्तिवर्मा इन समस्त राजाओं को विशाखदत्त का आश्रयदाता स्वीकार करने में विभिन्न आपत्तियो का विवेचन किया जा चुका है अब भरतवाक्य मे प्रयुक्त 'पार्थिवश्चन्द्रगुप्त ' इस पाठ के आधारपर चन्द्रगुप्त को विशाखदत्त का आश्रयदाता स्वीकार कर नाटककार विशाखदत्त के काल के निर्धारण का विवेचन किया जायेगा।

---

१ आराध्यैन शरवणभव देवमुल्लङ्घिताध्वा
सिद्धद्वन्द्वैर्जलकणभयाद् वीणिभिर्मुक्तमार्ग ।
व्यालम्बेथा सुरभितनयालम्भजा मानयिष्यन्
स्रोतोमूर्त्या भुवि परिणता रन्तिदेवस्य कीर्तिम्।। 'मेघदूतम्' पूर्वमेघ ४५

'पार्थिवश्चन्द्रगुप्त. पाठ को स्वीकार करने मे एक समस्या यह उत्पन्न होती है कि जिस प्रकार अवन्तिवर्मा नाम के दो राजा भारतीय इतिहास मे प्रसिद्ध थे उसी प्रकार भारत मे चन्द्रगुप्त नाम के कम से कम तीन प्रसिद्ध राजाओ का उल्लेख प्राप्त होता है-

(क) मौर्य साम्राज्य का संस्थापक चन्द्रगुप्त मौर्य

(ख) मगध के गुप्त साम्राज्य का संस्थापक चन्द्रगुप्त प्रथम तथा

(ग) गुप्त साम्राज्य को उसके चरमोत्कर्ष तक पहुँचाने वाला असीम शक्तिसम्पन्न विक्रमादित्य चन्द्रगुप्त द्वितीय। इन तीनों में से प्रथम चन्द्रगुप्त मौर्य को विशाखदत्त का आश्रयदाता नहीं स्वीकार किया जा सकता। इसका कारण यह है कि इतिहासकारो ने चन्द्रगुप्त मौर्य का समय ३२२ ई० पू० से २९८ ई० पू० निर्धारित किया है। किन्तु मुद्राराक्षस की रचनाशैली इतनी प्राचीन नहीं है कि उसे चन्द्रगुप्त मौर्य युगीन माना जा सके। यदि यह चन्द्रगुप्त मौर्ययुगीन रचना होती तो निश्चित रूप से तत्कालीन अथवा उसकी परवर्ती रचनाओं में मुद्राराक्षस का उल्लेख मिलता।

भरतवाक्य में प्रयुक्त चन्द्रगुप्त शब्द को कुछ विद्वानों ने चन्द्रगुप्त मौर्य का सङ्केत माना है। कपिलदेव द्विवेदी ने[१] अपने ग्रन्थ संस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास में तथा डा० निरूपण विद्यालङ्कार ने मुद्राराक्षस की अपनी भूमिका मे चन्द्रगुप्त का अर्थ चन्द्रगुप्त मौर्य मानने में मुद्राराक्षस के प्राचीन टीकाकार ढुण्ढिराज का प्रमाण के रूप में उल्लेख किया है। किन्तु ढुण्ढिराज ने इस भरत वाक्य की व्याख्या में चन्द्रगुप्त. का अर्थ चन्द्रगुप्त मौर्य न करके पार्थिवश्चन्द्रगुप्त की टीका 'पार्थिवश्चन्द्रगुप्त ही की है[२] वस्तुत जैसे- क्रूरग्रह.

---

[१] (क) सस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास, कपिलदेव द्विवेदी, पृ० ३५५
(ख) मुद्राराक्षस डा निरूपण विद्यालड्कार भूमिका पृ०-६
साहित्य भण्डार, सुभाषबाजार, मेरठ,

[२] मुद्राराक्षस ढुण्ढिराज की स० व्याख्या, पृ०-१६५

सकेतुश्चन्द्रमभिभवितुमिच्छति बलात् रक्षत्येन तु बुधयोग[१] श्लोक श्लेष के द्वारा दो अर्थो का बोधक है उसी प्रकार भरतवाक्य में प्रयुक्त चन्द्रगुप्त पद नाटक में राजा के रूप में वर्णित चन्द्रगुप्त मौर्य तथा जिसके आश्रय में कवि रह रहा था उस अपने आश्रयदाता चन्द्रगुप्त द्वितीय इन दो अर्थों को श्लेष के द्वारा उपस्थित कर रहा है। इससे यह अभिप्राय कथमपि नहीं निकलता कि विशाखदत्त चन्द्रगुप्त मौर्य का समकालीन था। चन्द्रगुप्त मौर्य को विशाखदत्त का आश्रयदाता इसलिए भी नहीं स्वीकार किया जा सकता क्योकि विशाखदत्त अपने नाटक मुद्राराक्षस में चन्द्रगुप्त के लिए हर जगह केवल आदर का भाव ही नहीं अभिव्यक्त करता अपितु कुलहीन आदि शब्दों के प्रयोग के द्वारा उसके प्रति अवहेलना का भाव भी प्रकट करता है। एक कवि द्वारा अपने आश्रयदाता के प्रति अवहेलनामूलक इस प्रकार के व्यवहार की कल्पना नहीं की जा सकती। इसी प्रकार नाटक की प्रस्तवना मे विशाखदत्त के पिता की महाराज तथा पितामह को सामन्त कहा गया है, किन्तु सम्पूर्ण मुद्राराक्षस के अध्ययन के अनन्तर भी यह नहीं सिद्ध हो पाता कि विशाखदत्त के पिता ३२२ ई० पूर्व मे विद्यमान चन्द्रगुप्त मौर्य के सम्बन्धी राजा थे, न यही सिद्ध हो पाता है कि इनके पितामह चन्द्रगुप्त मौर्य के सामन्त थे। अत चन्द्रगुप्त मौर्य को विशाखदत्त का आश्रयदाता नहीं स्वीकार किया जा सकता।

मगध के गुप्त साम्राज्य के संस्थापक गुप्त सम्राट् चन्द्रगुप्त प्रथम को भी विशखदत्त का आश्रयदाता नहीं स्वीकार किया जा सकता। क्योंकि इनके द्वारा किसी विदेशी म्लेच्छ आक्रमणकारी को पराजित किया गया हो इसका कोई ऐतिहासिक प्रमाण नहीं प्राप्त होता। इस प्रकार चन्द्रगुप्त मौर्य एवं चन्द्रगुप्त प्रथम को विशाखदत्त का आश्रयदाता स्वीकार न किये जा सकने के कारण 'पार्थिवश्चन्द्रगुप्त पाठ के आधार पर चन्द्रगुप्त द्वितीय को ही विशाखदत्त का आश्रयदाता स्वीकार किया जा सकता है। इतिहासकारो ने ३७५ से ४१३ ई० सन् के मध्य चन्द्रगुप्त द्वितीय का राज्यकाल सुनिश्चित किया है। चन्द्रगुप्त द्वितीय मुद्राराक्षस के भरतवाक्य की भावनाओं के अनुरूप ही एक अत्यन्त

---

१ मुद्रा०, श्लोक-१/६.

पराक्रमी प्रतापी राजा था। इसने अपने पराक्रम से प्राय सम्पूर्ण भारत मे अपने राज्य का विस्तार कर लिया था। शकों को पराजित करने तथा असीमशक्ति से युक्त होने के कारण इन्हें विक्रमादित्य की उपाधि से अलङ्कृत किया गया था। चन्द्रगुप्त द्वितीय 'विक्रमादित्य' ने ही कुषाणों के वंशजों बाह्लीको तथा अन्य म्लेच्छो को युद्ध में पराजित कर दूर भगा दिया था तथा पूरे पंजाब में इन लोगों से अधिकृत प्रदेश को अपने अधिकार में कर लिया था। चन्द्रगुप्त द्वितीय की राजधानी कुसुमपुर पाटलिपुत्र आधुनिक पटना थी जहॉ से सम्पूर्ण भारतवर्ष के शासन के सूत्र सञ्चालित होते थे।

चतुर्थ तथा पञ्चम शताब्दी के गुप्त सम्राट् पूर्णत वैष्णव थे। इन्होंने अपने आराध्य भगवान् विष्णु के अनेक मन्दिरों का निर्माण भी कराया था। चन्द्रगुप्त द्वितीय भी विष्णुभक्त था। मुद्राराक्षस के भरतवाक्य मे नाटककार विशाखदत्त द्वारा प्रस्तुत राजा की छवि चन्द्रगुप्त द्वितीय से साम्य रखती है। विशाखदत्त ने अपने आश्रयदाता को म्लेच्छों के आक्रमण से भारतभूमि की रक्षा करने वाला भगवान् विष्णु का अवतार बताया है। शक, कुषाण तथा बाह्लीक ही जो बाहर से आकर भारत के भूभाग पर अधिकार कर रहे थे, ग्रन्थकार के द्वारा म्लेच्छ कहे गये है। इनके आक्रमण से भारत को मुक्ति दिलाने वाला राजा चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य ही है तथा यह विष्णु का उपासक भी है अत इसे म्लेच्छों से पृथिवी की रक्षा करने वाला विष्णु का अवतार कहा जाना तर्कसङ्गत ही है। इस प्रकार भरतवाक्य के पार्थिवश्चन्द्रगुप्त पाठ के आधार पर चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य को विशाखदत्त का आश्रयदाता स्वीकार करने पर विशाखदत्त का स्थितिकाल चतुर्थ शताब्दी का उत्तरार्ध अथवा पॉचवी शताब्दी का पूर्वार्ध स्वीकार किया जा सकता है।

मौर्य सम्राट् अशोक के द्वारा बौद्ध धर्म ग्रहण कर लेने पर राज्याश्रय को प्राप्त कर लेने के कारण बौद्धधर्म का अत्याधिक प्रचाार प्रसार हुआ था तथा भारतीय समाज में उसने अपना आदरणीय स्थान बना लिया था। किन्तु परवर्ती काल में उसका अपनी जन्मभूमि में ही ह्रास हो गया मुद्राराक्षस के

सप्तम अङ्क मे जो 'बुद्धानामपि चेष्टित सुचरितै क्लिष्ट विशुद्धात्मना'[१] के द्वारा चन्दनदास के शीलसौजन्य को बुद्धो के सुचरितो से बढाचढा कर बताया गया है इससे चतुर्थ शताब्दी के भारत की धार्मिक स्थिति का ही निर्देश प्राप्त होता है।

यह पहले ही बताया जा चुका है कि मुद्राराक्षस मे जिस भषाशैली का प्रयोग किया है वह पांचवीं शताब्दी से बाद की नहीं हो सकती अपितु वह चौथी शताब्दी की ही प्रतीत होती है। क्योंकि इसमें लम्बे समासों का अभाव है। इसमें जिस सामाजिक दशा का चित्रण किया गया है वह भी चतुर्थ अथवा पञ्चम शताब्दी के भारतीय जीवन की गतिविधियों का ही निर्देश करता है। नाटक में प्रयुक्त सभी पात्र अपने-अपने कार्य की सिद्धि में कठोरता के साथ तत्पर दिखायी देते है। इसमें प्रमाद का कोई अवकाश नहीं है। विशाखदत्त नैतिकता एवं सदाचार के आदर्श से पूर्णत. परिचित थे। मुद्राराक्षस की पङ्क्तियों में नाटक के पात्रों के आचरण में जो सभ्यता परिलक्षित होती है वह कालिदास के काव्यों में वर्णित आदर्श से साम्य रखती है। नाटक के दोनों प्रमुख पात्र नायक चाणक्य तथा प्रतिनायक राक्षस दोनों ही अपने-अपने उच्च आदर्शों की प्राप्ति के लिए ही सतत प्रयत्नशील दृष्टिगत होते हैं। चाणक्य का लक्ष्य है राक्षस को वश में करना। उसका विचार है कि जब तक मैं नन्दों के प्रति दृढ भक्ति वाले राक्षस को चन्द्रगुप्त का मन्त्री नही बना देता तब तक मैने नन्दों का कुछ भी नहीं बिगाडा, न ही चन्द्रगुप्त की लक्ष्मी को स्थिर किया[२]। इस कारण ही वह राक्षस को वश में करने के लिए सतत उद्योगरत रहता है। इसी प्रकार राक्षस का लक्ष्य है नन्दों का उन्मूलन करने वाले चाणक्य एवं चन्द्रगुप्त को राज्य से उखाड फेंकना इस[३] कार्य के लिए वह हर संभव प्रयास करता है।

---

१ मुद्रा० ७/५

२ अथवा अगृहीते राक्षसे किमुत्खात नन्दवशस्य किवा स्थैर्यमुत्पादित चन्द्रगुप्तलक्ष्म्या । मुद्रा०, पृ०-२२-२३

३ देव स्वर्गगतोऽपि शात्रववधेनाराधित स्यादिति। मुद्रा० २५

यह अवश्य है कि भाग्य उसका साथ नही देता[१]। दोनो के प्रयत्न निष्काम भाव से प्रेरित है। इस प्रकार मुद्राराक्षस मे वर्णित सामाजिक गतिविधियों से भी विशाखदत्त का समय चतुर्थ शताब्दी का उत्तरार्ध सिद्ध होता है।

मुद्राराक्षस नाटक की राजनीतिक कल्पना भी चतुर्थ एव पञ्चम शताब्दी की परिस्थितियों से मिलती जुलती है। इसमें चाणक्य की कूटनीति को व्यवहार की कसौटी पर खरा उतरता दिखाया गया है। विशाखदत्त सामान्य आचारशास्त्र के ऊपर आचरण के उच्चतर आदर्श की संरचना करते हैं। समाज एवं शासन पर वे व्यावहारिक तथा कुशल राजनीतिज्ञ की दृष्टि से विचार करते हैं। वस्तुत मुद्राराक्षस में ऐसे युग का चित्रण है जो विराट् सर्जनात्मक उद्वेजना से परिपूर्ण है। इस नाटक के भरतवाक्य में जिस राजनैतिक साम्राज्य की कल्पना की गयी है वह चतुर्थ शताब्दी के गुप्त साम्राज्य की संरचना से मेल खाती है अत विशाखदत्त का समय चतुर्थ शताब्दी का उत्तरार्ध अथवा पञ्चम शताब्दी का पूर्वार्ध स्वीकार किया जा सकता है।

मुद्राराक्षस का भरत वाक्य अपने आप में विलक्षणता से परिपूर्ण है। अन्य नाटकों मे भरतवाक्य का प्रयोग नायक द्वारा किया जाता है जबकि विशाखदत्त ने इस नाटक में प्रतिनायक राक्षस के मुँह से भरतवाक्य का प्रयोग करवाया है चाणक्य नायक है किन्तु भरतवाक्य का प्रयोग न कर आशीर्वचन प्रस्तुत करता है[२]। उसके द्वारा 'भो राजन् चन्द्रगुप्त! भो अमात्य राक्षस! उच्यतां कि वा भूय प्रियमुपकरोमि?' कहने पर यद्यपि सम्राट् चन्द्रगुप्त को भरतवाक्य कहने का पूर्ण अवसर प्राप्त था किन्तु वह भरतवाक्य की मात्र पूर्वपीठिका प्रस्तुत करता है[३]। भरतवाक्य को प्रस्तुत करने का कार्य इस नाटक

---

१ तस्यैव बुद्धिविशिखेन भिनद्मि मर्म। वर्मीभवेद्यदि न। दैवमदृश्यरूपम्। मुद्रा० २/८

२ चाणक्य-वृषल, सम्पन्नास्ते सर्वाशिष । मुद्रा०, पृ०-१६१

३ राजा-किमत पर प्रियमस्ति।
राक्षसेन सम मैत्री राज्ये चारोपिता वयम्।
नन्दाश्चोन्मूलिता सर्वे कि कर्तव्यमत· प्रियम्।। मुद्रा० ७/१८

का प्रतिनायक राक्षस करता है। संस्कृत साहित्य मे कहीं अन्यत्र ऐसा उदाहरण अप्राप्य है। इसमें भरतवाक्य को प्रतिनायक द्वारा प्रस्तुत करवाने के पीछे विशाखदत्त का यही मुख्य अभिप्राय हो सकता है कि वह भरतवाक्य के अन्त में अपने आश्रयदाता राजा का नाम रखने के लिए 'पार्थिवश्चन्द्रगुप्त ' पाठ अवश्य रखना चाहता था। यदि यही भरतवाक्य चन्द्रगुप्त के मुख से प्रस्तुत कराया गया होता तो राजन् शब्द के द्वारा केवल राजसामान्य का वर्णन हो सकता था इससे कवि के आश्रयदाता को प्रस्तुत करने के अभिप्राय की सिद्धि नहीं हो पाती। भरतवाक्य के तीसरे चरण में प्रयुक्त अधुना पद की भी सङ्गति तभी बन पाती है जब 'पार्थिवश्चन्द्रगुप्त ' इस पाठ को स्वीकार किया जाय। क्योकि कवि कहना चाहता है कि म्लेच्छो से आक्रान्त पृथिवी ने इस समय भगवान् विष्णु के अवतार चन्द्रगुप्त का आश्रय लिया है। यह सुसङ्गत भी है कि कवि के समय शासन करने वाला राजा चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य था जिसके आश्रय मे कवि ने चन्द्रगुप्त मौर्य के कथानक को आधार बनाकर मुद्राराक्षस की रचना की है। भरतवाक्य में प्रयुक्त चन्द्रगुप्त से गुप्तवंशीय सम्राट् चन्द्रगुप्त द्वितीय 'विक्रमादित्य' अर्थ ही कवि को अभिप्रेत था। गुप्त सम्राट् चन्द्रगुप्त द्वितीय का शासनकाल ३७५ ई० सन् से ४१३ ई० सन् निर्धारित है। अत इस आधार पर विशाखदत्त का समय चौथी शताब्दी का उत्तरार्ध अथवा पॉचवी शताब्दी का पूर्वार्ध ही सिद्ध होता है।

संस्कृत साहित्य के इतिहास के मर्मज्ञ अनेक विद्वानों ने भी मुद्राराक्षस के विवेचन के आधार पर विशाखदत्त को गुप्त सम्राट् चन्द्रगुप्त द्वितीय का समकालीन स्वीकार किया है। जो समीक्षक कालिदास को गुप्तयुगीन मानते हैं वे विशाखदत्त को भी कालिदास का समसामयिक स्वीकार करते हैं। यह अलग प्रश्न है कि कालिदास गुप्तकालीन न होकर प्रथम शताब्दी ईस्वी के माने जाते है।

माधवदास चक्रवर्ती ने 'A Short History of Sanskrit literature' नामक अपनी पुस्तक में 'पार्थिवश्चन्द्रगुप्त ' पाठ को प्रामाणिक माना है तथा चन्द्रगुप्त का गुप्तसम्राट् चन्द्रगुप्त द्वितीय अर्थ ही स्वीकार किया

है, मौर्यसम्राट् चन्द्रगुप्त अथवा गुप्तनरेश चन्द्रगुप्त प्रथम अर्थ नहीं[१] अत इनके अनुसार विशाखदत्त का समय चतुर्थ शताब्दी का उत्तरार्ध अथवा पञ्चम शती का पूर्वार्ध ही सिद्ध होता है।

डा० काशीप्रसाद जायसवाल ने भी 'पार्थिवश्चन्द्रगुप्त' पाठ को ही प्रामाणिक मानकर मुद्राराक्षस के भरतवाक्य मे प्रयुंक्त 'अधुना' एव 'चन्द्रगुप्त' शब्दो के आधार पर विशाखदत्त को चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य का समसामयिक स्वीकार किया है[२]। इस प्रकार इनके अनुसार भी विशाखदत्त चतुर्थ शताब्दी के उत्तरार्ध अथवा पॉचवी शताब्दी के पूर्वार्ध में रहे होंगे। अपने मत के समर्थन मे डा० काशीप्रसाद जायसवाल ने कुछ निम्नलिखित युक्तियॉ प्रस्तुत की है-

(क) विशाखदत्त द्वारा मुद्राराक्षस मे प्रयुक्त शैली छठी शताब्दी के बाद की नहीं हो सकती। कवि ने न तो लम्बे समासों का प्रयोग किया है, न ही पाण्डित्य का प्रदर्शन। इस नाटक में कृत्रिमता का भी अभाव है। छठी शताब्दी अथवा उसके बाद के काव्यों में पाण्डित्य प्रदर्शन की ललक दिखाई पडती है। अत विशाखदत्त की शैली चौथी अथवा पॉचवी शताब्दी की है। उसके बाद की नहीं।

(ख) भरतवाक्य के द्वारा जिस एक छत्र साम्राज्य की कल्पना कवि ने की है वह गुप्तकाल का ही हो सकता है।

(ग) नाटक की अन्य राजनीतिक कल्पनाएॅ भी चतुर्थ अथवा पञ्चम शताब्दी की परिस्थितियों से सङ्गत है।

(घ) यदि विशाखदत्त बाण के समय में थे तो दोनों को एक दूसरे का अभिज्ञान क्यों नहीं था।

मुद्राराक्षस में वर्णित कहानी में चन्द्रगुप्त मौर्य द्वारा विषकन्या के प्रयोग से Pantalak (Philippos) की मृत्यु को क्षत्रप की मृत्यु के बचाव के

---

१ A short History of Sanskrit Litterature P 484

२ भगवान्दास चक्रवर्ती पृ०- २०७

विषय में डा० जायसवाल ने सन्देह व्यक्त किया है। वायुपुराण मे गुप्तसाम्राज्य के प्रारम्भिक दस वर्षो मे मालवा और राजपुताना मे शको को समूल नष्ट करने का वर्णन प्राप्त होता है। उन्होने इस सन्दर्भ मे बाणभट्ट की रचना हर्षचरित से अधोलिखित उदाहरण भी प्रस्तुत किया है- **अरिपुरे च परकलत्रकामुक कामिनीवेषगुप्तश्चन्द्रगुप्त शकपतिमनाशयत्।** इन्होने यह भी माना है- कि मलय केतु शलय केतु (Selucus) का विगडा हुआ रूप है। अत. इनका मत है कि भरतवाक्य में कवि विशाखदत्त का अभिप्राय नाटक के प्रमुख नियन्ता एवं विधायक मौर्य सम्राट् चन्द्रगुप्त से न होकर गुप्तवंशीय सम्राट् चन्द्रगुप्त द्वितीय से है। इस प्रकार नाटककार विशाखदत्त का समय चतुर्थ शताब्दी ईस्वी सिद्ध होता है।

प्रोफेसर हिलेब्रैण्ड (Hillebrandt) स्पयेर (Speyer) तथा टोने (Towney) भी इसी तथ्य को स्वीकार करते हैं कि विशाखदत्त गुप्तवंशीय सम्राट् चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के शासनकाल में हुए थे[१]। इन विद्वानों ने मुद्राराक्षस को पञ्चतन्त्र के सबसे पहले संशोधित होकर निकलने से भी पूर्व का माना है। इन्होने महान् वैयाकरण एवं शतकत्रय के लेखक भर्तृहरि, जिनकी मृत्यु ६५१ ईस्वी सन् में हुई थी, से भी पूर्व विशाखदत्त का स्थिति काल स्वीकार किया है और माना है कि विशाखदत्त, नाटक के भरतवाक्य में राजा चन्द्रगुप्तमौर्य के साथ-साथ अपने आश्रयदाता चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य (३७५ ई० सन् से ४१३ ई० सन् के मध्य) जिसने अत्यन्त पराक्रमी होने के कारण हूणों एव अन्य आक्रान्ता म्लेच्छो को दूर भगाकर पञ्जाब में उनके द्वारा अधिकृत कर लिए गये प्रदेश को अपने अधिकार में कर लिया था, का भी वर्णन करता है। इस प्रकार इन विदेशी विद्वानों के द्वारा विशाखदत्त का समय चतुर्थ शताब्दी ही स्वीकार किया गया है।

एम० कृष्णामाचारियर ने अपनी 'History of Classical Sanskrit litterature' पुस्तक में प्रतिपादित किया है कि यह सम्भव है

---

१ मुद्राराक्षस की भूमिका, हिलेब्राण्ट द्वारा सम्पादित पेज० १०
एवं जे० ए० आर० एस० १९०८, १९१०

विषय में डा० जायसवाल ने सन्देह व्यक्त किया है। वायुपुराण मे गुप्तसाम्राज्य के प्रारम्भिक दस वर्षो में मालवा और राजपुताना मे शकों को समूल नष्ट करने का वर्णन प्राप्त होता है। उन्होनें इस सन्दर्भ में बाणभट्ट की रचना हर्षचरित से अधोलिखित उदाहरण भी प्रस्तुत किया है- **अरिपुरे च परकलत्रकामुकं कामिनीवेषगुप्तश्चन्द्रगुप्त. शकपतिमनाशयत्।** इन्होने यह भी माना है- कि मलय केतु शलय केतु (Selucus) का विगडा हुआ रूप है। अत. इनका मत है कि भरतवाक्य में कवि विशाखदत्त का अभिप्राय नाटक के प्रमुख नियन्ता एवं विधायक मौर्य सम्राट् चन्द्रगुप्त से न होकर गुप्तवंशीय सम्राट् चन्द्रगुप्त द्वितीय से है। इस प्रकार नाटककार विशाखदत्त का समय चतुर्थ शताब्दी ईस्वी सिद्ध होता है।

प्रोफेसर हिलेब्रैण्ड (Hillebrandt) स्पयेर (Speyer) तथा टोने (Towney) भी इसी तथ्य को स्वीकार करते हैं कि विशाखदत्त गुप्तवशीय सम्राट् चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के शासनकाल में हुए थें[१]। इन विद्वानो ने **मुद्राराक्षस को पञ्चतन्त्र के सबसे पहले संशोधित होकर निकलने से भी पूर्व** का माना है। इन्होने महान् वैयाकरण एवं शतकत्रय के लेखक भर्तृहरि, जिनकी मृत्यु ६५१ ईस्वी सन् मे हुई थी, से भी पूर्व विशाखदत्त का स्थिति काल स्वीकार किया है और माना है कि विशाखदत्त, नाटक के भरतवाक्य में राजा चन्द्रगुप्तमौर्य के साथ-साथ अपने आश्रयदाता चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य (३७५ ई० सन् से ४१३ ई० सन् के मध्य) जिसने अत्यन्त पराक्रमी होने के कारण हूणो एवं अन्य आक्रान्ता म्लेच्छो को दूर भगाकर पञ्जाब मे उनके द्वारा अधिकृत कर लिए गये प्रदेश को अपने अधिकार मे कर लिया था, का भी वर्णन करता है। इस प्रकार इन विदेशी विद्वानो के द्वारा विशाखदत्त का समय चतुर्थ शताब्दी ही स्वीकार किया गया है।

एम० कृष्णामाचारियर ने अपनी 'History of Classical Sanskrit litterature' पुस्तक में प्रतिपादित किया है कि यह सम्भव है

---

१ मुद्राराक्षस की भूमिका, हिलेब्राण्ट द्वारा सम्पादित पेज० १०
एव जे० ए० आर० एस० १९०८, १९१०

कि मुद्राराक्षस का कथानक विशाखदत्त के समय में राज्य कर रहे राजा चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य के नाम के साथ तादात्म्य होने के कारण तथा चन्द्रगुप्त द्वितीय द्वारा हूणों अथवा शकों के आक्रमण पर विजय प्राप्त करने से स्फुरित हुआ हो । नाटक में जिस राजा का वर्णन किया गया है वह चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य है, जिसकी मृत्यु ४१३ ई० सन् में हुई थी। नाटक में जिस समय का वर्णन है उस समय हूणो ने भारत मे किसी प्रदेश पर अधिकार नही किया था और जिस समय मुद्राराक्षस की रचना हुई उस समय देश हूणों के आक्रमण से त्रस्त था[१]।

प्रोफेसर स्टेनकोनो (Stenkconow) ने भी 'पार्थिवश्चन्द्रगुप्त ' पाठ को ही अधिक प्रामाणिक माना है। इनके अनुसार इस भरतवाक्य में प्रयुक्त 'चन्द्रगुप्त ' से सङ्केतित चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य ही हैं जिनका शासनकाल ३७५ से ४१३ ई० है इस प्रकार इनके अनुसार विशाखदत्त कालिदास के समकालीन माने गये हैं[२]। विशाखदत्त की एक अन्य कृति देवीचन्द्रगुप्तम् के कुछ अंश विद्वानों द्वारा ढूँढ निकाले गये हैं। दुर्भाग्यबश देवीचन्द्रगुप्तम् नाटक सम्पूर्ण रूप में नहीं प्राप्त होता। किन्तु महाराज भोज के

---

१ It is possible that the plot of the play as connected with Chandragupta was Suggested by the identical name of the then reigning king and his victories over the marauding attackes of the Huns and the king Mentioned there is chandragupt vikramaditya II who died in 413 A D , The play knows the Huns of a time when they had not yet aquired any territory in India and the annoyance Caused to the Country by the mlechas at the times of the composition of this drama would refer if the composition as it seems protable took place afer the Suppression of the western satrap (390 A D) to the Kushanas or to the new element of the Huns, who might have already made Some invasions probably with the Kushan as about the last year of Chandra guptas reign History of classical Sanskrit Litterature, एम कृष्णामाचारियर, पृ० ६०४

2 Review of Mudrarakshas, Edited by A Hillbrandt by Stenkonow' IA, xL III 64,

शृङ्गार प्रकाश तथा रामचन्द्र एवं गुणचन्द्र के नाट्यदर्पण मे उद्धृत उद्धरणों से इस नाटक के इतिवृत्त के निर्माण मे सहायता मिलती है। इस नाटक का नायक निश्चित रूप से चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य है। तथा विशाखदत्त ने इन्ही के दरबार में रहकर अपनी कृतियो का निर्माण किया था। इस नाटक के सक्षिप्त कथानक का उल्लेख पहले ही किया जा चुका है। इस नाटक में विशाखदत्त ने तीन पात्रों का विशद रूप से चित्रण किया है- (१) राजा कुमार गुप्त (२) रानी ध्रुवदेवी तथा (३) राजकुमार चन्द्रगुप्त द्वितीय। इनका इस प्रकार का चित्रण वही व्यक्ति कर सकता है जो या तो राजदरबार में रह रहा था या राजघराने से घनिष्ठ रूप से सम्बद्ध था या फिर जो केवल प्रशंसा में सलग्न रहने वाला है और आवश्यकतानुसार कुमार के चरित्र को निर्दोष बनाकर उसकी प्रसन्नता प्राप्त करना जिसका उद्देश्य हो। यही राजकुमार आगे चलकर राजगद्दी पर बैठता है।

यही चन्द्रगुप्त द्वितीय भरतवाक्य के पार्थिवश्चन्द्रगुप्त से सङ्केतित है तथा इसे ही शकों को पराजित करने के कारण शकारि एवं विक्रमादित्य उपाधियों से विभूषित किया गया है। यह साहित्य एवं कला के सरंक्षक के रूप में भी प्रसिद्ध है इसका समय ३७५ से ४१३ ई० सन् है अत विशाखदत्त का भी समय चतुर्थ शताब्दी का पूर्वार्ध अथवा पॉचवी शताब्दी का उत्तरार्ध सिद्ध होता है।

प्राय भारतीय नाटको में प्रयुक्त भरतवाक्य तत्कालीन शासक को सङ्केतित करता है। कालिदास का मालविकाग्निमित्रम् इसका अपवाद है। क्योकि इस नाटक मे प्रयुक्त भरतवाक्य पात्र को ही इंगित करता है, तत्कालीन शासक को नहीं, किन्तु मुद्राराक्षस के भरतवाक्य में वर्णित चन्द्रगुप्त कवि के समय राज्य कर रहे शासक के साथ-साथ नाटक के पात्र को भी सङ्केतित करता है। इस प्रकार यह स्वीकार करने योग्य है कि विशाखदत्त के समय शासन करने वाले राजा तथा मुद्राराक्षस के पात्र दोनों का ही समान नाम चन्द्रगुप्त था। इसी प्रकार सी० आर० देवधर भी विशाखदत्त को चन्द्रगुप्त द्वितीय का समकालीन मानते है।

इस प्रकार निष्कर्षत यह कहा जा सकता है कि मुद्राराक्षस के भरतवाक्य में 'पार्थिवश्चन्द्रगुप्त' पाठ ही प्रामाणिक है एव चन्द्रगुप्त का अभिप्राय मौर्यसम्राट् चन्द्रगुप्त अथवा गुप्तवंशीय शासक चन्द्रगुप्त प्रथम से न होकर चन्द्रगुप्त द्वितीय से है, जिसके शासनकाल में मुद्राराक्षस नाटक का निर्माण हुआ था। यही चन्द्रगुप्त द्वितीय विशाखदत्त का आश्रयदाता था अत: विशाखदत्त का स्थिति काल चतुर्थ शताब्दी का उत्तरार्ध अथवा ई० पॉचवी शताब्दी के मध्य स्थिर किया जा सकता है।

बाह्य साक्ष्य- इस प्रकार अन्त साक्ष्य के आधार पर विभिन्न विद्वानों के मतो की संपरीक्षा करते हुए विशाखदत्त के स्थितिकाल का निर्धारण करने के अनन्तर इस दृष्टि से बाह्यसाक्ष्यों पर भी विचार करना आवश्यक हो जाता है। मुद्राराक्षस की रचना अमुक समय में हुई इसका तत्कालीन अथवा उससे परवर्ती संस्कृत साहित्य मे कोई उल्लेख नहीं प्राप्त होता। मुद्राराक्षस के जो कुछ उद्धरण हमें बाद के ग्रन्थों में उपलब्ध होते हैं उनके ही आधार पर विशाखदत्त के स्थितिकाल का निर्धारण किया जा सकता है।

महाराज भोज ने सरस्वती कण्ठाभरण में मुद्राराक्षस के दो पद्यों को उद्घृत किया है। सरस्वती कण्ठाभरण की रचना का काल विद्वानों द्वारा ११वीं शताब्दी माना गया है। इसमें मुद्राराक्षस के उद्घृत पद्य निम्नलिखित हैं-

(१) उपरि घनं घनरटितं दूरे दयिता किमेतदापतितम्।
हितवति दिव्यौषधय. शीर्षे सर्प. समाविष्ट[१]।

(२) प्रत्यग्रोन्मेषजिह्मा क्षणमनभिमुखी रत्नदीपप्रभाणा-
मात्मव्यापारगुर्वी जनितजललवा जृम्भितै: साङ्गभङ्गै ।
नागाङ्कं मोक्तुमिच्छो. शयनमुरुफणाचक्रवालोपधानम्
निद्राच्छेदाभिताम्रा चिरमवतु हरेर्दृष्टिराकेकरा व:।।[२]

---

१ मुद्राराक्षस १/२१ पृ० ४१ सकेत ६ पर उद्धृत तथा सरस्वतीकण्ठाभरण ३/८७

२ मुद्राराक्षस ३/२१ तथा सरस्वती कण्ठाभरण १/६८

इनमें से प्रथम पद्य सरस्वती कण्ठाभरण में सस्कृत भाषा में उल्लिखित है जबकि मुद्राराक्षस में अपने मूल रूप में यह प्राकृत भाषा मे है। द्वितीय पद्य उसी रूप में उद्धृत है। प्रथम पद्य 'उपरिघन इत्यादि के विषय मे विद्वानो ने सन्देह व्यक्त किया है। किन्तु द्वितीय पद्य मुद्राराक्षस से सरस्वतीकण्ठाभरण मे उद्धृत किया गया है इसमे किसी प्रकार का कोई सन्देह नही है। इस बाह्यसाक्ष्य के आधार पर केवल यह सिद्ध हो पाता है कि मुद्राराक्षस की रचना ग्यारहवी शताब्दी के पूर्व हो चुकी थी।

इसी प्रकार लक्षणग्रन्थो मे से नाट्यशास्त्रीय ग्रन्थ दशरूपक मे सर्वप्रथम मुद्राराक्षस का उल्लेख प्राप्त होता है। दशरूपक दसवी शताब्दी मे विद्यमान आचार्य धनञ्जय की रचना है। दशरूपक मे मुद्राराक्षस के तीन उदाहरणो को प्रस्तुत किया गया है। धनञ्जय ने प्रथमत दशरूपक के प्रथम प्रकाश मे ६८ वी कारिका की वृत्ति में मुद्राराक्षस का इस प्रकार उल्लेख किया है-

तत्र बृहत्कथामूलं मुद्राराक्षसम्।

चाणक्यनाम्ना तेनाथ शकटालगृहे रह.

योगानन्दयश· शेषे पूर्वनन्दसुतस्तत:

चन्द्रगुप्त. कृतो राजा चाणक्येन महौजसा।।[१]

यहाँ पर बृहत्कथा को मुद्राराक्षस का मूल बताया गया है, जहाँ से मुद्राराक्षस की कथावस्तु को लिया गया है। किन्तु सम्पूर्ण बृहत्कथा पैशाची प्राकृत में है अत. इस उद्धरण की सत्यता पर संदेह उत्पन्न होता है।

दशरूपक मे मुद्राराक्षस का दूसरा उदाहरण इस प्रकार प्राप्त होता है- मन्त्रशक्त्या यथा मुद्राराक्षसे राक्षससहायादीनां चाणक्येन स्वबुद्ध्या भेदनम्। अर्थशक्त्या तत्रैव यथा पर्वतकाभरणस्य राक्षसहस्तगमनेन मलयकेतुसहोत्थायिभेदनम्[२] इसके अतिरिक्त दशरूपक के ही द्वितीय प्रकाश में

---

१ दशरूपक प्रथम प्रकाश के ६८वे सूत्र की वृत्ति।

२ दशरूपक द्वितीय प्रकाश के ५५ वे सूत्र की वृत्ति।

नायक के सामान्य गुणों की चर्चा करते हुए 'स्थिर' इस विशिष्ट गुण को स्पष्ट करने के लिए लिखा गया है-

यथा वा भर्तृहरिशतके-

प्रारभ्यते न खलु विघ्नभयेन नीचैः प्रारम्य विघ्नविहिता विरमन्ति मध्याः।
विघ्नैः पुनः पुनरपि प्रतिहन्यमाना प्रारब्धमुत्तमगुणा न परित्यजन्ति[१]।।

कुछ प्रतियों मे इस श्लोक के अन्तिम चरण 'प्रारब्धमुत्तमगुणा न परित्यजन्ति' के स्थान पर 'प्रारब्धमुत्तगुणास्त्वमिवोद्वहन्ति' पाठ प्राप्त होता है[२]। दशरूपक मे उद्धृत यह पद्य मुद्राराक्षस तथा भर्तृहरि के नीतिशतक इन दोनों ग्रन्थों में प्राप्त होता है[३]। यहाँ एक प्रश्न यह उपस्थित होता है कि मूलत यह श्लोक है कहाँ का? मुद्राराक्षस अथवा नीतिशतक का। एक ही श्लोक के दोनों लेखक नहीं हो सकते। एक कवि ने दूसरे कवि के इस श्लोक को उसी रूप में गृहीत किया है। यद्यपि दशरूपकावलोक में इसे भर्तृहरि के नीतिशतक से उद्धृत बताया गया है किन्तु भर्तृहरि के नीतिशतक में 'प्रारब्धमुत्तमगुणास्त्वमिवोद्वहन्ति यह पाठ सङ्गत नहीं हो पाता। जबकि मुद्राराक्षस में राक्षस द्वारा चन्द्रगुप्त को मारने के लिए प्रयुक्त साधनों से उसके अपने लोग जब मारे जाते है, तो वह चन्द्रगुप्त की भाग्यवृत्ति को श्रेय देता है तथा हताश होता है। उसी समय विराधगुप्त अमात्य से कह पडता है कि जिस कार्य का प्रारम्भ एकबार कर दिया जाता है उसका परित्याग नहीं करना चाहिए। इस प्रसङ्ग में यह श्लोक पूर्णत सङ्गत हो जाता है।

इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि मूलत. यह पद्य विशाखदत्त द्वारा मुद्राराक्षस में लिखा गया था बाद मे नीतिशतक में उसका प्रयोग किया गया होगा। इस तथ्य को स्वीकार कर लेने पर मुद्राराक्षसकार विशाखदत्त भर्तृहरि से पूर्व के सिद्ध होते हैं। भर्तृहरि की मृत्यु ६५१ ई० सन् के लगभग हुई थी।

---

१ दशरूपक द्वितीय प्रकाश के २० वे सूत्र का उदाहरण,

२ नीतिशतक श्लोक सख्या ३६ एव मुद्राराक्षस २/१७

३ मुद्राराक्षस, काले सस्करण पृष्ठ ६४, फुटनोट सकेत -८

अत इस आधार पर विशाखदत्त का समय ६५१ से पूर्व ही सिद्ध होता है। दशरूपक में इस श्लोक को क्यो भर्तृहरिशतक बताया गया है? इसका कोई स्पष्ट आधार नहीं प्राप्त होता है। जबकि दशरूपककार ने मुद्राराक्षस के भी उदाहरणों को प्रस्तुत किया है। तैड्ग महोदय ने इसका कारण खोजने का प्रयास किया है कि सम्भवत दशरूपक मे लेखक के द्वारा इस श्लोक को स्मृति के आधार पर मुद्राराक्षस के स्थान पर भर्तृहरि के नाम से गलत ढंग से उद्धृत कर दिया गया हो। वस्तुत नीतिशतक के श्लोक सरल होने के कारण अधिक स्मरणीय हैं। अत. दशरूपककार ने मुद्राराक्षस के स्थान पर भर्तृहरिशतक का उल्लेख कर दिया होगा। इस प्रकार यह तथ्य प्रामाणिक प्रतीत होता है कि विशाखदत्त भर्तृहरि से भी पहले थे एवं भर्तृहरि के समय तक इनके नाटक के श्लोक ख्याति प्राप्त कर चुके थे। अत इस आधार पर भी विशाखदत्त का समय चतुर्थ शताब्दी का उत्तरार्ध अथवा पॉचवी शताब्दी का पूर्वार्ध ही सिद्ध होता है।

जहॉ तक दशरूपक एवं सरस्वती कण्ठाभरण मे मुद्राराक्षस के उद्धरणों का प्रश्न है सरस्वती कण्ठाभरण राजा भोज की रचना है तथा राजा भोज के चाचा मुञ्ज नामक राजा के समय में दशरूपक की रचना हुई है। डा० फिटी एडुअर्ड हेल्स (Dr. Fity Edeuard Hale's) के अनुसार दशरूपक की रचना का समय दशवी अथवा ग्यारहवीं शताब्दी ईस्वी है। इसी समय सरस्वती कण्ठाभरण की भी रचना हुई थी। इस आधार पर यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि १०वीं शताब्दी के पूर्व मुद्राराक्षस के रचनाकाल के सम्बन्ध में केवल इतना ही प्रमाणित होता है कि यह नाटक दसवी शताब्दी के पूर्व लिखा जा चुका था। यह प्रमाण विशाखदत्त के स्थितिकाल की परमीमा को निर्धारित करने में तो सहायक है किन्तु पूर्वसीमा निर्धारित करने के लिए इससे कोई सहयोग नहीं प्राप्त होता।

पाटलिपुत्र का साक्ष्य- मुद्राराक्षस में घटित समस्त घटनाओं का केन्द्र पाटलिपुत्र था। नाटक में पाटलिपुत्र की समृद्धि का जो वर्णन हुआ है तथा विभिन्न कालखण्डों में विदेशी पर्यटकों ने पाटलिपुत्र की स्थिति को देखकर जो

वर्णन प्रस्तुत किया है उसके आधार पर भी विद्वानो ने विशाखदत्त के स्थितिकाल के निर्धारण का प्रयास किया है। वस्तुत मुद्राराक्षस के रचनाकाल को निर्धारित करने के लिए पाटलिपुत्र का वर्णन एक प्रमुखतम आधार के रूप में स्वीकार किया जा सकता है, क्योंकि प्राय नाटक के सम्पूर्ण दृश्य पाटलिपुत्र नगर में ही घटित हुए हैं।

मुद्राराक्षस में पाटलिपुत्र का एक वैभवशाली नगर के रूप में वर्णन किया गया है। इसे पुष्पपुर एवं कुसुमपुर इन दो अन्य नामों से भी अभिहित किया गया है। इसका शाब्दिक अभिप्राय यही हो सकता है कि यहॉ फूलों की अधिकता थी। नगर में उपवनों की अधिकता रही होगी। ऐतिहासिक दृष्टि से देखा जाय तो इस नगर का प्राचीन भारत में बहुत अधिक महत्त्व था। महाभाष्यकार पतञ्जलि ने कुछ उपसर्गो की व्याख्या करते हुए 'अनुशोणं पाटलिपुत्रम्' कहकर पाटलिपुत्र शोण नदी के किनारे स्थित था इस तथ्य को स्पष्ट किया है। महाभाष्यकार का समय प्रथम शताब्दी ई० पू० स्वीकार किया गया है। अत. प्रथम शताब्दी ईसा पूर्व में पाटलिपुत्र एक वैभवशाली नगर के रूप में विद्यमान था तभी महाभाष्यकार ने उसका उल्लेख किया है।

चतुर्थ शताब्दी ईसापूर्व में भारत आने वाला विदेशी यात्री मेगस्थनीज भी इस नगर का वर्णन प्रस्तुत करता है। जब मेगस्थनीज भारत आया था उस समय पाटलिपुत्र गड्गा एवं शोण के सगम पर स्थित था। मुद्राराक्षस के उल्लेखों से यह स्पष्ट हो जाता है कि यह नगर शोण नदी के दक्षिण में अवस्थित था और उस समय राजमहल गड्गा की अपेक्षा करता था।

इससे दो बातों का अभिज्ञान प्राप्त होता है एक तो यह कि मुद्राराक्षस के अस्तित्व में आने से पहले शोणनदी ने अपना मार्ग अवश्य बदल लिया होगा। दूसरे इसके रचना काल में पाटलिपुत्र एक वैभवशाली नगर के रूप में विद्यमान था।

इसी प्रकार चीनी यात्री फाह्यान तत्कालीन भारत की सांस्कृतिक धार्मिक एवं आर्थिक समृद्धि की ख्याति सुनकर उसे साक्षात् देखने के उद्देश्य से भारत आया था। इसने मगध की राजधानी के रूप में पाटलिपुत्र का वर्णन किया है।

उस समय यह नगर अत्यन्त समृद्ध स्थिति मे था। इसके विपरीत जब दूसरा चीनी यात्री हुएन त्सांग (Hieuntsang) भारत आया था उस समय पाटलिपुत्र खण्डहर के रूप में परिवर्तित हो रहा था। हुएन त्साग ने ६४६ से ६९९ ई० सन् के मध्य मे भारत मे यात्रा की थी इससे यह सिद्ध होता है कि ७वीं शताब्दी ईस्वी के पूर्वार्ध आते आते पाटलिपुत्र की समृद्धि समाप्त हो रही थी। मुद्राराक्षस में पाटलिपुत्र समृद्धिशाली नगर के रूप मे वर्णित है। फाह्यान के यात्राकाल ३९९ से ४११ ई० के मध्य में भी पाटलिपुत्र का समृद्धिशाली नगर के रूप में वर्णन प्राप्त होता है। पाटलिपुत्र चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य के काल में और अधिक सम्पन्न रहा होगा। यह स्थिति पाटलिपुत्र के खण्डहर बनने से पहले की है। इससे यह प्रमाणित होता है कि विशाखदत्त गुप्तवंशीय राजा चन्द्रगुप्त के समय में रहें होगे।

सी० आर देवधर इस बात से सहमत हैं कि मुद्राराक्षस की रचना पाटलिपुत्र के खण्डहर बनने से पहले की है। इन्होंने पाटलिपुत्र पर आक्रमण के आधार पर मुद्राराक्षस की रचना का समय स्वीकार किया है। जब कि कान्तानाथ शास्त्री त्र्यम्बक तैलङ्ग इन्हीं प्रमाणों के आधार पर ८वीं शताब्दी के पूर्वार्ध को मुद्राराक्षस के निर्माण का उचित समय मानते हैं। इनका आशय यह है कि हुएनत्सांग के भारत आगमन के समय ७वी शताब्दी के उत्तरार्ध में पाटलिपुत्र की सत्ता थी। इसकी स्थिति शोण और गंगा नदी के संगम के पास रही होगी इन दोनों नदियों के बीच में नहीं। इनके अनुसार ७वीं शताब्दी के पाटलिपुत्र का ही मुद्राराक्षस में वर्णन किया गया है। ए० ए० मैक्डानल (A A Macdonell) और रैप्सन (Rapson) भी तैलङ्ग से सहमत है। मैक्डानल ने (A History of Sanskrit Litterature) में प्रतिपादित किया है कि मुद्राराक्षस की तिथि के विषय में निश्चयात्मक रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता है परन्तु इतना स्वीकार किया जा सकता है कि यह ८०० ई० सन् से बाद की रचना नहीं है। वस्तुत. इन्होंने मुद्राराक्षस की परसीमा को निर्धारित करने का प्रयास किया है पूर्व सीमा को नहीं। किन्तु तैलंग सम्भवत. इस बात पर ध्यान नहीं दे सके कि नाटक में पाटलिपुत्र का वैभवशाली नगर

के रूप में वर्णन किया गया है खण्डहर के रूप में नहीं। इसके वैभवशाली स्वरूप का वर्णन मुद्राराक्षस को चतुर्थ शताब्दी के उत्तरार्ध का अथवा ५वीं शताब्दी के पूर्वार्ध का ही सिद्ध करता है। प्रो० ए० बी० कीथ ने मुद्राराक्षस को पॉचवी शताब्दी के पूर्वार्ध मे मानने का उग्र विरोध किया है। इसे केवल कल्पना माना है।

विशाखदत्त के स्थितिकालविषयक इस सम्पूर्ण विवेचन से निष्कर्षत यह स्पष्ट हो जाता है कि मुद्राराक्षस की रचना निश्चित रूप से चतुर्थ शताब्दी ई० के उत्तरार्ध अथवा पॉचवी शताब्दी के पूर्वार्ध में अवश्य हो चुकी थी। भरतवाक्य में कवि ने कथावस्तु के मुख्यपात्र चन्द्रगुप्त मौर्य का जिसने कि मौर्य साम्राज्य की स्थापना की थी तथा समान नाम वाले अपने आश्रयदाता चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य का उल्लेख किया है। दोनों के नामों की आनुपूर्वी एक होने के कारण श्लेष के द्वारा चन्द्रगुप्त शब्द से दोनों शासकों का बोध हो जाता है। मुद्राराक्षस का अभिनय भी निश्चित रूप से चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य के समय में हुआ होगा। वस्तुत 'चन्द्रगुप्त' इस मौलिक पाठ के स्थान पर पार्थिवोऽवन्तिवर्मा, पार्थिवो दन्तिवर्मा अथवा पार्थिवो रन्तिवर्मा इन पाठभेदों से विशाखदत्त के स्थितिकाल का अनिश्चय न द्योतित होकर निश्चय ही द्योतित होता है। मुद्राराक्षस के भरतवाक्य मे चार-चार राजाओ के नामों का उल्लेख प्राप्त होता है। यदि इसमे केवल दो राजाओ के ही नामो का उल्लेख किया गया होता तो सदेह किया जा सकता था कि इनमे से किसके आश्रय में विशाखदत्त रहे होगें। किन्तु यहॉ ऐसे ५ राजाओं का उल्लेख प्राप्त होता है जिनके समय में पर्याप्त अन्तर है। चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य ३७५ से ४१३ ई० सन् के मध्य हुए तो कन्नौजनरेश मौखरिवंशीय अवन्तिवर्मा छठी शताब्दी के उत्तरार्ध में, कश्मीर के महाराज अवन्तिवर्मा नौवीं शताब्दी में तथा दक्षिण में पल्लवनरेश दन्तिवर्मा सातवीं के उत्तरार्ध एवं आठवीं शताब्दी के पूर्वार्ध में हुए थे। इन राजाओं के राज्य में प्रभूत अन्तर दिखलायी पडता है। इससे यह बात स्वत. स्पष्ट हो जाती है कि इनमें से जो सबसे प्राचीन शासक था विशाखदत्त उसी के राज्य में रहे होगें इनमें से सबसे प्राचीन शासक

चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य है, अत चन्द्रगुप्त को ही विशाखदत्त का आश्रयदाता स्वीकार करना उचित प्रतीत होता है।

भरतवाक्य मे अपने आश्रयदाता का उल्लेख करना स्वाभाविक ही था। नाटक में प्रकारान्तर से उसी के पराक्रमी चरित्र का वर्णन लेखक के द्वारा प्रस्तुत किया गया है। जहाँ तक भरतवाक्य में परवर्ती अन्य राजाओं के नामों के उल्लेख का प्रश्न है। तो इसका सीधा सा उत्तर यह है कि कन्नौज के नरेश अवन्तिवर्मा तथा कश्मीर नरेश अवन्तिवर्मा के राज्यकाल मे उनके सम्मुख मुद्राराक्षस का अभिनय जब किया गया तो भरतवाक्य में स्वाभाविक रूप से उनकी प्रशस्ति गाने के उद्देश्य से 'पार्थिवश्चन्द्रगुप्त के स्थान पर 'पार्थिवोऽवन्तिवर्मा' यह पाठ प्रस्तुत किया गया होगा इसी प्रकार दक्षिण में पल्लवनरेश दन्तिवर्मा के राज्यकाल में उसके सम्मुख अभिनय के समय पार्थिवो दन्तिवर्मा पाठ रखना स्वाभाविक ही प्रतीत होता है। प्राचीन भारत मे इस प्रकार की परम्परा का प्राप्त होना सम्भव भी था। जब धावक आदि कवियों ने अपनी रचनाओ को ही श्री हर्ष से धन लेकर उनके नाम से प्रचलित कर दिया तो नाटकों का अभिनय करने वाले जिनकी जीविका राज्याश्रित थी वे अपने शासक का नाम भरतवाक्य में कैसे नहीं लेते। तथा च जब उसे लिपिबद्ध किया गया तो उनमें अपने से सम्बद्ध राजा का उल्लेख कर दिया गया। किन्तु इससे मुद्राराक्षस के काल निर्धारण में कोई विसङ्गति नही आती मुद्राराक्षस की विभिन्न प्रतियों में पात्रों के अतिरिक्त जिन राजाओ का उल्लेख है उनमें से चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य ही सबसे प्राचीन हैं इसके अतिरिक्त विशाखदत्त का चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य के साथ सम्बन्ध इस लिए भी सिद्ध होता है कि इन्होंने अपने आश्रयदाता को विष्णु का अवतार माना है। विशाखदत्त स्वयं शैव थे। मुद्राराक्षस के नान्दी पाठ में दोनों श्लोकों में इन्होंने शिव की उपासना की है। बुद्धों के प्रति भी इनके मन में अच्छे भाव थे। वस्तुत इतिहासकारों के अनुसार चन्द्रगुप्त द्वितीय वैष्णव था। उसका मन्त्री शैव था तथा सेनापति बौद्ध। यह इसलिए भी सम्भव था कि वह काल धार्मिक उदारता का काल था। विशाखदत्त भी चन्द्रगुप्त को समय-समय पर परामर्श

देते रहे होगें। क्योंकि इन्होने स्वत अपने आपको राजपरिवार से घनिष्ठ रूप से सम्बद्ध बताया है। इस प्रकार विशाखदत्त का चन्द्रगुप्त द्वितीय से सम्बन्ध स्थापित करने मे कोई बाधा नही आती।

विशाखदत्त का व्यक्तित्व - विशाखदत्त के व्यक्तित्व के अभिज्ञान के लिए हमे मुद्राराक्षस के ही साक्ष्यो पर आश्रित रहना पडता है। इनकी जिन अन्य दो कृतियों देवीचन्द्रगुप्तम् एवं अभिसारिकावञ्चितकम् का अभिज्ञान प्राप्त होता है उनके आधार पर विशाखदत्त के बारे मे स्पष्ट रूप से कुछ कहा नहीं जा सकता। क्योंकि इन दोनो कृतियों का अभिज्ञान अन्य पुस्तको मे प्राप्त उद्धरणों के माध्यम से ही प्राप्त होता है। नाट्य दर्पण एवं श्रृङ्गार प्रकाश में इन दोनों के कुछ अंशो को उद्धृत किया गया है। विशाखदत्त के व्यक्तित्व के विवेचन की दृष्टि से ये अंश अपर्याप्त है।

(क) धार्मिक आस्था- मुद्राराक्षस में प्राप्त साक्ष्यों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि विशाखदत्त धार्मिक दृष्टि से वैदिक धर्म के अनुयायी थे। इन्होनें मुद्राराक्षस में नान्दी पाठ में ग्रन्थ की निर्विघ्न परिसमाप्ति एवं चिरस्थायिनी कीर्ति के लिए मङ्गलाचरण प्रस्तुत किया है[१]। मङ्गलाचरण के इन दो श्लोकों में विशाखदत्त ने शिव की स्तुति है। प्रथम श्लोक में प्रतिपादित किया गया है कि शिवजी के मस्तक पर विराजमान गड्गा को देखकर पार्वती के मन में ईर्ष्या का भाव उदित होता है। उनके द्वारा शिव से गङ्गा के विषय में पूॅछे जाने पर शिवजी चालाकी से गङ्गा की उपस्थिति को पार्वती से छिपा

---

१ (क) धन्या केय स्थिता ते शिरसि शशिकला किनु नामैतदस्या
नामैवास्यास्तदेतत् परिचितमपि ते विस्मृत कस्य हेतो ।
नारीं पृच्छामि नेन्दुं कथयतु विजया न प्रमाण यदीन्दु-
र्देव्या निह्नोतुमिच्छोरिति सुरसरित शाठ्यमव्याद् विभोर्व.।।
(ख) पादस्याविर्भवन्तीमवनतिमवने रक्षत स्वैरपातै
सड्कोचेनैव दोष्णा मुहुरभिनयत. सर्वलोकातिगानाम्।
दृष्टि लक्ष्येषु नोग्रा ज्वलनकणमुच वध्नतो दाहभीते-
रित्याधारानुरोधात् त्रिपुरविजयिन पातु वो दु खनृत्यम्। मुद्रा० १ १-२

लेना चाहते है। इस प्रकार पार्वती से गङ्गा को छिपाने की शिव की चतुरतापूर्ण कला समस्त लोक की रक्षा करे। द्वितीय श्लोक मे भी नटराज शिव की स्तुति प्रस्तुत की गयी है। जोर से धक्के के कारण कहीं पृथ्वी की अधोगति न हो जाय पृथ्वी धँस न जाय, इस लिए पैरों को धीरे धीरे चलाने वाले, समस्त लोको का अतिक्रमण करने वाली भुजाओं को बार-बार सिकोडकर ही नाचने वाले, जल न जॉय इस भय से दृश्यमान वस्तुओ में आग के कणो को उत्पन्न करने वाली प्रचण्ड तीसरी ऑख को न स्थिर करने वाले त्रिपुरान्तक शङ्कर का कष्ट पूर्वक किया गया नृत्य समस्त लोकों की रक्षा करे। इस प्रकार विशाखदत्त ने नटराज भगवान् शिव की आराधना की है इस कारण विशाखदत्त को शिव का भक्त माना जा सकता है। वस्तुत भारतीय सस्कृति में आचार्यो ने ज्ञान की प्राप्ति के लिए सर्वाधिक शिव की ही स्तुति की है। कालिदास ने भी अपने 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' नाटक तथा 'रघुवंशम्' महाकाव्य में मङ्गलाचरण में शिव की आराधना प्रस्तुत की है। इसी कारण विशाखदत्त मुद्राराक्षस में मङ्गलाचरण में शिव की स्तुति करते हैं।

विशाखदत्त ने मुद्राराक्षस में तृतीय अङ्क में भी शिव की आराधना में एक श्लोक का निर्माण किया है[1] इसका अभिप्राय है कि काश के पुष्पों से भी अधिक धवल भस्म से सम्पूर्ण आकाश को धवल करती हुई, मस्तक पर धारण किए गये चन्द्रमा की किरणों के समूहों से जल से भरे हुए मेघों के समान मलिन हाथी की खाल को आर्द्र करती हुई चाँदनी के समान सफेद नरमुण्डों की माला को धारण करती हुई राजहॅसी के समान अट्टहास की शोभा से युक्त अद्भुत शरद ऋतु के समान शिव की मूर्ति समस्त लोक के कष्ट को दूर करे। इससे शिव के प्रति विशाखदत्त की भक्ति का स्पष्ट अभिज्ञान होता है।

---

[१] आकाश काशपुष्पच्छविमभिभवता भस्मना शुक्लयन्ती
शीताशोरशुजालैर्जलधरमलिना क्लिश्नती कृत्तिभैमीम्।
कापालीमुद्वहन्ती स्रजमिव धवला कौमुदीमित्यपूर्वा
हास्यश्रीराजहसा हरतु तनुरिव क्लेशमैशी शरद्व मुद्रा० ३/२०

किन्तु विशाखदत्त केवल शिवजी के भक्त थे ऐसा नही है क्योंकि इनके आश्रयदाता गुप्तवंशीय चन्द्रगुप्त द्वितीय परम वैष्णव थे। भरतवाक्य के आधार पर इस तथ्य को विशाखदत्त के स्थिति काल के निर्धारण के अवसर पर स्पष्ट किया जा चुका है। अत विशाखदत्त को भी विष्णुभक्त होना चाहिए। क्योंकि प्राय प्रधान शासक के साथ रहने वाले व्यक्ति उसी धर्म का पालन करते हैं जो धर्म शासक का होता है। इसके अतिरिक्त विशाखदत्त ने मुद्राराक्षस के तृतीय अङ्क मे चन्द्रगुप्त के वैतालिक के माध्यम से स्वत भगवान् विष्णु की स्तुति प्रस्तुत की है। वैतालिक कहता है कि फलों के मण्डलरूप तकियावाली, विशाल, शेषनाग की गोदरूप शय्या को छोडने के लिए इच्छुक भगवान् विष्णु की अभी-अभी खुलने के कारण किञ्चित् वक्र, क्षण भर के लिए रत्नो से निकलने वाली कान्ति के सामने न ठहरती हुई ॲगडाई के साथ जभॉइयों के लेने से उत्पन्न आसुओं से युक्त अत देखने के अपने व्यापार में अलस तथा निद्राभङ्ग के कारण किञ्चिद् रक्तवर्ण वाली, अधखुली दृष्टि चिरकाल तक समस्त संसार की रक्षा करे।[१] छठे अङ्क में भी कवि विशाखदत्त ने कृष्णरूपधारी विष्णु की स्तुति की है। जब छठे अङ्क के प्रारम्भ में अलङ्कारों से विभूषित सिद्धार्थक उपस्थित होता है तो वह कृष्णरूपधारी भगवान् विष्णु की स्तुति करता है। वह कहता है कि मेघ के समान श्याम वर्ण एवं अश्वरूप को धारण करने वाले केशी नामक राक्षस को मारने वाले कृष्णावतार भगवान् विष्णु की जय हो[२]। इस प्रकार इन स्थलों पर विशाखदत्त की विष्णु के प्रति पूर्ण आस्था अभिव्यक्त हुई है। अत. शिवभक्त होने के साथ-साथ विशाखदत्त विष्णु के भी भक्त थे।

---

१ प्रत्यग्रोन्मेषजिह्मा क्षणमनभिमुखी रत्नदीपप्रभाणा-
मात्मव्यापारगुर्वी जनितलजलवा जृम्भितै साङ्गभङ्गै ।
नागाङ्कं मोक्तुमिच्छो शयनमुरुफणाचक्रवालोपधानम्
निद्राच्छेदाभिताम्रा चिरमवतु हरेर्दृष्टिराकेकरा व ।। मुद्रा० ३/२१

२ जयति जलदनील केशव केशिघाती। मुद्रा० ६/१

विशाखदत्त भगवान् सूर्य के भी उपासक थे। मुद्राराक्षस के चतुर्थ अङ्क में इन्होंने राक्षस के माध्यम से सूर्य देवता की स्तुति की है। राक्षस द्वारा चतुर्थ अङ्क के अन्त में काल के अभिज्ञान के लिए आदिष्ट प्रियवदक 'अस्ताभिलाषी सूर्य' कहकर भगवान् भुवनभास्कर के अस्त होने का उल्लेख करता है। इस पर राक्षस उठकर सूर्य को अस्ताचल की ओर जाता हुआ देखकर सायंकालीन सूर्य का वर्णन करता है। क्षणभर के लिए लालिमा प्रदर्शित करने वाले उद्यान के ये वृक्ष उदयाचल से अलग होकर ऊपर उठने वाले सूर्य के सामने अपने पत्तों की छाया के द्वारा शीघ्र ही दूर तक जाकर पुन उसी सूर्य के अस्तोन्मुख होने पर उसी प्रकार लौट आए हैं जैसे प्राय. सेवा में लगे हुए सेवक सम्पत्तिहीन स्वामी को छोड कर उसके पास से हट जाते है।[1] यहॉ पर कल्पित है कि उदीयमान सूर्य का वृक्षों के द्वारा अपनी छाया के माध्यम से उसी प्रकार अनुसरण किया जा रहा है जैसे शासक के आने पर उसके अनुचरों के द्वारा उसका अनुसरण किया जाता है। किन्तु यहॉ पर इस तथ्य को भी स्पष्ट किया गया है कि शासक के विभवहीन होते ही अनुचर जैसे उसका साथ छोड देते है उसी प्रकार सांयकाल सूर्य के अस्त होने के समय वृक्षों की छायाऍ सूर्य का साथ छोडकर उससे विपरीत मार्ग का आश्रय ले रही हैं। इस प्रकार विशाखदत्त ने इस श्लोक में सूर्य की स्तुति के साथ साथ इस दार्शनिक तथ्य का भी प्रस्तुतीकरण किया है कि समस्त विश्व में चाहें कितनी ही बड़ी शक्ति क्यो न हो जिस का अभ्युदय होता है उसका पतन भी होता ही है।

इसके अतिरिक्त विशाखदत्त की पौराणिक धर्म में पूर्ण आस्था थी। ग्रहण तथा ग्रहण के समय किए जाने वाले धार्मिक कृत्यों में विशाखदत्त का पूर्ण विश्वास था। नाटक के सूत्रधार की पत्नी चन्द्रग्रहण के उपलक्ष्य में ब्राह्मणों

---

[1] आविर्भूतानुरागा क्षणमुदयगिरेरुज्जिहानस्य भानो ,
पर्णच्छायै पुरस्तादुपवनतरवो दूरमाश्वेव गत्वा।
एते तस्मिन्निवृत्ता. पुनरपरगिरिप्रान्तपर्यस्तबिम्बे
प्रायो भृत्यास्त्यजन्ति प्रचलितविभव स्वामिन सेवमाना ।। मुद्रा० ४/२१

को आमन्त्रित कर उनके आतिथ्य के लिए पूरी तैयारी करती है। कवि विशाखदत्त उदार भी है क्योंकि सूत्रधार चन्द्रग्रहण न होने पर भी ब्राह्मणों का आतिथ्य करने के लिए अपनी गृहिणी को आदेश देता है[१]।

वस्तुत विशाखदत्त की भारतीय आश्रमधर्म मे पूर्ण आस्था थी। वैदिक रीति के अनुरूप प्रतिदिन जीवन पद्धति थी। वे ऋषियों के पवित्र एव त्यागमय जीवन को एक आदर्श जीवन मानते थे। एक साधक को किस वातावरण में रहना चाहिए? तथा शिष्यों के अपने आचार्य के प्रति क्या कर्तव्य होने चाहिए? इसका विशाखदत्त ने मुद्राराक्षस के तृतीय अङ्क में सुन्दर चित्र उपस्थित किया है। चक्रवर्ती सम्राट् के मन्त्री आचार्य चाणक्य के निवास का वर्णन करते हुए विशाखदत्त ने जिस त्यागवृत्ति को अभिव्यक्त किया है वह अन्यत्र दुर्लभ है। चाणक्य के घर मे सूखे हुए उपलों को तोडने वाला यह पत्थर का टुकडा है, आश्रम मे रहने वाले ब्रह्मचारियो के द्वारा लाए गये कुशो का यह ढेर है। घर के छज्जे के ऊपर सूखने के लिए रखी गयी समिधाओ से घर का छप्पर झुक गया है। घर की दीवालें भी फटी पुरानी है-

उपलशकलमेतद्भेदकं गोमयानाम्
बटुभिरुपहृतानां बर्हिषां स्तूपमेतत्।
शरणमपि समिद्भि. शुष्यमाणाभिराभि
र्विनमितपटलान्तं दृश्यते जीर्णकुड्यम्।।[२]

सम्राट् चन्द्रगुप्त मौर्य जैसे वैभवसम्पन्न शासक का मन्त्री टूटे-फूटे घर में रह रहा हो यह त्यागवृत्ति का अद्भुत निदर्शन है। कर्मकाण्ड के सम्पादन

---

१ आर्य! आमन्त्रिता मया भगवन्तो ब्राह्मणा ।
सूत्राधार -कथय कस्मिन्निमित्ते।
नटी- उपरज्यते किल भगवान् चन्द्र इति।
सूत्राधार.- आर्ये कृतश्रमोऽस्मि चतु.षष्ट्यङ्गे ज्योति.शास्त्रे। तत्प्रवर्त्यता भगवतो ब्राह्मणानुद्दिश्य पाक । चन्द्रोपरागं प्रति तु केनापि विप्रलब्धासि। मुद्रा०, पृ० १६

२ वही ३/१५

के लिए ब्रह्मचारियों के द्वारा लाए गये कुशों के ढेर का वर्णन कवि के आश्रमधर्म के प्रति आग्रह को घोषित करता है।

विशाखदत्त वैदिक धर्म के प्रति आग्रहवान् होने के साथ-साथ अन्य धर्मो के प्रति उदार दृष्टिकोण रखते है। उन्होने बौद्धधर्म का बडे आदर के साथ उल्लेख किया है। बौद्ध धर्म सम्बन्धी जातक कथाओ एवं परम्पराओं का इन्हें पूर्ण अभिज्ञान था। चतुर्थ अङ्क मे प्रथमत विशाखदत्त ने क्षपणक को भले ही अपशकुन सूचक माना हो किन्तु उसके तुरन्त बाद ही क्षपणक के मुख से अर्हतों अर्थात् बौद्धभिक्षुओ के महत्त्व का निर्देश किंया गया है। क्षपणक कहता है कि बौद्धसन्यासी अज्ञानरूपी रोग के वैद्य है। इनके उपदेश को स्वीकार करना चाहिए। ये बौद्धसंन्यासी क्षणभर के लिए कटु किन्तु पार्यन्तिक रूप से हितकर उपदेश देते हैं[१]।

मुद्राराक्षस में एक अन्य स्थान पर भी विशाखदत्त बौद्धधर्म के प्रति आस्था व्यक्त करते हैं। पञ्चम अङ्क के प्रारम्भ मे सिद्धार्थक क्षपणक को देखकर उसे यद्यपि अपशकुन का सूचक मानता है किन्तु इसी के साथ उसके अपशकुन रूप के दर्शन को अपने अभीष्ट का साधक मानता है तथा उसे प्रणाम करता है[२]। इस प्रसङ्ग में विशाखदत्त ने क्षपणक के मुख से बौद्धसंन्यासियों के प्रति जो आस्था प्रकट की है उससे भी बौद्ध धर्म के प्रति इनके आदर भाव का अभिज्ञान होता है। यहॉ पर प्रतिपादित किया गया है कि जो बौद्ध बुद्धि की गम्भीरता से संसार में अनुपम साधनों से सफलता अर्थात् मोक्ष को प्राप्त करते हैं उनको प्रणाम है-

अर्हतः प्रणमामि ये ते गम्भीरतया बुद्धेः।

---

१ शासनमर्हता प्रतिपद्यध्व मोहव्याधिवैद्यानाम् ।
ये मुहूर्तमात्रकटुक पश्चात्पथ्यमुपदिशन्ति।। मुद्रा० ४/१८

२ सिद्धार्थक - कथं क्षपणक आगच्छति। यावदस्यापशकुनभूतं दर्शन मम सम्मतमेव तस्मान्न परिहरामि। सिद्धार्थक. - भदन्त. वन्दे। वही पृ० ११५

लोकोत्तरैर्लोके सिद्धिं मार्गैर्गच्छन्ति[१]।।

इसी प्रकार जहॉ पर राक्षस चन्दनदास के शील सौजन्य को बुद्धों के शील सौजन्य से भी बढ चढकर बताता है वहॉ पर भी कवि बुद्ध धर्म के अस्तिव को स्वीकार करता है[२]। इस प्रकार विशाखदत्त ने बौद्धधर्म के प्रति भी अपना आदरभाव व्यक्त किया है।

विशाखदत्त की धार्मिक आस्था के इस सम्पूर्ण विवेचन के आधार पर यह निष्कर्ष निकलता है कि विशाखदत्त प्रमुखत. शैव थे तभी इन्होंने अपने ग्रन्थ के मङ्गलाचरण में अपने आराध्य शिव की दो श्लोकों में स्तुति की है। किन्तु शिव के साथ विष्णु एव सूर्य की स्तुति करने तथा बौद्धों के प्रति सम्मान व्यक्त करने से यह सिद्ध होता है कि विशाखदत्त धर्मिक दृष्टि से अत्यन्त उदार दृष्टिकोण के व्यक्ति थे। ये हिन्दूधर्म में दृढ विश्वास रखते हुए भी अन्य धर्मों के प्रति आस्थावान् थे। इन्होंने कहीं पर भी किसी के ऊपर अपने धर्म को हठात् थोपने का प्रयास नहीं किया है। सम्पूर्ण नाटक में इनका यह प्रयास रहा है कि किसी भी धर्म को मानने वाले की आस्था को ठेस न पहुॅचे। वस्तुत. गुप्तकाल धार्मिक उदारता का काल था। अत: विशाखदत्त द्वारा उदार दृष्टिकोण अपनाने में कोई विसङ्गति नहीं दिखायी पडती।

(ख) विशाखदत्त का शास्त्रीय ज्ञान : किसी भी रचना की उत्कृष्टता में रचनाकार की प्रतिभा का अत्यधिक महत्त्व होता है। रचना की निष्पत्ति प्रतिभा के साथ ही लोक, शास्त्र, काव्यादि के अनुशीलन से उत्पन्न व्युत्पत्ति एव अभ्यास पर आश्रित होती है। काव्य अथवा नाटक मे सभी विद्याओं एव सभी कलाओं का उपयोग होता है, अत नाटककार का सभी विद्याओ से परिचित होना आवश्यक होता है। नाटककार विशाखदत्त काव्यप्रतिभा की

---

१ मुद्रा० ५/२

२ (क) राक्षस -(आत्मगतम्। अनिमित्त सूचयित्वा,। कथ प्रथममेव क्षपणक) वही पृ०-१११

(ख) बुद्धानामपि चेष्टित सुचरितै क्लिष्टं विशुद्धात्मना।
पूजार्होऽपि स यत्कृते तव गतो वध्यत्वमेषोऽस्मि स ।। वही ७/५

विलक्षणता से युक्त तो हैं ही, इन्होने अपने राजनैतिक जीवन मे व्यावहारिक तथा सैद्धान्तिक राजनीति के परम रहस्य को तो अधिगत ही किया था इन्हें अन्य शास्त्रो का भी पर्याप्त ज्ञान था। विशाखदत्त ने कौटिल्य के अर्थशास्त्र, कामन्दक नीतिसार, एवं शुक्रनीति आदि का विधिवत् अध्ययन किया था। मुद्राराक्षस में जो व्यावहारिक राजनीति प्रस्तुत हुई है उसको सैद्धान्तिक राजनीति का दृढ समर्थन प्राप्त है। विशाखदत्त के नाट्यशास्त्रीय ज्ञान का विवेचन प्रस्तुत प्रबन्ध में प्रसड्गवशात् 'मुद्राराक्षस की नाट्यशास्त्रीय समीक्षा' अध्याय के अन्तर्गत प्रस्तुत किया जायेगा तथा इनके राजनीति विषयक शास्त्रीय ज्ञान का विश्लेषण 'मुद्राराक्षस की राजनीति के सैद्धान्तिक आधार' अध्याय के अन्तर्गत प्रस्तुत किया जायेगा।

नाटक लिखने के लिए नाट्यशास्त्र का ज्ञान तो अनिवार्य है ही प्रस्तुत नाटक के पूर्णत राजनीति विषयक होने के कारण राजनीतिशास्त्र का भी पूर्ण ज्ञान अपेक्षित था। इन दोनो शास्त्रो के अतिरिक्त विशाखदत्त अन्य शास्त्रो के भी प्रकाण्ड पण्डित थे। प्रसड्गवशात् विशाखदत्त ने मुद्राराक्षस मे ज्योतिष, न्याय, एवं व्याकरण आदि शास्त्रो का भी सूक्ष्म विवरण प्रस्तुत किया है।

मुद्राराक्षस की प्रस्तावना में सूत्रधार के द्वारा जब नटी से चन्द्रग्रहण का निषेध बताया जाता है वहॉ पर विशाखदत्त ने गर्गसंहिता के ग्रहण विषयक मत को प्रस्तुत किया है। सूत्रधार नटी से कहता है -

क्रूरग्रह सकेतु चन्द्रं सम्पूर्णमण्डलमिदानीम् ।

अभिभवितुमिच्छति बलात् रक्षत्येनं तु बुधयोग.।।[१]

अर्थात् अत्यन्त क्रूर ग्रहण वाला वह प्रसिद्ध राहु (केतु) सम्प्रति पूर्णिमा के दिन सम्पूर्ण कलाओं वाले चन्द्रमा को हठात् ग्रसित करना चाहता है, परन्तु बुध नक्षत्र का योग होने से चन्द्रमा की ग्रहण से रक्षा हो जाती है।

सूर्य एवं चन्द्रमा अपने अपने गमनपथ पर चलते रहते हैं। यदि उनके बीच में पृथ्वीग्रह का व्यवधान होता है तो सूर्य का प्रकाश चन्द्रमा पर नहीं पड

---

[१] मुद्रा० १६

पाता इसी को ग्रहण कहते है। राहु पृथ्वी की छाया है, अत वह अन्धकार का देवता है। चन्द्रमा का ग्रहण पूर्णिमा के समय ही होता है - पूर्णिमाप्रतिपत्सन्धौ ग्रस्यते राहुणा शशी। यहॉ केतु शब्द से राहु एवं केतु दोनो अर्थ प्रस्तुत किये गये हैं। राहु एवं केतु दोनो का शरीर एक होने के कारण दोनों मे अभिन्नता है। राहु शिरोभाग है शेष शरीर का भाग केतु कहलाता है। यहॉ पर नाटकीय कथावस्तु 'मलयकेतु के साथ राक्षस चन्द्रगुप्त पर हठात् आक्रमण करना चाह रहा है' को प्रस्तुत करने के लिए कवि ने राहु को न कहकर केतु शब्द को पद्य में प्रयुक्त किया है। इसके अनन्तर 'बुध चाणक्य का योग' चन्द्रगुप्त की रक्षा कर रहा है' इस कथावस्तु को प्रस्तुत करने के लिए 'रक्षत्येनं तु बुधयोग.' कहा गया है। इससे 'बुध के योग में चन्द्रग्रहण नहीं होता यह अर्थ भी प्रस्तुत किया गया है। जहॉ तक ज्योतिषशास्त्र के सिद्धान्त की बात है गर्गसंहिता में यह उल्लिखित है कि- सूर्य, चन्द्र, बुध, गुरु, और शुक्र इन पॉच ग्रहों का यदि संयोग होता है तो ग्रहण नहीं होता। किन्तु यदि वहॉ बुध की युति नहीं है तो ग्रहण होगा अन्यथा नहीं होगा-

ग्रहपञ्चकसंयोगं दृष्ट्वा न ग्रहणं वदेत् ।

यदि न स्याद् बुधस्तत्र तं दृष्ट्वा ग्रहणं वदेत्।[१]

गर्गसंहिता ज्योतिषशास्त्र का प्राचीन ग्रन्थ है। इसके इसी सिद्धान्त को वृहत्संहिता में भी प्रस्तुत किया गया है-

पञ्चग्रहयोगान्न किल ग्रहणस्य सम्भवो भवति।[२]

गर्गसंहिता में बुध की युति न होने पर ग्रहण का होना तथा बुध की युति होने पर ग्रहण का न होना प्रतिपादित किया गया है। इसी आधार पर विशाखदत्त ने बुध का योग होने पर ग्रहण का अभाव बताया है। कथा वस्तु

---

१ बृहत्सहिता राहुचाराध्याय श्लोक स० १६ की अच्युतानन्द झा द्वारा लिखित हिन्दी टीका मे उद्धत।

२ बृहत्सहिता राहुचाराध्याय श्लोक सं० १७

की प्रस्तुति के लिए विशाखदत्त ने 'बुध के योग में ग्रहण नहीं होता' इस ज्योतिष शास्त्रीय सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है।

इसी प्रकार जब राक्षस पाटलिपुत्र पर आक्रमण के लिए क्षपणक से प्रस्थान का मुहूर्त पूँछता है वहाँ पर भी विशाखदत्त के ज्योतिष शास्त्रीय ज्ञान की प्रौढि का परिचय मिलता है-

राक्षस - भदन्त निरूप्यतां तावदस्मत्प्रस्थानदिवस। क्षपणक श्रावक निरूपिता मयामध्याह्नान्निवृत्तसर्वकल्याणा तिथि.' सम्पूर्णचन्द्रा पौर्णमासी। युस्माकमुत्तस्या दिशो दक्षिणां दिशं प्रस्थितानां च अदक्षिणं नक्षत्रम् । अपि च -

अस्ताभिमुखे सूर्ये उदिते सम्पूर्णमण्डले चन्द्रे।

गमनं बुधस्य लग्ने उदितास्तमिते च केतौ।[१]

मुद्राराक्षस के इस अंश में पूर्णिमा में यात्रा को वर्जित किया गया है तथा बुध के लग्न में उत्तर से दक्षिण दिशा की ओर जाने के लिए यात्रा को शुभ बताया गया है। उस समय केतु उदित होकर अस्त हो चुका है। योगिनी तिथि के अनुसार चलती है। पूर्णिमा तिथि में योगिनी वायव्य कोण में रहती है तथा प्रतिपदा में पूर्व दिशा में चली जाती है। उत्तर में दक्षिण दिशा में यात्रा के समय में पूर्णिमा तिथि की योगिनी दाहिने तथा प्रतिपदा तिथि की योगिनी बायें होगी। योगिनी का फल ज्योतिष ग्रन्थों में बताया गया है। योगिनी के पीछे एवं बाएँ रहने पर यात्रा सुखद होती है जब कि दाहिने एवं सामने रहने पर यात्रा कष्टकारी हो जाती है -

योगिनी सुखदा वामे पृष्ठे वाञ्छितदायिनी।

दक्षिणे धनहन्तृ च सम्मुखे मरणप्रदा।।[२]

यात्रा के कम में नक्षत्र का भी विचार किया जाता है। तिथि की अपेक्षा नक्षत्र की उत्तमता का विचार -

---

१ मुद्राराक्षस ४ १९

२ ज्योतिर्निबन्धावली मे उद्धत पृ० १८६ श्लोक ३३

तिथिरेकगुणा प्रोक्ता नक्षत्र च चतुर्गुणम् ।

शुक्ले चन्द्रबलं ग्राह्यं कृष्णे ताराबलं तथा ।।[१]

ज्योतिषशास्त्र के अनुसार सभी चैत्रादि मासों के नाम नक्षत्रों के आधार पर रखे गये हैं। पूर्णोदय तिथि में जो नक्षत्र होता है उसी नक्षत्र के आधार पर वह सम्पूर्ण मास होता है। मुद्राराक्षस मे जो वर्णन है उसके अनुसार शरत् ऋतु बीत चुकी है उसके अनन्तर आने वाली हेमन्त ऋतु मार्गशीर्ष मास से ही प्रारम्भ होती है। अतएव मार्गशीर्ष मास की पूर्णिमा को मृगशिरा नक्षत्र होगा। अर्थात् चन्द्रमा मृगशिरा नक्षत्र ही होगा। मृगशिरा में पूर्व में उदित हो रहा है। यात्रा दक्षिण दिशा में होगी। अत नक्षत्र वाम भाग में होने के कारण अशुभ हो गया है। वाम एव पृष्ठ भाग का नक्षत्र यात्रा के लिए अशुभ माना गया है। सम्मुख एवं दक्षिण नक्षत्र शुभ होगा।

यात्रा में लग्न का विचार महत्त्वपूर्ण है। तिथि की अपेक्षा नक्षत्र का विचार अधिक स्पृहणीय है। किन्तु नक्षत्र से भी अधिक लग्न का विचार स्पृहणीय होता है-

न तिथिर्न च नक्षत्रं न योगो नैन्दवं बलम् ।

लग्नमेव प्रशंसन्ति गर्गनारदकश्यपा ।।[२]

लग्न के महत्त्व का ज्योतिषशास्त्र में अन्यत्र भी विचार किया गया है-

लग्नवीर्यं विना यत्र यत्कर्म क्रियते बुधै ।

तत्फलं विलयंयाति ग्रीष्मे कुसरितो यथा।।[३]

बुध का लग्न मिथुन एवं कर्क दोनों है। मार्गशीर्ष में सूर्यास्त मिथुन लग्न में ही हुआ करता है अत. मिथुन लग्न को श्रेष्ठ मानकर यात्रा का निर्देश किया गया है। केतु उदित रहने पर कष्ट देता है किन्तु यात्रा के दिन

---

१ महात्मा लगध विरचित आथर्वणज्योतिष श्लोक स ९०

२ आचार्य लल्ल कृत शिष्यधीवृद्धितन्त्र श्लोक १६

३ ज्योतिर्निबन्धावली मे उद्धत पृ० १७

केतु उदित होकर अस्त हो चुका है। इसलिए उसका प्रभाव नही रह गया है। पूर्णिमा के पूर्वार्द्ध पर भद्रा होती है, किन्तु अब भद्रा भी समाप्त हो चुकी है अत इस समय यात्रा करना निरापद है। इस प्रकार मुद्राराक्षस मे विशाखदत्त ने ज्योतिष के सम्बन्ध में अपना प्रौढ ज्ञान प्रस्तुत किया है।

मुद्राराक्षस में विशाखदत्त के न्यायशास्त्र सम्बन्धी ज्ञान का भी परिचय प्राप्त होता है। पञ्चम अंक में राक्षस अपने बल को चन्द्रगुप्त के सैनिकों से घिरा देखकर कहता है कि मेरे मन की परिशुद्धि नहीं है -

साध्ये निश्चितमन्वयेन घटितं विभ्रत्सपक्षे स्थितिं,

व्यावृत्तं च विपक्षतो भवति यत्तत्साधन सिद्धये।

यत्साध्यं स्वयमेव तुल्यमुभयो पक्षे विरुद्धं च य-

त्तस्याङ्गीकरणेन वादिन इव स्यात्स्वामिनो निग्रह.।।

इस श्लोक का अभिप्राय यह है कि जो धूम रूप हेतु पक्ष में असंदिग्ध रूप से है, अन्वय व्याप्ति से विशिष्ट है, सपक्ष मानसादि में स्थिति को धारण करता हुआ है और विपक्ष जलाशय से पृथक् होता है। वह धूम रूप हेतु बह्नि की यनुमिति को सिद्ध करने के लिए समर्थ है। किन्तु जो साधन हेतु स्वयं ही साध्य है अर्थात् पक्ष में अनिश्चित है तथा सपक्ष और विपक्ष में समान है अतएव अन्वय व्याप्ति से विशिष्ट नहीं है अर्थात् दोनों स्थानों पर विद्यमान होने से अथवा अविद्यमान होने से समान है तथा जो हेतु पक्ष मे विपरीत है उस हेतु अर्थात् हेत्वाभास के स्वीकार करने से स्वामी के समान वादी का निग्रह होता है। इस श्लोक में विशाखदत्त ने अन्वयव्याप्ति, सपक्ष, विपक्ष, साधन, सिद्धि, साध्य आदि न्याय के पारिभाषिक शब्दों काप्रयोग कर अपने न्यायशास्त्र सम्बन्धी ज्ञान को प्रस्तुत किया है।

(ग) तान्त्रिक क्रियाओं एवं शकुनों का ज्ञान- विशाखदत्त का तान्त्रिक प्रक्रियाओं तथा शकुनों में भी विश्वास था। चतुर्थ अङ्क में विशाखदत्त ने शकटदास के मुख से चाणक्य को अभिचार क्रिया का प्रयोक्ता एवं उसके

अनुष्ठान में होने वाले दु खों को जानने वाला बताया है[१]। मारण, मोहन, वशीकरण तथा उच्चाटन ये आभिचारिक क्रियाएँ तन्त्राशास्त्र में निर्दिष्ट है। व्यक्ति शत्रु को नष्ट करने के लिए उसे मोहित करने के लिए, अपने वश में कर लेने के लिए तथा विक्षिप्त बना देने के लिए तान्त्रिक अनुष्ठानों का प्रयोग करता है। चाणक्य ने भी नन्दों को मारने के लिए अभिचार कर्म का प्रयोग तथा मारणमंत्रों का जप किया था। विशाखदत्त द्वारा चाणक्य को अभिचार क्रिया का अनुष्ठान करने वाला मानने की धारणा की पुष्टि कामन्दक के नीतिसार से भी होती है। कामन्दक चाणक्य के लिए अपने नीतिसार के प्रारम्भ मे ही- **'यस्याभिचारवज्रेण'** इत्यादि का उल्लेख करता है। इससे यह सिद्ध होता है कि विशाखदत्त को आभिचारिक प्रयोगों का ज्ञान था।

विशाखदत्त मुद्राराक्षस में शकुनों एव अपशकुनों का भी विचार करते हैं। नाटक के चतुर्थ अङ्क में राक्षस के समीप से भागुरायण के साथ मलयकेतु के चले जाने पर राक्षस का सेवक राक्षस को क्षपणक के आने की सूचना देता है। कवि के अनुसार यह क्षपणक अशुभ का सूचक है[२]। किसी भी शुभ कार्य के प्रारम्भ में क्षपणक का दिखायी पडना अशुभ का सङ्केत माना जाता है। इसी लिए प्रथम अङ्क में क्षपणक को कुसुमपुर से निष्कासित किया जाता हुआ बताया गया है[३]। यह दूसरी बात है कि यह चाणक्य का गुप्तचर है। राक्षस प्रथमत क्षपणक का नाम सुनकर उसे अशुभ का सङ्केत मानता है। किन्तु अगले खण्ड में जीवसिद्धिः नाम सुनकर इसे शुभ का सङ्केत मानता है। यद्यपि क्षपणक के द्वारा कवि ने राक्षस की राजनीति में विघ्न की सूचना दी है, तथापि राक्षस का

---

१ राज्ञा चूडामणीन्दुद्युतिखचितशिखे मूर्ध्नि विन्यस्तपाद
स्वैरेवोत्पाद्यमानं किमिति विषहते मौर्य आज्ञाविघातम्।
कौटिल्य कोपनोऽपि स्वयमभिचरणज्ञातदु ख प्रतिज्ञा
दैवात्तीर्णप्रतिज्ञ पुनरपि न करोत्यायतग्लानिभीत ।। मुद्रा० ४/१२

२ राक्षस - (आत्मगतम् अनिमित्तं सूचयित्वा) कथं प्रथममेव क्षपणक। मुद्रा० पृ० १११

३ राजापथ्यकारी क्षपणको जीवसिद्धि सनिकार नगरान्निर्वास्यते। वही पृ०-४२

वध करने के लिए तत्पर मलयकेतु से राक्षस के प्राणों की रक्षा भागुरायण की नीति के द्वारा सम्भव हो पाती है। यह जीवसिद्धि नाम की सार्थकता का सूचक है।

इसी प्रकार मुद्राराक्षस के चतुर्थ अङ्क में कवि ने राक्षस की वामाक्षि के स्पन्दन को भी अपशकुन के रूप में वर्णित किया है। राक्षस अपनी बाई ऑख के फडकने पर यह स्वीकार करता है कि दुष्ट हृदय चाणक्य विजयी होगा तथा अमात्य राक्षस को धोखा होगा। यह प्रकरणवश आई हुई सरस्वती बाई ऑख के फड़कने के द्वारा मानों प्रतिपादित कर रही है[१]। विशाखदत्त यहाँ पर यह स्वीकार करते हैं कि पुरुषों की बाई ऑख तथा स्त्रियों की दाहिनी ऑख का फडकना अशुभ होता है। इससे यह स्पष्ट है कि कवि विशाखदत्त का शकुनों तथा अपशकुनो पर भी विश्वास था।

(ग) राष्ट्रीय भावना- नाटककार अपने नाटक के पात्रों के माध्यम से अपनी अनुभूतियों तथा अपने हृदयगत भावों का ही चित्रण प्रस्तुत करता है। नाटक में प्राप्त वर्णनों के आधार पर राष्ट्रीय भावना के संदर्भ में लेखक के विचारों का विश्लेषण किया जा सकता है। विशाखदत्त मुद्राराक्षस में उच्च राष्ट्रीय आदर्शों को लेकर नाटक का विस्तार करते हैं। इनके पात्र अपने सङ्कीर्ण स्वार्थो से ऊपर उठकर राष्ट्रीय हित के कार्यों में संलग्न दिखायी पडते है। चाणक्य हो चाहे राक्षस अथवा चन्दनदास अपने स्वार्थ की तनिक भी परवाह नहीं करते, अपितु प्रत्येक देश तथा समाज के हित के लिए अग्रसर हैं। विशाखदत्त ने चाणक्य, जो कि मुद्राराक्षस का नायक है को राष्ट्रीय राजनीति के प्रतिनिधि के रूप में प्रस्तुत किया है। चाणक्य के माध्यम से विशाखदत्त द्वारा प्रस्तुत किया गया राष्ट्रीय चिन्तन आत्मत्याग तथा राष्ट्रहित से ओतप्रोत है। विशाखदत्त ने मुद्राराक्षस के प्रतिनायक का भी एक ऐसे राष्ट्रपुरुष के रूप में वर्णन प्रस्तुत किया है जो राष्ट्र के निमित्त अपने आत्मा का भी बलिदान

---

१ (वामाक्षिस्पन्दन सूचयित्वा आत्मगतम्) दुरात्मा चाणक्यवटुर्जयत्वतिसन्धातु शक्य स्यादमात्य इति वागीश्वरी वामाक्षिस्पन्दनेन प्रस्तावगता प्रतिपादयति। मुद्रा० पृ० ९९

करने हेतु सदैव उद्यत रहता है। इससे विशाखदत्त के राष्ट्रवादी गम्भीर चिन्तन की स्पष्ट अभिव्यक्ति होती है। विशाखदत्त के राष्ट्रीय चिन्तन मे दृढता दृष्टिगत होती है। इसके छोटे अथवा बडे पात्र प्रलोभन रहित एव स्वार्थरहित है तथा उच्च राष्ट्रीय आदर्श की प्राप्ति के लिए तत्पर दिखायी देते है। वस्तुत विशाखदत्त पर कौटिल्य के अर्थशास्त्र का अत्यधिक प्रभाव दृष्टिगत होता है। अर्थशास्त्र में अभिव्यक्त राष्ट्रीय भावनाओं को विशाखदत्त ने अपने जीवन में आत्मसात् किया था। विशाखदत्त उच्च राजघराने से सम्बद्ध थे अत इनके विचारों में स्वाभाविक दृढता दृष्टिगत होती है। चन्दनदास अपने प्राणों की भी कीमत पर राक्षस के परिवार को चाणक्य को सौंपने के लिए प्रस्तुत नहीं होता[१]। यह विशाखदत्त की वैचारिक दृढता का परिचायक है विशाखदत्त की दृष्टि में राष्ट्रहित सर्वोपरि है। तभी बिना किसी रक्तपात के सद्गुणों से युक्त राक्षस, जो कि चन्द्रगुप्त एवं चाणक्य का सबसे बडा विरोधी था, इनके समक्ष चुनौती प्रस्तुत करने वाला था, को राज्य का प्रधानामात्य का पद चाणक्य के द्वारा दिलवाया जाता है।

मुद्राराक्षस मे विशाखदत्त के उच्च राजनैतिक आदर्शवाद की झलक मिलती है। भले ही चाणक्य तथा राक्षस एवं चन्द्रगुप्त तथा मलयकेतु पारस्परिक भिन्न राजनैतिक स्वार्थ को लेकर आगे बढते है किन्तु अन्त में राष्ट्रहित में तथा राष्ट्र की सुरक्षा को दृष्टि में रखकर सबका हृदय परिवर्तन होता है। विशाखदत्त ने इस सार्वकालिक सत्य का आकलन अच्छी तरह से कर लिया था कि राष्ट्रहित सर्वोपरि होता है। यही सर्वोच्च आदर्श है। विशाखदत्त का पूर्ण प्रयास इसी उच्च आदर्श की प्रस्तुति के लिए था। इसके लिए नाटककार में पूर्ण आत्मविश्वास भी था। विशाखदत्त मूलत. राजनीतिक थे। इसी कारण वे एक शुद्ध विचारक थे। इनके नाटक का मूलाधार वस्तुत. कोई न कोई विचारतत्त्व ही था। विशाखदत्त ने नाटक में राजनैतिक षड्यन्त्रों का सुनियोजित प्रयोग प्रदर्शित किया है। ये षड्यन्त्र गुत्थियों की तरह पहले उलझे

---

१ सन्तमपि गेहे अमात्यराक्षसस्य गृहजनं न समर्पयामि किं पुनरसन्तम्। मुद्रा० पृ० ४३

हुए प्रतीत होते है। किन्तु बाद मे वे लक्ष्य की प्राप्ति मे व्यवस्थित से लगने लगते है। विशाखदत्त के इन कूटनीतिक विचारो को देखने से लगता है कि वे मूलत राजनैतिक षड्यन्त्रो के शिल्पी हैं।

विशाखदत्त में मानवता के प्रति भी महती आस्था थी। राक्षस की जीवनधारा का अन्त में सर्वथा परिवर्तित रूप में प्रवाहित होने की सूक्ष्म अभिव्यञ्जना ही इस विश्वास का उत्तम उदाहरण है। चन्दनदास द्वारा अपने प्राणो का उत्सर्ग करते हुए भी राक्षस के परिवार की सुरक्षा करने के व्रत का निर्वाह मानवता के आदर्शों के प्रति विशाखदत्त के आग्रह का द्योतक है। वस्तुत विशाखदत्त के व्यवहारों तथा विचारों में आध्यामिक संयम, धार्मिक आस्था एवं सांसारिक व्यवहार घुलमिलकर पूर्ण समन्वय उपस्थित कर देते हैं। विशाखदत्त का व्यक्तित्व राजनैतिक पृष्ठभूमि पर जिज्ञासा, समन्वय एवं विवेक का केन्द्र है। सदैव विकल्प से ऊपर उठकर संकल्प में पर्यवसित है और तर्क से ऊपर उठकर विश्वास में सुस्थिर है।

द्वितीय अध्याय

मुद्राराक्षस के कथानक की ऐतिहासिकता

मुद्राराक्षस के कथानक की ऐतिहासिकता

मुद्राराक्षस मे वर्णित कथानक इतिहास-प्रसिद्ध है। इसके कमसे कम महापद्म नन्द, चन्द्रगुप्त एवं चाणक्य ऐसे पात्र है जो भारतीय ब्राह्मण, जैन एवं बौद्ध सभी परम्पराओ मे उल्लिखित मिलते है। विदेशी पर्यटको तथा विद्वानो ने भी इनका विस्तृत विवरण प्रस्तुत किया है। इस नाटक के प्रमुख घटनास्थल पाटलिपुत्र अथवा कुसुमपुर का उल्लेख भी पर्याप्त मात्रा मे किया गया है। चाणक्य ने जिन नन्दो का विनाश कर चन्द्रगुप्त को राजगद्दी पर प्रतिष्ठित किया था मुद्राराक्षस मे उनका नाम नही लिया गया है, किन्तु ऐतिहासिक विवरणो में उनके वंश, राज्यव्यवस्था एवं नामो के स्पष्ट विवरण प्राप्त होते हैं। विशाखदत्त को परम्परा से मुद्राराक्षस की कथावस्तु का कितना अंश प्राप्त हुआ था तथा उसने उसमे अपनी कल्पना से कितना अंश जोड़ दिया है, यह तथ्य इस अध्याय के विवेचन का मुख्य विषय है।

नन्दों का कैसे आविर्भाव हुआ? उन्होने मगध साम्राज्य की स्थापना एवं उसके विस्तार के लिए क्या रणनीति बनायी? उनके शासन की खामियो का लाभ लेकर कैसे चाणक्य ने उनके विनाश मे सफलता प्राप्त की तथा चन्द्रगुप्त को मगध साम्राज्य की राजगद्दी पर कैसे प्रतिष्ठापित किया? इन घटनाओ के विस्तृत विवरण के लिए भारतीय तथा पाश्चात्त्य साहित्य में प्रचुर मात्रा मे सामग्री उपलब्ध है।

ब्राह्मण साहित्य- इस दृष्टि से सर्वप्रथम कौटिल्य के अर्थशास्त्र का उल्लेख किया जाता सकता है। भारतीय परम्परा के अनुसार अर्थशास्त्र चन्द्रगुप्त मौर्य के महामंत्री आचार्य चाणक्य की रचना है, जिस के कौटिल्य एवं विष्णुगुप्त ये दो अन्य नाम भी प्राप्त होते है। यद्यपि इस संदर्भ मे मतवैभिन्य प्राप्त होता है कि अर्थशास्त्र के प्रणेता चन्द्रगुप्त मौर्य के महामंत्री आचार्य चाणक्य थे या नहीं किन्तु इतना तो निश्चित है कि चन्द्रगुप्त की शासन व्यवस्था के संदर्भ में अर्थशास्त्र के आधार पर कुछ महत्त्वपूर्ण निष्कर्ष निकाले जा सकते है। भले ही अर्थशास्त्र के विवरण किसी आदर्श राज्य की

प्रशासनिक व्यवस्था का रेखाङ्कन करते हो किन्तु इन विवरणो मे मौर्य साम्राज्य की शासन व्यवस्था के अनेक पक्षो का उचित ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। कौटिल्य के अर्थशास्त्र के अतिरिक्त पुराणो मे नन्द-चाणक्य-चन्द्रगुप्त मौर्य का विवरण प्रस्तुत किया गया है। पुराणो में प्रस्तुत इतिहास मे अशुद्धियॉ सम्भव हैं। किन्तु इनके आधार पर प्राचीन भारतीय राजनैतिक इतिहास के विषय मे महत्त्वपूर्ण सूचना एकत्र की जा सकती है। पुराणो मे नन्दो के उन्मूलन, मौर्यवंश की स्थापना तथा उसमे चाणक्य के योगदान, नन्दो का वंशक्रम तथा तिथिक्रम आदि के संदर्भ मे उपयोगी विवरण प्रस्तुत किए गये है। सोमदेव के द्वारा रचित कथासरित्सागर मे भी नन्द-चन्द्रगुप्त-चाणक्य से सम्बन्धित महत्त्वपूर्ण विवरण प्राप्त होते हैं। प्रथमशताब्दी ईस्वी के आस पास गुणाढ्य द्वारा पैशाची प्राकृत मे उपनिबद्ध बृहत्कथा को आधार बनाकर सोमदेव ने इस ग्रन्थ का प्रणयन किया था। बृहत् कथा उपलब्ध नही है। यह सम्भव है कि कथासरित्सागर मे कुछ नई कथाएँ अवश्य जोड़ी गयी होगी, जो बृहत्कथा मे न रही होगी, किन्तु बृहत्कथा में नन्द-चाणक्य एवं चन्द्रगुप्त से सम्बद्ध कथाएँ नही रही होगी ऐसा निश्चित रूप से नही कहा जा सकता। पतञ्जलि द्वारा पाणिनि की अष्टाध्यायी पर लिखे गये महाभाष्य मे भी नन्द-चाणक्य-चन्द्रगुप्त युगीन छिटपुट घटनाओं का उल्लेख प्राप्त होता है।

बौद्ध साहित्य- नन्दवंश के उन्मूलन तथा चन्द्रगुप्त मौर्य द्वारा मौर्य साम्राज्य की स्थापना से सम्बन्धित अनेक तथ्य बौद्ध साहित्य मे उपलब्ध होते है। इस दृष्टि से प्रथम शती ईस्वी मे रचित सिंहली अट्ठकथा तथा उत्तर विहार अट्ठकथा अधिक महत्त्वपूर्ण थीं। यद्यपि ये दोनो ग्रन्थ अब नही मिलते, किन्तु इन्हें ही आधार बनाकर चौथी शताब्दी ईस्वी में पालिभाषा मे उपनिबद्ध दीपवंश नामक काव्यग्रन्थ तथा अपेक्षाकृत अधिक परिष्कृत पालिभाषा मे पॉचवी-छठी शती ईस्वी मे महानाम नामक विद्वान् के द्वारा रचित महावंश इन दोनों ग्रन्थो का नन्द-मौर्य वंशो के इतिहास के निर्माण में बहुत बड़ा योगदान है।

महावंश की ही सामग्री का पल्लवन महावंशटीका मे किया गया है। इसे 'वंसत्थप्पकासिनी' भी कहा जाता है। इसके बाद भी नन्द-मौर्य वंशों पर

प्रशासनिक व्यवस्था का रेखाङ्कन करते हो किन्तु इन विवरणो मे मौर्य साम्राज्य की शासन व्यवस्था के अनेक पक्षो का उचित ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। कौटिल्य के अर्थशास्त्र के अतिरिक्त पुराणो मे नन्द-चाणक्य-चन्द्रगुप्त मौर्य का विवरण प्रस्तुत किया गया है। पुराणो मे प्रस्तुत इतिहास मे अशुद्धियाँ सम्भव हैं। किन्तु इनके आधार पर प्राचीन भारतीय राजनैतिक इतिहास के विषय मे महत्त्वपूर्ण सूचना एकत्र की जा सकती है। पुराणो मे नन्दो के उन्मूलन, मौर्यवंश की स्थापना तथा उसमे चाणक्य के योगदान, नन्दो का वंशक्रम तथा तिथिक्रम आदि के संदर्भ मे उपयोगी विवरण प्रस्तुत किए गये है। सोमदेव के द्वारा रचित कथासरित्सागर मे भी नन्द-चन्द्रगुप्त-चाणक्य से सम्बन्धित महत्त्वपूर्ण विवरण प्राप्त होते है। प्रथमशताब्दी ईस्वी के आस पास गुणाढ्य द्वारा पैशाची प्राकृत मे उपनिबद्ध बृहत्कथा को आधार बनाकर सोमदेव ने इस ग्रन्थ का प्रणयन किया था। बृहत् कथा उपलब्ध नही है। यह सम्भव है कि कथासरित्सागर मे कुछ नई कथाएँ अवश्य जोड़ी गयी होगी, जो बृहत्कथा मे न रही होगी, किन्तु बृहत्कथा मे नन्द-चाणक्य एवं चन्द्रगुप्त से सम्बद्ध कथाएँ नही रही होगी ऐसा निश्चित रूप से नही कहा जा सकता। पतञ्जलि द्वारा पाणिनि की अष्टाध्यायी पर लिखे गये महाभाष्य मे भी नन्द-चाणक्य-चन्द्रगुप्त युगीन छिटपुट घटनाओं का उल्लेख प्राप्त होता है।

बौद्ध साहित्य- नन्दवंश के उन्मूलन तथा चन्द्रगुप्त मौर्य द्वारा मौर्य साम्राज्य की स्थापना से सम्बन्धित अनेक तथ्य बौद्ध साहित्य मे उपलब्ध होते हैं। इस दृष्टि से प्रथम शती ईस्वी मे रचित सिंहली अट्ठकथा तथा उत्तर विहार अट्ठकथा अधिक महत्त्वपूर्ण थी। यद्यपि ये दोनों ग्रन्थ अब नहीं मिलते, किन्तु इन्हे ही आधार बनाकर चौथी शताब्दी ईस्वी में पालिभाषा में उपनिबद्ध दीपवंश नामक काव्यग्रन्थ तथा अपेक्षाकृत अधिक परिष्कृत पालिभाषा मे पाँचवी-छठी शती ईस्वी मे महानाम नामक विद्वान् के द्वारा रचित महावंश इन दोनो ग्रन्थो का नन्द-मौर्य वंशो के इतिहास के निर्माण मे बहुत बड़ा योगदान है।

महावंश की ही सामग्री का पल्लवन महावंशटीका मे किया गया है। इसे 'वंसत्थप्पकासिनी' भी कहा जाता है। इसके बाद भी नन्द-मौर्य वंशो पर

पालि के अनेक ग्रन्थो मे विवरण प्रस्तुत किए गये है। इस दृष्टि से मिलिन्द-पञ्हो ग्रन्थ अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इसमे यवनराज मिनैन्डर के साथ नागसेन के वार्तालाप को प्रस्तुत करते हुए प्रसङ्गवशात् नन्दों तथा चन्द्रगुप्त-चाणक्य से सम्बन्धित कथाएँ भी दे दी गयी है।

पालि मे उपनिबद्ध बौद्ध ग्रन्थो के साथ-साथ संस्कृत भाषा मे रचे गये दिव्यावदान आदि बौद्धग्रन्थो मे भी नन्द-चाणक्य-चन्द्रगुप्त विषयक सामग्री प्राप्त होती है। साहित्यिक दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण इस ग्रन्थ की रचना लगभग तीसरी शताब्दी ई० मे की गयी थी। पौराणिक शैली मे लिखा गया आर्यमञ्जुश्रीमूलकल्प दूसरा ऐसा ग्रन्थ है जिसमे ८वी शताब्दी तक के बौद्धधर्म के इतिहास के साथ-साथ नन्दो, चन्द्रगुप्त मौर्य, चाणक्य और बिन्दुसार आदि के विषय मे अत्यन्त महत्त्वपूर्ण सूचनाएँ दी गयीं है।

जैन साहित्य- नन्दवंश, चाणक्य तथा चन्द्रगुप्त मौर्य से सम्बन्धित अनेक महत्त्वपूर्ण सूचनाएँ जैन साहित्य मे भी प्रचुर मात्रा मे विद्यमान है। इस दृष्टि से निशीथ तथा बृहत्कल्प इन दो छेदसूत्रो का तथा उत्तराध्ययन, दशवैकालिक एवं निशीथ इन तीन मूल सूत्रो का अत्यधिक महत्त्व है। ये सूत्र ग्रन्थ जैन आगमों के प्राचीनतम भाग है। परवर्ती काल मे इन पर लिखी गई निर्युक्तियॉ, चूर्णियॉ तथा टीका या भाष्य भी नन्द-मौर्य युगीन घटनाओ की व्याख्या प्रस्तुत करती है।

लगभग ८वी शताब्दी ईस्वी मे आचार्य भद्रबाहु के द्वारा बृहत्कल्पसूत्र पर लिखी गयी निर्युक्ति तथा संघदासगणि क्षमाश्रमण के द्वारा उपनिबद्ध भाष्य ग्रन्थो में भी नन्द-मौर्य इतिहास पर विशेष सामग्री प्राप्त होती है। श्वेताम्बर सम्प्रदाय के दूसरे मूलसूत्र आवश्यक सूत्र की निर्युक्ति की आवश्यक चूर्णि मे भी चाणक्य चन्द्रगुप्त कथा का उल्लेख किया गया है। आवश्यक चूर्णि पर ८वीं शताब्दी मे संस्कृत भाषा मे विद्याधर गच्छ के हरिभद्र आचार्य ने आवश्यकसूत्रवृत्ति नामक जो विस्तृत टीका लिखी है वह नन्द-मौर्य इतिहास के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

श्वेताम्बर आचार्य हेमचन्द्र के द्वारा संस्कृत भाषा मे लिखे गये 'परिशिष्टपर्वण' मे भी नन्द वंश एवं चाणक्य चन्द्रगुप्त की कथा का उल्लेख किया गया है। १२वीं शताब्दी के पूर्वार्ध मे २४ तीर्थङ्कर, १२ चक्रवर्ती, ९ वासुदेव, ९ बलदेव तथा ९ प्रतिवासुदेव इन ६३ महापुरुषो के चरितो का वर्णन करने के लिए हेमचन्द्र ने त्रिषष्टिशलाका पुरुषचरित नामक विशाल ग्रन्थ की रचना की थी। इसी ग्रन्थ के परिशिष्ट के रूप मे महावीर के बाद के महापुरुषो के चरितो का वर्णन करने के लिए इन्होने परिशिष्टपर्वण की रचना की थी। दिगम्बर साहित्य मे भी चन्द्रगुप्त मौर्य संम्बन्धित ऐतिहासिक सामग्री प्राप्त होती है। दिगम्बर साहित्य मे संस्कृत मे उपनिबद्ध हरिषेण द्वारा रचित बृहत्कथाकोष के भद्रबाहुकथानक मे चन्द्रगुप्त के समय मे द्वादशवर्षीय दुर्भिक्ष पड़ने तथा चन्द्रगुप्त के जैनधर्म ग्रहण करने का विस्तृत वृत्तान्त दिया गया है। यह ग्रन्थ दसवी शताब्दी का माना जाता है। इसके अतिरिक्त रामचन्द्र मुमुक्षु के पुण्याश्रव कथाकोष मे जो कि १६वी शती ईस्वी का ग्रन्थ है, इसमे भी नन्द-चाणक्य-चन्द्रगुप्त के बारे मे विस्तृत सामग्री प्रस्तुत की गयी है। यद्यपि ये ग्रन्थ मध्यकाल के है किन्तु इनके स्रोत अत्यन्त प्राचीन है। प्राचीन अनुश्रुतियो पर आधारित लगभग प्रथम शती ईस्वी मे शिवार्य या शिवकोटि द्वारा रचित भगवती अराधना या मूलाराधना नामक प्राकृतकाव्य को इनका मूलाधार माना जा सकता है। इन अनुश्रुतियो के प्राचीनतम रूप श्वेताम्बर जैन आगम के परिशिष्ट भाग के रूप मे स्वीकृत १० पइण्णा ग्रन्थो मे से भत्तपइण्णा तथा संथारपइण्णा मे भी चाणक्य की कथा बीज रूप मे मिलती है। इनमे भी चाणक्य को जैन मुनि कहा गया है। ये पइण्णा ग्रन्थ प्रथम शताब्दी ई०पू० तक अपने अस्तित्व मे आ चुके थे। इसी प्रकार तृतीय शताब्दी ई०पू० मे वृषभाचार्य द्वारा रचित तिलोयपण्णत्ति मे भी नन्द-मौर्य से सम्बन्धित इतिहास उल्लेखनीय रूप से प्राप्त होता है।

क्लासिकल साहित्य- नन्दो तथा चन्द्रगुप्त मौर्य के जीवन के संदर्भ मे क्लासिकल लेखकों के ग्रन्थो से महत्त्वपूर्ण जानकारी प्राप्त होती है। चतुर्थ शताब्दी ई०पू० के अन्तिम चरण में जब यूनानी नरेश सिकन्दर ने भारतवर्ष पर आक्रमण किया था, उस समय उसके साथ जो सेनापति आए थे उनमें

नियर्कस, एरिस्टोबुलस, क्लिटार्कस तथा ओनेसिक्रिटस प्रमुख थे। इनके ग्रन्थ अब प्राप्य नहीं है। परन्तु परवर्ती डायोडोरस, स्ट्रेबो, कर्टियस प्लीनी, प्लुटार्क एरियन, जस्टिन, तालेमी, एलियन आदि यूनानी व रोमन लेखको द्वारा उद्धृत किए गये इनके तथा मेगस्थनीज की इण्डिका के अंश नन्द-मौर्य के इतिहास को जानने के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

प्रथम शताब्दी ई०पू० के उत्तरार्ध से लेकर द्वितीय शताब्दी के मध्य के डायोडोरस आदि ये सभी लेखक अपने ग्रन्थो मे भारत पर सिकन्दर के आक्रमण के समय की परिस्थितियो का उल्लेख प्रस्तुत करते है। इनमे से जस्टिन के ग्रन्थ मे सिकन्दर व चन्द्रगुप्त के बारे मे महत्त्वपूर्ण सामग्री उपलब्ध होती है। क्लासिकल लेखको मे से जस्टिन एकमात्र ऐसा लेखक है जिसने नन्द के नाम का उल्लेख किया है। सिकन्दर द्वारा एरेकोशिया के क्षत्रप के रूप मे नियुक्त सेल्युकस के द्वारा ३०० ई०पू० के आस-पास मेगस्थनीज को भारतनरेश सेण्ड्रोकोट्टोस अर्थात् चन्द्रगुप्त के पास भेजा गया था। भारत मे वह पालिम्बोथ्रा अर्थात् पाटलिपुत्र मे कुछ दिन तक रहा था। उसने चन्द्रगुप्त मौर्य उसकी राजधानी पाटलिपुत्र नगर एवं इसके राजप्रासाद का जो वर्णन किया है वह अत्यधिक प्रामाणिक है। क्लासिकल लेखको ने चाणक्य का नाम नही उद्धृत किया है। सम्भवतः विदेशी लेखको के लिए राजा का ही महत्त्व था।

आभिलेखिक एवं पुरातात्त्विक साधन- नन्दो का सर्वप्रथम आभिलेखिक उल्लेख कलिंगराज खारवेल के हाथीगुम्फा अभिलेख मे प्राप्त होता है। ऐतिहासिक युग के प्राचीनतम ज्ञात अभिलेख अशोक के शिलालेखो मे न तो नन्दो का उल्लेख किया गया है, नही चन्द्रगुप्त मौर्य का। चन्द्रगुप्त मौर्य का नामोल्लेख करने वाला सबसे महत्त्वपूर्ण अभिलेख महाक्षत्रप रुद्रदामा का जूनागढ़ शिलालेख (१५०ई०) है। इसमे चन्द्रगुप्त के गुजरात पर अधिकार तथा उसकी प्रान्तीय शासन व्यवस्था का विवरण प्राप्त होता है। इस के अतिरिक्त कर्नाटक के श्रावणवेल गोला के मध्यकालीन अभिलेखों में भी चन्द्रगुप्त का जैनमुनि के रूप मे विवरण प्राप्त होता है। इन अभिलेखो से

चन्द्रगुप्त के दक्षिण के साथ सम्बन्ध तथा उसकी आस्था आदि के बारे मे प्रामाणिक जानकारी प्राप्त होती है।

नन्दवंश का अभ्युदय- नन्दवंश के आर्विर्भाव के पूर्व छठी शताब्दी ई०पू० मे भगवान् बुद्ध के आविर्भाव के कुछ ही समय पहले स्वतन्त्र राज्य के रूप में सोलह महाजनपदो के अस्तित्व के प्रमाण प्राप्त होते है। सुत्तपिटक के अङ्गुत्तर निकाय मे इन सोलह महाजनपदो का नामोल्लेख पूर्वक विवरण प्रस्तुत किया गया है। अङ्ग, मगध, काशी, कोसल, वृजि, मल्ल, चेदि, वत्स, कुरु, पाञ्चाल, मत्स्य, शूरसेन, अश्वक (अश्मक), अवन्ती, गन्धार तथा कम्बोज इन सोलह महाजनपदो का नामकरण वहॉ के निवासियो के आधार पर अथवा जिन्होने इन्हे बसाया था उनके नामो के आधार पर किया गया है। दीघनिकाय II के जनवसभसुत्तन्त मे इनमे से कुछ को युगल के रूप मे उद्धृत किया गया है। इसमे काशी-कोसल, वृजि-मल्ल, चेदि-वत्स, कुरु-पाञ्चाल तथा मत्स्य-शूरसेन इस प्रकार पॉच युगलो मे मात्र दस जनपदो का उल्लेख प्राप्त होता है। चूलनिद्देश मे अङ्गुत्तर निकाय मे उल्लिखित सोलह महाजनपदो के अतिरिक्त कलिङ्ग का तथा गन्धार के स्थान पर योग जनपद का उल्लेख किया गया है। इसी प्रकार महावस्तु में अङ्गुत्तर निकाय की सूची मे केवल दो परिवर्तन किये गये है। यहॉ पर गन्धार एवं कम्बोज के स्थान पर शिवि तथा दशार्ण का उल्लेख किया गया है। दीघ निकाय II के महागोविन्द सुत्तन्त मे यह उल्लेख प्राप्त होता है कि राजा रेणु के प्रधान सचिव महागोविन्द ने अपने साम्राज्य को सात भागो मे विभाजित किया था। महागोविन्द सुत्तन्त के विवरण के अनुसार कलिङ्ग, अस्सक, अवन्ती, सौवीर, विदेह, अङ्ग तथा काशी इन सात राज्यो की क्रमशः दन्तपुर, पाटन, माहिष्मती, रोरुक, मिथिला, चम्पा, वाराणसी, ये राजधानियॉ थी। जबकि पौराणिक परम्परा मे मगध, कोसल एवं वत्स इन महत्त्वपूर्ण राज्यो के साथ कुरु पाञ्चाल, शूरसेन, काशी मिथिला, अङ्ग, कलिङ्ग, अश्मक, गन्धार तथा कम्बोज का उल्लेख प्राप्त होता है।

इनके अतिरिक्त पुराणो मे वीतिहोत्र एवं हैहय राज्यो का भी उल्लेख किया गया है। किन्तु इनका स्थान निर्धारण अनिश्चित है। इनमे से एक को अवन्ती तथा दूसरे को चेदि राज्य माना जा सकता है।

पुराणो मे वृजि (वज्जि) तथ मल्ल राज्यो का उल्लेख नही किया गया है जबकि इन दोनो राज्यो का वैचारिक तथा धार्मिक दोनो क्षेत्रो मे विशिष्ट स्थान था। पौराणिक परम्पराओ मे इनका उल्लेख न होने पर भी भारतीय राजनीति मे इनकी विशिष्ट भूमिका थी।

बुद्ध के समय भी जिन स्वतन्त्र गणराज्यो के अस्तित्व के प्रमाण बौद्ध साहित्य मे उपलब्ध होते है उनमे कपिलवस्तु के साकिय अथवा शाक्य, पावा तथा कुशीनारा या कुशीनगर के मल्ल, वैशाली के लिच्छवी, मिथिला के विदेह, रामगाम के कोलिय, अल्लकप्प के बुलि, केसपुत्त के कालामस, पिप्पलीवन के मोरिय तथा सुंसुमार पर्वत पर जिनकी राजधानी थी ऐसे भग्ग प्रमुख है। ५०० ई० पू० के आस पास विद्यमान' पाणिनि की अष्टाध्यायी से भी इनका पूरी तरह समर्थन होता है। पाणिनि ने अष्टाध्यायी मे सङ्घो या गणो के रूप मे जनतन्त्रात्मक तथा राजतन्त्रात्मक दोनो प्रकार के राज्यो का उल्लेख किया है।

उनमे से प्रमुख राज्य कुछ इस प्रकार है- क्षुद्रक (आक्सीद्रकाई), मालव (मल्लोई), अम्बष्ठ (अम्बष्टनोई), हास्तिनायन (अस्ताकेनोई), प्रकण्व (परिकेनिओई), मद्र, मधुमन्त आपरीत (आपरीताई=अफरीदी) वसाति (ओस्सादी) भग्ग, शिवि, (सिवेई) आश्वायन (अस्पैसिओई) तथा आश्वकायन (ग्री०-अस्साकेनोई)। इनमे से अधिकतर राज्यो ने सिकन्दर के आक्रमण के समय उसका प्रतिरोध किया था। पाणिनि के द्वारा अन्य राज्यो के साथ गन्धार, अवन्ती, कोसल, उशीनर विदेह अङ्ग मगध तथा वङ्ग राज्यो का प्राच्य जनपदो के रूप में उल्लेख किया गया है बौधायन ने भी धर्मशास्त्र मे सौराष्ट्र, अवन्ती, मगध, अङ्ग वङ्ग एवं पुण्ड्र का उल्लेख किया है। मेगस्थनीज ने इण्डिका में तथा कौटिल्य ने अर्थशास्त्र में इन राज्यो का विवरण प्रस्तुत किया है, जिससे इन के अस्तित्व की प्रामाणिकता असन्दिग्ध है।

मगध राज्य- इनमे से मगध साम्राज्य का धीरे-धीरे वर्चस्व बढ़ता गया तथा अन्य राज्य उसी मे समाहित हो गये। नन्दो के पहले ही मगध साम्राज्य की इन राज्यो पर सर्वोच्चता सिद्ध हो चुकी थी।

भागवत पुराण के नवम स्कन्द मे भारत में राजा के रूप मे प्रतिश्ठित इक्ष्वाकु आदि राजवंशो का वर्णन करते हुए पाञ्चालो तथा कौरवो का वर्णन करने के अनन्तर मगध देश के राजाओ का नामग्रहणपूर्वक वर्णन प्रस्तुत किया गया है। यद्यपि इसमे काल का उल्लेख नही किया गया है कि किस राजा ने मगध राज्य पर किस समय शासन किया, किन्तु जरासन्ध के पुत्र सहदेव, सहदेव के पुत्र मार्जारि, मार्जारि के पुत्र श्रुतश्रवा, श्रुतश्रवा के पुत्र अयुतायु आदि मगध देश के राजाओं का स्पष्ट उल्लेख किया गया है। जरासन्ध से लेकर रिपुञ्जय तक बृहद्रथ वंश के इन राजाओ का शासनकाल लगभग एक हजार वर्ष के भीतर का स्वीकार किया गया है।[१]

बार्हद्रथ वंश के अन्तिम शासक रिपुञ्जय/ पुरञ्जय की हत्या उसके मन्त्री ने कर दी थी। अपने स्वामी की हत्या कर शुनक नामक इस मन्त्री ने अपने पुत्र प्रद्योत को मगध राज्य का शासक बना दिया। तब से इस वंश का १४८ वर्षो तक शासन रहा।[२] इस वंश के पालक, विशाखयूप, राजक एवं

---

१ **अथ मागधराजानो भवितारो वदामि ते।**
भविता सहदेवस्य मार्जारिर्यच्छ्रुतश्रवाः।
ततोऽयुतायुस्तस्यापि निरमित्रोऽथ तत्सुतः।।
सुनक्षत्रः सुनक्षत्राद् बृहत्सेनोऽथ कर्मजित्
ततः सृतञ्जयाद् विप्रः शुचिस्तस्य भविष्यति।।
क्षेमोऽथ सुव्रतस्तस्माद् धर्मसूत्रः शमस्ततः।।
द्युमत्सेनोऽथ सुमतिः सुबलो जनिता ततः।।
सुनीथः सत्यजिदथ विश्वजिद् यद् रिपुञ्जयः।
बार्हद्रथाश्च भूपालाः भाव्याः साहस्त्री वेत्सरम् ।।
भागवतपुराण, नवम स्कन्ध, अध्याय २२, श्लोक ४५-४९

२ योऽन्त्यः पुरञ्जयो नाम भाव्यो बार्हद्रथो नृप।
तस्यामात्यस्तु शुनको हत्वा स्वामिनमात्मजम् ।।
प्रद्योतसंज्ञं राजानं कर्ता यत्र पालकः सुतः।

नन्दिवर्धन इन चार और राजाओ का उल्लेख प्राप्त होता है। इसके अनन्तर मगध मे जिन राजाओ का शासन था उनके नामो का उल्लेख पुराणो तथा बौद्ध साहित्य दोनो मे किया गया है किन्तु दोनो परम्पराओ मे क्रम तथा नामो मे अन्तर प्राप्त होता है।

पालिभाषा मे लिखे गये महावंश ग्रन्थ मे निम्नाङ्कित क्रम मे राजाओ का उल्लेख किया गया है- (१) बिम्बिसार (२) अजातशत्रु (३) उदयभद्र (४) अनुरुद्ध (५) मुण्ड (६) नागदासक (७) सुसनाग (८) कालाशोक (काकवर्णिन्)[१] तथा कालाशोक के दस पुत्र। पुराणो मे प्राप्त विवरणो मे राजाओ का इस क्रम मे उल्लेख किया गया है- (१) शिशुनाग (२) काकवर्ण (३) क्षेमधर्मन् (४) क्षेत्रज्ञ (५) विधिसार (६) अजातशत्रु (७) दर्भक (८) अजय (९) नन्दिवर्धन तथा (१०) महानन्दि।[२]

कालाशोक के १० पुत्र थे इन्होने अल्प अवधि तक सामूहिक रूप से शासन किया। कालाशोक की हत्या एक नापित के द्वारा की गयी थी। नापित महारानी के अत्यन्त निकट था। उसके माध्यम से राज परिवार मे पैठ बनाकर कालाशोक की हत्या के अनन्तर राजकार्य के लिए वह कालाशोक के पुत्रो का संरक्षक बन गया। कुछ दिन बाद राजसत्ता पर नियन्त्रण कर लेने के बाद

विशाखयूपस्तत्पुत्रो भविता राजकस्ततः।।
नन्दिवर्धनस्तत्पुत्रः पञ्च प्रद्योतना इमे।
अष्ट त्रिंशोत्तरशतं मोक्ष्यन्ति पृथिवी नृपाः।।
भागवत पुराण द्वादश स्कन्ध अध्याय१ श्लोक २-४

१ Introduction to translation of Mahavamsa

२ शिशुनागस्ततो भाव्यः काकवर्णस्तु तत्सुतः।
क्षेमधर्मा तस्य सुतः क्षेत्रज्ञः क्षेमधर्मजः।।
विधिसारः सुतस्तस्याजातशत्रुर्भविष्यति।
दर्भकस्तत्सुतो भावी दर्भकस्याजयः स्मृतः।।
नन्दिवर्धन आजेयो महानन्दिः सुतस्ततः।
शिशुनाग दशैवेते षष्ट्युत्तरशतत्रयम् ।।
मही भोक्ष्यन्ति ....।
भागवत पुराण द्वादश स्कन्ध अध्याय १ श्लोक ५-८

उसने उन युवा राजाओ को भी मरवा दिया तथा स्वतः राजा बन बैठा। यह तथ्य ग्रीक लेखक कर्टियस द्वारा प्रस्तुत किये गये है। काकवर्णी तथा उनके पुत्रो का वध कर राज्याधिकार प्राप्त करने वाले इस नापित ने ही नन्दवंश की स्थापना की थी। इस वंश के द्वारा राज्यसत्ता पर नियन्त्रण कर लेने पर मगध साम्राज्य का विस्तार दक्षिण भारत तक सम्भव हो सका तथा इसका एक अखिल भारतीय स्वरूप स्पष्ट हो गया। समस्त क्षत्रिय नरेशो का अन्त करके इस साम्राज्य की स्थापना एकराट् द्वारा शासित केन्द्रीभूत, शक्ति-सम्पन्न, साधन-सम्पन्न, सबल राष्ट्र के रूप मे की गई। यह एक युग प्रवर्तक घटना थी।

नन्दों का कुल- नन्द राजा की उत्पत्ति नीच कुल मे हुई थी। इसके विभिन्न प्रमाण प्राप्त होते है। कर्टियस तो उसे नापित कहता ही है, डायोडोरस ने भी अपने ग्रन्थ मे कर्टियस के कथन का मूलतः समर्थन किया है और गेगेरेडाई और प्रासाई के तत्कालीन राजा जेन्ड्रेमिज को अज्ञातकुल वाला, नीच तथा जाति से नाई बताया है। इसके अतिरिक्त जस्टिन तथा प्लूटार्क के विवरणो से भी नन्द नरेश की नीच कुल मे उत्पत्ति प्रमाणित होती है। चन्द्रगुप्त द्वारा राजत्व की प्राप्ति का प्रयास करने की परिस्थितियो का वर्णन करते समय प्रतिपादित किया गया है कि सिकन्दर ने जिस समय भारत पर आक्रमण किया था उस समय नन्दो का राज्य था। इन विवरणो मे तत्कालीन शासक के चरित्र के बारे मे अनेक अपमानजनक बाते कही गयी है।

उसका अप्रतिष्ठित कुल में जन्म हुआ था। वह एक नाई का जारज पुत्र था। उसकी प्रजा उससे घृणा करती थी तथा उसे क्षुद्र समझती थी। प्लूटार्क ने अपने उल्लेख में यह विवरण भी प्रस्तुत किया है कि नन्द राजा के नीच कुल मे उत्पन्न होने की बात स्वयं चन्द्रगुप्त ने सिकन्दर से कही थी। प्लुटार्क के अनुसार एण्ड्रोकोट्टोस (चन्द्रगुप्त मौर्य) बाद मे कहा करता था कि सिकन्दर चाहता तो सारे देश (गङ्गा की उपत्यका वाला भूखण्ड) पर आसानी से अधिकार कर सकता था क्योकि वहाँ का राजा 'नीचकुलोत्पन्न' और अज्ञात वंश का था। इसीलिए प्रजा उससे घृणा करती थी तथा उसे तिरस्कार की

दृष्टि से देखती थी। भारतीय साहित्य से भी यह बात प्रमाणित होती है। बौद्ध साहित्य मे आर्य मञ्जुश्रीमूलकल्प मे प्रथम नन्दनरेश को नीचमुख्य कहा गया है। "नीचमुख्यसमाख्यातो ततो लोके भविष्यति।" सिंहली परम्परा तथा वंसत्थपकासिनी मे प्रथम नन्द को अज्ञातकुल मे उत्पन्न बताया गया है। (तेसं हि ज्येट्ठो पनो अञ्ञातकुलास्स पुत्तो)। जैन साहित्य मे परिशिष्टपर्वण मे हेमचन्द्र ने प्रथम नन्दनरेश को एक वेश्या के गर्भ से दिवाकीर्ति नामक नाई द्वारा उत्पन्न नापित कुमार माना है। 'अभिधान राजेन्द्र' मे भी प्रथमनन्द को 'गणिकासुतो नन्दः' कहा गया है। हरिभद्रसूरि के 'आवश्यकसूत्रवृत्ति' तथा जिन प्रभ के 'विविधकल्पतरु' नामक जैन ग्रन्थो मे भी उसे क्रमशः नापितदास तथा नापितगणिकासुत कहा गया है। क्षेमेन्द्र के ग्रन्थ बृहत्कथामञ्जरी तथा सोमदेव के कथासरित्सागर मे नन्द नामक एक राजा की कथा मिलती है। वह पाटिलिपुत्र का स्वामी था तथा चन्द्रगुप्त उसका पुत्र था। इन्द्रदत्त नामक किसी व्यक्ति के द्वारा योगबल से नन्द के मृत शरीर पर प्रवेश करने पर वह जीवित हो उठा। अतः चन्द्रगुप्त के पिता को पूर्वनन्द तथा योगबल से पुनरुज्जीवित शरीर को योगनन्द कहा गया। योगनन्द का पुत्र हरिगुप्त था। पूर्वनन्द का मंत्री शकटार चन्द्रगुप्त को राजा बनाना चाहता था, अतः उसने युक्तिपूर्वक चाणक्य एवं योगनन्द को लड़ा दिया। चाणक्य ने योगनन्द को अपनी कृत्या (मारण-मन्त्र) से मार दिया। इस स्थिति का लाभ उठाकर शकटार ने हरिगुप्त को मारकर चन्द्रगुप्त को राजा बनाया तथा चाणक्य उसका मन्त्री बना। इस प्रकार पूर्वनन्द तथा योगनन्द ये दोनों एक ही व्यक्ति के दो रूप थे। इनसे दो वंशो की सत्ता नही मानी जा सकती। भागवत ब्रह्माण्ड, मत्स्य, वायु तथा विष्णु आदि पुराणों मे भी नन्दों को हीन-जातीय माना गया है। पुराणों मे नन्द साम्राज्य के संस्थापक मगधनरेश को शैशुनाग राजा महानन्दी द्वारा एक शूद्र के गर्भ से उत्पन्न बताया गया है तथा उसके वंशजो को शूद्रभूपालाः कहा गया है। भागवत पुराण मे इन्हें शूद्रप्राय एवं अधार्मिक कहा गया है।[१] यद्यपि

---

[१] महानन्दिनस्ततशूद्रागर्भोद्भवोतिलुब्धोतिबलो महापद्मनामा नन्दः परशुराम इवापरोऽखिलक्षत्रान्तकारी भविष्यति ततः प्रभृति शूद्रा भूपाला भविष्यन्ति। स चैकछत्रामनुल्लङ्घितशासनो महापद्मः पृथिवीं भेक्ष्यते।

नन्दवंश के प्रथम शासक महापद्मनन्द के पिता के रूप मे महानन्दी को स्वीकार करना जैन परम्परा के विपरीत है, किन्तु दोनो परम्पराएँ इस बात मे एक मत है कि महापद्मनन्द हीन-जातीय था, क्योकि प्राचीन भारतीय समाज मे नापितो को हीन-जातीय माना जाता था। पुराणो मे महापद्मनन्द के आठ पुत्रो का भी उल्लेख मिलता है किन्तु इनके नामो का निर्देश नही किया गया है। इनका कोई बहुत उल्लेखनीय स्थान नही था। महापद्म अपर परशुराम माना गया है। इसे 'सर्वक्षत्रान्तक' तथा 'क्षत्रविनाशकृत्' कहा गया है। इसने समस्त क्षत्रिय राजाओ को उखाड़ फेका 'सर्वक्षत्रानुद्धृत्य'। क्षत्रियो को समाप्त कर उसने अपने आपको पूरे राज्य का एकमात्र सार्वभौम शासक 'एकराट्' के रूप मे स्थापित कर लिया तथा सम्पूर्ण राज्य को एक ही सत्ता की छत्रच्छाया 'एकच्छत्रम्' मे ले आया। उसकी आज्ञा का कोई भी व्यक्त उल्लङ्घन नही कर सकता था। इस शासक ने अपनी महत्त्वाकाक्षाओ की पूर्ति के लिए अनन्त सम्पत्ति और एक विशाल सेना एकत्र की। सम्भवतः असंख्य सैनिको तथा अतुल सम्पदा का स्वामी होने के कारण वह महापद्मपति उपाधि से विख्यात हुआ।

आर्यमञ्जुश्रीमूलकल्प मे इसकी विशाल सेना का उल्लेख करते हुए इसे महासैन्यः और महाबल: कहा गया है। यूनानी लेखक भी इसकी सेना का बढ़चढ़कर वर्णन करते है कर्टियस ने एग्रेम्मिज की सेना मे २० हजार अश्वारोही, २ लाख पदाति, चार घोड़ो से खीचे जाने वाले २ हजार रथ एवं तीन हजार हाथियो की चर्चा की है। डायोडोरस के अनुसार हाथियों की संख्या ४ हजार थी। प्लूटार्क ने हाथियो की संख्या ६ हजार, अश्वारोही सेना की अस्सी हजार तथा रथो की संख्या ६ हजार बतायी है। पदातियो की

विष्णु पुराण ४.२४ श्लोक २.-२३, एवं वायु ९९ ३२६-३१, मत्स्य २७२, १८-२२

महापद्मपतिः कश्चिन्नन्द क्षत्रविनाशकृत् ।
ततो नृपा भविष्यन्ति शूद्रप्रायास्त्वधार्मिका ।।
भा. पु. द्वादश स्कन्ध, प्र. अ. श्लोक ९

संख्या ये लेखक भी दो लाख ही बताते है। इस प्रकार महापद्मनन्द की विशाल सेना थी। जिससे वह अत्यन्त शक्तिशाली हो गया था।

भागवत पुराण मे इसको महापद्मपति कहा गया है। विष्णुपुराण मे महापद्म कहकर इसी मन्तव्य को स्पष्ट किया गया है। इसका अभिप्राय यह है कि वह खरबो का स्वामी अथवा अनन्त सेनाओ का स्वामी था।[१] वह अत्यधिक बलशाली था किन्तु इसमे दोष अधिक थे। विष्णु पुराण मे इसे अत्यधिक धनलोलुप बताया गया है।[२] महापद्म नाम का व्यक्ति ही प्रथम नन्दनरेश था इस पर भी ऐकमत्य नहीं है। 'परिशिष्टपर्वण' तथा 'आर्यमञ्जुश्रीमूलकल्प' मे इसे महापद्म ही कहा गया है।[३] इसके लिए पुराणो मे भी महापद्म एवं महापद्मपति नाम ही प्राप्त होते है। किन्तु इस परम्परा के विपरीत बौद्धग्रन्थो मे इसे उग्गसेन नन्द=उग्रसेन नन्द कहा गया है। महाबोधिवंश और वंशत्थप्पकासिनी मे उसका नाम उग्गसेन नन्द दिया गया है। बर्मी परम्परा मे भी उग्रसेन नन्द नाम ही प्राप्त होता है।

महावंश टीका के अनुसार अज्ञातकुलजन्मा उग्रसेन सीमावर्ती प्रदेश का रहने वाला (पच्चन्तवासिका) था। एक बार डाकू उसे पकड़कर मलय नामक सीमान्त प्रदेश मे ले गये। धीरे-धीरे वह डाकुओ का नेता बन गया। महाबोधिवंश मे भी उग्रसेन के साथियो को चोर पुब्बस अर्थात् पुरोने चोर कहा गया है। उग्रसेन अपने साथियो के साथ सीमान्त नगरो तथा पड़ेसी राज्यों के शासकों को चुनौती देने लगा कि 'या तो युद्ध करो अथवा राज्य दो' (रज्जं व देतु युद्धं वा)। इस तरह उसने सर्वोच्च सत्ता प्राप्त करली। यहाँ पर सर्वोच्च सत्ता को प्राप्त करने के उसके उपायो का उल्लेख नही किया गया है। सम्भ्सवतः अन्तिम शिशुनाग राजा ने भयभीत होकर उसे राज्याधिकार सौंप दिया हो तथा उसकी रानी ने उग्रसेन के साथ रहना स्वीकार

---

१ महत्पद्मं यस्येति विग्रहेण तावत्संख्यसैन्यस्य धनस्य वा पतिर्महापद्मः। विष्णु पुराण ४ २४ २२ की टीका

२ अतिलुब्धः। विष्णु पुराण ४ २४. २.

३ (क) परिशिष्टपर्वण ६.२३१

(ख) आर्यमञ्जुश्रीमूलकल्प पृ. १५

कर लिया हो। यूनानी साक्ष्यो से यही बात प्रमाणित होती है कि प्रथम नन्दनरेश का नाम उग्रसेन नन्द ही था। इनके अनुसार सिकन्दर ने ३२६ ई० पूर्व मे जब भारत पर आक्रमण किया था उस समय मगध प्रदेश मे शासन करने वाले एग्रेम्मिज राजा ने अपने स्वामी की हत्या कर राज्य को छीन लिया था। रायचौधरी आदि के अनुसार एग्रेम्मिज नाम संस्कृत नाम औग्रसेन्य का यूनानी रूपान्तर हो सकता है। इस प्रकार प्रथम नन्दनरेश का नाम उग्रसेन माना गया है। महापद्म अथवा महापद्मपति ये दोनो उसके नाम न होकर उसकी उपाधियॉ है। जहॉ उसे नन्द कहकर पुकारा गया है वहॉ वह उसके कुल का नाम हो सकता है।

इस विवेचन से यह स्पष्ट है कि सिकन्दर द्वारा भारत पर आक्रमण के समय मगध पर नन्दो का शासन था। इस वंश के संस्थापक नरेश ने राजसत्ता पर छल से अधिकार कर लिया था। नीचकुलोत्पन्न, जाति से नापित, इस व्यक्ति ने क्षत्रिय शासकों को उखाड़ फेंका था तथा एकराट् बन गया था। यह अत्यन्त सबल था। किन्तु धनलोलुप तथा नीचकुलोत्पन्न होने के कारण प्रजा को प्रिय नही था। सिकन्दर के आक्रमण के समय जो शासक था वह अन्तिम नन्दनरेश था क्योकि चन्द्रगुप्त मौर्य ने सिकन्दर के वापस लौट जाने के तुरन्त बाद स्थानीय लोगों की सेनाओ को संगठित कर उसके द्वारा नियुक्त किये गये समस्त पदाधिकारियो को उखाड़ फेका तथा उसी शक्ति के बल पर चाणक्य के निर्देशन में नन्द वंश को समूल नष्ट करने में सफल हुआ।

चन्द्रगुप्त का जन्म तथा प्रारम्भिक जीवन- चन्द्रगुप्त के जन्म के बारे मे अनेक मत भेद है। एक मत के अनुसार वह कुलीन क्षत्रिय था तथा राजपद प्राप्त करने के लिए सर्वथा योग्य था। सिकन्दर के साथ अथवा उसके भारत से जाने के तुरन्त बाद आये यूनानी विद्वान् पिछले उद्धरणो मे जहॉ नन्द को नीचकुलोत्पन्न मानते है वही चन्द्रगुप्त के बारे मे भिन्न विचार व्यक्त करते है।

क्लासिकल साक्ष्य- ई०पू० प्रथम शताब्दी के आसपास की यूनानी रचनाओ के आधार पर दूसरी शताब्दी ई० मे अपनी पुस्तक मे जस्टिन ने चन्द्रगुप्त के बारे मे लिखा है कि सिकन्दर की मृत्यु के बाद उसने सिकन्दर

द्वारा नियुक्त सभी पदाधिकारियो को मौत की नीद सुला दी। इसने भारत को स्वतन्त्र करा दिया। इसका जन्म एक मामूली घराने मे हुआ था परन्तु एक शकुन के कारण वह राजत्व को प्राप्त करने के लिए प्रेरित हुआ। अपनी उद्दण्डता के कारण उसने नैड्रम को क्रुद्ध कर दिया। नन्द ने उसके वध की आज्ञा दी थी किन्तु वहॉ से भागकर उसने अपने प्राण बचा लिए थे। इसी प्रकार प्लूटार्क ने भी सिकन्दर के साथ चन्द्रगुप्त की भेट का उल्लेख किया है। प्लूटार्क के अनुसार ऐंड्रोकोट्टोस (चन्द्रगुप्त) ने अपनी युवावस्था मे सिकन्दर से भेट की थी तथा कहा करता था कि सिकन्दर बड़ी आसानी से पूरे देश (नन्दशासित गंगारिदाई तथा प्रासाई) पर अधिकार कर सकता था क्योकि वहॉ का राजा स्वभावतः दुष्ट था। उसका जन्म नीच कुल मे हुआ था। इसीलिए उसकी प्रजा उसे घृणा एवं तिरस्कार की दृष्टि से देखती थी। कर्टियस एवं डियोडोर ने चन्दगुप्त के बारे मे प्रत्यक्ष रूप से कुछ नही कहा है। वस्तुतः जस्टिन के उद्धाहरण के अतिरिक्त और किसी उद्धाहरण मे चन्द्रगुप्त के वंशक्रम का उल्लेख नही प्राप्त होता है। जस्टिन ने चन्द्रगुप्त का नन्दवंश के साथ किसी भी प्रकार के वैध या अवैध सम्बन्ध को अस्वीकार किया है तथा माना है कि उसमे राजवंश या अभिजात वर्ग का कोई अंश नही था। जब चन्द्रगुप्त सिकन्दर से मिलने गया था तो उस समय उसने तत्कालीन नन्दनरेश को नीच कुल में उत्पन्न बताया था। इससे स्वतः स्पष्ट है कि चन्द्रगुप्त नीचकुल मे नही उत्पन्न हुआ था, अन्यथा वह नन्दों की नीचकुलोत्पत्ति की चर्चा न करता। इससे यह भी स्पष्ट है कि उसका सम्बन्ध किसी भी अप्रतिष्ठित राजकुल से नही था। चन्द्रगुप्त भले ही राजघराने से सम्बद्ध नही था किन्तु वह राजत्व की प्राप्ति के लिए अत्यधिक प्रयत्नशील था। इसीलिए तत्कालीन भारतीय परिस्थितियो का लाभ उठाकर चन्द्रगुप्त ने राजत्व के पद को अधिगत कर लिया तथा समाज मे प्रतिष्ठा प्राप्त की। विदेशी विद्वानो के विवरणो जो कि उस समय भारत मे प्रचलित कहानियो पर आधारित है, मे चन्द्रगुप्त के नीच कुल मे उत्पन्न होने का कोई उल्लेख नही प्राप्त होता, नही अप्रतिष्ठित कुल से उसके किसी प्रकार के सम्बन्ध की कोई सूचना प्राप्त होती है।

सिकन्दर ने जब बीच मे ही अपना विजय अभियान रोक दिया तथा वापस अपने देश चला गया तब चन्द्रगुप्त के मस्तिष्क मे यह विचार उत्पन्न हुआ कि नन्द साम्राज्य की विसंगतियो का लाभ उठाकर उसे सत्ता से च्युत किया जा सकता है। जनता नन्द साम्राज्य से इस बात पर बहुत क्षुब्ध थी कि नीच कुल के व्यक्ति ने अन्तिम वैध शासक की हत्या कर बलात् सत्ता का अपहरण कर लिया है। इस दोष के कारण किसी राजा को सत्ताच्युत करने के लिए उसी व्यक्ति को जनता का समर्थन प्राप्त हो सकता है जिसमे नीचकुलोत्पत्ति का यह दोष न हो। चन्द्रगुप्त मे राजत्व को प्राप्त करने की इच्छा थी। इस इच्छाशक्ति से वह विजयी भी हुआ। किन्तु यदि वह नीचकुल मे उत्पन्न हुआ होता जिस कारण से नन्द से प्रजा इतनी घृणा करती थी तो वह इस ध्येय को पूरा नही कर सकता था। एक ऐसा व्यक्ति, जो इस बात का राजनीतिक लाभ उठाना चाहता था कि उसके प्रतिद्वन्द्व का जन्म नीच कुल मे हुआ था, वह नीचकुल की सन्तान नही हो सकता था।

पुराणों का साक्ष्य : पुराणो मे चन्द्रगुप्त के उद्गम के बारे मे विशेष उल्लेख नही किया गया है। विष्णु, भागवत, मत्स्य तथा अन्य पुराणो मे केवल यह उल्लेख प्राप्त होता है कि कौटिल्य द्वारा नन्दो का विनाश कर दिये जाने पर पृथ्वी पर मौर्यो का शासन था। कौटिल्य का ही चाणक्य नाम भी प्राप्त होता है। ब्राह्मण कुल मे उत्पन्न कौटिल्य ने मौर्य कुल मे उत्पन्न चन्द्रगुप्त को राज्यसिंहासन पर आरुढ़ किया, जिसने मगध राज्य का शासन कार्य सुचारु रूप से सञ्चालित किया। यहॉ यह स्पष्ट है कि जहॉ पुराणो मे नन्दो के लिए अधार्मिक, शूद्रागर्भोद्भवः आदि विशेषणो के द्वारा उनकी निन्दा की गई है वहॉ चन्द्रगुप्त के बारे मे ऐसी कोई अप्रिय बात नही प्राप्त होती।

नन्दो के वंश एवं आचरण से प्रजा के समान ही राजनीति विशारद कट्टर ब्राह्मण चाणक्य भी अत्यधिक उद्विग्न था। रणप्रिय चाणक्य ने नन्दो का समूल नाश कर चन्द्रगुप्त मौर्य को राजसत्ता का अधिकारी चुना। उसने

चन्द्रगुप्त का विधिवत् राज्याभिषेक करके उसे राजसिंहासन पर आरुढ़ किया।[१] कौटिल्य जैसे कट्टर ब्राह्मण, शास्त्राचार्य तथा अडिग धर्म-रक्षक के लिए यह सम्भव नही था कि नीचकुलोत्पन्न राजा को सत्ता से बहिष्कृत कर पुनः किसी शूद्र को वह सत्तासीन करता। चाणक्य के द्वारा सार्वभौम शासक के रूप मे चन्द्रगुप्त के विधिवत् राज्याभिषेक से यह तथ्य स्वतः प्रमाणित है कि चन्द्रगुप्त का जन्म निश्चित रूप से कुलीन परिवार मे हुआ होगा तथा वह राजत्व पद को प्राप्त करने के लिए योग्य रहा होगा।

अर्थशास्त्र का साक्ष्य- यह बात अर्थशास्त्र के साक्ष्य से भी स्पष्ट है। अर्थशास्त्र के अन्त मे इस बात का उल्लेख किया गया है कि इस ग्रन्थ का निर्माण ऐसे व्यक्ति के द्वारा किया गया है, जिसने मातृभूमि, उसकी संस्कृति, ज्ञान, तथा सैन्यतन्त्र को नन्दवंश के चंगुल से बलपूर्वक शीघ्र मुक्त कराया।[२] वस्तुतः कौटिल्य ने अपना अपरिहार्य धर्म समझकर शूद्र राजाओ के अवैध शासन को बलपूर्वक तुरन्त ही समाप्त कर देने का संकल्प लिया था। कौटिल्य की दृष्टि मे राजत्व का अधिकार क्षत्रियो को ही प्राप्त था। क्षत्रियो को शस्त्राजीव कहकर इन्हे मनुष्य मात्र का रक्षक माना गया है। ऐसी स्थिति मे कौटिल्य एक शूद्र राजा के राज्य का अन्त करने के बाद दूसरे शूद्र को सत्तासीन कथमपि नही कर सकता था। कौटिल्य ने उच्चकुल मे जन्म लेने वाले दुर्बल भी राजा को निम्नकुल प्रसूत शक्तिशाली राजा से भी अधिक महत्त्व दिया है। इसके पीछे चाणक्य का तर्क यह है कि प्रजा उच्चकुल मे

---

१ (क) ततश्च नव चैतान् नन्दान् कौटिल्यो ब्राह्मणस्समुद्धरिष्यति। तेषामभावे मौर्याः पृथ्वी भोक्ष्यन्ति। कौटिल्य एव चन्द्रगुप्तमुत्पन्नं राज्येऽभिषेक्ष्यति।।
विष्णुपुराण ४.२६-२८
(ख) नवनन्दान् द्विजः कश्चित् प्रपन्नानुद्धरिष्यति।
तेषामभावे जगती मौर्या भोक्ष्यन्ति वै कलौ।।
स एव चन्द्रगुप्तं वै द्विजो राज्येऽभिषेक्ष्पति।।
भागवतपुराण १२.१.१२-१३

२ येन शास्त्रं च शस्त्र नन्दगता च भूः।
अमर्षेणोद्धतान्याशु तेन शास्त्रमिदं कृतम् ।।
अर्थशास्त्र १५ १ पृ.- ७७१

उत्पन्न राजा का स्वतः स्वागत करती है तथा उसका अनुसरण करने को तत्पर रहती है, क्योकि उनके मन मे कौलीन्य तथा सच्चारित्र्य से प्राप्त महानता के प्रति एक स्वाभाविक सम्मान का भाव होता है। जब कि जनमानस मे अकुलीन राजा के प्रति एक स्वाभाविक अरुचि होती है तथा उसके अनुचित कार्यो का वे समर्थन नही कर पाते। प्रेम तो सद्गुणो पर ही आश्रित होता है।[१] इस प्रकार चन्द्रगुप्त का कौलीन्य अर्थशास्त्र से भी प्रमाणित है।

बौद्ध एवं जैन परम्परा का साक्ष्य- बौद्ध परम्परा मे चन्द्रगुप्त को असंदिग्ध रूप से अभिजात कुल मे उत्पन्न बताया गया है। पालि मे प्राप्त विवरणो के अनुसार चन्द्रगुप्त मोरिय नामक क्षत्रिय जाति का था। मोरिय जाति का अभिज्ञान शाक्यो की उच्च तथा एक पवित्र जाति के रूप मे किया गया है। इसी जाति मे महात्मा बुद्ध का भी जन्म हुआ था। इस संदर्भ मे एक कथा प्राप्त होती है कि जब अत्याचारी कोसल नरेश विदूड़भ ने शाक्यों पर आक्रमण किया तब मोरिय अपनी मूल जाति से अलग होकर हिमालय मे जाकर बस गये। उस स्थान पर मोरो का बाहुल्य था। इसी आधार पर इन शाक्यो को मोरिय कहा गया। इस परम्परा मे मोरिय नामक नगर का भी उल्लेख प्राप्त होता है। महाबोधिवंस मे उल्लखित है कि कुमार चन्द्रगुप्त जो कि राजाओ के कुल से सम्बन्द्ध था शाक्यपुत्तो द्वारा निर्मित मोरिय नगर मे उत्पन्न हुआ था। इसने चाणक्य नामक ब्राह्मण के सहयोग से पाटलिपुत्र पर अधिकार कर लिया था।[२] महाबोधिवंस मे यह भी कहा गया है कि चन्द्रगुप्त का जन्म क्षत्रियो के मोरिय नामक वंश मे हुआ था।[३] दीघनिकाय मे भी पिप्पलिवन मे रहने वाले मोरिय नामक क्षत्रिय कुल का उल्लेख मिलता है।[४] दिव्यावदान मे चन्द्रगुप्त के पुत्र बिंदुसार के क्षत्रिय राजा के रूप मे विधिवत्

---

१ दुर्बलमभिजातं प्रकृतयः स्वयमुपनमन्ति, जात्यमैश्वर्यप्रकृतिरनुवर्तत इति।
बलवतश्चानभिजातस्योपजापं विसंवादयन्ति अनुरागे सार्वगुण्यमिति।।
अर्थशास्त्र ८.२ पृ.-५६४

२ नरिंदकुलसंभवं महाबोधिवंस सम्पादक स्ट्रांग- पृ. ९८

३ मोरियानं खत्तियानं वंसे जातं।- महाबोधिवंस पृ. १.८

४ दीघनिकाय- २.१६७

अभिषेक का उल्लेख प्राप्त होता है।[१] अतः बौद्ध परम्परा भी चन्द्रगुप्त के क्षत्रियत्व का समर्थन करती है।

जैन परम्परा मे चन्द्रगुप्त को एक गॉव के मुखिया की बेटी का पुत्र बताया गया है। इस गॉव के लोग मोरो की देखभाल करते थे।[२]

स्मारकों का साक्ष्य - स्मारको के आधार पर उपर्युक्त बौद्ध तथा जैन दोनो दृष्टिकोणो की पूर्ण पुष्टि होती है। नन्दनगढ के अशोक स्तम्भ के निचले सिरे पर एक मोर का चित्र अङ्कित है। सॉची के विशाल स्तूप मे भी पत्थर पर खुदे हुए अनेक चित्रो के मध्य मोर की यही आकृति देखने मे आती है। इन चित्रो के माध्यम से 'ग्रूनवेडेल' ने सर्वप्रथम यह प्रतिपादित किया था कि मोर मौर्यो का वंश प्रतीक था। 'फूशे' तथा 'सर जान मार्शल' भी ग्रूनवेडेल का समर्थन करते है। सिकन्दर द्वारा भारत पर किये गये। आक्रमण के यूनानी वृत्तान्तो मे भी मोरिएइस नामक एक भारतीय जाति का उल्लेख मिलता है। यह मोरिय का ही यूनानी पर्याय है।

इस प्रकार यूनानी, पौराणिक, बौद्ध, जैन तथा स्मारको के साक्ष्य के आधार पर निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि नन्दवंश के राजाओ की उत्पत्ति हीन कुल मे हुई थी। यूनानी वृत्तान्तो तथा जैन उल्लेखो मे नन्दवंशीय राजा को नापित का जारज पुत्र कहा गया है। पुराणों मे इन्हे अधार्मिक एवं शूद्र माना गया है। बौद्ध परम्परा मे अज्ञात कुल वाले बताकर इन्हे एक तरह से कुलहीन ही माना गया है। जबकि चन्द्रगुप्त को उपर्युक्त सभी परम्पराओं मे मोरिय नामक क्षत्रिय जाति से उत्पन्न कुलीन राजा के रूप में स्वीकार किया गया है।

विष्णुपुराण के टीकाकार का भ्रम- इस प्रसङ्ग मे यह उल्लेखनीय है। यद्यपि सभी परम्पराओ मे नन्दो को नीचकुलोत्पन्न तथा चन्द्रगुप्त मौर्य को क्षत्रिय कुल मे उत्पन्न स्वीकार किया गया है। किन्तु विष्णुपुराण के टीकाकार का चन्द्रगुप्त की उत्पत्ति के बारे मे भिन्न ही मत प्राप्त होता है। इनके अनुसार

---

१ दिव्यावदान संम्पादक कावेल पृ. ३७.

२ परिशिष्टपर्वन, हेमचन्द्र ८.२३.

चन्द्रगुप्त नन्द की ही मुरा नामक एक पत्नी का पुत्र था।[१] इन्होने मुरा से अपत्य अर्थ मे मौर्य शब्द को निष्पन्न माना है। किन्तु विष्णुपुराण के टीकाकार का यह मत अविश्वसनीय लगता है। व्याकरण की दृष्टि से मुरा से मौर्य शब्द की निष्पत्ति असङ्गत है। मुरा से अपत्य अर्थ मे 'स्त्रीभ्यो ढक' (पा. ४.१.१२०) सूत्र से ढक् प्रत्यय करने पर मौरेय शब्द निष्पन्न होता है जैसे विनता का पुत्र वैनतेय अथवा अञ्जना का पुत्र आञ्जनेय। व्याकरण की दृष्टि से मौर्यशब्द की निष्पत्ति मुर इस पुल्लिङ्ग शब्द से सम्भव है। पाणिनि ने अपने गण पाठ मे एक गोत्र के रूप मे इसका उल्लेख भी किया है।[२] किन्तु इस मत में कोई प्रामाणिकता दृष्टिगत नही होती। पुराणो मे चन्द्रगुप्त के सन्दर्भ जो उल्लिखित तथ्य प्राप्त होते है उनसे इसका कथमपि समर्थन नहीं हो सकता। अगर चन्द्रगुप्त नन्दवंश की सन्तान होती तो पुराणो मे इसका उल्लेख अवश्य होता जैसा कि शिशुनाग राजवंश के दसवे राजा महानन्दिन् के द्वारा एक शूद्र स्त्री से महापद्म नन्द की उत्पत्ति बतायी गयी है। अतः टीकाकार के मत को प्रामाणिक नही माना जा सकता। यद्यपि इस टीकाकार ने चन्द्रगुप्त का सम्बन्ध नन्दो से स्थापित किया है, इसने चन्द्रगुप्त की मॉ मुरा को राजा की वैध पत्नी माना है। उसके जाति का निर्देश नही किया है। किन्तु इस प्रसङ्ग मे सबसे बड़ा प्रश्न यह है कि चन्द्रगुप्त को भारतीय अथवा पाश्चात्य परम्परा मे कही पर भी निम्नकुल का न मानने पर भी उस पर यह नन्दकुलोत्पत्ति का लाञ्छन कैसे लग गया?

चतुर्थ शताब्दी ईस्वी मे लिखे गये मुद्राराक्षस को भी इस धारणा का उद्गम नही माना जा सकता।

मुद्राराक्षस के विवरण- मुद्राराक्षस मे चाणक्य एवं राक्षस इन दोनो पात्रो के द्वारा चन्द्रगुप्त के लिए जिन विशेषणो का प्रयोग किया गया है उनसे प्रथम दृष्ट्या ऐसा प्रतीत होता है कि चन्द्रगुप्त कुलीन घराने का नहीं था।

---

१ चन्द्रगुप्तमुत्पन्नं नन्दस्यैव भार्यायां मुरासंज्ञायां जातम् ।
विष्णुपुराण ४.२४. २८ आत्मप्रकाशटीका

२ कुर्वादिभ्योण्यः ४.१.१५१

इस नाटक मे चाणक्य एवं राक्षस दोनो ही चन्द्रगुप्त के लिए वृषल शब्द का प्रयोग करते है। चाणक्य कहता है- मैने नन्दों का समूल नाश कर दिया है। मेरी प्रतिज्ञा पूर्ण हो गयी है। फिर भी वृषल अर्थात् चन्द्रगुप्त के कारण अभी भी शस्त्र अर्थात् उद्योग (धारण) कर रहा हूँ- सोऽहमिदानीमवसित प्रतिज्ञाभारोऽपि वृषलापेक्षया शस्त्रं धारयामि।[१] चाणक्य नाटक के आदि से लेकर अन्त तक चन्द्रगुप्त के लिए वृषल शब्द का प्रयोग करता है। किन्तु चाणक्य के द्वारा प्रयुक्त इस शब्द का अर्थ शूद्र की सन्तान इन प्रसङ्गो मे उपयुक्त नही लगता। वृष शब्द वैदिक काल मे बल का सूचक था। चन्द्रगुप्त भी बलवान् था तभी चाणक्य ने उसे मगध साम्राज्य के राजपद के लिए उपयुक्त माना था। चन्द्रगुप्त ने अपने शत्रुओ को परास्त कर बलवान् होना प्रमाणित भी कर दिया था। स्वयं मुद्राराक्षस नाटक मे भी एकाधिक स्थानो पर 'वृषल' शब्द का सम्मान सूचक अर्थ मे प्रयोग किया गया है। चाणक्य कहता है- मैने नन्दो से राजसिंहासन को मुक्त करा दिया है तथा जो राजाओ के बीच मे अत्यन्त बलवान् है ऐसे चन्द्रगुप्त को राजसिंहासन पर बैठा दिया है। इस प्रकार सिंहासन पर उसके अनुरूप राजा बैठा हुआ है।[२] चन्द्रगुप्त की सिंहासन से अनुरुपता तभी सम्भव है जब वृषल शब्द को बलवत्ता का वाचक माना जाय। मुद्राराक्षस के द्वितीय अङ्क की समाप्ति पर राक्षस जो कि चन्द्रगुप्त का प्रबल विरोधी था ने माना है कि राजा चन्द्रगुप्त अपनी आज्ञा का पालन कराने के लिए पृथ्वीलोक के सम्पूर्ण राजाओ को विवश कर चुका है। वह अधिक तेजस्वी है।[३] चन्द्रगुप्त की आज्ञा का पालन पृथ्वी के सम्पूर्ण राजाओ द्वारा तभी सम्भव था जब वह उच्च कुल मे उत्पन्न हुआ हो। सभी शासक चन्द्रगुप्त की आज्ञा का पालन करते थे। अतः उसे शूद्र नही माना जा सकता। मुद्राराक्षस के द्वितीय अङ्क मे एक स्थान पर

---

१ मुद्रा पृ २२

२ नन्दैर्वियुक्तमनपेक्षितराजराजैरध्यासितं च वृषलेन वृषेण राज्ञाम्
सिंहासनं सदृशपार्थिवसङ्गतं च, प्रीतिं परां प्रगुणयन्ति गुणा ममैते।
मुद्रा ३.१८

३ मौर्यस्तेजसि सर्वभूतलभुजामाज्ञापको वर्तते। मुद्रा. २

चन्द्रगुप्त मौर्य को धर्म का उपमान माना गया है। कञ्चुकी का कथन है कि जिस प्रकार चाणक्य नीति के द्वारा नन्दो का विनाश कर चन्द्रगुप्त मौर्य की नगर मे प्रतिष्ठा की गयी उसी प्रकार वृद्धावस्था के द्वारा काम को निर्मूल कर मेरे हृदय मे धर्म की प्रतिष्ठा कर दी गई है। चन्द्रगुप्त मौर्य को धर्म का उपमान तभी माना जा सकता है जब उसमे कुलीनता आदि उत्कृष्ट गुण विद्यमान हो।[१] चाणक्य ने चन्द्रगुप्त को अतिशय गुणो से युक्त श्रेष्ठ राजा के रूप मे सम्मानित किया है। उसने राक्षस को सावधान किया है कि वह 'जैसे मैने नन्दो को मारकर बलवान् मौर्य चन्द्रगुप्त को राज्य सौप दिया था उसी प्रकार मै (राक्षस) भी चन्द्रगुप्त मौर्य को मारकर राज्यलक्ष्मी का अपहरण कर लूँगा।[२] ऐसा। सोचे न क्योकि यह चन्द्रगुप्त है ऐसा नन्द नही।[३] इस वाक्य मे भी यही ध्वनि निकलती है कि नन्द नीचकुल मे उत्पन्न हुए थे इसीलिए उन्हे सत्ता से बहिष्कृत करना आसान था किन्तु बलवान् एवं कुलीन होने के कारण चन्द्रगुप्त को सत्ता से च्युत नही किया जा सकता। इस प्रसङ्ग मे चाणक्य चन्द्रगुप्त की अपराजेयता के लिए उसी के गुणो को महत्त्व देता है। अपनी उत्कृष्ट स्थिति की प्रतीति इसके बाद कराता है। इस प्रकार चाणक्य के कथनों से चन्द्रगुप्त की कुलीनता स्वतः सिद्ध है।

मुद्राराक्षस नाटक मे ऐसा नही है कि चन्द्रगुप्त के लिए केवल सम्मान के सूचक वाक्यो का ही प्रयोग किया गया है। नाटक मे नन्दवंश की समाप्ति हो जाने पर भी नन्दो का मंत्री राक्षस अपने स्वामियों की भक्ति नही छोड़ता। नन्द वंश के अन्तिम राजा सर्वार्थसिद्धि के भी मार दिये जाने वर वह चन्द्रगुप्त का अन्तकर पर्वक पुत्र मलयकेतु को मगध के शासक के रूप मे

---

१ कामं नन्दमिव प्रमथ्य जरया चाणक्यनीत्या यथा
धर्मो मौर्य इव क्रमेण नगरे नीतः प्रतिष्ठां मयि। मुद्रा.२.९

२ कृतागाः कौटिल्यो भुजग इव निर्याय नगरा यथा नन्दान्हत्वा नृपतिमकरोन्मौर्यवृषलम् । तथाहं मौर्येन्दोः श्रियमपहरमीति कृतधीः
प्रकर्ष मद्बुद्धेरतिशयितुमेष व्यवसितः।। मुद्रा. ३ ११

३ उत्सिक्तः कुसचिवदृष्टराज्यभारो नन्दोऽसौ न भवति चन्द्रगुप्त एवः।
मुद्रा ३.१२

स्थापित करना चाहता है। इसके लिए वह सन्नद्ध होकर चन्द्रगुप्त को नष्ट करने का प्रयास करता है। इस प्रसङ्ग मे चन्द्रगुप्त के प्रति राक्षस के उद्गारो मे अपमान जनक बातो का स्वतः समावेश हो गया है। राक्षस राज्यलक्ष्मी को सम्बोधित करता हुआ कहता है कि अरे पापशीले लक्ष्मी! क्या इस पृथिवी से प्रख्यात वंशो मे उत्पन्न राजाओ का उच्छेद हो गया है जो तुमने कुलहीन, (पापे के स्थान पर पापं पाठ भी प्राप्त होता है अतः) पापी मौर्य चन्द्रगुप्त का पति के रूप मे वरण कर लिया है।[१] यहाॅ स्पष्ट रूप से राक्षस चन्द्रगुप्त को कुलहीन कहता है।

छठे अङ्क मे भी राक्षस के द्वारा चन्द्रगुप्त के लिए वृषल शब्द का प्रयोग किया गया है। राक्षस कहता है कि जिस प्रकार अविनीता शूद्रा रमणी उच्च कुल मे प्रसूत भी अपने प्रथम पति को छोड़कर अकुलीन पर पुरुष के पास किसी बहाने से चली जाती है उसी प्रकार राज्यलक्ष्मी ने भी उच्चकुलोत्पन्न अपने प्रथम स्वामी नन्द का परित्याग कर अनुलीन मौर्य का पति के रूप मे वरण कर लिया है।[२] इन दोनो स्थलो पर चन्द्रगुप्त के लिए कुलहीन होने का दावा किया गया है। किन्तु ये दानो कथन ऐसे व्यक्ति के है जो पूर्ववर्ती राज्य का मन्त्री होने के कारण सभी सुविधाओ का स्वामी था। अब अपने स्वामी के सत्ता मे न रहने से सभी सुविधाओ से वञ्चित है। स्वाभिभक्त तथा उद्यमी होने के कारण राक्षस अभी भी नये शासक की सत्ता के समक्ष चुनौती प्रस्तुत कर रहा है। ऐसा चन्द्रगुप्त का सबल विरोधी व्यक्ति उसके लिए सम्मान सूचक शब्दो का प्रयोग कैसे कर सकता था। वस्तुतः वृषल शब्द के श्लेष का लाभ उठाकर नाटक मे केवल चन्द्रगुप्त के शत्रुओ को ही उसके विरोध मे इस शब्द का प्रयोग करते हुए दिखाया गया है।

---

१ पृथिव्यां किं दग्धाः प्रथितकुलजा भूमिपतयः
पतिं पापे मौर्य यदसि कुलहीनं वृतवती।
प्रकृत्या वा काशप्रभवकुसुमप्रान्तचपला,
पुरन्ध्रीणां प्रज्ञा पुरुषगुणविज्ञानविमुखी।। मुद्रा. २.७

२ पतिं त्यक्त्वा देवं भुवनपतिमुच्चैरभिजनम्
गता छिद्रेण श्रीर्वृषलमविनीतेव वृषली।। मुद्रा. ६.६

द्वितीय अङ्क मे राक्षस की इस उक्ति मे भी यही भाव परिलक्षित होता है कि नन्द देव से तुम्हे आनन्द ही प्राप्त हुआ, फिर भी अनभिजात लक्ष्मी तुमने नन्द का परित्याग कर दिया तथा वैरी मौर्यपुत्र के प्रति अनुरक्त हो गयी। तुम्हे तो नन्द के साथ ही उसी प्रकार समाप्त हो जाना चाहिए था जैसे गन्धगज के नाश के सय उसकी मदजलपङ्क्ति समाप्त हो जाती है।[१]

इसी प्रकार द्वितीय अङ्क मे ही शकटदास को मौर्य चन्द्रगुप्त का राजा के रूप मे स्थिर तया प्रतिष्ठित होना तथा उसकी राज्यलक्ष्मी की स्थिरता अनर्थकारी प्रतीत हो रहे है। वह अपने लिए पृथिवी पर बद्धमूल शूली को मौर्य की प्रतिष्ठित स्थिति के समान तथा विनाश की सूचिका शिर मे स्थित माला को मौर्य की राज्यलक्ष्मी के समान मानता है।[२] इसमे बद्धमूल शूली तथा सिर पर बॅधी हुई मालाएँ उपमेय है जबकि चन्द्रगुप्त की राज्य पर प्रतिष्ठित स्थिर स्थिति एवं स्थिर राज्यलक्ष्मी उपमान है। शूली तथा मृत्यु के समय शिर पर बॉधी गई माला, दोनो अर्थकर है। किन्तु उपमा मे उपमेय की अपेक्षा उपमान मे आधिक्य होता है, अतः शकटदास की दृष्टि मे चन्द्रगुप्त की प्रतिष्ठा एवं उसकी राज्यलक्ष्मी ये दानो ही भयङ्करतम पूर्वानुभूत अनर्थ परम्पराएँ है।

इन सभी उद्धरणो मे चन्द्रगुप्त के प्रति जो अपमान जनक बाते कही गयी है उसके मूल मे मात्र यही कारण है कि ये समस्त उद्गार उसके शत्रुओ के है। राक्षस अथवा शकटदास के मन मे नन्दो के प्रति आस्था थी। अतः इन्होने उन्हे कुलीन न होने पर भी सम्पूर्ण परम्परा के विरुद्ध कुलीन कहा है तथा चन्द्रगुप्त के प्रति अनास्था के कारण उसके कुलीन होने पर भी सम्पूर्ण परम्परा के विरुद्ध आक्रोश का भाजन होने के कारण उसे अकुलीन अथवा

आनन्दहेतुमपि देवमपास्य नन्दं सक्तासि किं कथय वैरिणि मौर्यपुत्रे।
दानाम्बुराजिरिव गन्धगजस्य नाशे तत्रैवं किं न चपलेप्रलयं गतासि।। मुद्रा. २.६

२ दृष्ट्वा मौर्यमिव प्रतिष्ठितपदं शूलं धरित्र्यास्तले
तल्लक्ष्मीमिव चेतनाप्रमथिनी मूर्द्धावबद्धस्रजम् ।
श्रुत्वा स्वाम्यपरोपरौद्रविषमानाघाततूर्यस्वनान्
न ध्वस्तं प्रथमाभिघातकठिनं मन्ये मदीयं मनः।। मुद्रा.२.२१

वृषल कहा है। अतः विरोधियो द्वारा कहे गये इन वाक्यो के आधार पर चन्द्रगुप्त की अकुलीनता का अनुमान नही किया जा सकता। सम्पूर्ण नाटक मे यह कही नही प्रमाणित होता कि वृषल शब्द का प्रयोग चन्द्रगुप्त के शूद्रत्व का वाचक है। इसी प्रकार राक्षस के कथन मे प्रयुक्त कुलहीन (२.७) शब्दसे भी चन्द्रगुप्त के निम्नकुलोत्पत्ति का सङ्केत नही प्राप्त होता। जिस प्रसङ्ग मे इस शब्द का प्रयोग किया गया है उससे केवल यह ज्ञात होता है कि इसका अर्थ साधारण कुल है, जो कि राजपद के लिए प्रसिद्ध नही था। इसका नीचकुल अर्थ कथमपि नहीं लिया जा सकता। जस्टिन, पुराणों की परम्परा अथवा बौद्ध, जैन किसी भी परम्परा मे जब चन्द्रगुप्त को कुलहीन नही माना गया है तो मुद्राराक्षस मे उसे कैसे निम्नकुल प्रसूत माना जा सकता है। इस नाटक में चन्द्रगुप्त के शत्रु इसे इस बात के लिए तिरस्कृत करते हुए प्रतीत होते है कि यह एक नया राजा है, जिसमे अभिजात वर्ग या राजाओं के रक्त का अंश नही है। इसीलिए ये इसे प्रसिद्ध नन्दो द्वारा सुशोभित किए गये राजसिंहासन के लिए अयोग्य मानते है। किन्तु राक्षस आदि के पूर्वाग्रह को हटाकर देखा जाय तो चन्द्रगुप्त पर किसी भी प्रकार का कलङ्क नही लगाया जा सकता।

मुद्राराक्षस मे जहॉ चन्द्रगुप्त के सहायक चाणक्य आदि उसके गुणो के कारण उसकी स्थिरता के लिए प्रयत्नशील है वही उसके विरोधियो ने भी उसके गुणों को स्वीकार किया है। जब राक्षस चाणक्य के प्रयास से चन्द्रगुप्त का प्रधान अमात्य बनना स्वीकार कर लेता है तो वह चन्द्रगुप्त का प्रशंसक बन जाता है। राक्षस कहता है कि यह वह चन्द्रगुप्त है जिसमे बाल्यकाल मे ही सम्राट् होने के लक्षण प्रकट रूप मे दिखाई पड़ रहे थे। चन्द्रगुप्त मगध साम्राज्य पर क्रमशः उसी प्रकार आरुढ़ हो गया है जिस प्रकार हाथियो के समूह का नेतृत्व कोई हाथी करने लगता है।[१] यहॉ स्पष्ट रूप से राक्षस ने चन्द्रगुप्त को बाल्यकाल से ही राजत्व के गुण से युक्त माना है। यह तभी सम्भव है जब चन्द्रगुप्त को उत्तम कुल मे प्रसूत माना जाय, जैसा कि

---

१ बाल एव हि लोकेऽस्मिन् सम्भावितमहोदयः।
क्रमेणारुढवान्राज्यं यूथैश्वर्यमिव द्विपः।। मुद्रा. ७.१२

भारतीय परम्परा तथा यूनानी लेखक मानते है। राक्षस इस समय पूर्वाग्रह से मुक्त हो चुका था अतः उसकी इस उक्ति को प्रामाणिक माना जा सकता है।

पूर्वाग्रह के कारण ही मुद्राराक्षस मे कोई भी पात्र अपने विरोधी के लिए उसके नाम के साथ हतक शब्द का प्रयोग करता है। राक्षस- सखे पश्य दैवसंपदं दुरात्मनश्चन्द्रगुप्तहतकस्य।[१] क्षपणक -(स्वगतम्) अये श्रुतं मलयकेतु हतकेन।[२] विराधगुप्त- यदावाक्यभेदान् बहूनगमत्तदा चाणक्यहतकेन विचित्रवधेन व्यापादितः।[३] इसके आधार पर किसी पात्र के स्वरूप का निर्धारण नही किया जा सकता। पूर्वाग्रह को हटाकर ही उसके असली स्वरूप को पहचाना जा सकता है।

चन्द्रगुप्त की कुलीनता- यह पहले ही कहा जा चुका है चाणक्य द्वारा चन्द्रगुप्त के लिए वृषल शब्द का प्रयोग शूद्र अर्थ का का वाचक न होकर शक्तिमत्ता का सूचक है। चाणक्य ने अनेकशः चन्द्रगुप्त के लिए इस शब्द का प्रयोग किया है। एक प्रकार से यह उसका प्यार का नाम बन गया है। चाणक्य एवं राक्षस दोनों ही नाटक के अन्त मे चन्द्रगुप्त का सम्मान पूर्वक सम्बोधन करते हैं। चाणक्य ने राक्षस द्वारा चन्द्रगुप्त के प्रधानामात्य का पद स्वीकार कर लेने पर चन्द्रगुप्त के लिए राजन्! सम्बोधन का प्रयोग किया है।[४] राक्षस ने भरतवाक्य मे राजमूर्तेः पद के द्वारा चन्द्रगुप्त एवं विष्णु मे अभेद स्थापित किया है। पहले कल्प के आदि में प्रलय से व्याप्त होती हुई पृथ्वी ने वराह रूप भगवान् विष्णु के दाँतो के अग्रभाग का आश्रय लिया था, सम्प्रति म्लेच्छों से पीड़ित होती हुई उस पृथिवी ने विष्णु के अवतार रूप राजा चन्द्रगुप्त की दोनों भुजाओं का आश्रय लिया है। श्री सम्पन्न बन्धुओं एवं भृत्यो वाला राजा चन्द्रगुप्त चिरकाल तक पृथिवी की रक्षा करे।[५] इस प्रकार के

---

[१] मुद्रा. पृ. ६४

[२] मुद्रा. पृ. १२२

[३] मुद्रा.पृ. ६३

[४] चाणक्यः - भो राजन् चन्द्रगुप्त भो अमात्य राक्षस उच्यतां किं वां भूयः प्रियमुपकरोमि। मुद्रा. पृ. १६५

[५] मुद्रा. ७.१९

सम्मान के भाव जिसके प्रति व्यक्त किये गये है, वह उच्चकुल मे उत्पन्न हुआ था। यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है। नाटक के पूर्व मे विद्यमान परम्परा से भी चन्द्रगुप्त के क्षत्रिय होने की पुष्टि होती है। यद्यपि यह राजवंश से सम्बद्ध नही था फिर भी शाक्यो के एक विभाग मोरिय नामक क्षत्रिय कुल मे इसका जन्म हुआ था तथा बाल्यकाल मे ही इसमे राजत्व के गुण स्पष्टता विद्यमान थे। इसीलिए चाणक्य ने नन्दो के कुशासन से मगध की जनता को मुक्ति दिलाकर चन्द्रगुप्त को राजसिंहासन पर प्रतिष्ठित किया।

यद्यपि इस सम्पूर्ण विवेचन से स्पष्ट है कि चन्द्रगुप्त पर किसी प्रकार का लाञ्छन नही सिद्ध होता किन्तु मुद्राराक्षस के एक टीकाकार ढुण्ढिराज ने चन्द्रगुप्त पर कुलहीन होने का कलङ्क लगाया है। नन्द एवं चन्द्रगुप्त से सम्बन्धित घटनाओ के जो प्राचीन विवरण प्राप्त होते है उनसे हटकर १९वी शताब्दी के इस टीकाकार ने इतिहास मे कुछ भिन्न तथ्यों का समावेश किया है। मुद्राराक्षस के उपोद्घात मे इन्होने प्रतिपादित किया है कि सर्वार्थसिद्धि नामक एक शासक था, जिसकी सुनन्दा एवं मुरा ये दो पत्नियॉ थीं। सुनन्दा से नौ पुत्र हुए जो नन्द कहलाए तथा मुरा से मौर्य नामक एक पुत्र हुआ। मुरा शूद्रात्मजा थी। इनके अनुसार सुनन्दा क्षत्रिय कन्या थी अतः उसके पुत्र नन्द ऊॅची जाति के थे। चन्द्रगुप्त का पिता मौर्य था। सर्वार्थसिद्धि ने अपना सेनापति मौर्य को बनाया था, जिससे खिन्न होकर नन्दो ने मौर्य तथा उसके पुत्रो को मार दिया। केवल चन्द्रगुप्त बच गया। नन्दो से चाणक्य भी रुष्ट था। अत चन्द्रगुप्त एवं चाणक्य मे मैत्री हो गयी।[१] किन्तु इसकी प्रामाणिकता के लिए कोई आधार नही है -

ढुण्ढिराज मुद्राराक्षस के टीकाकार है इन्होने इस कहानी को गढ़ने के लिए न जाने किस स्रोत का उपयोग किया है। चन्द्रगुप्त का नन्दो के साथ रक्त का सम्बन्ध कथमपि नही सिद्ध किया जा सकता। मुद्राराक्षस नाटक मे प्राप्त कुछ प्रयोगो के आधार पर कुछ भ्रम होता कि जैसे विशाखदत्त ने भी

---

१ राज्ञ· पत्नी सुनन्दासीज्ज्येष्ठान्या वृषलात्मजा।
मुराख्या सा प्रिया भर्तुः शीललावण्यसम्पदा।।
आदि, मुद्रा. के पूर्व ढुण्डिराज द्वारा प्रस्तुत कथोपोद्घात-२७

चन्द्रगुप्त को नन्दो की सन्तान मानी हो। क्योकि नाटक मे चन्द्रगुप्त के लिए नन्दान्वय शब्द का प्रयोग किया गया है। मुद्राराक्षस मे एक स्थान पर राक्षस का कथन है कि नन्दराज ने ही चन्द्रगुप्त मौर्य का पालन किया था।[१] नाटक के चतुर्थ अङ्क मे मलयकेतु एवं भागुरायण के बीच मे वार्तालाप के प्रसङ्ग मे भागुरायण मलयकेतु से कहता है कि राक्षस चाणक्य से वैरभाव रखता है, चन्द्रगुप्त से नही। यदि कदाचित् चन्द्रगुप्त चाणक्य को सचिव पद से हटा दे तो नन्दकुल के प्रति भक्ति के कारण राक्षस, चन्द्रगुंप्त नन्दवंशीय (नन्दान्वय) ही है ऐसा मान कर उसके साथ अपने मित्र चन्दनदासादि की अपेक्षा से सन्धि कर सकता है।[२]

इससे लगता है कि चन्द्रगुप्त को नन्द की सन्तति माना गया है। इसी प्रकार के दो और उद्धरण प्राप्त होते है जिनसे उपर्युक्त ध्वनि निकलती है। इसी स्थल पर चन्द्रगुप्त के द्वारा राक्षस को 'पितृपर्यायागत'[३] माना गया है। इस उद्धरण का अभिप्राय यह है कि जिस प्रकार राक्षस चन्द्रगुप्त को नन्दान्वय मानकर उसका मन्त्रित्व स्वीकार कर सकता है उसी प्रकार चन्द्रगुप्त भी राक्षस को अपनी पितृपरम्परा से आया हुआ मानकर इस सन्धि को स्वीकार कर सकता है। पितृपर्यायागत का अभिप्राय है राक्षस चन्द्रगुप्त के पूर्वज नन्दो के परिवार मे अपने बाप-दादो के समय से मन्त्री का काम करने वाला था।

पञ्चम अङ्क मे भी राक्षस एवं मलयकेतु के संवाद मे चन्द्रगुप्त मौर्य को राक्षस के स्वामी नन्दो का पुत्र बताया गया है।[४] किन्तु मुद्राराक्षस के इन

---

१ इष्टात्मजः सपदि सान्वय एव देवः। शार्दूलपोतमिव यं परिपोष्य नष्टः।।
मुद्रा २.८

२ यदि कदाचिच्चाणक्यमतिजितकाशिनमसहमानः स साचिव्यादवरोपयेत्ततो नन्दकुलभक्त्या नन्दान्वय एवायमिति सुहृज्जनापेक्षया चामात्यश्चन्द्रगुप्तेन सह सन्दधीत। मुद्रा. पृ. १ २

३ चन्द्रगुप्तोऽपि पितृपर्यायागत एवायमिति सन्धिमनुमन्येत। मुद्रा. पृ. १ २

४ मौर्योऽसौ स्वामिपुत्रः परिचरणपरो मित्रपुत्रस्तवाहं
दाता सोऽर्थस्य तुभ्यं स्वमतमनुगतस्त्वं तु मह्यं ददासि। मुद्रा. ५.१९

स्थलो के आधार पर चन्द्रगुप्त को नन्दो की सन्तान नही माना जा सकता। क्योकि पूर्व के दोनो स्थलो पर चाणक्य का गुप्तचर भागुरायण मलयकेतु को राक्षस के विरुद्ध भड़काने के लिए असत्य का सहारा लेता है। वह मलयकेतु से झूँठ बोलता है कि चन्द्रगुप्त नन्दो की ही सन्तान है। वह मलयकेतु को असत्य के माध्यम से इस बात के लिए आश्वस्त करना चाहता है। राक्षस एवं चन्द्रगुप्त मे मैत्री हो गयी है तथा राक्षस ने ही तुम्हारे पिता की हत्या करवाई है। 'चन्द्रगुप्त राक्षस के स्वामी नन्दो का पुत्र है' इस झूँठ को मलयकेतु मान भी लेता है, तभी वह कहता है- मौर्योऽसौ स्वामिपुत्रः इत्यादि। अतः भड़काने के उद्देश्य से असत्य रूप मे प्रस्तुत किए गये तथ्यो के आधार पर चन्द्रगुप्त मौर्य को नन्द की सन्तान नहीं कहा जा सकता। चन्द्रगुप्त नन्दवंश का नही था इसके लिए मुद्राराक्षस मे ही सबसे बड़ा प्रमाण यह है कि चाणक्य राक्षस को चन्द्रगुप्त का सचिव बनाना चाहता है किन्तु उसके अनुसार यह तब तक सम्भव नही है जब तक नन्द वंश का कोई भी व्यक्ति जीवित है। सर्वार्थ सिद्धि ही नन्दवंश का अन्तिम शासक था। चाणक्य उसे भी मरवा देता है।[१] यदि चन्द्रगुप्त भी नन्दवंश का होता तो यह नही कहा जा सकता था कि जब तक नन्दवंशीय कोई व्यक्ति जीवित है तब तक राक्षस को वश मे नही किया जा सकता। चाणक्य प्रथम अङ्क में नन्दवंश के सभी राजाओ को मार दिये जाने की कई बार आवृत्ति करता है। इस स्थिति मे चन्द्रगुप्त यदि नन्दवंशीय होता तो यह कथन संगत नही हो सकता था। राक्षस भी सम्पूर्ण नन्दकुल के नाश की बात स्वीकार करता है।[२] एक अन्य स्थान पर भी राक्षस स्पष्ट रूप से कहता है नन्दो की समाप्ति के कारण जिसके मूल आश्रय का उच्छेद हो गया है ऐसी राज्यलक्ष्मी उच्छिन्न आश्रय वाली स्वैरिणी स्त्री के समान अन्यगोत्र अर्थात् मौर्यवंश मे चली गयी। यहाँ पर प्रयुक्त गोत्रान्तरं शब्द की सङ्गति तभी हो सकती है जब चन्द्रगुप्त का कुल नन्दो के कुल से भिन्न हो

---

१ स खलु कस्मिंश्चिदपि जीवति नन्दान्वयावयवे वृषलस्य साचिव्यं ग्राहयितुं न शक्यते। अनयैव बुद्धया तपोवनगतोऽपि घातितस्तपस्वी नन्दवंशीयः सर्वार्थ सिद्धिः। मुद्रा. पृ. २३

२ नन्दानां विपुले कुलेऽकरुणया नीते नियत्याक्षयम् ॥ मुद्रा २.४

अन्यथा नही।[१] वस्तुतः इस नाटक मे भी चन्द्रगुप्त को नन्दपुत्र न मानकर प्रायः मौर्य ही कहा गया है। पूरी परम्परा से भी इसी बात का समर्थन होता है कि चन्द्रगुप्त मौर्य क्षत्रिय था। चाणक्य के समर्थन से उसने नन्दो का उन्मूलन किया था। वह बाल्यकाल से ही राजत्व के गुणो से परिपूर्ण था। उसका नन्दो से किसी प्रकार का रक्त का सम्बन्ध नही था। नही तो परम्परा इस बात की चर्चा जरुर करती।

ढुण्ढिराज ने चन्द्रगुप्त का नन्दो के साथ जो रक्त का सम्बन्ध दिखाया है वह विष्णुपुराण के टीकाकार को साक्षी मानकर किया होगा। ये दोनो ही मत परम्परा से अथवा नाटक से कथमपि प्रमाणित नही है।

मुद्राराक्षस मे वर्णित कुछ तथ्य तो परम्परा से समर्थित है, इतिहास प्रसिद्ध है। जैसे नन्दो का मगध पर साम्राज्य, साम्राज्य की राजधानी पाटलिपुत्र, ब्राह्मण चाणक्य द्वारा नौ नन्दो का विनाश, बाल्यकाल से ही ओजस्वी चन्द्रगुप्त मौर्य का राजसत्ता पर प्रतिष्ठापन आदि। किन्तु इन तथ्यो के अतिरिक्त मुद्राराक्षस मे कई अन्य घटनाओ का समावेश किया गया है जो कवि के द्वारा अपनी कल्पना के आधार पर प्रस्तुत की गई है। पुराणो मे केवल नौ नन्दो का उल्लेख किया गया है किन्तु मुद्राराक्षस मे सर्वार्थसिद्धि नामक एक दसवे नन्द का भी उल्लेख किया गया है। सर्वार्थ सिद्धि भी नन्दवंशीय राजा था। नौ नन्दो को मार दिये जाने पर इसे ही राजसिंहासन पर बैठाया गया था। चन्द्रगुप्त एवं चाणक्य से भयभीत होकर यह जंगल में जाकर तपस्वियो के समान जीवन यापन कर रहा था। किन्तु चाणक्य ने सर्वार्थसिद्धि को वन मे ही मरवा दिया। वह नहीं चाहता था कि नन्दो का संसार मे किसी भी रूप मे अस्तित्व रहे। क्योकि चाणक्य के सामने अतीव बल एवं बुद्धि- सम्पन्न नन्दो का स्वामिभक्त मन्त्री राक्षस चुनौती बना हुआ था। चाणक्य उसे चन्द्रगुप्त के पक्ष मे करना चाहता था यह तब तक सम्भव नही था जब तक नन्दवंश का कोई भी व्यक्ति जीवित हो। अतः नन्दवंश के बचे हुए एकमात्र व्यक्ति सर्वार्थसिद्धि को भी चाणक्य मरवा देता है। मुद्राराक्षस

---

१ उच्छिन्नाश्रयकातरेव कुलटा गोत्रान्तरं श्रीर्गता। मुद्रा. ६.५

के प्रारम्भ मे सूत्रधार कहता है कि चाणक्य ने अपनी क्रोधाग्नि मे हठात् नन्दवंश को जला दिया है। चाणक्य स्वतः भी कहता है कि मेरी शिखा नन्दकुल के लिए काल रूपी नागिन है, मेरा कोप नन्दकुल रूपी वन को जलाने के लिए वह्नि के समान है, मेरे द्वारा नन्दवंश के प्ररोह जला दिये गये है, जैसे पर्वत शिखर से सिंह गजेन्द्र को गिराकर नष्ट कर देता है उसी प्रकार वंश सहित नन्द का मेरे द्वारा विनाश कर दिया गया है। दृढ़ता के लिए चाणक्य पुनः इस बात को दोहराता है कि जनता के लिए जो शल्य के समान थे ऐसे नवो नन्द मेरे द्वारा उखाड़ फेके गये है अर्थात् मार दिये गये है। किन्तु जब तक राक्षस वश मे नही हो जाता तब तक चाणक्य के मन मे चन्द्रगुप्त की सत्ता की स्थिरता के लिए आशङ्का बनी रहती है। राक्षस कही सर्वार्थसिद्धि को आगे कर युद्ध न करे इसलिए चाणक्य नन्दो के अन्तिम शासक को तपस्या करते समय ही मरवा देता है। मुद्राराक्षस मे वर्णित सर्वार्थसिद्धि एवं राक्षस का कोई ऐतिहासिक विवरण नही उपलब्ध होता कौटिल्य (चाणक्य), नन्द तथा चन्द्रगुप्त के ऐतिहासिक साक्ष्य प्राप्त होते है. इन्हे आधार बनाकर कवि विशाखदत्त ने नन्दो के मन्त्री राक्षस को चन्द्रगुप्त के पक्ष मे करने की घटना का वर्णन करने के लिए नाटक का पल्लवन किया है। चाणक्य का सम्पूर्ण प्रयास इसी कार्य के लिये प्रवर्तित हुआ है। विशाखदत्त ने नाटक की सम्पूर्ण कथावस्तु को सात अङ्को मे इस प्रकार प्रस्तुत किया है।

मुद्राराक्षस की कथावस्तु का अङ्कों में विभाजन- प्रथम अङ्क के प्रारम्भ मे अपनी पत्नी से वार्तालाप करते हुए सूत्रधार के द्वारा नाटक के कथावस्तु की सूचना दे दी गई है तथा चाणक्य के प्रवेश के लिए मार्ग का निर्माण किया गया है। चाणक्य नौ नन्दो के विनाश की तथा चन्द्रगुप्त मौर्य को सत्तासीन करने की सूचना देता है। यही पर चाणक्य स्वीकार करता है कि नन्दो के प्रति समर्पित उनके मन्त्री राक्षस को वश मे करके जब तक चन्द्रगुप्त के पक्ष मे नही कर लिया जाता तब तक चन्द्रगुप्त मौर्य की राज्यलक्ष्मी को स्थिर नही माना जा सकता। इसीलिए नन्दो के अन्तिम शासक सर्वार्थसिद्धि जो कि वन मे तपस्या कर रहा था, की हत्या करा दी जाती है। नगर मे प्रजा

का क्या रुख है तथा शत्रुपक्ष की क्या गतिविधियॉ है? यह जानने के लिए चाणक्य के द्वारा गुप्तचरो की नियुक्ति की गयी है। उनमे से एक गुप्तचर निपुणक नगर के एक व्यापारी चन्दनदास के घर पहुँचता है। शहर से बाहर जाते समय राक्षस अपनी पत्नी तथा बेटे को चन्दनदास के घर मे रख देता है। वहॉ पर निपुणक को राक्षस के नाम से अङ्कित एक अगॅूठी मिलती है। निपुणक उसे लाकर चाणक्य को देता है। इसी मुद्रां के आधार पर इस नाटक मे एक महत्त्वपूर्ण घटना घटती है। अपनी योजना को कार्यान्वित करने के लिए चाणक्य शकटदास, जो कि राक्षस का मित्र था तथा सुलेख मे सिद्धहस्त था, से एक पत्र लिखवाकर राक्षस की मुद्रा से उसे अङ्कित कराकर पत्र एवं अगॅूठी दोनो अपने अत्यन्त विश्वस्त गुप्तचर सिद्धार्थक को गुप्त निर्देशो के साथ दे देता है। इसके अनन्तर चाणक्य चन्दनदास को बुलाकर राक्षस के परिवार को सौपने के लिए डराता हैं, किन्तु मना कर देने पर उसे बन्दी बना लिया जाता है।

द्वितीय अङ्क के प्रारम्भ मे राक्षस का प्रवेश होता है। वह चन्द्रगुप्त को सत्ता से उखाड़ फेकने की योजना बनाता है। राक्षस ने भी पाटलिपुत्र के वृत्तान्त को जानने के लिए गुप्तचरो की नियुक्ति की थी। उनमे से विराधगुप्त नगर से लौटकर राक्षस की नीतियो की विफलता की सूचना देता है। वह यह भी बताता है कि चाणक्य की सावधानी के कारण चन्द्रगुप्त को मारने के लिए नियुक्त राक्षस के कुछ मित्र उन्ही उपायो के द्वारा मार दिये गये, जिनके द्वारा वे चन्द्रगुप्त को मारना चाहते थे तथा शकटदास सहित अन्य सहयोगी पकड़ लिए गये। सिद्धार्थक, जो कि चाणक्य के निर्देश मे काम कर रहा था शकटदास को बचाकर राक्षस के पास पहॅुचा देता है। इस पर प्रसन्न होकर राक्षस अपने उन आभूषणो को जो कि उसके सहयोगी मलयकेतु ने उसे दिये थे पुरस्कार रूप मे सिद्धार्थक को देता है। सिद्धार्थक राक्षस के नाम से अङ्कित अगूँठी से एक पेटिका मे आभूषण रखकर उसे सील करता है। अगॅूठी के बारे में पूँछे जाने पर उसकी प्राप्ति तथा तब से उसे अपने पास ही रखने की बात कहता है। सिद्धार्थक चाणक्य का प्रणिधि होकर भी राक्षस के साथ रहने लगता है।

तृतीय अङ्क मे चाणक्य एवं चन्द्रगुप्त मे कृतक कलह प्रदर्शित किया गया है। कुसुमपुर मे कौमदी महोत्सव का आयोजन किया गया था। चाणक्य कौमुदी महोत्सव की तैयारियो को रोक देता है। चन्द्रगुप्त इसका कारण पूछता है। इस पर चाणक्य बनावटी क्रोध करता है तथा अपने पद से त्यागपत्र दे देता है। चन्द्रगुप्त भी स्वतन्त्रा पूर्वक राज्यकार्य सम्पन्न करने की बात करता है। चन्द्रगुप्त कृतक कलह से भी दुःखी होता है। देखने वाले इस कलह को यथार्थ मान बैठते है। राक्षस ने चन्द्रगुप्त को चाणक्य के विरुद्ध भड़काने के लिए करभक की वैतालिक के रूप मे नियुक्ति की थी।

चतुर्थ अङ्क में राक्षस को जैसे ही चाणक्य एवं चन्द्रगुप्त के बीच हुए कलह की सूचना मिलती है वह प्रसन्न हो उठता है। उसका मानना है कि चाणक्य की अनुपस्थिति मे चन्द्रगुप्त को सत्ता से उखाड़ने मे अब देर नही लगेगी। इसी समय भागुरायण के साथ मलयकेतु राक्षस के पास आता है। राक्षस के सिर मे पीड़ा हो रही थी अतः मलयकेतु उससे मिलने के लिए प्रतीक्षा करता है। इस अवसर का लाभ उठाकर भागुरायण मलयकेतु के मन मे राक्षस के प्रति अविश्वास उत्पन्न करता है। उसने मलयकेतु से कहा कि राक्षस की शत्रुता चाणक्य से है। चन्द्रगुप्त तो राक्षस के स्वामियो का ही पुत्र है। चाणक्य की अनुपस्थिति मे राक्षस एवं चन्द्रगुप्त मे मैत्री हो सकती है। मलयकेतु राक्षस एवं करभक का संवाद सुनता है। राक्षस मलयकेतु से मिलने के लिए आता है। यह पूँछने पर कि हम लोग कब तक इसी तरह नगर के बाहर-बाहर तैयारी करके घूमते रहेगे? राक्षस कहता है आज ही विजय के लिए प्रस्थान करो। राक्षस के पास इसी समय जीवसिद्धि क्षपणक उपस्थित होता है जिसके साथ राक्षस पाटलिपुत्र पर आक्रमण हेतु प्रस्थान करने के लिए ज्योतिष शास्त्र की दृष्टि से तिथि निर्धारित करता चाहता है।

पञ्चम अङ्क मे मलयकेतु के पड़ाव का दृश्य उपस्थिति किया गया है। भगुरायण ने मलयकेतु के मन मे राक्षस के प्रति जो अविश्वास उत्पन्न कर दिया है उससे मलयकेतु की बुद्धि व्याकुल हो रही है। इसी बीच भागुरायण के पास मुद्रा के निमित्त क्षपणक आता है। वह भागुरायण से कहता है कि मै पाटलिपुत्र में रहता था तो राक्षस से मित्रता हो गयी थी। उस समय राक्षस ने

विषकन्या के प्रयोग से पर्वतेश्वर को मरवा दिया। मलयकेतु इस बात को सुनता है और उसे विश्वास हो जाता है कि मेरे पिता को राक्षस ने मरवाया है, चाणक्य ने नही। भागुरायण मलयकेतु को इस बात के लिए राजी कर लेता है कि वह राक्षस की हत्या न करे, क्योकि चाणक्य का आदेश था कि राक्षस के प्राणो की रक्षा करनी है। इसी बीच राक्षस की मुद्रा से अङ्कित पत्र लेकर विना मुद्रा अङ्कित कराए सेना से बाहर जाता हुआ सिद्धार्थक पकड़ा जाता है। वह अपने आपको राक्षस का मित्र बताता है तथा कहता है कि राक्षस, पत्र तथा इस मौखिक सन्देश के साथ मुझे चन्द्रगुप्त के पास भेज रहा था कि चित्रवर्मा, सिंहनाद, पुष्कराक्ष, सिन्धुसेन तथा मेघनाद इन पॉचो राजाओ की, जो कि मेरे मित्र है, तुम्हारे साथ मित्रता हो जायेगी।

राक्षस द्वारा पुरस्कार के रूप मे दिये गये आभूषणो को भी देखकर मलयकेतु का संदेह पुष्ट हो जाता है। राक्षस मलयकेतु के पास उन आभूषणो को पहन कर जाता है जो उसके पिता पर्वतेश्वर के थे, जिन्हे राक्षस ने किसी से खरीदा था। यह देखकर मलयकेतु को यह भी विश्वास हो जाता है कि पर्वतेश्वर की हत्या राक्षस ने ही कराई है। मलयकेतु राक्षस से कहता है कि तुमने मेरे साथ विश्वासघात किया है तथा चन्द्रगुप्त से सन्धि कर ली है। राक्षस कुछ उत्तर नही दे पाता। वह केवल इतना ही कहता है कि मैने पर्वतेश्वर की हत्या नही करायी है। ईश्वर से पूॅछो उन्हे किसने मारा था? अन्त मलयकेतु भासुरक के माध्यम से शिखरसेन को आदेश देता है कि उपर्युक्त पॉचो राजाओ की हत्या कर दी जाय। वह राक्षस से कहता है जाओ सर्वात्मना चन्द्रगुप्त का आश्रय ले लो। राक्षस हताश हो जाता है, क्योकि मलयकेतु एवं राक्षस के बीच फूट डालने मे चाणक्य की नीति सफल हो जाती है।

छठे अङ्क के प्रारम्भ मे सिद्धार्थक सूचना देता है कि चाणक्य की कूटनीति के वशीभूत होकर मलयकेतु ने राक्षस को निकाल दिया है। उसने चित्रवर्मा आदि राजाओं को मरवा दिया है। इससे नाराज होकर मलयकेतु के पक्ष के अन्य पार्थिव उसे छोड़कर अपने देश चले गये हैं। अन्य सामन्तादि का मन अत्यन्त खिन्न हो गया था। इसीलिए भद्रभट, पुरुषदत्त, डिङ्गरात,

राजसेन, भागुरायण, रोहिताक्ष एवं विजयवर्मा आदि ने मलयकेतु को पकड़ लिया है। राक्षस मलयकेतु के शिविर से निकलकर अपने मित्र चन्दनदास के प्राणो को बचाने के लिए पाटलिपुत्र पहुॅचता है। चन्दनदास पर राक्षस के परिवार को छिपाकर रखने का आरोप था। राक्षस को चाणक्य का ही प्रणिधि सूचना देता है कि चन्दनदास को फॉसी पर लटकाया जायेगा। इस बात से दुःखी होकर मेरा मित्र विष्णुदास आत्महत्या करना चाहता है। राक्षस उसे विष्णुदास को आत्महत्या करने से रोकने के लिए कहता है। राक्षस स्वतः तलवार लेकर चन्दनदास के प्राणो की रक्षा करने के लिए उद्यत हो जाता है। किन्तु वह पुरुष राक्षस को तलवार लेकर युद्ध करने से यह कह कर मना करता है कि इससे चन्दनदास के प्राण सङ्कट मे पड़ जायेगे। राक्षस मान जाता है वह चन्दनदास के प्राणो की रक्षा के लिए आत्मसमर्पण करने के लिए तैयार हो जाता है।

सप्तम अङ्क के प्रारम्भ मे चन्दनदास को वध्य स्थान की ओर ले जाया जाता है। पत्नी तथा बेटा उसका अनुसरण करते है। चाणक्य से वह अत्यन्त दुःखी है तभी कहता है- 'पुत्र चाणक्यविरहिते देशे वस्तव्यम्'। वध्यस्थान पर जैसे ही शूली गाड़ी जाती है वहाँ पर राक्षस उपस्थित हो जाता है तथा चाण्डालो से कहता है कि चन्दनदास को छोड़ दो। फाँसी की रस्सी मेरे गले पर बॉधो। वज्रलोमन् अमात्य राक्षस के पकड़े जाने की सूचना चाणक्य को देता है। चाणक्य राक्षस के सामने उपस्थित होकर उसके प्रति सम्मान प्रकट करता है। चाणक्य अपनी कूटनीति को भी स्पष्ट करता है कि जिस पत्र के कारण मलयकेतु आप से अलग हुआ वह पत्र मैने ही अनजान मे शकटदास से लिखवाया था। चाणक्य इसी समय चन्द्रगुप्त के आने की सूचना देता है। चन्द्रगुप्त इस बात के लिए लज्जित है कि शत्रुओ को बिना युद्ध के ही आचार्य चाणक्य ने जीत लिया। जिससे उसे पराक्रम दिखाने का अवसर ही नही मिला। चन्द्रगुप्त दोनो को प्रणाम करता है। चाणक्य चन्दनदास को मुक्त करने के बदले राक्षस को चन्द्रगुप्त का सचिव पद स्वीकार करने के लिए कहता है। जिसके लिए राक्षस तैयार हो जाता है। मलयकेतु को बन्धनमुक्त कर उसे उसका राज्य वापस कर दिया जाता है तथा चन्दनदास को सम्पूर्ण

नगर का श्रेष्ठी बना दिया जाता है। यह भी घोषणा की जाती है कि हाथियो एवं घोड़ो को छोड़कर सभी को बन्धनमुक्त कर दिया जाय। अन्त मे राक्षस के मुख से भरत वाक्य प्रस्तुत किया गया है जिसमे म्लेच्छो के आक्रमण से आक्रान्त पृथ्वी की रक्षा करने की प्रार्थना की गई है।

कथावस्तु के विशिष्ट विवरण- मुद्राराक्षस की इस सम्पूर्ण कथावस्तु का विवेचन करने से यह स्पष्ट है कि नन्द, चाणक्य एवं चन्द्रगुप्त ऐतिहासिक व्यक्ति है। ये तीनो भारतीय परम्परा तथा यूनानी लेखको के विवरणो मे स्पष्ट रूप से उल्लिखित है। मगध की राजधानी पाटलिपुत्र थी। इसी पर अधिकार करने के लिए राजाओ मे संघर्ष हुए। नन्दो के विनाश मे चाणक्य की भूमिका का स्पष्ट उल्लेख प्राप्त होता है। नन्द हीनकुल के थे, ऐसी परम्परा की मान्यता है। मुद्राराक्षस मे कभी-कभी स्वामिभक्ति के कारण राक्षस उन्हे अभिजन कहता है किन्तु यह परम्परा से प्रामाणित नही है। चाणक्य ब्राह्मण था तथा राजनीति मे पूर्ण पटु था, इससे सभी सहमत है। चन्द्रगुप्त को परम्परा मे मौर्य क्षत्रिय माना गया है किन्तु मुद्राराक्षस नाटक मे इसे विरोधियो ने आक्रोश मे शूद्र कुलहीन तथा नन्दान्वय कहा है, किन्तु यह प्रामाणिक नही है। चन्द्रगुप्त के लिए आक्रोश मे कहे गये वाक्यो के आधार पर उसे शूद्र नही माना जा सकता। वस्तुतः जिन परिस्थितियो मे उसे नन्दान्वय कहा गया है वह नाटकीय आवश्यकता थी। राक्षस चन्द्रगुप्त का मन्त्रित्व इसलिए नहीं स्वीकार करता कि वह उसका स्वामिपुत्र है, अपितु वह अन्त तक उसके विरुद्ध संघर्ष करता है। उसने मात्र चन्दनदास के प्राणों की रक्षा के लिए चन्द्रगुप्त का मन्त्री बनना स्वीकार किया था। किसी अन्य सम्बन्ध या स्वार्थ के कारण नही।

जैसा कि पहले प्रतिपादित किया जा चुका है कि मुद्राराक्षस के पात्र नौ नन्द, चाणक्य तथा चन्द्रगुप्त एवं पाटलिपुत्र स्थान ये इतिहास प्रसिद्ध है। मुद्राराक्षस मे अन्तिम नन्द शासक सर्वार्थसिद्धि का उल्लेख किया गया है, किन्तु यह परम्परा से प्रमाणित नही है। सम्भव है राक्षस तथा सर्वार्थसिद्धि आदि बृहत्कथा आदि मे उल्लिखित रहे हो, किन्तु बृहत्कथा अब नहीं प्राप्त होती। बृहत्कथा को आधार बनाकर ११वी शताब्दी मे लिखे गये

कथासरित्सागर तथा बृहत्कथामञ्जरी मे चन्द्रगुप्त के वंश का जो स्वरूप प्रस्तुत किया गया है वह परम्परा से मेल नही खाता। इन रचनाओ मे दो नन्दो का उल्लेख किया गया है- (१) पूर्वनन्द तथा (२) योगनन्द। इनमे प्राप्त विवरण के अनुसार चन्द्रगुप्त पूर्वनन्द का पुत्र था। उस समय योगनन्द राजा था। इसके उग्र स्वभाव के कारण इससे सभी उद्विग्न थे। इसका मंत्री शकटार भी इससे दुःखी रहता था। चाणक्य का उग्र स्वभाव देखकर उसे योगनन्द के विरुद्ध करने के लिए श्राद्ध मे प्रधान ब्राह्मण के रूप मे शकटार चाणक्य को निमन्त्रित कर देता है। किन्तु चाणक्य को सभी के समाने राजाज्ञा के आधार पर वहॉ से उठा दिया जाता है। चाणक्य ७ दिन के अन्दर योगनन्द को समाप्त करने की प्रतिज्ञा करता है। वह शकटार के घर मे आकर कृत्या का प्रयोग करता है। जिससे ज्वर से पीड़ित होकर योगनन्द सात दिन के भीतर ही मर जाता है। यहॉ यह भी कहा गया है कि योगनन्द के मर जाने पर पूर्वनन्द के पुत्र चन्द्रगुप्त को वह राजा बनाता है तथा स्वयं उसका मन्त्री बन जाता है।[१] दशरूपक की धनिकवृत्ति दशरूपकावलोक मे इसी कथा को दो

---

[१] तच्छ्रुत्वा सहसा मन्त्री कोपनं क्रूरनिश्चयम् ।
तं विप्रं योगनन्दस्य वधोपायममन्यत।।
नाम पृष्ट्वाब्रवीत्तं च हे ब्रह्मन् दापयामि ते।
अहं त्रयोदशीश्राद्धं गृहे नन्दस्य भूपते।।
दक्षिणातः सुवर्णस्य लक्षं तव भविष्यति।
भोक्ष्यसे धुरि चान्येषामेहि तावद् गृहं मम।।
इत्युक्त्वा शकटालस्तं चाणक्यमनयद् गृहम् ।
श्राद्धाहेऽदर्शयत्तं च राज्ञे स श्रद्दधे च तम् ।।
तत स गत्वा चाणक्यो धुरि श्राद्ध उपाविशत् ।
सुबन्धुनामा विप्रश्च तामैच्छद्धुरमात्मन ।।
तद्गत्वा शकटालेन विज्ञप्तो नन्दभूपति।
अवादीन्नापरो योग्य सुबन्धुर्धुरि तिष्ठतु।।
आगत्यैतां च राजाज्ञां शकटालो भयानत।
न मेऽपराध इत्युक्त्वा चाणक्याय न्यवेदयत् ।।
सोऽथ कोपेन चाणक्यो ज्वलन्निव समन्तत।
निजां मुक्त्वा शिखां तत्र प्रतिज्ञामकरोदिमाम् ।।

श्लोको मे उद्धृत कर मुद्राराक्षस की कथा का मूल बृहत्कथा को बताया गया है।[१] किन्तु ये तीनो उद्धरण काफी बाद के है। इनमे दिये गये पूर्वनन्द तथा योगनन्द नामो का उल्लेख किसी परम्परा मे नही प्राप्त होता। मुद्राराक्षस मे भी इन दोनो नामो का उल्लेख नही किया गया है। मुद्राराक्षस मे इस कथा के इस अंश की अवश्य समानता है कि नन्दो ने चाणक्य का अपमान किया था। उसने नन्दो से बदला ले लिया था।[२] चाणक्य नेनन्दो का विनाश कर चन्द्रगुप्त मौर्य को राजा बनाया था।[३] चाणक्य अभिचार क्रिया को जानता

अवश्यं हन्त नन्दोऽयं सप्तभिर्दिवसैर्मया।
विनाश्यो बन्धनीयश्च ततो निर्मन्युना शिखा।।
इत्युक्तवन्तं कुपिते योगनन्दे पलायितम् ।
अलक्षितं स्वगेहे तं शकटालो न्यवेशयत् ।।
तत्रोपकरणे दत्ते गुप्तं तेनैव मन्त्रिणा।
स चाणक्यो द्विजः क्वापि गत्वा कृत्यामसाधयत् ।।
तद्वशाद्योगनन्दोऽथ दाहज्वरमवाप्य सः।
सप्तमे दिवसे प्राप्ते पञ्चत्वं समुपागमत् ।।
हत्वा हिरण्यगुप्तं च शकटालेन तत्सुतम् ।
पूर्वनन्दसुते लक्ष्मीश्चन्द्रगुप्ते निवेशिता।।
मन्त्रित्वे तस्य चाभ्यर्थ्य बृहस्पतिसमं धिया।
चाणक्यं स्थापयित्वा तं स मन्त्री कृतकृत्यताम् ।।
कथा सरित्सागर प्रथम लम्बक श्लोक संख्या १११ से १२४ तक

१ तत्र बृहत्कथामूलं मुद्राराक्षसम् चाणक्यनाम्ना तेनाथ शकटारगृहे रहः।
कृत्यां विधाय सपुत्रो सहसा निहतो नृपः।।
योगानन्दयशः शेषे पूर्वनन्दसुतस्ततः।
चन्द्रगुप्तः कृतो राजा चाणक्येन महौजसा।।
दशरूपक वृत्ति उद्धरण संख्या- ६२

२ शोचन्तोऽवनतैर्नराधिपभयाद्धिक्शब्दगर्भैर्मुखै-
र्मामग्रासनतोऽवकृष्टमवश ये दृष्टवन्तः पुरा।
ते पश्यन्ति तथैव सम्प्रति जना नन्दं मया सान्वयं
सिहनेव गजेन्द्रमद्रिशिखरात् सिंहासनात् पातितम् ।। मुद्रा.१ १२

३ समुत्खाता नन्दा नव हृदयशल्या इव भुवः

था,[१] इस बात का भी उल्लेख है। किन्तु चाणक्य ने शकटार के घर मे रहकर योगनन्द के ऊपर कृत्या का प्रयोग किया था इसका इस नाटक मे कोई उल्लेख नही है। इन ग्रन्थो मे चन्द्रगुप्त को नन्दान्व मानने की धारणा प्रतिपादित है किन्तु मुद्राराक्षस से इस तथ्य का समर्थन नही होता है। राक्षस इत्यादि जो चन्द्रगुप्त के परम विरोधी है वे भी निष्कर्षत· चन्द्रगुप्त को मुद्राराक्षस मे मौर्य कहकर ही सम्बोधित करते हैं। मुद्राराक्षस मे चन्द्रगुप्त के लिए कही-कही अप्रिय शब्दो का भी प्रयोग दृष्टिगत होता है। जैसे कुलहीन, वृषल, नन्दान्वय आदि। इसके दो ही स्पष्टीकरण हो सकते है - (१) ये शब्द प्राय· विरोधियो द्वारा कहे गये है। वृषल शब्द का प्रयोग जहॉ चाणक्य द्वारा किया गया है वहॉ वह सम्भवतः बलशालिता का द्योतक है तथा (२) चन्द्रगुप्त की जैन धर्म मे दीक्षा। वस्तुत· चाणक्य तथा राक्षस जोकि मुद्राराक्षस के प्रधान पात्र हैं निश्चित रूप से ब्राह्मण धर्म के अनुयायी है। मुद्राराक्षस का लेखक भी ब्राह्मण धर्म को मानता है। जबकि चन्द्रगुप्त ने बाद मे जैन धर्म मे दीक्षा ले ली थी। सम्भवतः नाटक मे इसीलिए इसके प्रति कुछ अनुचित बातो का समावेश हुआ होगा। जैन अनुश्रुतियो के अनुसार चन्द्रगुप्त ने जैन धर्म को स्वीकार कर लिया था। दशवी शताब्दी के हरिषेण कृत बृहत्कथाकोश, पन्द्रहवी शताब्दी के भद्रबाहुचरित तथा तिलोयपण्णत्ति, इन जैन ग्रन्थो मे थोड़े बहुत परिवर्तन के साथ इस तथ्य का प्रतिपादन किया गया है कि चन्द्रगुप्त मौर्य ने जैन धर्म मे दीक्षा ले ली थी। श्रावणबेलगोला के अभिलेखो से भी चन्द्रगुप्त के द्वारा जैन धर्म को ग्रहण करने के प्रमाण प्राप्त होते है। किन्तु मुद्राराक्षस मे इस सम्बन्ध मे कोई साक्ष्य नही प्राप्त होता। बल्कि मुद्राराक्षस के भरतवाक्य मे चन्द्रगुप्त को विष्णु का अवतार कहा गया है। वस्तुतः मुद्राराक्षस मे यह उस समय का वर्णन है जब चाणक्य की देखरेख मे चन्द्रगुप्त त्रयी मे निष्णात होकर नन्दो को समूल नष्ट कर राक्षस को भी वश मे करके सभी प्रकार की चुनौतियो को समाप्त कर शासन कर रहा था।

कृता मौर्ये लक्ष्मी· सरसि नलिनीव स्थिरपदा।। मुद्रा. १ १३

१ कौटिल्यः कोपनोऽपि स्वयमभिचरणे ज्ञातदुःख प्रतिज्ञाम् ,
दैवात्तीर्णप्रतिज्ञ· पुनरपि न करोत्यायतिग्लानिभीतः।। मुद्रा. ४.१२

सम्भवतः चन्द्रगुप्त ने अपने शासन के अन्तिम दिनो मे जैन धर्म मे दीक्षा ली होगी, जिसका उल्लेख जैन परम्परा मे प्राप्त होता है।

चाणक्य एवं चन्द्रगुप्त- चाणक्य एवं चन्द्रगुप्त की भेट किन परिस्थितियो मे हुई? मुद्राराक्षस मे इस तथ्य का कोई स्पष्ट विवरण नही प्राप्त होता है। इस बात का सङ्केत अवश्य मिलता है कि चाणक्य केवल चन्द्रगुप्त को राजसिंहासन पर बैठाने का ही काम नही करता वह उसका आचार्य भी है। जब कौमुदी महोत्सव के प्रतिषेध को लेकर चाणक्य एवं चन्द्रगुप्त के बीच कृतक कलह को प्रदर्शित करने के लिए संवाद होता है उस समय चन्द्रगुप्त चाणक्य के लिए सम्मान पूर्वक आर्य शब्द का प्रयोग करता है। किन्तु अन्त मे चाणक्य उसके आचार्य है इस बात की सूचना देता है। वह कहता है कि यद्यपि मैने आर्य की आज्ञा से ही उनके गौरव का अतिक्रमण किया है फिर भी मेरी बुद्धि जमीन मे समायी जा रही है। जो लोग वास्तव मे गुरुओ का तिरस्कार करते है उनका हृदय लज्जा से विदीर्ण क्यो नही हो जाता?[१] इसका अभिप्राय यह है कि चाणक्य चन्द्रगुप्त के आचार्य थे। इसीलिए कृतक कलह से भी उसे क्षोभ हो रहा है। इसी प्रकार सप्तम अङ्क मे वह स्पष्ट रूप से स्वीकार करता है कि चाणक्य उसके आचार्य है। मै बिना धनुषादि का सन्धान किये ही सम्पूर्ण पृथ्वी जीतने मे समर्थ हूँ क्योकि भले ही मै सो रहा होऊँ मेरे राष्ट्र मे कार्यो के प्रति जागरूक मेरे गुरु जाग रहे है।[२] इन दोनो स्थानो पर नाटक मे चाणक्य को चन्द्रगुप्त का आचार्य बताया गया है।

बौद्ध अनुश्रुतियो मे भी इस तथ्य का समर्थन प्राप्त होता है कि चन्द्रगुप्त ने आचार्य चाणक्य से शिक्षा ग्रहण की थी। उत्तरविहारट्ठकथा (प्रथम शताब्दी ई० के आसपास रचित) को आधार बनाकर नवी शताब्दी मे लिखे गये वंसत्थप्पकासिनी, १०वी शताब्दी के कम्बोडियायी महावंश तथा

---

१ आर्याज्ञयैव मम लङ्घितगौरवस्य बुद्धि प्रवेष्टुमिव भूविवरं प्रवृत्ता।
ये सत्यमेव हि गुरुनतिपातयन्ति तेषां कथं नु हृदयं न भिनत्ति लज्जा।।
मुद्रा. ३.३३

२ विगुणीकृतकार्मुकोऽपि जेतुं भुवि जेतव्यमसौ समर्थ एव।
स्वपतोऽपि ममेव यस्य तन्त्रे गुरवो जाग्रति कार्यजागरूकाः।। मुद्रा. ७.११

महाबोधिवंश नामक बौद्धग्रन्थो मे चन्द्रगुप्त के प्रारम्भिक जीवन तथा चाणक्य के साथ उसके सम्बन्ध की सूचनाएँ दी गयी है। इनके अनुसार चन्द्रगुप्त का जन्म शाक्यो की एक शाखा मोरिय नामक क्षत्रिय जाति मे हुआ था। चन्द्रगुप्त का पिता मोरियो का राजा था। वह एक सीमान्त युद्ध मे मारा गया।[१] चन्द्रगुप्त की माता ने वहॉ से भागकर पुष्पपुर (पाटलिपुत्र) आकर उसकी जान बचायी। चन्द्रगुप्त के मामाओ ने उसे एक गोशाला मे छोड़ दिया, जहॉ गड़रिये ने उसका पालन किया और बड़ा होने पर एक शिकारी के हाथ उसे बेच दिया। शिकारी के यहॉ वह गाय भैस चराता था। वह अपने गॉव के बच्चो के साथ खेल-खेल मे राजा की भूमिका करता था। चाणक्य उसे इस भूमिका मे देखकर उससे प्रभावित हुआ।

चाणक्य तक्षशिला नगर का एक विद्वान् ब्राह्मण था। वह शास्त्रार्थ करने के उद्देश्य से पुष्पपुर गया हुआ था।[२] उस समय पाटलिपुत्र में नन्दो द्वारा दानशाला खोली गयी थी। उसका सञ्चालन एक संघ द्वारा किया जाता था। इस संघ का अध्यक्ष कोई ब्राह्मण ही होता था। वह तभी तक अध्यक्ष पद पर रह सकता था जब तक वह शास्त्रार्थ मे अपराजित रहे। यह संघाध्यक्ष एक करोड़ मुद्राओ तक का दान कर सकता था। अपने वैदुष्य से चाणक्य इस संघ का अध्यक्ष बन गया परन्तु उसके उद्धत स्वभाव एवं कुरूपता के कारण नन्दनरेश ने उसे पदच्युत कर दिया। इस पर क्रुद्ध होकर चाणक्य ने नन्दवंश को समूल नष्ट करने की प्रतिज्ञा ली तथा वहॉ से वह अपनी जान बचाकर नग्न आजीविक साधु के वेश मे भाग निकला। उसी समय उसे चन्द्रगुप्त 'राजकीलम्' खेल खेलता हुआ दिख गया। चाणक्य उसकी प्रतिभा से अत्यन्त प्रभावित हुआ। उसने उसके पालक-पिता से १००० कार्षापण देकर चन्द्रगुप्त को खरीद लिया। वहाँ से वह चन्द्रगुप्त को अपने साथ तक्षशिला ले

---

१ तस्मिं बलवाहनसम्पन्नेन सामन्तरञ्ञा मोरियराजानं घातेत्वा रज्जे गहिते। वंशत्थप्पकासिनी, पृ. २७

२ वादं परियेसन्तो पुप्फपुरं गन्त्वा। महावंस टीका, पृ. ३९

गया जहाँ सात आठ वर्ष तक रहकर चन्द्रगुप्त समस्त विद्याओ तथा कलाओ मे पारङ्गत हुआ।[१]

जैन परम्परा मे भी चन्द्रगुप्त एवं चाणक्य के मिलने की घटना का वर्णन किया गया है। किन्तु यह विवरण बौद्ध अनुश्रुति से भिन्न है। जैन ग्रन्थो मे उत्तरज्झयण पर देवेन्द्र गणी की टीका 'सुखबोधा' भद्रबाहु की आवस्सकनिज्जुत्ति की चुण्णि, हरिसूर की आवश्यकवृत्ति तथा हेमचन्द्र के परिशिष्टपर्वण प्रभृति परवर्ती जैन ग्रन्थो चाणक्य एवं चन्द्रगुप्त के सम्बन्ध मे विवरण प्रस्तुत किया गया है। इनके अनुसार चन्द्रगुप्त नन्दराज्य के मयूरपोषको के एक ग्राम के मुखिया (मयहर) का दौहित्र था। चाणक्य ने मुखिया की पुत्री की गर्भकालीन चन्द्रपान की इच्छा को चालाकी से पूराकर उस बच्चे को उससे प्राप्त करने का वचन लिया।

इन ग्रन्थो मे चाणक्य को गोल्ल प्रदेश के चणिय नामक ग्राम का निवासी बताया गया है। इसके पिता का नाम चणक था। यह जाति का ब्राह्मण था किन्तु इसने जैन धर्म को अपना लिया था। चाणक्य धन को प्राप्त करने की अभिलाषा से पाटलिपुत्र आया। कार्तिक पूर्णिमा को नन्दनरेश द्वारा दान करते समय चाणक्य राजपरिवार के लिए सुरक्षित आसन पर बैठ गया। वह अनुरोध करने पर भी उस आसन से नही हटा तो उसे जबरदस्ती हटा दिया गया। इस पर चाणक्य ने नन्दवंश को समूल नष्ट करने की प्रतिज्ञा की।[२] पाटलिपुत्र के बाहर घूमते समय चाणक्य ने धातुशास्त्र के ज्ञान के

---

१ कुमारं गहेत्वा अत्तनो वसनट्ठानं नेत्वा सतसहस्सग्घनिकं सुवण्णपणालियावुतं कम्बलसुत्तवट्टिं तस्स कण्ठे पिलन्धापेसिं... सत्तट्ठवस्सिकं एव उग्गहितसिप्पकञ्च बाहुसच्चभावञ्च अकासि। वंसत्थप्पकासिनी पृ. ४५
याचित्वा चन्द्रगुप्तं तं उद्दिसापयितुं ततो। गहेत्वान कुमारं सो उद्दिसापिय सिक्खति।। कम्बोडियायी महावंस।। पृ. ४८

२ कोशेन भृत्यैश्च निबद्धमूलं पुत्रैश्च मित्रैश्च विवृद्धशाखम् ।
उत्पाट्य नन्दं परिवर्तयामि महाद्रुमं वायुरिवोग्रवेगः।।
परिशिष्टपर्वण ३.८२

कारण बहुत सा सुवर्ण एकत्र कर लिया था। उस समय चन्द्रगुप्त का जन्म हो चुका था। वह गॉव के बच्चो के साथ राजा बनकर खेल रहा था। चाणक्य ने उसे देखकर उसकी प्रतिभा पहॅचान ली। उसकी मॉ से पूर्ववचनानुसार चन्द्रगुप्त को चाणक्य अपने साथ ले गया।

इस प्रकार बौद्ध तथा जैन इन दोनो ही अनुश्रुतियो मे बताया गया है कि चन्द्रगुप्त मोरिय जाति से था तथा चाणक्य उसे तक्षशिला ले गया था। ये दोनो बाते क्लासिकल लेखको के विवरणो से भी समर्थित है। जस्टिन चन्द्रगुप्त का जन्म मामूली घराने मे मानता है। चद्रगुप्त चाणक्य से तक्षशिला मे शिक्षा प्राप्त कर रहा था यह प्लूटार्क के इस कथन से सर्वथा सङ्गत है कि जब ३२६ ई० पू० मे सिकन्दर पंजाब आया था तब चन्द्रगुप्त, जो उस समय नवयुवक ही था सिकन्दर से मिला था।[१]

मुद्राराक्षस मे भी चन्द्रगुप्त के उस समय युवा होने की चर्चा की गयी है, जब वह नन्दो को समाप्त कर राजसिंहासन पर अधिकार कर लेता है। उस समय उसने अत्यधिक क्लिष्ट भी राज्यकर्म को नवीन अवस्था (यौवन) में ही धारण कर लिया है। मनस्वी चन्द्रगुप्त अभी शिक्षा ग्रहण कर रहा था इस लिए प्रौढ़ न होने के कारण कहीं कही स्खलित हो रहा है। फिर भी दु:खी नही हो रहा है।[२] बाल्यावस्था मे वह प्रतिभाशाली था इस तथ्य का भी मुद्राराक्षस मे उद्घाटन किया गया है। राक्षस जब आत्मसमर्पण करके चन्द्रगुप्त का मन्त्रित्व स्वीकार कर लेता है, उस समय चन्द्रगुप्त के लिए

---

१ मजुमदार, क्लासिकल एकाउन्ट्स पृ १९९

२ धुरं तामेवोच्चैर्नववयसि बोढुं व्यवसितो।
मनस्वी दम्यत्वात् स्खलति न च दु:खं वहति।। मुद्रा. ३.३

कहता है कि बाल्यकाल से ही इसमे महान् उदय के गुण विद्यमान थे, इसीलिए यह राजसिंहासन पर क्रमशः आरूढ हो गया।[१]

चाणक्य एवं चन्द्रगुप्त द्वारा नन्दों का विनाश- चाणक्य तथा चन्द्रगुप्त की भेट एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक घटना थी। यद्यपि क्लासिकल लेखको ने चाणक्य का उल्लेख नही किया है। उनकी दृष्टि राजा पर ही रही होगी। किन्तु भारत की पुराणो, बौद्धो तथा जैनो की सभी परम्पराएँ इस बात मे एकमत है कि चाणक्य की प्रेरणा से ही चन्द्रगुप्त नन्दो का विनाश करने में सफल हुआ।

महावंस जिसकी रचना पॉचवी शती ई० मे हुई थी मे स्पष्ट रूप से कहा गया है कि ब्राह्मण चाणक्य ने नवे नन्दनरेश घननन्द का विनाश करके चन्द्रगुप्त को सकल जम्बूद्वीप का शासक बनाया था।[२]

चन्द्रगुप्त की सेना के स्रोत- चन्द्रगुप्त की शिक्षा समाप्त हो जाने के बाद चाणक्य एवं चन्द्रगुप्त ने सेना एकत्र की। यहॉ यह भी सूचना दी गयी है कि चाणक्य ने धातुशास्त्र के ज्ञान से अंसख्य नकली कार्षापण बनाए थे। इसी धन के बल पर सेना एकत्र कर चाणक्य ने चन्द्रगुप्त को इसका सेनापति बना दिया।[३] जैन परिशिष्टपर्वण मे भी इस तथ्य का उल्लेख है कि चाणक्य ने धातुशास्त्र की सहायता से धन एकत्र करके नन्दो का विनाश

---

१ बाल एव हि लोकेऽस्मिन् सम्भावितमहोदयः।
क्रमेणारूढवान् राज्यं यूथैश्वर्यमिव द्विपः।। मुद्रा ७.१२

२ मोरियानं खत्तियानं वंसे जात सिरीधर।
चन्दगुत्तोति पञ्चजातं चाणक्को ब्राह्मणो ततो।।
नवं घननन्दन्तं घातेत्वा चण्डकोधसा।
सकले जम्बूद्वीपम्हि रज्जे समभिसिञ्चि सो।। महावंस ३.२८

३ महाबलकायं संगहेत्वा तं तस्स पटिपादेसि। महावंशटीका पृ. २२०

करने के लिए सैनिक भर्ती किए थे। जस्टिन के अनुसार भी चन्द्रगुप्त सेण्ड्रोकोट्टोस ने अपने नये राजत्व की स्थापना अथवा विद्यमान शासन को उलटने के लिए वेतनभोगी सैनिक अथवा लुटेरो के गिरोह को एकत्र किया था। मैक्रिण्डल ने जस्टिन के लुटेरे शब्द का पंजाब के आयुधजीवी आरट्ठ या अराष्ट्रक अर्थ स्वीकार किया है।[१] बौधायन धर्मसूत्र जो कि लगभग ४०० ई०पू० की रचना है मे पंजाब को आरट्ठो का देश बताया गया है।[२] महाभारत मे भी आरट्ठो को पंचनद और बाहीक अर्थात् पंजाब का निवासी बताया गया है।[३] रीज डेविड्स ने भी निष्कर्षतः यही सिद्ध किया है कि पजाब से भर्ती किये गये सैनिको के बल से ही चन्द्रगुप्त ने धननन्द को घेरकर परास्त किया था।[४] घननन्द बड़े साम्राज्य का स्वामी था। उसके पास अकूत धन तथा प्रभूत सेना थी। पराक्रमी एवं नयशाली वक्रनास, राक्षस आदि सचिव थे। ऐसे मे नन्दो को पराजित करना आसान नही था। जब चाणक्य पाटलिपुत्र आया था तब घननन्द का शासन था उसके पास ८० करोड़ की सम्पत्ति थी। वह खालो, गोद, वृक्षो तथा पत्थरो पर भी कर लेता था। धन का लोभी होने के कारण ही उसका नाम तिरस्कार में धननन्द रख दिया गया था।[५] कथासरित्सागर मे नन्द की ९९ करोड़ सुवर्णमुद्राओ का उल्लेख मिलता है। मुद्राराक्षस मे तो ९९ सौ करोड़ द्रव्यो का स्वामी नन्दो को बताया गया है।[६] इसका मूल नाश करने के लिए निश्चित रूप से सबल सेना आवश्यक थी। चाणक्य तथा चन्द्रगुप्त ने पश्चिमोत्तर प्रदेशों के सैनिको को भर्ती करके नन्दो

---

१ Invasion of India by Alexander, पृ ४.६

२ बौधायन धर्मसूत्र १.१.२. १३-१५

३ महाभारत ८.४४.२.७. तथा ८.४५.२११०

४ Rys Devids, Buddlist India पृ २६७

५ महावंसटीका पृ. २२०

६ केनान्येनावलिप्ता नवनतिशतद्रव्यकोटीश्वरास्ते। मुद्रा. ३.२७

पर आक्रमण किया था। इसका स्पष्ट उल्लेख मुद्राराक्षस मे भी किया गया है। इसके अनुसार चन्द्रगुप्त तथा पर्वतेश्वर ने चाणक्य के निर्देशन मे शक, यवन, किरात, काम्बोज, पारसीक तथा बाह्लीको की प्रबल सेनाओ के साथ कुसुमपुर अर्थात् पाटलिपुत्र को चारो तरफ से घेर लिया था।[१] महाभारत मे प्रस्थल, भद्र, गान्धार, खश, वसति, सिन्धु तथा सौवीर नामक जातियो का उल्लेख प्राप्त होता है। ये जातियाँ पंजाब मे निवास करती थी। कौटिल्य ने अर्थशास्त्र मे पॉच प्रकार के लोगो को सेना मे भर्ती करने का विधान किया है- (१) चार या प्रतिरोधक, (२) चोरगण, लुटेरो के संगठित दल, (३) पर्वतवासी किरात आदि जैसी म्लेच्छ जातियाँ (४) आटविक तथा (५) शस्त्रोपजीवी श्रेणियाँ। चाणक्य ने इन गणजातियो से भरती किये गये सैनिको को प्रवीर कहा है।[२] पाणिनि की अष्टाध्यायी मे भी गणतान्त्रिक जातियो का विवरण प्राप्त होता है। पाणिनि ने गणतन्त्र के लिए संघ अथवा गण शब्द का प्रयोग किया है। इनमे से अधिकांश गणतन्त्र शस्त्रास्त्र धारण करने लगे। इसीलिए उन्हे आयुधजीवी संघ कहा गया है। ये पंजाब के निवासी थे। पाणिनि की अष्टाध्यायी मे (१) क्षुद्रक (यूनानी आक्सीड्रकाई), (२) मालव[३] (मल्लोई), (३) वृक जिन्हे वार्केण्य[४] भी कहते थे, सम्भवतः यह हिरसेनियन (शक) जाति थी। इन्हे दारा प्रथम के बहिस्तून 'शिलालेख मे वर्कानः तथा फारसी के एक दूसरे प्राचीन शिलालेख मे वर्काः कहा गया है, (४) पर्शु, इनका सम्बन्ध असुर तथा राक्षस जातियो से था। दारा प्रथम के बहिस्तून

---

१ अस्ति तावत् शकयवन किरातकाम्बोजपारसीकबाहलीकप्रभृति श्चाणक्यमतिपरिगृहीतैश्चन्द्रगुप्तपर्वतेश्वरबलै- रुदधिभिरिव प्रलयकालचलितसलिलैः समन्तादुपरुद्धं कुसुमपुरम् । मुद्रा. पृ. ५८

२ अर्थशास्त्र ७.१०

३ खण्डिकादिभ्यश्च पा सू. ४.२.४५

४ वृकाट्टेण्यण् । पा. सू ५.३.११५

शिलालेख मे इनके निवास स्थान को पार्श कहा गया है। यह अखमनी जाति के लोगो का निवास स्थान था। इसी से उस देश का नाम फारस अर्थात् पर्शिया पड़ा। (५) यौधेय, (६) साल्व, (७) भर्ग, (८) अम्बष्ठ[१], अम्बष्ठो के साथ महाभारत मे शिबि, क्षुद्रक, मालव आदि उत्तर पश्चिम की अन्य जातियो का उल्लेख किया गया है। (९) हास्तिनायन, (१०) प्रकण्व, (११) मद्र (१२) मधुमन्त (१३) आप्रीत (१४) वसाति[२] (१५) शिबि (१६) आश्वायन तथा (१७) आश्वकायन, कम्बोज, चोल, केरल, शक, यवन[३], आदि जातियो का उल्लेख प्राप्त होता है। उस समय इन विभिन्न जातियो के अलग अलग गणतन्त्र थे। इनकी अपनी स्वतन्त्र सत्ता थी। इनके त्रिगर्त षष्ठ साल्व ये राज्यसंघ भी थे। अर्रियन के अनुसार उस समय पंजाब का बहुत बड़ा भाग इन स्वतन्त्र भारतीय जातियो के कब्जे मे था। कर्टियस के अनुसार ये खूँखार जातियाँ थी। इन्होने रक्त बहाकर सिकन्दर का मुकाबला किया था। इन्ही जातियों को चन्द्रगुप्त ने संगठित किया था। चाणक्य द्वारा संगृहीत धन का इस कार्य के लिए उपयोग किया गया। मुद्राराक्षस के अनुसार नन्दो को परास्त करने के लिए इन्ही सैनिको ने चन्द्रगुप्त की मदद की।

चन्द्रगुप्त की पर्वतेश्वर से सन्धि : इस कार्य के लिए चाणक्य एवं चन्द्रगुप्त ने हिमालय प्रदेश के राजा पर्वतेश्वर, पर्वतक या पर्वतेश से सन्धि की थी।[४] सहयोग के बदले मे इसे आधा राज्य देने का वचन भी दिया था। किन्तु बाद मे चाणक्य ने इसे विषकन्या के प्रयोग से मरवा दिया[५] तथा प्रवाद

---

१ न प्राच्यभर्गादियौधेयादिभ्य पा. सू ४ १.११८

२ राजन्यादिभ्यो वुञ् ४ २ ५३

३ कम्बोजजाल्लुक पा. सू. ४ १ १७५

४ मुद्रा. पृ. ५८

५ (क) चन्द्रगुप्तनिधनाय युष्मत्प्रयुक्तया विषकन्यया घातिते तपस्विनि पर्वतेश्वरे। मुद्रा. पृ ५९

फैला दिया कि नन्दो के मन्त्री राक्षस ने चाणक्य का अपकार करने के उद्देश्य से पर्वतेश्वर का वध करा दिया। यह पर्वतक कोई ऐतिहासिक पात्र है अथवा नही इसमे मतभेद है। परिशिष्टपर्वण, आवश्यकनिर्युक्ति पर देवेन्द्रगणी की सुखबोधा तथा हरिषेणाचार्य के बृहत्कथाकोश मे भी कहा गया है कि चाणक्य हिमवत्कूट गया तथा उसने उस प्रदेश के राजा से सन्धि की। जैन परम्परा मे नन्दमौर्य युद्ध के विषय मे जहॉ चर्चा की गयी है वहॉ पर पर्वतक का उल्लेख प्राप्त होता है। प्रथमतः चाणक्य एवं चन्द्रगुप्त ने भलीभॉति तैयारी करके नन्दो पर आक्रमण कर पाटलिपुत्र को घेर लिया। लेकिन नन्दो की सबलतर सेना से पराभूत हुए। वहॉ से भागकर अपनी जान बचायी। इधर उधर भटकते समय उन्होने एक गॉव मे एक बच्चे को गर्म खिचडी मे अपना हॉथ जला लेने पर मॉ के द्वारा दी गई शिक्षा सुनी। मॉ ने कहा कि तुम चाणक्य के समान मूर्ख हो। खाने का ढंग भी नही जानते।[१] जिस प्रकार चाणक्य ने विना सीमान्त प्रदेशो को अपने वश मे किये ही शत्रु के सुदृढ़ मध्यवर्ती क्षेत्र पर आक्रमण करने की मूर्खता की और पराजित हुआ उसी प्रकार किनारे के ठण्डे भोजन को छोड़कर यह बालक बीच मे गर्म भोजन को खाता हुआ उॅगली जला बैठा। इससे शिक्षा लेकर चाणक्य हिमत्कूट गया और राजा पर्वतक से सन्धि कर विशाल सेना एकत्र की। इसके बाद चन्द्रगुप्त ने प्रान्तो को जीतकर नन्दो को पाटलिपुत्र मे घेर कर[२] आत्मसमर्पण करने के लिए विवश कर दिया। राजप्रसाद पर आधिपत्य कर लेने के बाद चन्द्रगुप्त तथा पर्वतक ने सारा धन एवं राज्य आधा आधा बॉट लिया। परन्तु तभी विषकन्या से विवाह करने के कारण पर्वतक की मृत्यु हो गयी। इस परम्परा

(ख) दैवात्पर्वतकस्तया स निहतो यस्तस्य राज्यार्धहृत् ।। मुद्रा २.१६

१ चाणक्कमंगुल भोत्तंपि ण जाणसि। बृहत्कथा कोश पृ. ५७

२ पाडलिपुत्तं तओ रोहियं। वही. पृ. ६०

के अनुसार चाणक्य ने विषकन्या का प्रयोग नही किया था, न ही उसने बचाने का प्रयास किया। इससे चन्द्रगुप्त पूरे राज्य का स्वामी बन गया।[1] बौद्ध परम्परा मे रेंभी नन्द चन्द्रगुप्त संघर्ष को लेकर एक कहानी प्रस्तुत की गयी है कि माँ अपने पुत्र को इस बात के लिए डाटती है कि वह रोटी के बीच का भाग खाकर किनारे का अंश फेक देता था यह उसी प्रकार की मूर्खता थी कि चन्द्रगुप्त सीमान्त प्रदेशो और मार्ग मे पड़ने वाले नगरो पर बिना अधिकार किये ही मध्यवर्ती भाग पर आक्रमण कर देता है। इससे शिक्षा लेकर चन्द्रगुप्त पहले सीमान्त प्रदेशो से विजय अभियान प्रारम्भ करता है।[2] फिर भी सैन्य दल न छोड़ने के कारण विद्रोह होते रहे। चन्द्रगुप्त ने इस गलती को भी सुधार कर, सीमान्त प्रदेशो मे अपना नियन्त्रण स्थापित किया अन्त मे चन्द्रगुप्त नन्दो का विनाश करने मे सफल हुआ।[3] वंसत्थथकासिनी तथा कम्बोडियायी महावंस नामक बौद्धग्रन्थो मे भी चाणक्य द्वारा पर्वत नामक राजकुमार से सहयोग मॉगने का उल्लेख प्राप्त होता है। यह उल्लेख बहुत प्रामाणिक नही है क्योकि यहॉ पर पर्वतक को धननन्द का पुत्र बताया गया है। मुद्राराक्षस, जैन परम्परा तथा बोद्धो ने पर्वतेश्वर का जो उल्लेख किया है उसमे पूर्ण सत्यता न भी हो किन्तु नन्दो के विनाश के लिए इस नाम के राजा से चाणक्य चन्द्रगुप्त ने सन्धि की थी इसे असत्य नही कहा जा सकता। पुराण, बौद्ध एवं जैन परम्पराओ मे नन्दो के विनाश के लिए जिस सामरिक संघर्ष की चर्चा है मुद्राराक्षस से भी इसका समर्थन होता है। इसमे राक्षस को वश मे करने के लिए तो कूटनीतिक चाले चली गयी है। तलवारे तो खनकती है। मलयकेतु की सेना लड़ने के लिए पाटलिपुत्र के बाहर खन्नद्ध

---

१ दो वे रज्जाणि तस्य जायणि। वही. पृ. ६१

२ पञ्चन्ततो पट्ठाय। वसत्थपकासिनी पृ. २२५

३ उग्गहितनया बलं संविधाय। वसत्थपकासिनी पृ २२६

खड़ी है। फिर भी प्रवलविरोधी राक्षस हो या मलयकेतु मारे नही जाते।[१] किन्तु नन्द मौर्य संघर्ष मे पर्याप्त बल प्रयोग हुआ है। मुद्राराक्षस मे इस युद्ध मे खूनी संघर्ष की पर्याप्त चर्चा है। चाणक्य कहता है मैने सम्पूर्ण शत्रुओ के कुल को ध्वंस करने की दुःसाध्य प्रतिज्ञा की थी। उस प्रतिज्ञा को पूरा करने के लिए मेरे द्वारा राक्षस के सामने ही ९९ सौ करोड़ मुद्राओ के स्वामी नन्द पशुओ के समान क्रमशः मार दिये गये।[२] नन्दो को समाप्त करने की प्रतिज्ञा को चाणक्य दु्साध्य कहता है। इस का अभिप्राय यही है कि नन्दो से मौर्यो का भयङ्कर संघर्ष हुआ होगा जिसमे पर्वतेश्वर से सहयोग लेना स्वाभाविक था।

पर्वतेश्वर की पोरस से अभिन्नता- सम्भवत यह पर्वतेश्वर पोरस नाम का पंजाब का वह नरेश था जिसने झेलम नदी के किनारे युद्ध मे सिकन्दर का बहादुरी के साथ सामना किया था। इस तथ्य को टामस तथा मुखर्जी आदि विद्वानो ने भी स्वीकार किया है। पर्वतेश्वर की पोरस के रूप मे अभिज्ञान मे एक शङ्का यह कह कर प्रकट की गई है कि डायोडोरस के अनुसार पोरस की हत्या यूडेमस ने की थी जबकि पर्वतेश्वर की हत्या विषकन्या के प्रयोग से करायी गयी थी। किन्तु यहॉ डायोडोरस ने पोरस का ही उल्लेख किया है, यह निश्चित नही है तथा एक यह भी सम्भावना है कि नन्दो के विरुद्ध अभियान मे चन्द्रगुप्त चाणक्य एवं पर्वतेश्वर के साथ यूडेमस

---

१ (क) रक्षणीया राक्षसस्य प्राणा इत्यार्यादेश। मुद्रा., पृ १२२
(ख) राक्षस- राजन् चन्द्रगुप्त विदितमेव ते यथा वय मलयकेतौ कंचित्कालमुषितास्तत्परिरक्ष्यन्तामस्य प्राणा। मुद्रा पृ १६४

२ (क) लोकप्रत्यक्षगुग्रां सकलरिपुकुलोत्सादर्दीर्घा प्रतिज्ञाम्
केनान्येनावलिप्ता नवनवतिशतद्रव्यकोटीश्वरास्ते।।
नन्दा पर्यायभूता पशव इव हता पश्यतो राक्षसस्य।। मुद्रा ३ २७
(ख) मुद्रा ३ २८ मे भी नन्दो की चिता की आग के जलते रहने का वर्णन किया गया है।

भी रहा हो, क्योकि मुद्राराक्षस मे यवनो की उपस्थिति की सूचना मिलती है। बाद मे यूडेमस से चाणक्य ने पर्वतेश्वर की हत्या कराकर विषकन्या के प्रयोग की कथा फैला दी हो। यह भी सम्भव है कि यूडेमस ने जिस पोरस की हत्या की वह उस पोरस का पुत्र रहा हो जो सिकन्दर का समकालीन था तथा जिससे चाणक्य ने सन्धि की थी।

अपने पिता के साथ विश्वासघात की खबर सुनकर मलयकेतु चन्द्रगुप्त के विरुद्ध हो जाता है। उस समय भी उसके साथ मिलकर कई प्रदेशो के राजा, सामन्त तथा विभिन्न जातियो के सैनिक चन्द्रगुप्त से लडने के लिए सन्नद्ध थे। किन्तु चाणक्य की नीति से राक्षस जोकि चन्द्रगुप्त के लिए मुख्य चुनौती बना हुआ था से मलयकेतु का कलह हो जाता है और यह प्रयास पूरी तरह विफल हो जाता है। मलयकेतु के साथ कुलूत के राजा चित्रवर्मा, मलय के राजा सिंहनाद, कश्मीर के राजा पुष्कराक्ष, सैन्धवराज सिन्धुषेण तथा पारसीको का राजा मेघ चन्द्रगुप्त के विरोध मे लड़ने को सन्नद्ध थे।[१] साथ ही इस युद्ध मे खस, मगधगण, गान्धार, यवन, शक, चीण, हूण तथा कौलूत आदि सैनिक भी मलयकेतु के साथ थे।[२] ये सब पाटलिपुत्र को जीतना चाहते थे किन्तु मलयकेतु चाणक्य की कूटनीति का शिकार हो गया। राक्षस जब आत्मसमर्पण कर देता है तो मलयकेतु को बन्धनमुक्त करके उसका राज्य

---

१ कौलूतश्चित्रवर्मा मलयनरपतिः सिंहनादो नृसिह
काश्मीर· पुष्कराक्ष· क्षतरिपुमहिमा सैन्धवः सिन्धुषेण।
मेघाख्य· पञ्चमोऽस्मिन् पृथुतुरगबल· पारसीकाधिराजो
नामान्येषां लिखामि ध्रुवमहमधुना. चित्रगुप्त. प्रमार्ष्टु।। मुद्रा १ २०

२ प्रस्थातव्यं पुरस्तात्समगधगणैर्मामनुव्यूहय सैन्यै-
र्गान्धारैर्मध्ययाने सयवनपतिभि संविधेय प्रयत्न।
पश्चात्तिष्ठन्तु वीरा शकनरपतय संभृताश्चीणहूणै
कौलूताद्यश्च शिष्ट पथि पथि वृणुयाद्रालोक कुमारम् ।। मुद्रा ५ ११

वापस कर दिया जाता है। किन्तु सम्भव है यूडेमस ने बाद मे उसे मार दिया हो। वह भी पर्वतीय प्रदेश का राजा था अत उसके पिता के समान सम्भव है उसका भी नाम डायोडोरस ने पोरस ही रखा हो।

चन्द्रगुप्त की अन्य विजयें- मुद्राराक्षस मे ऐसे संङ्केत प्राप्त होते है कि मगध पर स्थिरता पूर्वक राज्य स्थापित हो जाने के बाद चन्द्रगुप्त ने अपनी सीमाओ का विस्तार किया। उसने कश्मीर, पंजाब तथा दक्षिण मे मैसूर तक अपने साम्राज्य का विस्तार किया था। ┳

भारत पर सिकन्दर का आक्रमण तउा सका प्रतिकार- सिकन्दर ने भारत पर जब आक्रमण किया था उस समय चन्द्रगुप्त चाणक्य के सान्निध्य मे शिक्षा ग्रहण कर रहा था। चन्द्रगुप्त बाल्यकाल से ही होनहार था। उसने अपनी ऑख के सामने अपनी मातृभूमि पर विदेशी आक्रमण को देखा था। देश के छोटे-छोटे गणतन्त्रो ने विदेशी आक्रमण का अपनी सामर्थ्य भर विरोध किया था किन्तु असङ्गठित होने के कारण वे असफल हो गये। अपने देश पर विदेशी शासन की स्थापना से चाणक्य एवं चन्द्रगुप्त दोनो ही क्षुब्ध थे। कौटिल्य अपने अर्थशास्त्र मे विदेशी शासन की तीव्र भर्त्सना करता है। कौटिल्य के अनुसार विदेशी शासन शोषण का निकृष्टतम रूप है। विजेता देश विजित देश को कभी भी अपना प्रिय देश नही समझता। उस पर अत्यधिक कर लगता है तथा धन वसूल करता है और उस देश की संपदा को निचोड़ लेता है। अच्छी रकम लेकर उसे दूसरे के हाथ मे बेच देता है। विजेता विजित देश की प्रजा को विमुख जानकर सर्वस्व अपहरण कर वहॉ से चला जाता है।[१]

---

१ वैराज्य तु जीवत: परस्याच्छिद्य नैतन्मम इति मन्यमान: कर्षयत्यपवाहयति, पण्य वा करोति, विरक्तं वा परित्यज्यापगच्छतीति। अर्थशास्त्र ८.२.१२८, पृ. ५६२

चन्द्रगुप्त ने सिकन्दर के आक्रमण के समय जो भारतीय सेना असङ्गठित थी उसे सङ्गठित कर मगध पर अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया था। अब उसे विदेशी शासन से अपनी मातृभूमि को मुक्त कराना था। अपने ध्येय की पूर्ति के लिए चन्द्रगुप्त के पास सबल सैन्य शक्ति तो थी ही यूनानी शासन भी लड़खड़ा रहा था। चूँकि यूनानी तथा भारतीय दोनो सैनिको ने विद्रोह करना प्रारम्भ कर दिया था इसलिए उसके शासन के लिए खतरा उत्पन्न हो गया था। सिकन्दर के विजय अभियान के प्रति उसके अनुयायियो मे उसके जैसा उत्साह भी नही था। नियन्त्रण के लिए सिकन्दर ने बैक्ट्रिया तथा सोगडियाना मे यूनानी सैनिको की जो बस्तियॉ बसायी थीं[1] वे मौका मिलते ही अपने देश को चल पडी।[2] क्योकि इन बस्तियो को यूनानियो के लिए दण्ड माना जाता था।[3]

सिकन्दर ने जिन भारतीयो को अपने अधीन कर लिया था उनमे विद्रोह की भावना भरी हुई थी। सिकन्दर इससे परिचित था इसीलिए भारत के जिस भूभाग पर यूनानियो का आधिपत्य हो चुका था उस पर नियन्त्रण के लिए उसने छह क्षत्रपियो की नियुक्ति की। इनमे से तीन क्षत्रप जो सिन्धु के पश्चिम मे थे यूनानी थे तथा सिन्धु के पूर्व वाले तीनो क्षत्रप भारतीय थे। सिन्धु नदी से पश्चिम की ओर यूनानी शासको की स्थिति बड़ी तेजी से खराब हुई। कांधार तथा आश्वायनो ने सबसे पहले विद्रोह किया। आश्वकायनो ने अपने यूनानी शासक का जीना दूभर कर दिया। आश्वायनो द्वारा निकाबोर की हत्या कर दिये जाने के बाद सिकन्दर ने उसके स्थान पर अपने सेनापति फिलिप की नियुक्ति की। भारतीय शक्तिशाली शासक पौरव की गतिविधियों पर नजर रखने के लिए फिलप को तक्षशिला मे रखा गया। सिकन्दर ने मालवो तथा क्षुद्रको को भी अपने अधिकार मे कर लिया था। ये दोनो प्रान्त भारत के

---

[1] अरियन ४ २७.५

[2] डियोडोरस, XVII ९९

[3] जस्टिन XII, ५.१३

प्रवेश द्वार थे। इनका प्रशासक फिलिप को बनाया गया किन्तु कुछ ही दिनो मे फिलिप की हत्या कर दी गयी। फिलिप भारत मे यूनानी साम्राज्यवाद का आधार स्तम्भ था। इसकी हत्या से यूनानी शासन के पॉव उखड गये। फिलिप की मृत्यु के बाद सिकन्दर ने तक्षशिला के शासक को ही सिन्धु नदी, सीमान्त पार के काबुल की घाटी और हिन्दुकुश का आधिपत्य सौंप दिया। इसी समय ३२३ ई०पू० मे बेविलोन मे सिकन्दर की मृत्यु हो गयी। जिससे साम्राज्य मे उथल-पुथल मच गयी। अन्तिम दो यूनानी यूडेमस, जिसने सम्भवतः पोरस की हत्या की थी तथा पेइथन भी मारे गये। इनका स्थान लेने फिर कोई यूनानी नही आया।

यूनानियो ने भारत ऐसे ही नही छोड़ दिया। उन्हे चन्द्रगुप्त के नेतृत्व मे स्वतन्त्रता के लिए लड़े गये युद्ध को झेलना पड़ा। चन्द्रगुप्त के नेतृत्व मे यूनानियो के विरुद्ध सुनियोजित आक्रमण हुए, जिसमे यूनानी क्षत्रप मार दिये गये। ३२५ ई०पू० से ३२३ ई०पू० तक की घटनाओ का उल्लेख करते हुए जस्टिन ने कहा है कि 'सिकन्दर की मृत्यु के बाद भारत ने मानो अपने गले से दासता का जुॅआ उतार फेका और उसके क्षत्रपो को मार डाला। इस मुक्ति का स्रस्टा सैड्रोकोट्टस था। उसने लुटेरो का एक गिरोह इकट्ठा करके भारतवासियो को तत्कालीन यूनानी शासन का तखता उलट देने के लिए भड़काया। अन्ततोगत्वा चन्द्रगुप्त ने भारत को अपने अधीन कर लिया। इस उद्धरण मे चन्द्रगुप्त को भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम का नायक कहा गया है। उसने क्षत्रपो की हत्या कराकर यूनानी शासन का भारत से अन्त कर दिया था। इसीलिए जब सिकन्दर की मृत्यु पर उसके सेनापतियो ने सिकन्दर द्वारा विजित साम्राज्य का आपस मे बॅटवारा किया तो भारत को नही छुआ। इन्होने भारत की स्वतन्त्रता को निश्चित रूप से स्वीकार कर लिया था।

सेल्यूकस का प्रतिकार : इसी समय सेल्यूकस का अभ्युदय हुआ। उसने ३११ ई०पू० तक बेबिलोन के शासक के रूप मे अपनी स्थिति सुदृढ़ कर ली थी। ३०५ ई०पू० के आसपास सिकन्दर के आधिपत्य से मुक्त कराये गये भारत पर फिर आधिपत्य कायम करने की योजना बनाकर सेल्यूकस ने काबुल नदी का रास्ता पकड़कर सिन्धु नदी पार की। परन्तु यह

अभियान इसलिए नही सफल हो सका क्योकि उसे चन्द्रगुप्त के नेतृत्व मे सङ्गठित तथा शक्तिशाली भारत देश से मोर्चा लेना पडा। उसने चन्द्रगुप्त से सन्धि करने मे अपना कल्याण समझा। इस सन्धि की शर्तो के अनुसार ५०० हाथियो के बदले सेल्यूकस को अरकोसिया (कंदहार) एवं परोपामिसदे (काबुल) की क्षत्रपियो और उसके साथ अरिया (हेरात) तथा गेट्रोसिया (बलूचिस्तान) के कुछ हिस्से चन्द्रगुप्त को सौपने पड़े। जिससे चन्द्रगुप्त का अपना साम्राज्य ईरान की सीमा तक फैल गया।

भारतीय प्रान्तों पर विजय- बाद मे चन्द्रगुप्त ने भारत के अन्य प्रदेशो को भी जीतकर अपने राज्य का विस्तार किया। इसने पश्चिमी भारत बंगाल तथा दक्षिणी भारत पर भी विजय प्राप्त की थी। शक महाक्षत्रप रुद्रदामा प्रथम के जूनागढ़ लेख के अनुसार चन्द्रगुप्त मौर्य के राष्ट्रिय अर्थात् गवर्नर पुष्यगुप्त ने ऊर्जयत पर्वत से नीचे की ओर बहने वाली सुवर्णसिकता और पलासिनी आदि नदियो पर बॉध बनवाकर सुदर्शन तडाग का निर्माण करवाया था। अशोक के काल मे यवनराज तुषास्फ ने इस जलाशय से बहुत सी नहरे निकलवायी।[१] इससे स्पष्ट है कि चन्द्रगुप्त का शासन पश्चिम मे सुराष्ट्र तक था। इसका अवन्ती पर भी शासन था क्योकि इसके उत्तराधिकारियो के समय में उज्जैन एक प्रान्तीय राजधानी थी। कलिङ्ग पर सम्भवतः चन्द्रगुप्त का अधिकार नही था। दक्षिण मे भी मैसूर के चित्तलदुर्ग तक विस्तृत भूभाग चन्द्रगुप्त के राज्य मे सम्मिलित था। प्लूटार्क के कथनानुसार चन्द्रगुप्त ने ६ लाख की सेना लेकर सारे भारत को रौद डाला और अपने अधीन कर लिया। इसी प्रकार जस्टिन भी सूचना देता है कि 'चन्द्रगुप्त मौर्य का सम्पूर्ण भारत पर अधिकार था।'

मुद्राराक्षस से इन सभी तथ्यो का समर्थन होता है कि भारतभूमि यवनो से आक्रान्त थी, चन्द्रगुप्त ने विदेशियो के शासन से उसे मुक्त कराया तथा वह पूरे भारत का सम्राट् था। नाटक के भरतवाक्य मे राक्षस स्पष्ट रूप से

---

१ मौर्यस्य राज्ञः चन्द्रगुप्तस्य राष्ट्रियेण वैश्येन पुष्यगुप्तेन कारितं अशोकस्य मौर्यस्य कृते यवन राजेन तुषास्फेनाधिष्ठाय प्रणालीभिरलङ्कृम्। प्रथम रुद्रदामा सं इं. पृ. १७७

कहता है कि जिस प्रकार प्रलय काल मे पृथ्वी ने बराहावतार भगवान् विष्णु के दॉतो का आश्रय लिया था उसी प्रकार म्लेच्छो के द्वारा आक्रान्त भारत भूमि ने विष्णु के अवतार स्वरूप चन्द्रगुप्त से पृथ्वी की रक्षा करने की भी प्रार्थना की है।[१] मुद्राराक्षस के विवरणो से यह भी स्पष्ट है कि चन्द्रगुप्त ने सम्पूर्ण भारत पर शासन किया था तथा सभी शासक इसकी आज्ञा को शिरोधार्य मानते थे। तृतीय अङ्क मे चाणक्य चाहता है कि हिमालय से लेकर दक्षिण सागर तक के सभी राजा आकर चन्द्रगुप्त के चरणो के सामने नतमस्तक हो।[२] इस पर चन्द्रगुप्त कहता है आपकी कृपा से मै इस सुख का उपभोग कर रहा हूॅ।[३] इसी अङ्क मे पुनः यह बात कही गयी है कि चारो समुद्रो के पार से आये हुए राजगण चन्द्रगुप्त की आज्ञा को अपने शिरो पर माला की तरह धारण करते थे।[४] वस्तुतः वह सार्वभौम शासक था।[५]

---

१ म्लेच्छैरुद्विज्यमाना भुजयुगमधुना संश्रिता राजमूर्तेः।
स श्रीमद्बन्धुभृत्यश्चिरमवतु मही पार्थिवश्चन्द्रगुप्तः।। मुद्रा. ७.१९

२ आ शैलेन्द्राच्छिलान्तस्खलितसुरनदीशीकरासारशीता-
त्तीरान्तान्नैकरागस्फुरितमणिरुचो दक्षिणस्यार्णवस्य।
आगत्यागत्य भीतिप्रणतनृपशतैः शश्वदेव क्रियन्ताम्
चूडत्नांशुगर्भास्तव चरणयुगस्याङ्गुलीरन्ध्रभागाः।। मुद्रा ३ १९

३ राजा- आर्यप्रसादेनानुभूयत एव सर्वम् ।। मुद्रा. पृ. ८४

४ अम्भोधीनां तमालप्रभवकिसलयश्यामवेलावनाना-
मा पारेम्यश्चतुर्णा चटुलतिमिकुलक्षोभितान्तर्जलानाम् ।
मालेवाम्लानपुष्पा तव नृपतिशतैरुह्यते या शिरोभिः।। मुद्रा. ३.२४

५ नाज्ञाभङ्गं सहन्ते नृवर नृपतयस्त्वादृशाः सार्वभौमाः।। मुद्रा. ३.२२

तृतीय अध्याय

मुद्राराक्षस की नाट्यशास्त्रीय समीक्षा

मुद्राराक्षस की नाट्यशास्त्रीय समीक्षा

नाट्यशास्त्रियो ने दृश्यकाव्य के अन्तर्गत रूपको एवं उपरुपको का परिगणन किया है। नाट्य, रुप, एवं रुपक ये शब्द समानार्थी है। अवस्था की अनुकृति को नाट्य कहा गया है। काव्य मे वर्णित नायक की धीरोदात्त आदि अवस्थाओ का अनुकरण ही नाट्य है। आङ्गिक वाचिक, आहार्य एवं सात्त्विक अभिनयो द्वारा अनुकार्य के साथ तादात्म्य स्थापित कर लेना ही नाट्य है। इसी नाट्य को दृश्यमान होने के कारण रूप भी कहा जाता है। नट मे रामादि नायको की अवस्था का आरोप किया जाता है अतः नाट्य को रूपक संज्ञा भी दी गयी है । इस प्रकार दृश्यकाव्य के लिए नाट्य, रूप, एवं रूपक शब्दो का प्रयोग किया गया है। सभी रूपको मे अवस्था का अनुकरण किया जाता है, किन्तु वस्तु नेता एवं रस के आधार पर उनमे परस्पर भेद माना जाता है ।

रूपको के दस दस भेद माने गये है (१) नाटक (२) प्रकरण (३) भाण (४) प्रहसन (५) डिम (६) व्यायोग (७) समवकार (८) वीथी (९) अङ्क (१०) ईहामृग ये सभी रूपक रसो पर आश्रित होते है। ये शुद्ध रूपक है। नाटिका एवं त्रोटक आदि १८ प्रकार के उपरूपक भी होते है। ये सङ्कीर्ण होते है। कथावस्तु, नायक एवं रस की दृष्टि से मुद्राराक्षस नाटक की कोटि मे आता है, क्योकि नाट्यशास्त्रियो द्वारा प्रतिपादित नाटक के सभी लक्षण इसमे पूर्णतया घटित होते है ।

नान्दी - प्रत्येक नाटक मे कथावस्तु को प्रस्तुत करने से पहले पूर्वरङ्ग का विधान किया जाता है। नाट्यवस्तु को प्रस्तुत करने से पूर्व मे रङ्ग अर्थात् नाट्यशाला के विघ्नो को दूर करने के लिए नर्तको द्वारा जो कुछ किया जाता है उसे पूर्वरङ्ग कहते है। पूर्वरङ्ग के अन्तर्गत रङ्गस्थल के विघ्नो की शान्ति के लिए नान्दी का प्रयोग अवश्य करना चाहिए ।[१] नान्दी के द्वारा देवता, ब्राह्मण

---

[१] तथाप्यवश्यं कर्तव्या नान्दी विघ्नोपशान्तये। साहित्यदर्पण ६.२३

तथा राजादिको की आशीर्वादयुक्त स्तुति की जाती है। देवादिको की स्तुति किये जाने के कारण इसे नान्दी कहते है[१] इससे देवता आनन्दित होते है। इस लिए भी इसे नान्दी कहा जाता है। नान्दी शब्द नन्द धातु से निष्पन्न हुआ है पाणिनि धातु पाठ मे टुनदि समृद्धौ यह पाठ प्राप्त होता है। 'आदिर्ञिटुडव' (पा०सू०) से टु' की इत्संज्ञा, तथा 'उपदेशेऽजनुनासिक इत् (पा०सू०)से इ की इत्संज्ञा करने पर दोनो का 'तस्य लोपः' पा०सू०) से लोप हो जाता है। इदित होने के कारण 'इदितो नुम् धातोः' (पा०सू०) से नुम् का आगम करने पर नन्द धातु हुई। आशीर्योगादिना नन्दयतीति विग्रह मे नन्दधातु से 'नन्दिग्रहिपचादिभ्यो ल्युणिन्यचः' (पा०सू० ३.१.१३४) से पचादि के आकृतिगण होने के कारण अच् प्रत्यय हो जाता है! अतः नन्दः यह कृदन्त रूप बनता है ! यद्यपि नन्दयतीति विग्रह मे कर्ता अर्थ मे 'नन्दिग्रहि' इत्यादि सूत्र मे सिद्धान्तकौमुदीकार ने व्यवस्था दी है कि नन्दि इत्यादि धातुओ से 'ल्यु' प्रत्यय होता है तथा ल्यु को न आदेश करने पर नन्दनः रूप बनता है किन्तु आकृत्या नन्दः अच् प्रत्यय करने पर ही निष्पन्न होता है। नन्द एव इस विग्रह मे प्रज्ञादिभ्यश्च (पा०सू० ५.४.३८) से अण् प्रत्यय करने पर 'नान्द' यह तद्धितान्त रूप बनता है। नान्द से स्त्रीत्व की विवक्षा मे 'टिड्ढाणञ्द्वयसज्दघ्नञ्मात्रच्तयप्ठक्ठञ्क्वरपः (पा०सू०) से ङीप् प्रत्यय करने पर नान्दी रूप निष्पन्न हुआ है। वामन शिवराम आप्टे ने 'नन्द' धातु से घञ् प्रत्यय करके ङीप् करने पर नान्दी शब्द की व्युत्पत्ति स्वीकार की है। यहॉ एक समस्या यह है कि घञ् प्रत्यय करने पर ङीप् अथवा ङीष् प्रत्यय का विधायक कोई सूत्र पाणिनि ने नही निर्दिष्ट किया है। न ही प्रज्ञादिगण मे नन्द शब्द का परिगणन किया गया है, किन्तु प्रज्ञादि गण को भी आकृतिगण मानकर नन्द शब्द से अण् प्रत्यय की उपपत्ति हो जाती है।

नाटकों मे चार प्रकार की नान्दी का प्रयोग प्राप्त होता है- (१) नमस्कृति, (२) माङ्गलिक, (३) आशीर्वादात्मिका तथा (४) पत्रावली इसमें माङ्गल्य वस्तु, शङ्ख, चन्द्र,चक्रवाक एवं कुमुदादिको का वर्णन होना चाहिए ।

---

१ आशीर्वचनसंयुक्ता स्तुतिर्यस्मात्प्रयुज्यते।
देवद्विजनृपादीना तस्मान्नान्दीति कीर्तिता।। सा० द० ६.२४

इसमे बारह या आठ पद होने चाहिए।[१] पद से सुबन्त अथवा तिङन्त पदो का ग्रहण होता है । पद शब्द से श्लोक के चरण अर्थात् चतुर्थांश का भी ग्रहण होता है ।

मुद्राराक्षस के प्रारम्भ मे ग्रन्थकार विशाखदत्त ने ग्रन्थ की निर्विघ्न परिसमाप्ति के लिए नान्दी का प्रयोग किया है। ग्रन्थकार ने अधोलिखित दो श्लोको मे भगवान् शिव की वन्दना की है -

१- धन्या केयं स्थिता ते शिरसि शशिकला किन्तु नामैतदस्या,
नामैवास्यास्तदेत् परिचितमपि ते विस्मृतं कस्य हेतो ।
नारीं पृच्छामि नेन्दुं कथयतु विजया न प्रमाणं यदीदु
र्देव्या निह्नोतुमिच्छोरिति सुरसरितं शाठ्यमव्याद्विभोर्व ।।

२- पादस्याविर्भवन्तीमवनतिमवने रक्षतः स्वैरपातै
सङ्कोचेनैव दोष्णां मुहुरभिनयतः सर्वलोकातिगानाम् ।
दृष्टिं लक्ष्येषु नोग्रां ज्वलनकणमुचं बध्नतो दाहभीते
रित्याधारानुरोधात् त्रिपुरविजयिनः पातु वो दुःखनृत्यम् ।।[२]

प्रथम श्लोक मे वर्णित है कि भगवान् शङ्कर की जटाओ का आश्रय ली हुई अनिन्द्य सुन्दरी गङ्गा को देखकर ईर्ष्याकषायित पार्वती ने शिव से प्रश्न किया कि आपके शिर पर मुझसे भी अधिक भाग्यशाली यह कौन बैठी हुई है? उत्तर मे शिव द्वारा शशिकला का उल्लेख करने पर पार्वती कहती है कि मै उस दिव्ययुवतिरूपधारिणी गङ्गा के बारे मे पूँछ रही हूँ, इन्दु के बारे मे नही। इस पर शङ्कर जी ने प्रमाण के रूप मे विजया को उपस्थित कर पार्वती को गङ्गा से छिपाने की लीला की। भगवान् शङ्कर की यह लीला समस्त लोक की रक्षा करे।

---

१ माङ्गल्यशङ्खचन्द्राब्जकोककैरवशंसिनी।
पदैर्युक्ता द्वादशभिरष्टभिर्वा पदैरुत।। सा द ६.२५

२ मुद्रा. १.१-२

द्वितीय श्लोक का अभिप्राय यह है कि अपने चरणो के स्वच्छन्द विन्यास से होने वाली पृथ्वी की अवनति अर्थात्, भङ्गिमा को बचाते हुए अतः चरणो को धीरे-धीरे पृथ्वी पर रखते हुए, सम्पूर्ण लोको का अतिक्रमण करके व्याप्त होने वाली भुजाओ को सङ्कुचित करके कि कही इनके आघात से सभी लोक नष्ट न हो जॉय बार-बार अभिनय करते हुए, अत्यन्त तीव्र स्फुलिङ्गो को छोड़ने वाली दृष्टि अर्थात् तृतीय नेत्र को लक्ष्यो पर, कि कही वे जल न जॉय इसलिए न नियत करते हुए, इस प्रकार इस नृत्त के आधार पृथिवी आदि के क्रमशः भग्न, संहरण और दग्ध न हो जाने के अनुरोध से मय नामक राक्षस के त्रिपुर को जीतने वाले शिवजी का दुःख-नृत्य आप सब की रक्षा करे।

इन श्लोको के द्वारा शिव की स्तुति करते हुए कवि ने नान्दी का प्रयोग किया है। इष्ट की वन्दना के साथ ही कवि नान्दी के द्वारा काव्यार्थ की भी सूचना दे देता है। प्रथम श्लोक मे इन्दु पद का उपादान कर कवि ने समान नाम वाले चन्द्रगुप्त की भी सूचना दी है। कवि ने कविता के आदि मे चन्द्रगुप्त की लक्ष्मी के स्थैर्य के सूचक मगण का भी प्रयोग किया है। इसी प्रकार द्वितीय श्लोक मे त्रिपुर को जलाने में समर्थ शिव के समान नन्दवंश को जलाकर भस्म कर डालने वाले चाणक्य के द्वारा मलयकेतु एवं राक्षस दोनो को नष्ट करने मे समर्थ होने पर भी राक्षस को पकड़ कर चन्द्रगुप्त के साथ रखने की विवशता के कारण कुटिल कूटनीति का प्रयोग सूचित है।

नान्दी मे पदो का नियम अनिवार्य नही हैं। इसीलिए इस नाटक मे भी पदो के नियम का आदर नही किया गया है। पद शब्द का पाद अर्थ मान लेने पर दोनो श्लोको मे अष्टपदा नान्दी का कवि ने प्रयोग किया है ऐसा स्वीकार किया जा सकता है। यह पत्रावली नन्दी का उदाहरण है।

भारतीय परम्परा मे मङ्गलाचरण का बड़ा महत्त्व है। ग्रन्थ की निर्विघ्न परिसमाप्ति के लिए प्रायः ग्रन्थकार ग्रन्थ के आदि मे मङ्गलाचरण करते है। महाभाष्यकार पतञ्जलि ने मङ्गल की महत्ता को प्रतिपादित किया है। 'भूवादयो धातवः (पा०सू०) की व्याख्या में भाष्यकार ने लिखा है 'मङ्गलादीनि मङ्गलमध्यानि मङ्गलान्तानि च शास्त्राणि प्रथन्ते वीरपुरुषाण्यायुष्मत्पुरुषाणि च

भवन्ति। अध्येतारश्च प्रवक्तारो भवन्ति'। इसका अभिप्राय है कि ग्रन्थकार को ग्रन्थ के आदि, मध्य एवं अन्त मे मङ्गलाचरण करना चाहिए उससे शास्त्र का विस्तार होता है। उसके अध्येताओ की वृद्धि होती है। अध्येता प्रवक्ता हो जाते है। इसीलिए पाणिनि ने अष्टाध्यायी के आरम्भ मे वृद्धि शब्द का प्रयोग किया है। वृद्धि शब्द मङ्गलार्थक है। अदेङ्गुण' की तरह आदैज्वृद्धि' सूत्र पढ़ना चाहिए था। किन्तु पाणिनि ने समृद्धि के सूचक वृद्धि शब्द को मङ्गलार्थ आदि मे रखा है। जहाँ मङ्गलाचरण करने पर भी ग्रन्थो की परिसमाप्ति नही हुई है, जैसे कादम्बरी आदि ग्रन्थ वहाँ विघ्नाधिक्य की कल्पना करनी चाहिए। इसी प्रकार जहाँ विना मङ्गलाचरण के ग्रन्थ की समाप्ति निर्विघ्न देखी जाती है वहाँ विघ्नो के अभाव अथवा पूर्वजन्म के मङ्गल की सम्भावना करनी चाहिए। शिष्यो को भी मङ्गलाचरण करने की प्रेरणा प्राप्त हो इसलिए भी मङ्गलाचरण ग्रन्थकार को अवश्य करना चाहिए। इस नाटक में सूत्रधार नान्दी का पाठ करता है - सूत्रधारो पठेन्नान्दीं मध्यमस्वरमाश्रितः।

'नाद्यन्ते सूत्रधारः' इस वाक्य का प्रयोग कर कवि ने यह सूचना दी है कि नान्दीश्लोकों का पाठ सूत्रधार ही करता है। सर्वप्रथम यद्यपि सूत्रधार रङ्गमञ्च पर उपस्थित होकर स्वतः नान्दी का पाठ करता हैं किन्तु सूत्रधार का प्रवेश नाटक के आरम्भ मे नही निर्दिष्ट किया गया क्योकि संस्कृत की किसी भी रचना मे सर्वप्रथम किसी देवता को प्रणाम अथवा आशीर्वचन प्रस्तुत करने की परम्परा है। नान्दी मे भगवान् शिव से लोकमङ्गल की कामना की गयी है। उसके बाद 'नान्द्यन्ते सूत्रधारः' कहकर सूत्रधार के प्रवेश की सूचना दी गयी है। संस्कृत के किसी नाटक के आदि सूत्रधार को न दिखाकर नान्दी का ही पाठ किया गया है।

सूत्रधार- नाटको मे सूत्रधार की बड़ी महत्त्वपूर्ण भूमिका है। प्रथमतः वह मङ्गलार्थ नान्दी का पाठ करता है फिर काव्यार्थ की सूचना देता है। आचार्य भारत नाट्यशास्त्र मे यह विधान प्रस्तुत करते है कि सूत्रधार नान्दी का पाठ करके चला जाता है। फिर सूत्रधार के ही गुणो को धारण करने वाला व्यक्ति रङ्गमञ्च पर उपस्थित होकर काव्यार्थ की सूचना देता हुआ नाटक का प्रारम्भ करता है। इसे काव्यार्थ की स्थापना करने के कारण स्थापक कहा

जाता है।[1] दशरूपककार भी इसी मत के है कि प्रथमतः सूत्रधार पूर्वरङ्ग अर्थात् नान्दी का विधान कर चला जाता है। फिर स्थापक प्रविष्ट होकर काव्यार्थ की स्थापना करता है। यह सूत्रधार के ही गुणो को धारण करता है। किन्तु मुद्राराक्षस मे एक ही व्यक्ति सूत्रधार के रूप मे प्रयुक्त हुआ है। इसमे सूत्रधार से पृथक् स्थापक का प्रयोग नही किया गया है। प्राय अच्छे नाटको मे सूत्रधार से पृथक् स्थापक का प्रयोग नही किया गया है। आचार्य विश्वनाथ ने इस तथ्य का उल्लेख करते हुए माना है कि यद्यपि नाट्य-परम्पग के अनुसार सूत्रधार एवं स्थापक भिन्न-भिन्न व्यक्ति होते है किन्तु इस समय पूर्वरङ्ग का ठीक-ठीक विधान नही किया जाता, अत एक ही सूत्रधार सम्पूर्ण कार्य सम्पन्न करता है। यही व्यवहार नाट्यरचनाओ मे दिखाई पडता है।[2]

सूत्रधार नाटक का मुख्य व्यपस्थापक या अभिनेता होता है। सूत्रधार शब्द का अभिप्राय है कि जो सूत्र को धारण करता है। या ताना बाना बुनता है। सूत्रधार जो बोलता है। उसी को नाटक मे एक रूप या आकार मे प्रस्तुत करता है। यह रङ्गमञ्च पर किसी नाटक आदि के अभिनय की व्यवस्था करता है- 'सूत्रं प्रयोगानुष्ठानं धारयतीति सूत्रधार:' अर्थात् प्रयोग के अनुष्ठान को जो धारण करता है उसे सूत्रधार कहते है। जब नाटक का विकास किया जाता है तो उसमे वर्णित विभिन्न घटनाओ को सूत्रधार सूत्रबद्ध रूप मे उपस्थापित करता है। सूत्रधार काव्यार्थ की सूचना देने वाले मधुर श्लोको से रङ्ग अर्थात् नाट्यशाला की प्रशस्ति करके किसी ऋतु का प्रसङ्ग लेकर भारती वृत्ति का आश्रय लेता है।[3] सूत्रधार प्रकृत नाटकादि का नाम तथा कवि के नाम, गोत्र आदि का भी उल्लेख करता है।[4]

---

१ पूर्वरङ्ग विधायादौ सूत्रधारे विनिर्गते।
प्रविश्य स्थापकस्तद्वत् काव्यमास्थापयेन्नट:।। दशरूपक ३ २

२ इदानी पूर्वरङ्गस्य सम्यक् प्रयोगाभावादेक एव सूत्रधार: सर्व प्रयोजयतीति व्यवहार:। सा० द०, ६ २७ की वृत्ति

३ रङ्गं प्रसाद्य मधुरै: श्लोकै: काव्यार्थसूचकै:।
ऋतुं कञ्चिदुपादाय भारती वृत्तिमाश्रयेत् ।। दशरूपक ३.४

४ रुपकस्य कवेराख्यां गोत्राद्यपि स कीर्तयेत् ।। सा० द० ६ २८

मुद्राराक्षस मे सूत्रधार नान्दी का पाठ करके अपनी पत्नी से बातचीत करते हुए प्रकृत वस्तु का वर्णन करता है। इस प्रसङ्ग मे काव्यार्थ की उपस्थापना के लिए सूत्रधार ने भारती वृत्ति का आश्रय लिया है।

भारती वृत्ति- दशरूपककार धनञ्जय ने भारती वृत्ति का लक्षण माना है कि प्रायः संस्कृत भाषा मे नट द्वारा किया गया वाचिक व्यापार भारती वृत्ति है। इस लक्षण से स्पष्ट है कि नटी आदि स्त्री पात्रो का वाचिक व्यापार भारती वृत्ति के अन्तर्गत नही आता। इसके अन्तर्गत कायिक तथा मानसिक व्यापार भी नही आते। यह नियत पुरुषो द्वारा ही प्रयोज्य है तथा इसमे वाचिक व्यापार की प्रधानता होती है। भारती वृत्ति के चार अङ्ग हाते है- प्ररोचना, वीथी, प्रहसन एवं आमुख।[१]

(१) प्ररोचना- प्रस्तुत काव्यार्थ की प्रशंसा करके श्रोताओ की काव्यार्थ की ओर प्रवृत्ति करा देना ही प्ररोचना है।[२] ना०शा०, भावप्रकाश तथा नाट्यदर्पण आदि मे प्ररोचना का पूर्वरङ्ग के अङ्गो मे भी उल्लेख किया जाता है। इस प्रसङ्ग मे अभिनव गुप्ताचार्य ने यह समाधान प्रस्तुत किया है कि पूर्व रङ्ग का कार्य कर लेने के पश्चात् जो प्ररोचंना की जाती है वह भारती वृत्ति का अङ्ग है।[३]

मुद्राराक्षस मे 'अद्य त्वया सामन्तवटेश्वरदत्तपौत्रस्य महाराजपदभाक्पृथुसूनोः कवेर्विशाखदत्तस्य कृतिरभिनवं मुद्राराक्षसं नाम नाटकं नाटयितव्यम्'[४] इस अंश मे भरती वृत्ति का प्ररोचना अङ्ग प्रस्तुत किया गया है। यहाॅ पर काव्यार्थ की सूचना प्रस्तुत करते हुए 'सामन्तवटेश्वरदत्तपौत्रस्य' के रूप मे उच्च कुल मे उत्पत्ति का कथन करने से कवि की प्रशंसा की गयी है।

---

१ भारती संस्कृतप्रायो वाग्व्यापारो नटाश्रयः।
भेदैः प्ररोचनायुक्तैर्वीथीप्रहसनामुखैः।।
दशरूपक ३.७ तथा ना० शा० २०.२६, २७, सा० द० ६.२९, ३०

२ उन्मुखीकरणं तत्र प्रशंसातः प्ररोचना। दशरूपक ३.६, ना० शा० २०.२८

३ अभिनवभारती २० २८

४ मुद्राराक्षस, प्रथम अङ्क पृष्ठ-१३

'काव्यविशेषवेदिन्याम्'[१] एवं 'सत्क्षेत्रपतित'[२] के द्वारा काव्य एवं परिषद् की प्रशंसा की गयी है 'बालिशस्यापि'[३] के द्वारा अपने विनय को सूचित किया गया है, अत नट की स्तुति है। इस प्रकार मुद्राराक्षस का यह अश प्ररोचना का उदाहरण है।

आमुख- जहाँ सूत्रधार विचित्र उक्ति के द्वारा नटी, पारिपार्श्विक या विदूषक को प्रस्तुत अर्थ का आक्षेप करने वाला अपना कार्य बतलाता है वह आमुख या प्रस्तावना कहलाती है।[४]

मुद्राराक्षस मे प्रथम अङ्क के प्रारम्भ मे 'तद्यावदिदानी गृहं गत्वा गृहिणीमाहूय गृहजनेन सह सङ्गीतकमनुतिष्ठामि' इत्यादि आमुख का उदाहरण है। इस नाटक मे सूत्रधार अपनी पत्नी नटी से बातचीत करते हुए प्रकृत वस्तु का वर्णन करता है। इस आमुख के दशरूपककार के अनुसार १६ अङ्ग होते है। कथोद्धात, प्रवृत्तक, प्रयोगातिशय, उद्धात्यक अवलगित प्रपञ्च, त्रिगत, छल, वाक्केलि, अधिबल, गण्ड अवस्यन्दित, नालिका, असत्प्रलाप, व्याहार एवं मृदव।[५] इनमे से प्रथम तीन केवल आमुख के अङ्ग होते है। शेष तेरह वीथी के अङ्ग आमुख के भी अङ्ग माने गये है। ना. शा. तथा सा. द. मे आमुख के केवल ५ अङ्ग बतलाये गये हैं- उद्घातक, कथोद्घात, प्रयोगातिशय, प्रवर्तक तथा अवलगित।

कथोद्धात- जहाँ पात्र अपनी कथावस्तु से समानता रखने वाले सूत्रधार के वाक्य या वाक्यार्थ को लेकर प्रविष्ट होता है वह दो प्रकार का कथोद्धात होता है।[६]

---

१ वही पृ०- १३

२ मुद्राराक्षस पृ १३,

३ वही पृ १३

४ सूत्रधारो नटी ब्रूते मार्षं वाथ विदूषकम् ।
स्वकार्यं प्रस्तुताक्षेपि चित्रोक्त्या यत्तदामुखम् ।
-दशरूपक ३.७-८ ना. शा. २०.३०-३१ सा. द. ६.३१-३२

५ वही ३.८-९ एवं १२ ना. शा. २० ३३, सा. द. ६.३३

६ दशरूपक ३.९, ना. शा. २०.३५

'क्रूरग्रहः सकेतुश्चन्द्रं सम्पूर्णमण्डलमिदानीम् ।

अभिभवितुमिच्छति बलात् रक्षत्येनं तु बुधयोगः।। मुद्रा० १.६

अंश मे कथोद्धात नाम की प्रस्तावना है क्योकि इस वाक्य का अर्थ चाणक्य ने इस रूप मे लिया है कि क्रूरग्रह राक्षस केतु अर्थात् मलयकेतु को साथ लेकर अभी जिसने सम्पूर्ण राष्ट्र को वश मे नही कर लिया है ऐसे चन्द्र गुप्त को महान् म्लेच्छ बल के द्वारा पराजित करना चाहता है। किन्तु बुध अर्थात् नीतिविशारद चाणक्य के उपाय उसकी रक्षा कर रहे है।

प्रवृत्तक- नाट्यशास्त्रियो के अनुसार जहॉ प्रवृत्त हुई वसन्त आदि ऋतुओ के समान गुणो के वर्णन के द्वारा पात्र का प्रवेश सूचित किया जाता है वहॉ आमुख का प्रवृत्तक अङ्ग होता है।[१]

मुद्राराक्षस मे 'येन क्रोधाग्नौ प्रसममदाहि नन्दवंशः[२]' मे प्रवृतक अङ्ग है। यहॉ प्रस्तूयमान कार्य की स्वत. गुण वर्णना की गयी है।

प्रयोगातिशय - 'यह वह है' इस प्रकार के सूत्रधार के वचन से सूचित होकर जहॉ पात्र का प्रवेश होता है वहॉ प्रयोगातिशय नामक प्रस्तावना का अङ्ग माना जाता है।[३] नाट्यशास्त्र मे तथा साहित्य दर्पण मे कहा गया है कि जहॉ सूत्रधार आरम्भ किए हुए अपने प्रस्तावना के प्रयोग को छोड़कर नाट्य प्रयोग का निर्देश कर देता है और उससे पात्र का प्रवेश हो जाता है वहॉ प्रयोगातिशय होता है।[४]

मुद्राराक्षस मे 'कौटिल्यः कुटिलमतिः स एषः[५]'

---

१ कालसाम्यसमाक्षिप्तप्रवेशः स्यात् प्रवृत्तकम् ।।
-दशरूपक ३.१० ना. शा. २० ३०, प्रता. ३.३०, सा. द. ६ ३७

२ मुद्राराक्षस पृ. १८ श्लोक १.७

३ एषोऽयमित्युपक्षेपात्सूत्रधारप्रयोगत।
पात्रप्रवेशो यत्रैष प्रयोगातिशयो मतः।। दशरूपक ३.११, प्रताप ३ ३१

४ ना शा. २०.३६, सा. द. ६.३६,

५ मुद्राराक्षस पृ. १८ श्लोक १ ७

यह अंश प्रस्तावना के प्रयोगातिशय भेद का उदाहरण है। स एष॰ पदो से एषोऽयं का उपक्षेप होता है तथा सूत्रधार के इस वचन से चाणक्य के प्रवेश की सूचना प्राप्त होती है। अतः इसे प्रयोगातिशय का उदाहरण मानना उचित है।

इन तीनो के अतिरिक्त जिन १३ अङ्गो का नाट्यशास्त्रियो ने उल्लेख किया है उनमे से कुछ का प्रयोग मुद्राराक्षस की प्रस्तावना मे प्राप्त होता है।

अवलगित - जहाँ एक कार्य मे समावेश करके या एक कार्य के बहाने से दूसरा कार्य सिद्ध किया जाता है अथवा एक कार्य के प्रस्तुत होने पर दूसरा कार्य सिद्ध हो जाता है इस रूप मे अवलगित दो प्रकार का होता है।[१]

मुद्राराक्षस मे 'अये तत्किमिदमस्मद्गृहेषु महोत्सव इव दृश्यते स्वकर्मण्यधिकतरमभियुक्त॰ परिजन॰। तथा हि

वहति जलमियं पिनष्टि गन्धा नियमुद्ग्रथते स्त्रजो विचित्राः।

मुसलमिदमियं च पातकाले मुहुरनुयाति कलेन हुंकृतेन।। मुद्रा० १.४

अर्थात् हमारे घर मे महोत्सव सा दिखाई पड़ रहा है। सभी परिजन अपने-अपने कार्यो मे अत्यन्त तल्लीन है। वह एक स्त्री जल ला रही है, दूसरी स्त्री सुगन्धित मसालो को पीस रही है, तीसरी स्त्री रंगविरंगी मालाओ को गूँथ रही है। चौथी स्त्री भी मुसल के गिरने के समय बार-बार मधुर हुँकार से इस मुसल का अनुसरण कर रही है। इत्यादि के द्वारा गृहकार्य के प्रसङ्ग से 'क्रूरग्रहः स केतु॰ के रूप मे प्रस्तावना रूप कार्य की सिद्धि हो जाती है। अत॰ यह प्रस्तावना के अवलगित अङ्ग का उदाहरण है।

प्रपञ्च- विभिन्न पात्रो द्वारा एक दूसरे की हास्य उत्पन्न करने वाली मिथ्या प्रशंसा करना आमुख का प्रपञ्च नामक अङ्ग है।

गुणवत्युपायनिलये स्थितिहेतोः साधिके त्रिवर्गस्य।

---

१ यत्रैकत्र समावेशात्कार्यमन्यत् प्रसाध्यते।।
प्रस्तुतेऽन्यत्र वान्यत्स्यात् तच्चावलगितं द्विधा।। -दशरूपक ३.१४-१५

मद्भवननीतिविद्ये कार्याचार्ये द्रुतमुपेहि।। मुद्रा० १.५

सूत्रधार अपनी पत्नी से कह रहा है कि हे दया, दाक्षिण्य आदि गुणो वाली! गृहस्थी को चलाने वाले उपायो का आश्रय! गृहस्थ आश्रम मे निवास करने के कारणभूत धर्म और काम को सिद्ध करने वाली। कर्तव्यो का उपदेश करने वाली! हमारे घर की नीतिविद्या स्वरूप मेरी पत्नी तुम शीघ्र आओ। मुद्राराक्षस के इस उदाहरण मे असत् रूप मे भार्या की स्तुति की गयी है अतः यह प्रपञ्च का उदाहरण है।

त्रिगत- शब्द की समानता से अनेक अर्थो की योजना करना त्रिगत कहलाता है।[१]

मुद्राराक्षस के 'गुणवत्युपायनिलये' आदि उदाहरण मे उपर्युक्त अर्थ के अतिरिक्त इन विशेषणो को शब्दसाम्य के कारण चाणक्य की नीति के अर्थ मे सङ्गत माना गया है। इस सन्दर्भ मे चाणक्य कूटनीति को सम्बोधित करते हुए कह रहा है- सन्धि, विग्रह यान, आसन, द्वैधीभाव तथा संश्रय रूप छह गुणो वाली! साम, दाम, भेद एवं दण्ड रूप चार उपायो वाली, देश की स्थिरता मे कारणभूत, क्षय, स्थान, तथा वृद्धि रूप त्रिवर्ग को सिद्ध करने वाली! कर्तव्यो का उपदेश देने वाली! हमारे घर की परम्परा से प्राप्त हे नीति विद्ये! शीघ्र आओ। इस प्रकार शब्दसाम्य के कारण अनेक अर्थो की योजना की गयी है। अतः यह अनेकार्थ प्रयोजन त्रिगत आमुखाङ्ग का उदाहरण है।

छल- ऊपर से प्रिय लगने वाले किन्तु वस्तुतः अप्रिय वाक्यो के द्वारा लुभाकर छलना ही छल कहलाता है।[२]

मुद्राराक्षस मे छल का उदाहरण है- 'उपरज्यते किल भगवान् चन्द्र इति'[३] अर्थात् भगवान् चन्द्र राहु के द्वारा ग्रसे जा रहे है। आगे सूत्रधार कहता

---

१ श्रुतिसाम्यादनेकार्थयोजनं त्रिगतं त्विह। दशरूपक३.१६

२ प्रियाभैरप्रियैर्वाक्यैर्विलोभ्य छलनाच्छलम् । वही ३.१७

३ मुद्रा० पृ० १२

भी है 'चन्द्रोपरागं प्रति तु केनापि विप्रलब्धासि'[१] अर्थात् चन्द्र ग्रहण के विषय मे तो तुम ठगी गयी हो।

असत् प्रलाप- एक के बाद दूसरी असम्बद्ध बात से युक्त वर्णन असत्प्रलाप कहलाता है।[२] स्वप्न देखना, मद, उन्माद और शैशव आदि का असम्बद्ध प्रलाप ही विभाव होता है। ये असम्बद्ध प्रलाप द्वारा ही जाने जाते है। मुद्राराक्षस मे इसका उदाहरण है- 'एवं खलु नगरवासी जनो मन्त्रयते।'

अधिबल - दो पात्रो का स्पर्धा के कारण एक दूसरे की बात से बढ़कर बात कहना अधिबल है।[३] मुद्राराक्षस मे इसका उदाहरण है- आ क एष मयि स्थिते चन्द्रमभिभवितु मिच्छति।

अवस्यन्दित- जहॉ सहज स्वभाव से कहे गये वाक्य की दूसरे प्रकार से व्याख्या कर दी जाती है वह अवस्यन्दित नामक आमुखाङ्ग है।[४] मुद्राराक्षस के 'सनाम्नो मौर्येन्दोः द्विषदभियोग इत्यवैति' इस अंश मे रसावेश के कारण अन्यथा व्याख्यान अवस्यन्दित अङ्ग का उदाहरण है।

इस प्रकार इन अङ्गो से युक्त प्रस्तावना का मुद्राराक्षस के आदि मे प्रयोग किया गया है। इस नाटक के प्रथम अङ्क मे विष्कम्भक का प्रयोग न कर निष्कम्भक का काम प्रस्तावना से ही चला लिया गया है। चूलिका का प्रयोग भी प्रस्तावना के ही अन्तर्गत किया गया है।

चूलिका - जवनिका के भीतर स्थित पात्रो के द्वारा किसी अर्थ की सूचना देना चूलिका है।[५] मुद्राराक्षस मे 'क्रोधाग्नौ प्रसभमदाहि नन्दवंश' कहकर अतीत काल की घटना की सूचना दी गयी है तथा 'मौर्येन्दोर्द्विषदभियोगः' कहकर भविष्य मे होने वाली कथा की सूचना दी गयी है। यह सूचना नेपथ्य मे विद्यमान चाणक्य ने प्रस्तुत की है। इस रूप मे

---

१ मुद्रा० पृ० १६

२ असम्बद्धकथाप्रायोऽसत्प्रलापो यथोत्तर। -द रू. ३.२०

३ अन्योन्यवाक्याधिक्योक्ति स्पर्धयाधिबलं भवेत् । द रू ३ १८

४ रसोक्तस्यान्यथा व्याख्या यत्रावस्यन्दितं हि तत्।। द. रू. ३ १९

५ अन्तर्जवनिकासंस्थैश्चूलिकार्थस्य सूचना। -दशरूपक १.६१

प्रस्तावना के अन्तर्गत ही चूलिका का प्रयोग किया गया है। इस प्रस्तावना से नाटकीय कथा वस्तु की सूचना देकर तथा नाटकीय पात्र का प्रवेश कराकर सूत्रधार प्रस्तावना की समाप्ति पर निकल जाता है तथा इसके अनन्तर कथावस्तु का विस्तार प्रस्तुत किया जाता है। मुद्राराक्षस मे भी सूत्रधार नाटकीय कथावस्तु का निर्देश कर नाटक के प्रमुख पात्र चाणक्य का प्रवेश कराने के अनन्तर रङ्गमञ्च से बाहर चला जाता है।

मुद्राराक्षस की कथावस्तु - संस्कृत के नाट्यशास्त्रकारो ने लक्ष्य ग्रन्थो के आधार पर रूपको मे प्रयुक्त होने वाली कथावस्तु का दो भागो मे विभाजन किया है- १- आधिकारिक २- प्रासङ्गिक। प्रासङ्गिक कथावस्तु के भी दो भेद हो जाते है- पताका तथा प्रकरी। आधिकारिक, पताका एवं प्रकरी इन तीनो भागो मे विभक्त कथावस्तु के पुनः तीन भेद बताए गये है- प्रख्यात, उत्पाद्य एवं मिश्र। इस प्रकार आधिकारिक, पताका अथवा प्रकरी किसी भी प्रकार की कथावस्तु प्रख्यात, उत्पाद्य एवं मिश्र इन तीन भेदो मे विभक्त होती है। कथावस्तु के ये सभी भेद दिव्य, मर्त्य एवं दिव्यादिव्य भेद से भी भिन्न-भिन्न होते है।[१]

इनमे से आधिकारिक कथावस्तु प्रधान होती है। धर्म, अर्थ एवं काम इन तीनो से स्वस्वामिभाव सम्बन्ध अधिकार कहलाता है तथा फल का स्वामी अधिकारी। इस अधिकार अथवा अधिकारी के द्वारा निष्पादित, फलप्राप्ति पर्यन्त व्याप्त रहने वाले इतिवृत्त अथवा कथावस्तु को आधिकारिक कथावस्तु कहते है।[२] जबकि प्रासङ्गिक कथावस्तु अङ्गरूप मे उपनिबद्ध होती है। यह

---

[१] (क) आधिकारिकमेकं स्यात् प्रासङ्गिकमथापरम् ।। -नाट्यशास्त्र १९.२
तत्राधिकारिकं मुख्यमङ्गं प्रासङ्गिकं विदुः। -दशरूपक २.११
(ख) सानुबन्धं पताकाख्यं प्रकरी च प्रदेशभाक् । वही २.१२
(ग) प्रख्यातोत्पाद्यमिश्रत्वभेदात्रेधापि तत्त्रिधा। वही २.१५
(घ) दिव्यमर्त्यादिभेदतः। वही २.१६

[२] कारणात् फलयोगस्य वृत्तं स्यादाधिकारिकं।। ना. शा. १९.४
अधिकारः फल स्वाम्यमधिकारी च तत्प्रभुः।
तन्निर्वृत्तमभिव्यापि वृत्तं स्यादाधिकारिकम् ।। वही २.१२

कथावस्तु आधिकारिक कथा की फलसिद्धि मे सहायक होती है। किन्तु प्रसङ्गतः इस कथा का अपना प्रयोजन भी सिद्ध हो जाता है।[१] जब प्रासङ्गिक इतिवृत्त प्रधान इतिवृत्त के साथ-साथ दूर तक चलता है तब उसे प्रासङ्गिक इतिवृत्त का पताका नामक भेद मानते है। जैसे पताका (ध्वजा) नायक का असाधारण चिह्न होती है तथा उसका उपकार करती है उसी प्रकार पताका इतिवृत्त नायक तथा तत्सम्बन्धी कथा का उपकार करता है।[२] जो प्रासङ्गिक इतिवृत्त थोड़ी दूर तक ही चलता है, वह प्रकरी कहलाता है। प्रकरी इतिवृत्त एकदेशी होता है।[३] इन तीनो इतिवृत्तो के प्रख्यात होने का अभिप्राय है, उसे रामायण, महाभारत आदि मे अथवा इतिहास में प्रसिद्ध होना चाहिए। उत्पाद्य का अभिप्राय है उसे कविकल्पित होना चाहिए तथा मिश्र का अभिप्राय है इतिहास आदि से लिए गये प्रख्यात इतिवृत्त तथा कवि द्वारा स्वयं कल्पित, इन दोनो प्रकार के इतिवृत्तो का जहॉ मिश्रण हुआ हो।[४] अरस्तू ने भी प्रायः तीन प्रकार के कथानक का संकेत किया है - दन्तकथामूलक, कल्पनामूलक तथा इतिहास मूलक। भारतीय काव्यशास्त्रीय दृष्टि से प्रसिद्ध मे पुराण, दन्तकथाओ एवं इतिहास का अन्तर्भाव किया जाता है। उत्पाद्यकथा काल्पनिक सृष्टि होती है।

नाटक के लिए अनुगम विधि से कथानक का निश्चित विधान प्रख्यात रूप मे ही होना चाहिए, फिर भी उत्पाद्य कथावस्तु नाटको के लिए अग्राह्य नही है। किन्तु विधान की दृष्टि से प्रसिद्ध कथावस्तु ही अधिक काम्य है।

मुद्राराक्षस में प्रयुक्त कथावस्तु - नाट्यशास्त्रकारो ने रूपको के प्रधान भेद नाटको की कथावस्तु के सदंर्भ मे अपना अभिमत प्रस्तुत किया है कि जिस इतिवृत्त मे सत्यवादिता आदि उत्कृष्ट स्पृहणीय गुणो से युक्त धीरोदात्त, प्रतापी, कीर्ति का इच्छुक, अत्यन्त उत्साही, तीनो वेदो का रक्षक, पृथिवी का

---

१ प्रासङ्गिक परार्थस्य स्वार्थो यस्य प्रसङ्गतः। वही २ १३

२ सानुबन्धं पताकाख्यम् ।

३ प्रकरी च प्रदेशभाक्

४ प्रख्यातमितिहासादेरुत्पाद्यं कविकल्पितम् ।
मिश्रं च सङ्करात्ताभ्यां । - वही २.१५,१६

पालक प्रसिद्ध वंशवाला कोई राजर्षि अथवा दिव्य व्यक्ति नायक हो ऐसे इतिहास-प्रसिद्ध इतिवृत्त को नाटक की आधिकारिक कथावस्तु के रूप मे उपनिबद्ध करना चाहिए।[१] इतिहासप्रसिद्ध इतिवृत्त मे नायक के लिए जो कुछ अनुचित हो अथवा रस के विरुद्ध हो उसे छोड़ देना चाहिए अथवा उसकी अन्यथा योजना कर लेनी चाहिए।[२] अरस्तू ने कथावस्तु के आधारभूत गुण के लिए एकान्विति को स्वीकार किया है। एकान्विति का अभिप्राय यह नही है कि उसमे एक ही व्यक्ति की कथा हो, बल्कि एकान्विति का अभिप्राय कार्य के ऐक्य से है अर्थात् कथावस्तु मे ऐसी घटनाएँ होनी चाहिए जिनमे परस्पर आवश्यक तथा सम्भाव्य सम्बन्ध हो।

कथावस्तु की दृष्टि से मुद्राराक्षस का कथानक ऐतिहासिक अर्थात् प्रख्यात कोटि का है। इस नाटक की घटनाओ मे एकान्विति है। विभिन्न पात्रो का मुख्य कथानक के प्रयोजन की सिद्धि मे सुन्दर् समन्वय प्रस्तुत किया गया है। मुद्राराक्षस के कथानक का प्रत्येक प्रकरण अन्य प्रकरणो से सम्बद्ध तथा अन्त मे प्रधान कार्य का उपकारक है। मुद्राराक्षस के कथानक को सात अङ्को मे विभाजित किया गया है। विशाखदत्त ने विशुद्ध कूटनीतिक राजनीति को आधार बनाकर महान् कूटनीतिज्ञ चाणक्य की प्रतिभा एवं षडयन्त्र के द्वारा नन्दवंश के विनाश की सूचना के अनन्तर चन्द्रगुप्त मौर्य की मगधसाम्राज्य पर राजा के रूप मे प्रतिष्ठा तथा नन्दो के प्रधान अमात्य राक्षस के वश मे करने का वर्णन किया है।[३] इस नाटक के कथानक का प्रधान उद्देश्य राक्षस को वश मे करना ही दिखाया गया है। चाणक्य का स्पष्ट कथन है कि जब

---

१ अभिगम्यगुणैर्युक्तो धीरोदात्त॰ प्रतापवान् ।।
कीर्तिकामो महोत्साहस्त्रय्यास्त्राता महीपति॰।
प्रख्यातवंशो राजर्षि र्दिव्यो वा यत्र नायक॰।।
तत्प्रख्यातं विधातव्यं वृत्तमत्राधिकारिकम् ।। -दशरूपक ३ २२-२४

२ यत्तत्रानुचितं किञ्चिन्नायकस्य रसस्य वा।
विरुद्धं तत्परित्याज्यमन्यथा वा प्रकल्पयेत् । -वही ३.२४-२५

३ अथवा अगृहीते राक्षसे किमुत्खातं।
नन्दवंशस्य किंवा स्थैर्यमुत्पादित चन्द्रगुप्तलक्ष्म्या॰।।
-मुद्रा० पृ. २२-२३

तब राक्षस को पकड़ नही लिया जाता जब तक नन्दवंश का समूल नाश हुआ है ऐसा नही माना जा सकता तथा यह भी नही स्वीकार किया जा सकता कि चन्द्रगुप्त की राज्यलक्ष्मी स्थिर हो गयी है।[१] इस नाटक के कथानक के अनुसार नन्दो का समूल नाश कर देने के अनन्तर उनके प्राधानामात्य राक्षस को वश मे करके चन्द्रगुप्त के अमात्य के रूप मे उसे प्रतिष्ठापित कर चन्द्रगुप्त की राज्यलक्ष्मी को स्थिर कर देना ही चाणक्य का प्रधान उद्देश्य था।

अर्थप्रकृतियॉ- अर्थप्रकृति का अभिप्राय है फल की सिद्धि के उपाय 'अर्थप्रकृतय= प्रयोजनसिद्धिहेतव'। यहॉ अर्थ शब्द फल या प्रयोजन का वाचक है तथा प्रकृति शब्द का अर्थ है हेतु या कारण। अभिनवगुप्त ने भी सिद्धि के उपायो को अर्थप्रकृतियॉ कहा है।[२] नाट्यदर्पण मे भी अर्थप्रकृतियो को उपाय कहा गया है। अर्थप्रकृतियॉ पॉच है- (१) बीज, (२) बिन्दु, (३) पताका, (४) प्रकरी एवं (५) कार्य। इनमे से बीज, बिन्दु एवं कार्य ये तीन अर्थप्रकृतियॉ आवश्यक मानी गयी है। पताका एवं प्रकरी का सभी रूपको मे होना अनिवार्य नही है। जहॉ प्रधान नायक को सहायक की आवश्यकता नही होती वहॉ पताका और प्रकरी भी नही होते।

बीज- इतिवृत्त के फल के निमित्त को बीज कहते है। इसका आरम्भ मे सूक्ष्म रूप से सङ्केत किया जाता है तथा आगे चलकर उसका इसका अनेक प्रकार से विस्तार हो जाता है। इस बीज का महाकार्य एवं अवान्तर कार्य के भेद से अनेकधा विस्तार दिखाई पड़ता है।

---

१ समुत्खाता नन्दा नवहृदयशल्या इव भुव
कृता मौर्ये लक्ष्मी सरसि नलिलीव स्थिरपदा।
द्वयो सारं तुल्यं द्वितयमभियुक्तेन मनसा
फलं कोपप्रीत्योर्द्विषदि च विभक्तं सुहृदि च।। -मुद्रा० १.१३

२ अर्थ फलं तस्य प्रकृतय उपाया फलहेतव इत्यर्थः।
-अभि०भा०,ना.शा १९-२०

मुद्राराक्षस मे चन्द्रगुप्त की लक्ष्मी का स्थैर्य ही जिसका फल है ऐसे राक्षससंग्रहरूप कार्य का उपाय है दैव की अनुकूलता, चाणक्य की नीति का प्रयोग एवं मुद्रालाभ।

बिन्दु- अवान्तर प्रयोजन की समाप्ति से इतिवृत्त के मुख्य प्रयोजन मे विच्छेद उपस्थित हो जाने पर जो उसके सातत्य का कारण होता है वह बिन्दु है।

मुद्राराक्षस मे 'चाण. - साधु सिद्धार्थक कृतः कार्यारम्भः, चाण- किमत्र लिखामि। अनेन खलु लेखेन राक्षसो जेतव्यः।'[१] तथा भूषण विक्रय बिन्दु के उदाहरण है।

पताका- जो प्रासङ्गिक कथा प्रधान कथा का दूर तक अनुवर्तन करती है, साथ ही जिसका अपना भी प्रयोजन होता है, वह पताका है। पताकानायक का कुछ अपना भी प्रयोजन होता है। यही तथ्य इसका प्रकरी से भेदक है।

मुद्राराक्षस मे द्वितीय अङ्क मे राक्षस एवं आहितुण्डिक का (विराधगुप्त) के संवाद के रूप मे पताका को प्रस्तुत किया गया है। पुष्पपुराभियोग भी पताका के अन्तर्गत है।

प्रकरी- नाटक के एकदेश मे रहने वाला इतिवृत्त प्रकरी कहलाता है। प्रकरी का नायक अपने किसी प्रयोजन के सिद्धि की अपेक्षा नही करता। अपितु निरपेक्षभाव से प्रधान नायक की सहायता करता है।

मुद्राराक्षस मे कपट पाश, तथा कौमुदीमहोत्सवप्रतिषेध मे प्रकरी को प्रस्तुत किया गया है।

कार्य - इतिवृत्र का फल त्रिवर्ग है। इसे कार्य भी कहते है। कार्य अर्थप्रकृति इस फल की प्राप्ति का उपाय है। (फल के अधिकारी व्यक्ति का व्यापार ही कार्य नामक अर्थप्रकृति है। यह कार्य आरम्भ से लेकर फलप्राप्ति पर्यन्त चलता रहता है। इसीलिये कार्य शब्द का फल के अर्थ मे भी प्रयोग प्राप्त होता है।

---

१ मुद्रा० पृ० ३३

मुद्राराक्षस मे 'राक्षसोपसंग्रह' कार्य नामक अर्थप्रकृति उदाहरण है।

पाँच कार्यावस्थाएँ- किसी भी नाटक की कथावस्तु के विकास की पॉच अवस्थाएॅ होती है। फल की इच्छा वाले व्यक्ति के द्वारा आरम्भ किए गये कार्य की इन पॉचो अवस्थाओ के नाम इस प्रकार है- (१) आरम्भ, (२) यत्न, (३) प्राप्त्याशा, (४) नियताप्ति (५) फलागम।[१]

आरम्भ- प्रचुर फल की प्राप्ति के लिए उत्सुकता मात्र का होना अर्थात् 'इस कार्य को मै करूॅगा' इस प्रकार-निश्चय करना ही आरम्भ नामक कार्यावस्था है।[२]

मुद्राराक्षस मे आरम्भकार्यावस्था का उदाहरण है- 'चाण०- कथय क एष मयि स्थिते चन्द्रगुप्तमभिभवितुमिच्छति। पश्य -

आस्वादितद्विरदशोणितशोणशोभां

सन्ध्यारुणामिव कलां शशलाच्छनस्य।

जृम्भाविदारितमुखस्य मुखात् स्फुरन्ती

को हर्तुमिच्छति हरेः परिभूय दंष्ट्राम् ।।[३]

इसका अभिप्राय है चाणक्य कहता है कि कहो यह कौन है जो मेरे रहते चन्द्रगुप्त को पराजित करना चाहता है? कौन व्यक्ति है जो जॅभाई के कारण खोले गए मुखवाले सिंह के मुख से, पिये गये हाथी के खून से लाल शोभावाली अतएव सन्ध्या के कारण चन्द्रमा की अरुणिम कला की भॉति चमकती हुई दाढ़ को उसका निरादर करके हरण करने की इच्छा कर रहा है।

चाणक्य के सावधान रहते हुए भी उसके पौरुष को तिरस्कृत करके राक्षस मौर्यलक्ष्मी का अपहरण करना चाहता है। वह दण्डनीति मे परम दक्ष है, अत्यधिक पराक्रमी है, तथा परम स्वामिभक्त है। ऐसे राक्षस को अवश्य

---

१ अवस्थाः पञ्च कार्यस्य प्रारब्धस्य फलार्थिभिः।
आरम्भयत्नप्राप्त्याशानियताप्तिफलागमाः।। द.रू १.१९

२ औत्सुक्यमात्रमारम्भः फललाभाय भूयसे। दश० १.२०

३ मुद्रा० १.८

ही वश मे करना है यह सोचने की चाणक्य की उत्सुकता बीज की आरम्भावस्था है। चाणक्य की औत्सुक्यमात्ररूपा यह आरम्भावस्था यहॉ पर अर्थत· उपस्थापित की गयी है।

यत्न- जब फल प्राप्त नही होता ऐसी स्थिंति मे फल के लिए अनेक साधनो को जुटाना आदि अत्यन्त वेगपूर्वक उद्योग करना ही प्रयत्न कहलाता है।[१] मुद्राराक्षस मे प्रयत्न कार्यावस्था का उदाहरण-

दुरात्मन् राक्षस क्वेदानी गमिष्यसि। एषोऽहमचिराद्भवन्तम् ।

स्वच्छन्दमेकचरमुज्ज्वलदानशत्तिमुत्सेकिना मदबलेन विगाहमानम् ।

बुद्ध्या निगृह्य वृषलस्य कृते क्रियाया मारण्यकं गजमिव प्रगुणीकरोमि।।[२]

इसका अभिप्राय है कि जैसे आरण्यक दुष्टगज धीरे-धीरे गड्ढे मे गिराना· तथा दृढ़ रस्सी से बॉधना उपाय से संवाहन क्रिया से बॉध लिए जाते है इसी प्रकार तुम्हे गम्भीर सङ्कट मे डालकर किसी प्रकार की गति न रह जाने के कारण जिससे स्वतः प्रवण होकर चन्द्रगुप्त के सचिव पद को तुम ग्रहण कर लो ऐसी परिस्थिति उत्पन्न कर रहा हूँ। इस प्रकार यहॉ पर यत्न नामक कार्यावस्था है।

प्राप्त्याशा- उपाय होने पर भी विघ्न की शङ्का होने के कारण जब तक फलप्राप्ति का एकान्तत· निश्चय नही हो जाता अपितु फलप्राप्ति की सम्भावना मात्र होती है, यह प्राप्त्याशा कार्यावस्था है।[३]

मुद्राराक्षस मे प्राप्त्याशा कार्यावस्था का उदाहरण-

कौटिल्यधीरज्जुनिबद्धमूर्ति मन्ये स्थिरां मौर्यनृपस्य लक्ष्मीम् ।

उपायहस्तैरपि राक्षसेन निकृष्यमाणामिव लक्षयामि।। -मुद्रा० २.२

---

१ प्रयत्नस्तु तदप्राप्तौ व्यापारोऽतित्वरान्वित·। -दशरूपक १ २२

२ मुद्रा० १ २६

३ उपायापायशङ्काभ्यां प्राप्त्याशा प्राप्तिसम्भव·। -दशरूपक १.२

कौटिल्य की बुद्धिरूपी रस्सी से मौर्यलक्ष्मी का निबद्ध होना उपायशङ्का है, राक्षस के द्वारा खीचा जाना अपाय शङ्का है। इन उपाय एव अपाय शङ्काओ के द्वारा चन्द्रगुप्त मौर्य की लक्ष्मी की स्थिरता रूप कार्य का सम्भव है। अत यहॉ प्राप्त्याशा कार्यावस्था उपनिबद्ध है।

नियताप्ति- विघ्नो के हट जाने पर फल की निश्चित प्राप्ति ही नियताप्ति है।[1] मुद्राराक्षस का तृतीय अङ्क नियताप्ति का उदाहरण है। चाणक्यनीति रूप बीज का कौमुदीमहोत्सव के प्रतिषेध के द्वारा प्रकरी नामक छोटी कथा के साथ अनुसन्धान किया जाता है -

आर्याज्ञयैव मम लङ्घितगौरवस्य बुद्धि प्रवेष्टुमिव भूविवरं प्रवृत्ता।
ये सत्यमेव हि गुरूनतिपातयन्ति तेषां कथं नु हृदयं न भिनत्ति लज्जा।।[2]

इस प्रकार यह नितायप्ति का उदाहरण है।

फलागम- पूर्णरूप से फल की प्राप्ति ही फलागम है।[3] कही धर्म, अर्थ अथवा काम मे से कोई एक शुद्ध फल होता है तथा कही-कही एक के साथ अन्य किसी एक का अथवा दो का अन्वय भी होता है। इस प्रकार शुद्ध या अनुबद्ध जो भी रूपक का फल होता है उस फल की प्राप्ति ही फलागम है।

मुद्रराक्षस मे फलागम कार्यावस्था का उदाहरण है- राक्षससमाहरण। नाटक के सातवे अङ्क मे राक्षस चाणक्य के वश मे आकर चन्द्रगुप्त के सचिव पद को स्वीकार कर लेता है। जिससे चन्द्रगुप्त की लक्ष्मी का स्थैर्य रूप महाफल सिद्ध हो जाता है। अतः यही फलागम है।

अर्थप्रकृतियो एवं कार्यावस्थाओ के इस विवेचन से स्पष्ट है कि यद्यपि नाट्यशास्त्र मे इनका उल्लेख इतिवृत्त के सन्दर्भ मे ही किया गया है तथापि अर्थप्रकृतियो का साक्षात् सम्बन्ध इतिवृत्त के फल के साथ है। इस फल की

---

१ अपायाभावत: प्राप्तिर्नियताप्ति सुनिश्चिता।। -दशरूपक १ २१

२ मुद्रा० ३.३३

३ समग्रफलसम्पत्ति: फलयोगो यथोदितः। दशरूपक १.२३

सिद्धि के उपाय के रूप मे इन्हे नाटको मे प्रस्तुत किया जाता है। जबकि आरम्भ आदि कार्यावस्था का साक्षात् सम्बन्ध नायक के व्यापार अर्थात् कार्य के साथ होता है। अतः फल को लक्ष्य कर किये गये व्यापार की अवस्थाएँ ही कार्यावस्थाएँ है।

इस रूप मे इन दोनो का इतिवृत्त के साथ. भले ही साक्षात् सम्बन्ध न हो किन्तु परम्परया सम्बन्ध तो है ही। इसीलिए इन दोनो के आधार पर नाटको के इतिवृत्त का पॉच भागो मे विभाजन किया गया है। इन विभाजनो को पञ्चसन्धि के नाम से अभिहित किया जाता है। आचार्य भरत ने स्पष्ट शब्दो मे कहा है कि इतिवृत्त नाट्य का शरीर है। इस इतिवृत्त का पॉच सन्धियो द्वारा विभाग करना चाहिए।[१]

सन्धियाँ- सन्धि का अर्थ है सन्धान या मिश्रण। किसी भी रूपक की कथावस्तु की सुव्यवस्थित योजना का नाम सन्धि है। सन्धियो द्वारा कथावस्तु को ठीक-ठीक विभक्त करके अच्छी तरह संगठित किया जाता है। सन्धि को परिभाषित करते हुए दशरूपककार धनञ्जय ने स्वीकार किया है कि किसी एक मुख्य प्रयोजन से अन्वित होने वाले कथाभागो का दूसरे एक अवान्तर प्रयोजन के साथ सम्बन्ध होना ही सन्धि है।[२] पॉच अवस्थाओ से समन्वित होकर पॉच अर्थप्रकृतियॉ ही क्रम से मुख, प्रतिमुख, गर्भ, अवमर्श एवं निर्वहण ये पॉच सन्धियॉ बन जाती है।[३] नाट्यशास्त्र मे नाटक तथा प्रकरण के लिए पॉचो सन्धियो को अनिवार्य माना गया है। इनके अतिरिक्त अन्य रूपको मे इनमे से कुछ को छोड़ दिया जाता है।[४] किन्तु अभिनव गुप्त ने

---

१ इतिवृत्तं तु नाट्यस्य शरीरं परिकीर्तितम् ।
पञ्चभिः सन्धिभिस्तस्य विभाग संप्रकल्पित.।। ना० शा० १९.१

२ अन्तरैकार्थसम्बन्ध सन्धिरेकान्वये सति। दशरूपक १ २३

३ अर्थप्रकृतय पञ्च पञ्चावस्थासमन्विता।
यथासंख्येन जायन्ते मुखाद्या पञ्च सन्धयः।। दशरूपक १.२२

४ पूर्णसन्धि च कर्तव्यं हीनसन्ध्यपि वा पुन।
नियमात् पूर्णसन्धि स्याद्धीनसन्ध्यथ कारणात् ।। ना० शा० १९ १७

अभिनवभारती मे उपाध्याय का मत उद्धृत कर यह स्वीकार किया है कि प्रत्येक इतिवृत्त पञ्चसन्धि समन्वित ही होता है।[1]

मुखसन्धि- जहाँ अनेक प्रकार के प्रयोजन और रस को निष्पन्न करने वाली बीजोत्पत्ति होती है वह मुखसन्धि है। बीजो की उत्पत्ति अनेक प्रकार के प्रयोजन तथा रस की निष्पत्ति का निमित्त है। बीज एवं आरम्भ इन दोनो के समन्वय से इसके १२ अङ्ग हो जाते है।[2] ये सभी अन्वर्थक है।

मुद्राराक्षस मे 'तत प्रविशति मुक्तां शिखां परामृशंश्चाणक्य (पृ० १९) से मुखसन्धि प्रारम्भ होती है। 'आस्वादिताद्विरदशोणितशोणशोभाम् (१ ८) मे चाणक्य की औत्सुक्यमात्र बीज की आरम्भावस्था अर्थ के द्वारा सूचित की गयी है। 'वत्स कार्याभिनियोग एवास्मान् व्याकुलयति न पुनरुपाध्यायसमभू शिष्यजने दुःशीलता (पृ० २०) इत्यादि के द्वारा निर्वहण सन्धि तक बिन्दु आदि के द्वारा अनेक प्रकार से विस्तृत होने वाले कार्य के कारणभूत आर्य चाणक्य के उद्योगरूपी बीज का किञ्चिन्मात्र निर्देश किया गया है। अत एवास्माकं त्वसंग्रहे यत्न कथमसौ वृषलस्य साचिव्यग्रहणेन सानुग्रह स्यादिति (पृ०२३)। इस स्थल पर मुखसन्धि का निर्माण जिस बीज और प्रारम्भ से होता है उनमे से प्रारम्भ का स्पष्ट ही कथन किया है कि इसीलिए हम तुमको अपने वश मे करना चाहते है। 'तन्मयाप्यस्मिन् वस्तुनि नशयानेन स्थीयते यथाशक्ति क्रियते तद्ग्रहणं प्रति यत्न। (पृ० २४) इत्यादि से कवि के द्वारा चाणक्य के बीजन्यास को प्रथम अङ्क मे तथा राक्षस के बीजन्यास को द्वितीय अङ्क मे प्रस्तुत किया गया है। इसी प्रकार भागुरायणादि का कुसुमपुर से

---

[1] उपाध्यायास्त्वाहु- सर्वत्रेतिवृत्तम् पञ्चसन्ध्येव न हि कश्चिदपरो व्यापारो प्रारम्भाद्यवस्थापञ्चकं विना सिद्ध्येत् न शक्यमौनीकृत्यं वा। अवस्थापञ्चकानुयायिना सन्धिपञ्चकेनापि भाव्यमेव, तेन सर्व नियमात् पञ्चसन्धि। अभि०भा०ना०शा० १९ १७

[2] **(क)** यत्र बीजसमुत्पत्तिर्नानार्थरससम्भवा।
काव्ये शरीरानुगता तन्मुखं परिकीर्तितम् ॥ ना० शा० १९.३९
(ख) मुखं बीजसमुत्पत्तिः नानार्थरसम्भवा।
अङ्गानि द्वादशैतस्य बीजारम्भसमन्वयात् ॥ दशरूपक १.२४

भागकर आना और मलयकेतु की सेवा मे लिया जाना भी बीजन्यास का उदाहरण है। चाणक्य एवं नाटक का मुख्य उद्देश्य है मौर्यलक्ष्मी के स्थैर्य का हेतु राक्षसोपसंग्रह। सम्पूर्ण यमपटचर का कथानक अपने पक्ष के अनुरक्त एवं विरक्त तथा शत्रुपक्ष के अनुरक्त एवं विरक्त व्यक्तियो को जानने की इच्छा तथा मुद्राप्राप्ति इस अवान्तर प्रयोजन को प्रतिपादित करने के लिए है।

मुखसन्धि के १२ अङ्ग इस प्रकार है-

उपक्षेप॰ परिक परिन्यासो विलोमनम् ।

युक्तिः प्राप्ति॰ समाधानं विधानं परिभावेना। उद्भेदभेदकरणानि।।

उपक्षेप- 'बीजन्यासः उपक्षेपः।' अर्थात् बीजन्यास उपक्षेप नामक अङ्ग है। मुद्राराक्षस मे 'सोऽहमिदानीमवसितप्रतिज्ञाभारोऽपि वृषलापेक्षया शस्त्रं धारयामि।' (पृ०२२) उपक्षेप का उदाहरण है। काव्यार्थ की समुत्पत्ति ही उपक्षेप है। राक्षससंग्रह रूप कार्य का बीज चाणक्य का उद्योग बीजन्यास है। यहॉ शस्त्रधारण का अभिप्राय उद्योग है।

परिकर- 'तद्बाहुल्यं परिक्रिया।' बीज की वृद्धि ही परिकर है। मुद्राराक्षस मे 'अथवा अगृहीते राक्षसे किमुत्खातं नन्दवंशस्य, किं वा स्थैर्यमुत्पादितं चन्द्रगुप्तलक्ष्म्या॰ तदभियोगं प्रति निरुद्योग॰ शक्योऽवस्थापयितुमस्माभिः। अनयैव बुद्ध्या तपोवनगतोऽपि घातितस्तपस्वी' (पृ०२३) परिकर अङ्ग का उदाहरण है। यहॉ पर बीज की बहुलीकरण है। चन्द्रगुप्त की लक्ष्मी के स्थैर्य के उत्पादक हेतु बीज को प्रचुरीकृत किया गया है अर्थात् बीज की वृद्धि की गई है।

परिन्यास- तन्निष्पत्ति॰ परिन्यासः। बीज की निष्पत्ति परिन्यास है। मुद्राराक्षस मे इन्दुशर्मा नाम ब्राह्मण औशनस्यां दण्डनीत्यां चतुःषष्ट्यङ्गे ज्योति॰- शास्त्रे च परं प्रावीण्यमुपगतः स च मया क्षपणकलिङ्गधारी नन्दवंशवध-प्रतिज्ञानन्तरमेव कुसुमपुरमभिनीय सर्वनन्दामात्यैः सह सख्यं प्रापित॰। विशेषतश्च राक्षस॰ तस्मिन् समुत्पन्नविश्रम्भ॰। (पृ० २५) अंश परिन्यास का उदाहरण है।

विलोभन- 'गुणाख्यानं विलोभनम् '। गुणो का वर्णन विलोभन है। उदा०- विक्रान्तैर्नयशालिभि॰ सुसचिवै॰ श्रीर्वक्रनासादिभिः -

र्नन्दे जीवति सा तदा न गमिता स्थैर्य चलन्ती मुहुः।

तामेकत्वमुपागतां द्युतिमिव प्रह्लादयन्ती जगत्

कश्चन्द्रादिव चन्द्रगुप्तनृपते॰ कर्तु व्यवस्येत् पृथक् ।। मुद्रा० १.२२

युक्ति- सम्प्रधारणमर्थानां युक्ति॰। प्रयोजनो का निर्णय करना ही युक्ति है। मुद्रा को प्राप्तकर चाणक्य का 'हन्त जितो मलयकेतु॰' कहना युक्ति है। इसी प्रकार अत्र तावद् वृषलपर्वतकयोरन्यतरविनाशेनापि चाणक्यस्यापकृतं भवतीति विषकन्यया राक्षसेनास्माकमत्यन्तोपकारि मित्रं घातितस्तपस्वी पर्वतक इति सञ्चारितो जगति जनापवादः (पृ०२४)। से लेकर राक्षसत्यायश॰ प्रकाशीभवत्प्रमार्ष्टुमिच्छामि (पृ०२४) तक के अंश मे बीज के अनुकूल संघटन एवं प्रयोजन का विचार किया गया है। अतः यहाॅ पर युक्ति है।

प्राप्तिः- प्राप्तिः सुखागमः। बीज के सम्बन्ध से सुख का प्राप्त होना ही प्राप्ति है। चाणक्य 'भद्र!राक्षसेन चन्दनदासे कलत्रं न्यासीकृतमिति कथमवगम्यते।' (पृ०३०) कहने पर चर के द्वारा मुद्रा प्राप्त कर हर्षपूर्वक अपने मन मे कहता है 'ननु वक्तव्यं राक्षस एवास्मदङ्गुलिप्रणयी संवृत्त॰'(पृ०३१)। अर्थात् राक्षस ही हस्तगत हो गया है। यह प्राप्ति अङ्ग का उदाहरण है क्योकि यहाॅ पर चाणक्य को सुख की प्राप्ति प्रदर्शित है।

समाधान- बीजागमः समाधानम् '। बीज का आगमन समाधान है। उदाहरण - चाणक्य : - क्षपणक अहह। अथवा अनुभव राजापथ्यकारित्वस्य फलम् । (पृ०४२) यहाॅ पर मुखसन्धि का समाधान नामक अङ्ग है। जो भी राजा के विपरीत है उसे दण्ड मिलना ही चाहिए। वह निग्राह्य है। यही समाधान है।

विधान - विधानं सुखदुःखकृत्। सुख एवं दुःख दोनो को उत्पन्न करने वाला विधान कहलाता है। शत्रुप्रयुक्तानां च तीक्ष्णरसदायिनां प्रतिविधानं

प्रत्यप्रमादिन परीक्षितभक्तय: क्षितिपतिप्रत्यासन्ना नियोजितास्तत्र तत्राप्तपुरुषा। (पृ० २५)

यहॉ पर विधान अङ्ग है क्योकि इस अंश मे सुख एवं दु:ख के हेतु का विचार किया गया है। तीक्ष्णरस देने वाले दुःख के हेतु है। उस दु ख के प्रतिविधान के प्रति अप्रमत्त रहने वाले सुख के हेतु है।

परिभावना- परिभावोऽद्भुतावेश। अद्भुत भाव का समावेश होना ही परिभावना है। चाणक्यः - (स्वगतम्) साधु चन्दनदास साधु।

सुलभेष्वर्थलाभेषु परसंवेदने जने।

क इदं दुष्करं कुर्यादिदानी शिबिना बिना।। १.२३

यहॉ पर अद्भुत भाव का समावेश है। अतः यह परिभावना का उदाहरण है।

उद्भेदः - उद्भेदो गूढभेदनम् । बीज के अनुकूल किसी गूढ बात को प्रकट करना उद्भेद नामक अङ्ग है। उदाहरण- 'तदभियोगं प्रति निरुद्योगः शक्योऽवस्थापयितुमस्माभिः।' यहॉ पर पहले से गूढ रूप मे किए गये बीज का प्रकाशन किया गया है अतः यह उद्भेद नामक अङ्ग का उदाहरण है।

भेद- भेदः प्रोत्साहना मता। प्रोत्साहन को भेद माना है।

उदा० - अप्राज्ञेन च कातरेण च गुणः स्याद्भक्तियुक्तेन कः

प्रज्ञाविक्रमशालिनोपि हि भवेत्किं भक्तिहीनात् फलम् ।

प्रज्ञाविक्रमभक्तयः समुदिता येषां गुणा भूतये

भृत्यास्ते नृपतेः कलत्रमितरे संपस्सु चापत्सु च।। १.१५

प्रज्ञाविक्रमशाली एवं भक्तिसम्पन्न सेवक अपने राजा की समृद्धि मे सहायक होते हैं। जिनमे प्रज्ञा, विक्रम एवं भक्ति नहीं होती वे राजा की सम्पत्ति तथा विपत्ति में कुटुम्ब के समान केवल पोष्य होते है। वे कही पर भी स्वामी की कार्यसिद्धि मे सहायक नही होते। बीज गुण का प्रोत्साहन रूप भेद

नामक अङ्ग का इसमे प्रयोग किया गया है। क्योकि कार्यगुणो के द्वारा उद्योग रूप बीज का प्रोत्साहन या उपबृंहण किया गया है।

करण - 'करणं प्रकृतारम्भः' अर्थात् प्रस्तुत कार्य का आरम्भ करना करण है। उदाहरण- यथाशक्ति क्रियते तद्ग्रहणं प्रति यत्न। से लेकर तेनेदानी महत्प्रयोजनमनुष्ठेयं भविष्यति। (पृ० २५) तक के अंश मे बीज के अनुरूप प्रस्तुत कार्य का आरम्भ प्रस्तुत किया गया है अत यह करण नामक अङ्ग का उदाहरण है।

इन सभी अङ्गो का रूपक मे साक्षात् या परम्परया विधान प्रस्तुत किया जाता है। इनमे से उपक्षेप, परिकर, परिन्यास, युक्ति उद्भेद एव समाधान का उपनिबन्धन प्रत्येक रूपक के लिए आवश्यक माना गया है। वस्तुत रूपक के जितने इतिवृत्त मे फलप्राप्ति के मुख्य उपाय बीज की सम्यक् उत्पत्ति हो जाती है तथा प्रारम्भ नाम की कार्यावस्था पूर्ण हो जाती है, वह मुख सन्धि है। यह मुखसन्धि प्रसङ्ग के अनुसार रस निष्पत्ति का भी हेतु होती है।

मुखसन्धि को प्रस्तुत करने के अनन्तर सम्पूर्ण यमपटचरवृत्तान्त को कवि ने प्रस्तुत किया है। इस वृत्तान्त को स्वपक्ष मे अनुरक्त एवं अपरक्त जनो के परिज्ञान तथा राक्षस की मुद्रा की प्राप्ति आदि अवान्तर प्रयोजनो के कथन के लिए प्रस्तुत किया गया है।

प्रतिमुख - जहॉ बीज का कुछ लक्ष्य रूप मे तथा कुछ अलक्ष्य रूप मे उद्भेद होता है अर्थात् प्रकटन होता है वह प्रतिमुख सन्धि है।[१] मुद्रा० मे पहले व्यक्त हुए लक्ष्य के मध्य मे यमपटचर के वृत्तान्त के द्वारा अभी जो प्रकट नहीं हुआ है ऐसे चाणक्य की नीति रूप बीज का यहॉ पर पुनः प्रकटन हुआ है अतः यह प्रतिमुख सन्धि का स्थल है। इस सन्धि का निर्माण बिन्दु नामक अर्थप्रकृति एवं प्रयत्न नामक कार्यावस्था के संयोग से होता है। 'किमत्र लिखामि' यह अर्थप्रकृति बिन्दु है। 'कृतः कार्यारम्भः' यह भी बिन्दु है। यहॉ पर चाणक्य एक बार पुन राक्षस को अपने वश मे करने के लिए

---

१ लक्ष्यालक्ष्यतयोद्भेदस्तस्य प्रतिमुखं भवेत् ।
बिन्दुप्रयत्नानुगमादङ्गान्यस्य त्रयोदश।। दशरूपक १.३०

नवीन प्रयत्न करता है। 'स्वच्छन्दमेकचरम्' १.२६ के अन्दर प्रयत्नावस्था है। दशरूपककार के अनुसार प्रतिमुख सन्धि के १३ अङ्ग इस प्रकार है-

विलासः परिसर्पश्च विधूतं शमनर्मणी।

नर्मद्युतिः प्रगमनं निरोधः पुर्यपासनम् ।।

वज्रं पुष्पमुपन्यासो वर्णसंहार इत्यपि।। दशरूपक १ ३१-३२

विलास- 'रत्यर्थेहा विलासः स्यात् ।' रत्यादि के लिए जो इच्छा होती है वह विलास है। ''गृहीतो जयशब्दः (पृ.३३) विलास का उदाहरण है यहॉ कार्यसिद्धि की इच्छा व्यक्त की गयी है।

परिसर्प- 'दृष्टनष्टानुसर्पणम् परिसर्पः।' पहले देखे गये और फिर नष्ट हुए बीज का अन्वेषण परिसर्प है। उदा० 'ननु वक्तव्यं संयमितः सपुत्रकलत्रो राक्षस इति।' (पृ.६६) अथवा साधु वृषल। ममैव हृदयेन सह सम्मन्त्र्य सन्दिष्टवानसि। मुखसन्धि मे देखे गये फिर नष्ट हुए बीज का यहॉ पर पुनः अन्वेषण हुआ है अतः यह परिसर्प का उदाहरण है।

विधूत- 'विधूतः स्यादरतिः।' सुखप्रद वस्तुओ के प्रतिअरुचि विधूत है। 'अथवा न लिखामि पूर्वमनभिव्यक्तमेवास्ताम्। (पृ.३५) यहॉ पर अनिष्टवस्तुक्षेपरूप विधूत है।

शम - तच्छमः शमः। अरति का उपशम शम है। 'हन्त गृहीतो राक्षसः' (पृ.३७) यहॉ अरति चिन्ता का उपशमन है। यह शम का उदाहरण है।

नर्म- 'परिहासवचो नर्म'। परिहासयुक्त वचन नर्म है। 'चाण.- भोः श्रेष्ठिन् ! मा मैवम् । सम्भावितमेवेदमस्मद्विधैः भवतः। (पृ. ३९) इस अंश मे चन्दनदास के अतिसन्धान के लिए परिहास पूर्ण वचन नर्म के रूप मे प्रयुक्त हुए है।

नर्मद्युति- धृतिस्तज्जा द्युतिर्मता। नर्म से उत्पन्न धृति ही नर्मद्युति है। 'चन्द.- (कर्णौ पिधाय) शान्तं पापम् । शारदनिशासमुद्गतेनेव पूर्णिमाचन्द्रेण चन्द्रश्रियाधिकं नन्दन्ति प्रकृतयः।' (पृ.३९) यहॉ पर चन्द्रगुप्त के गुणो को

उद्घटित करने के लिए प्रीति को वर्णित कर नर्मद्युति को प्रस्तुत किया गया है।

प्रगमन - 'उत्तरावाक् प्रगमनम् '। बीज के सम्बन्ध मे उत्तरोत्तर वचन ही प्रगमन है। 'चाण.- (सङ्गुलिमुद्रं लेखमर्पयित्वा) गम्यतां अस्तु ते कार्यसिद्धिः। (पृ. ३७) इत्यादि उत्तरोत्तर वाक्यो से कार्यसिद्धि के बीज का प्रकाशन किया गया है। अतः यह प्रगमन अङ्ग का उदाहरण है।

निरोध- हितरोधो निरोधनम् । हित के लिए किसी को अवरुद्ध करना निरोध है। 'वृषल एवास्य प्राणहरं दण्डमाज्ञापयिष्यति।' (पृ.४४) यहाँ पर छद्मपूर्वक अपने अभीष्ट की सिद्धि के लिए अथवा अभीष्ट राक्षस के आगमन के हेतुभूत, चन्दनदास का निरोध होने से यह निरोध अङ्ग का उदा. है।

पर्युपासन - 'पर्युपास्तिरनुनयः'। क्रुद्ध व्यक्ति को मनाना पर्युपासन है। 'कञ्चुकी-देव! कोऽन्यो जीवितुकामो देवस्य शासनमतिवर्तेत (पृ०७९) यहाँ पर चन्द्रगुप्त के क्रोध को देखकर कञ्चुकी ने अनुनय किया है। अतः यह पर्युपासन का उदाहरण है।

वज्र - 'वज्रं प्रत्यक्षनिष्ठुरम् '। प्रत्यक्ष रूप मे निष्ठुर वचन वज्र है। 'चाण.- भवानेव तावत् प्रथमम् ।' (पृ. ४०) चाणक्य राजा के विरुद्ध व्यक्तियो मे चन्दनदास को उसी से प्रथम व्यक्ति कहता है।

पुष्प- 'पुष्पं वाक्यं विशेषवत् '। बीजोद्घाटन के संदर्भ मे विशेषता युक्त कथन पुष्प है। 'चाण. साधु चन्दनदास साधु।

सुलभेष्वर्थलाभषु परसंवेदने जने।

क इदं दुष्करं कुर्यादिदानी शिबिना विना।। मुद्रा. १.२३

यहाँ पर चन्दनदास की विशेषता का स्पष्ट निर्देश होने से यह पुष्प का उदाहरण है।

उपन्यास - 'उपन्यासस्तु सोपायम् '। हेतुप्रदर्शक कथन ही उपन्यास है। 'चाण.- संक्षेपतो राजनि अविरुद्धाभिर्वृत्तिभिर्वर्ति तव्यम्।' (पृ०४०) इस स्थल पर राजा के प्रति अनुराग के हेतुवाक्य को प्रस्तुत किया गया है।

वर्णसंहार- चातुर्वण्योपगमनं वर्णसंहार इष्यते। चारो वर्णो का एकत्रित होना वर्णसंहार है।

'ये याता किमपि प्रधार्य हृदये पूर्व गता एव ते

ये तिष्ठन्ति भवन्तु तेऽपि गमने काम प्रकामोद्यमा।

एका केवलमेव साधनविधौ सेनाशतेभ्योऽधिका।

नन्दोन्मूलनदृष्टवीर्यमहिमा बुद्धिस्तु मा गान्मम।

यह वर्णसंहार का उदाहरण है क्योकि यहॉ पर ब्राह्मण आदि चारो वर्णो से समन्वित प्रकृतियो का वर्णन किया गया है।

इस प्रकार प्रथम अङ्क के २५ वे श्लोक तक मे चाणक्य के मस्तिष्क मे विद्यमान सम्पूर्ण योजना कार्यान्वित हो चुकती है चाणक्य को यह ज्ञात है कि इसे कैसे समाप्त होना है। यहॉ बिन्दु एवं प्रयत्न के योग से बनने वाली प्रतिमुख सन्धि समाप्त हो जाती है।

गर्भ सन्धि- जहॉ दिखलाई देकर खोये गये बीज का बार बार अन्वेषण होता है वह गर्भसन्धि है।[१] प्रतिमुख सन्धि मे जो बीज कुछ लक्ष्य रूप मे तथा कुछ अलक्ष्य रूप मे प्रकट होता है उसका पहले विघ्नो के साथ प्रकट होना फिर नष्ट हो जाना, पुनः उसकी प्राप्ति, पुनः नाश इस प्रकार बार-बार उसी का अन्वेषण गर्भ सन्धि है। इसमे फलप्राप्ति की आशा का एकान्ततः निश्चय नही होता सभी सन्धियो के लिए यह सामान्य नियम है कि क्रमशः अर्थप्रकृति और कार्यावस्था के अन्वय से सन्धि की उत्पत्ति होती है। इस प्रकार पताका अर्थप्रकृति तथा प्राप्त्याशा कार्यावस्था इन दोनो के परस्पर अन्वय से गर्भसन्धि का भी निर्माण होना चाहिए। किन्तु दशरूपककार ने स्पष्टरूप से निर्देश किया है कि इस सन्धि मे पताका अर्थप्रकृति का होना अनिवार्य नही है। किन्तु प्राप्त्याशा कार्यावस्था को अवश्य होना चाहिए।

---

[१] गर्भस्तु दृष्टनष्टस्य बीजस्यान्वेषणम् मुहुः।
द्वादशाङ्ग पताका स्यान्नवा स्यात् प्राप्तिसम्भवः।।

मुद्राराक्षस मे प्राप्त्याशा के साथ पताका का भी प्रयोग किया गया है। इस नाटक मे विराधगुप्त एवं राक्षस की संवादकथा 'पताका' है। 'सखे वर्णय कुसुमपुरवृत्तान्तम्' (पृ.५७) से पताका नामक अर्थप्रकृति प्रारम्भ होती है। इससे राक्षस की नीति पर प्रकाश पड़ता है। द्वितीय अङ्क मे सातवे श्लोक के अनन्तर गद्यभाग मे राक्षस ने अपनी राजनीति पर प्रकाश डाला है कि उसने चन्द्रगुप्त को नष्ट करने के लिए क्या क्या उपाय किये है। मया तावत् सुहृत्तमस्य चन्दनदासस्य गृहे गृहजनं निक्षिप्य नगरान्निर्गच्छता न्याय्यमनुष्ठितम्।

इत्टात्मजः सपदि सान्वय एव देव· शार्दूलपोतमिव यं परिपोष्य नष्टः।

तस्यैव बुद्धिविशिखेन भिनद्मि मर्म वर्मीभवेद् यदि न दैवमदृश्यरूपम् ।।[१]

तक राक्षस के उपाय तथा अपाय का वर्णन है। इस गर्भसन्धि मे बीज कुछ उग आते है, कुछ सूख जाते है तथा और कुछ उगते ही नही है। यहॉ चाणक्य का कार्योपक्षेप गर्भित है, राक्षस का नही। द्वितीय अङ्क मे राक्षस के बीज का विनाश वर्णित है, जब कि विराधगुप्त राक्षस से मिलता है। चाणक्य के बीज की गर्भितता भी द्वितीय अङ्क मे प्रस्तुत की गयी है, जबकि आभूषण सिद्धार्थक को दिए जाते है और वह उनको राक्षस के पास ही रख देता है। इसी प्रकार तृतीय अङ्क मे भी चाणक्य के बीज की गर्भितता वहॉ दृष्टिगत होती है जहॉ मलयकेतु ने चाणक्य के व्यक्तियो को अपनी सेवा मे ले लिया है। किन्तु गर्भसन्धि के लक्षण के अनुसार द्वितीय अङ्क मे राक्षस की गर्भसन्धि चाणक्य की अपेक्षा अधिक है। युष्मत्प्रयुक्तेन दारुवर्मणा सूत्रधारेण चन्द्रगुप्तोऽयमिति मत्वा तस्योपरि पातनाय सज्जीकृतं यन्त्रतोरणम्। (पृ.६१) अंश मे दारुवर्मा के प्रयत्न मे बीज दृष्ट है तथा राक्षस-अथ सूत्रधारो दारुवर्मा कथम् । विरा. - वैरोचकपुरःसरेण पदातिलोकेनैव लोष्टघातं हतः। (पृ.६२) अंश मे उसकी असफलता में बीज नष्ट है। पहले देखे गये तथा बाद मे नष्ट हुए बीज का बार-बार अन्वेषण वैद्य अभयदत्त आदि के प्रयत्न में दृष्टिगत होता है। जहाँ क्रमशः सभी प्रयत्न विफल होते हुए दिखाई देते है। राक्षस - अथ स वैद्यः कथम् । विरा.- तदेवौषधं पायितो मृतश्च। राक्षसः - अहो महान्

---

[१] मुद्रा० २८

विज्ञानराशिरुपरत.। अथ तस्य शयनाधिकृतस्य प्रमोदकस्य किं वृत्तम् । विरा.- यदितरेषाम् । (पृ.६३)।

राक्षस के सम्पूर्ण प्रयत्न मे प्राप्त्याशा है। किन्तु यह प्राप्त्याशा चाणक्य के पक्ष मे घटित नही होती है क्योकि उसको अपनी विजय में प्रारम्भ से ही विश्वास है परिणाम के प्रति चाणक्य आश्वस्त है। उसके लिए अपाय की शङ्का का प्रश्न ही नही है। इसलिए चाणक्य के लिए प्राप्त्याशा नही है। चाणक्य के पक्ष मे सिद्धार्थक के गायब होने और राक्षस के सामने शकटदास के साथ प्रकट होने से बीज दृष्ट-नष्ट है। गर्भ सन्धि मे बीज का ध्रंश दो बार हुआ है। प्रथमत· स्तनकलश द्वारा प्रयत्न करने पर भी चाणक्य की प्रत्युत्पन्नमति के कारण बीज नष्ट होने से बच गया। क्योकि चाणक्य ने राक्षस की चाल को समझ लिया था तथा द्वितीयतः तब, जब चाणक्य और चन्द्रगुप्त के कलह की सूचना पर चाणक्य न तो वन मे जाता है न ही चन्द्रगुप्त के विनाश की प्रतिज्ञा करता है। राक्षस इस लड़ाई को वास्तविक मानने के लिए तैयार नही हो पाता- 'नेदमुपपद्यते'। किन्तु बीज की रक्षा इसलिए हो गयी कि शकटदास के 'उपपद्यत एवैतत्' कहने पर राक्षस 'एवमेतत् कहकर अनुमोदित करता है।

कामं नन्दमिव प्रमथ्य जरया चाणक्यनीत्या यथा
धर्मो मौर्य इव क्रमेण नगरे नीतः प्रतिष्ठां मयि।
तं सम्प्रत्युपचीयमानमनु मे लब्धान्तरः सेवया
लोभो राक्षवज्जयाय यतते जेतुं न शक्नोति च।। मुद्रा. २.९

इस श्लोक मे वर्णित कञ्चुकी के निर्वेद के द्वारा चाणक्य की नीति से राक्षस के प्रयत्न का भावी उपमर्द सूचित किया गया है। कञ्चुकी के द्वारा स्वयं को पहनाए गये आभूषणो को ही राक्षस सिद्धार्थक को प्रसन्न होकर परितोषिक के रूप मे देता है तथा निर्वहण सन्धि में इन्ही आभूषणो का प्रयोग किया गया है। 'कर्णेनेव विषाङ्गनैकपुरुषव्यापादिनी रक्षितां (२.१५) मे चाणक्य की प्राप्त्याशा राक्षस की प्राप्त्याशा के भङ्ग होने से सूचित हो रही है। एकमपि नीतिबीजम्' (२.१९) 'एते खलु त्रयोऽलङ्कारासंयोगा विक्रीयन्ते (पृ.७१) बीजान्वेषण है। इसी प्रकार 'सिद्धार्थकः - (गृहीत्वा पादयोर्निपत्य स्वगतम्)

अयं खलु आर्योपदेशः' (पृ.६८) भी बीजान्वेषण है। राक्षस के पक्ष मे विराधगुप्त राक्षस से जब कहता है कि 'इत्थमपि ममानुभवः' (पृ.७१) यह भी बीजान्वेषण है। 'अपि नाम दुरात्मनश्चाणक्याच्चन्द्रगुप्तो भिद्येत' (पृ०७२) यहाँ पर राक्षस 'ततः प्रभृति चन्द्रगुप्तशरीरे सहस्रगुणमप्रमत्तश्चाणक्यहतकः' (पृ.६५) सुनकर चन्द्रगुप्त के वध के विषय मे निराश हो चुका था तथापि स्तनकलश के द्वारा चन्द्रगुप्त और चाणक्य के परस्पर विरोध के कारण अपने अभीष्ट के पूर्ण होने की आशा कर रहा है। इस प्रकार यहाँ राक्षस की 'प्राप्त्याशा' वर्णित है और इसी आशा से राक्षस पुनः राजनीति मे प्रवृत्त होता है।

गर्भसन्धि के १२ अङ्ग होते है-

अभूताहरणं मार्गो रूपोदाहरणे क्रमः। संग्रहश्चानुमानं च तोटकाधिबले तथा।

उद्वेगसम्भ्रमाक्षेपाः। दशरूपक १.३७

अभूताहरण- 'अभूताहरणं छद्म'। प्रकृत विषय से सम्बद्ध छलपूर्ण कार्य ही अभूताहरण कहलाता है। मुद्राराक्षस मे आहितुण्डिक का छद्मरूप धारण करने वाले विराधगुप्त का प्राकृत भाषा मे अपनिबद्ध 'जाणन्ति तन्तजुत्तिं जहट्ठिअं मण्डलं अहिलिहन्ति' इत्यादि सम्पूर्ण वचन अभूताहरण है।

यहाँ पर राक्षस के प्रति कुसुमपुर के वृत्तान्त के कथन मे छद्म का आचरण किया गया है। विराधगुप्त का स्वगतम् संस्कृत मे है क्योकि वह उत्तम पात्र है। केवल आहितुण्डिक का वेष धारण करने के कारण उसे प्राकृत का प्रयोग करना पड़ता है।

मार्ग- 'मार्गस्तत्त्वार्थकीर्तनम् '। प्रकृत विषय के सम्बन्ध मे यथार्थ बात का कथन ही मार्ग है। उदाहरण-

वृष्णीनामिव नीतिविक्रमगुणव्यापारशान्तद्विषां

नन्दानां विपुले कुलेऽकरुणया नीते नियत्या क्षयम् ।

चिन्तावेशसमाकुलेन मनसा रात्रिंदिवं जाग्रतः

सैवेयं मम चित्रकर्मरचना भित्तिं विना वर्तते। मुद्रा. २.५

अथवा

नेदं विस्मृतभक्तिना न विषयव्यासङ्गरूढात्मना

प्राणप्रच्युतिभीरूणा न च मया नात्मप्रतिष्ठार्थिना।

अत्यर्थ परदास्यमेत्य निपुणं नीतौ मनो दीयते

देव: स्वर्गगतोऽपि शात्रववधेनाराधित: स्यात् मुद्रा. 2.5

न विषयोपभोग मे आसक्ति के कारण न ही अपनी प्रतिष्ठा की चाहत मे मेरा मन प्रवृत्त हो रहा है। अपितु स्वर्गगति को 'प्राप्त हुए स्वामी की शत्रुओ का वध करके मुझे आराधना करनी है। यह यथार्थकथन मार्ग नामक अङ्ग का उदाहरण है।

रूप- रूपं वितर्कवद्वाक्यम् । प्राप्ति की आशा मे वितर्क से युक्त कथन को रूप कहते है। उदाहरण- भगवति कमलालये भृशमगुणज्ञासि। कुतः -

आनन्दहेतुमपि देवमपास्य नन्दं

सक्तासि किं कथय वैरिणि मौर्यपुत्रे।

दानाम्बुराजिरिव गन्धगजस्य नाशे

तत्रैव किं न चपले प्रलयं गतासि।। मुद्रा. २.६

अपि च अनभिजाते ।

पृथिव्यां किं दग्धा: प्रथितकुलजा भूतिपतयः

पतिं पापे मौर्य यदसि कुलहीनं वृतवती ?

प्रकृत्या वा काशप्रभवकुसुमप्रान्तचपला

पुरन्ध्रीणां प्रज्ञा पुरुषगुणविज्ञानविमुखी।। मुद्रा. २.७

अयि अविनीते तदहमाश्रयोन्मूलनेनैव त्वामकामां करोमि।'

राक्षस के ये वितर्कपूर्ण वाक्य गर्भसन्धि के रूप नामक अङ्ग के उदाहरण है।

उदाहरण- सोत्कर्ष स्यादुदाहृति। प्राप्त्याशा से सम्बद्ध उत्कर्षयुक्त कथन उदाहरण है। उदाहरण- चन्द्रगुप्तशरीरमभिद्रोग्धुमस्मत्प्रयुक्ताना तीक्ष्णरसदायिनामुपसंग्रहार्थ परकृत्योपजापार्थ च महता कोशसञ्चयेन स्थापित शकटदासः। प्रतिक्षणमरातिवृत्तान्तोपलब्धये तत्संहतिभेदनाय च व्यापारिता सुहृदो जीवसिद्धिप्रभृतयः। (पृ०५२) यहॉ पर राक्षस के द्वारा प्रकृत कार्य के उत्कर्ष का कथन किया गया है अतः यह उदाहरण अङ्ग का स्थल है।

क्रम- क्रम सञ्चिन्त्यमानाप्तिः। सोची हुई वस्तु की प्राप्ति क्रम है। उदाहरण- राक्ष. (पत्रं गृहीत्वा वाचयति)

पीत्वा निरवशेषं कुसुमरसमात्मन कुशलतया।

यदुद्गिरिति भ्रमरः अन्येषां करोति तत्कार्यम् । मुद्रा. २.११

(विचिन्त्य स्वगतम्) अये कुसुमपुरवृत्तान्तज्ञो भवत्प्रणिधिरिति गाथार्थः। (पृ०५६) पहले द्वार पर कौन स्थित है? इस प्रकार कुसुमपुर के वृत्तान्त को जानने के लिए भेजे गये दूत के रूप मे सञ्चिन्तित की प्राप्ति हो रही है। अत यहॉ पर क्रम अङ्ग का प्रयोग दृष्टिगत होता है।

सग्रह - समाधानोक्ति। प्राप्त्याशा से सम्बद्ध समाधानयुक्त कथन संग्रह है। उदाहरण - कञ्चुकी० (नाटयेन भूषणानि परिधाप्य) स्वस्ति भवते साधयाम्यहम् । राक्ष० - आर्य अभिवादये। कञ्चुकी - (निष्क्रान्तः) राक्ष० - प्रियं - वदक ज्ञायतां कोऽस्मद्दर्शनार्थी द्वारि तिष्ठति इति। (पृ०५४) यह प्रस्तुतोपयोगी वचन समाधान है क्योकि प्रस्तुत राक्षस का उत्साह उपयोगी है। अथवा चाणक्य के उपाय रूप प्रस्तुत बीज मे उपयोगी यह भूषणदान ही समाधानवचन है क्योकि तुरन्त ही राक्षस के द्वारा सिद्धार्थक को परितोषिक के रूप मे दिये जाने वाले इन आभूषणों का निर्वहण में कूटलेख मे उपयोग किया जाना है।

अनुमान- अभ्यूहो लिङ्गतोऽनुमा। किसी चिह्न से किसी बात का निश्चय करना अनुमान है। उदाहरण- राक्ष------व्यक्तमाहितुण्डिकच्छद्मना विराधगुप्तेनानेव भवितव्यम्। (पृ०५६) यहॉ पर आहितुण्डिकलिङ्ग से विराधगुप्त का अनुमान किया गया है।

तोटक - संरब्धं तोटकं वचः। आवेगपूर्ण वचन तोटक है। उदा० - राक्ष० (शास्त्रमाकृष्य ससंभ्रमम्। अयि मयि स्थिते कः कुसुमपुरमुपरोत्स्यति। प्रवीरक प्रवीरक क्षिप्रमिदानीम्। (पृ०५८)

प्राकारं परितः शरासनधरैः क्षिप्रं परिक्रम्यतां

द्वारेषु द्विरदैः प्रतिद्विपघटाभेदक्षमैः स्थीयताम् ।

त्यक्त्वा मृत्युभयं प्रहर्तुमनसः शत्रोर्बले दुर्बले

ते निर्यान्तु मया सहैकमनसो येषामयीष्टं यशः।। मुद्रा. २.१३

राक्षस के ये आवेगपूर्ण वचन तोटक के उदाहरण है।

अधिबल- अधिबलमभिसन्धिः। इष्टानुसन्धान अधिबल है। राक्ष०- कार्यव्यग्रत्वान्मनसः प्रभूतत्वाच्च प्रणिधीनां विस्मृतम् । इदानी स्मृतिरुपलब्धा। (पृ०५६) यहाँ पर इष्ट जन की राक्षस को प्रतीक्षा है। अतः यह अधिबल का उदाहरण है।

उद्वेग- उद्वेगोऽरिकृता भीतिः। शत्रुकृत भय उद्वेग है। उदा. - राक्ष. - यदनेन बुद्धिमोहादथवा राजभक्तिप्रकर्षान्नियोगकालमप्रतीक्षमाणेन जनितश्चाणक्यबटोश्चेतसि बलवान् विकल्पः। (पृ०६०) यह अपकारी व्यक्ति से भय के कारण उद्वेग का उदाहरण है तथा राक्ष (सोद्वेगाम्) न खलु व्यापादितः। (पृ. ६६) भी उद्वेग का उदाहरण है।

संभ्रमः - शङ्कात्रासौ च संभ्रमः। शङ्का और त्रास सम्भ्रम है। उदा.- राक्ष.- (वामाक्षिस्पन्दनं सूचयित्वा आत्मगतम्) कथं प्रथममेव सर्पदर्शनम्। (पृ०५५) यहाँ पर शङ्कारूप संम्भ्रम है। विरा.- ततः पितृवधत्रासादपक्रान्ते कुमारे मलयकेतौ। (पृ०६०) मे त्रासरूप सम्भ्रम है।

आक्षेप - गर्भबीजसमुद्भेदादाक्षेपः परिकीर्तितः। गर्भ के बीज का प्रकटन आक्षेप है। उदा - ततश्चाणक्यहतकेनानुकूललग्नवशादर्धरात्रसमये चन्द्रगुप्तस्य नन्दभवनप्रवेशो भविष्यतीति शिल्पिनः पौरॉश्च गृहीतार्थान् कृत्वा तस्मिन्नेव क्षणे पर्वतेश्वरभ्रातरं वैरोचकमेकासने चन्द्रगुप्तेन सहोपवेश्य कृतः

पृथ्वीराज्यविभागः। (पृ० ६१) यहाँ पर चाणक्य के अभीष्ट गर्भ का उद्भेद है अतः आक्षेप नामक अङ्ग का यहाँ पर प्रयोग दृष्टिगत होता है।

इस प्रकार पताका एवं प्राप्त्याशा के संयोग से निष्पन्न गर्भसन्धि की समाप्ति होती है।

अवमर्श - जहाँ फलप्राप्ति के विषय मे क्रोध, व्यसन अथवा प्रलोभन से विमर्श किया जाता है तथा जिसमे गर्भसन्धि द्वारा निर्भिन्न बीजार्थ का सम्बन्ध वर्णित होता है वहाँ अवमर्श सन्धि होती है।[१] इसे ही अन्य आचार्य विमर्श कहते है।[२] अवमर्श शब्द का अर्थ है 'उहापोह करना, या पर्यालोचन करना। गर्भसन्धि मे फलप्राप्ति की सम्भावना होती है, बीज का उद्भेद हो जाता है किन्तु फिर क्रोध, व्यसन, विलोभन या शाप आदि के कारण विघ्न उपस्थित हो जाने से नायक फलप्राप्ति के विषय मे विमर्श अर्थात् सन्देह करने लगता है। तत्पश्चात् विघ्न हट जाने पर फलप्राप्ति का निश्चय हुआ करता है। इस प्रकार जहाँ नियताप्ति कार्यावस्था से समन्वित होकर बीज गर्भसन्धि की अपेक्षा और अधिक प्रकट हो जाता है वह प्रधानवृत्त का भाग अवमर्श सन्धि है। मुद्राराक्षस के तृतीय अङ्क मे राक्षस द्वारा अभीप्सित चाणक्य और चन्द्रगुप्त के विरोध का वर्णन करने हेतु विमर्श सन्धि का प्रारम्भ किया गया है। विमर्श सन्धि मुद्राराक्षस के तृतीय एवं चतुर्थ अङ्को मे व्याप्त है। इसका निर्माण प्रकरी अर्थप्रकृति और नियताप्ति अवस्था के संयोग से होता है। इस नाटक के तृतीय अङ्क मे नियताप्ति वर्णित है तथा चतुर्थ अङ्क मे राक्षस एवं चर के मध्य सम्वाद के रूप मे प्रकरी वर्णित है।

'किमविदित एवायं देवस्य कौमुदीमहोत्सवप्रतिषेधः' (पृ. ६४) यह चाणक्य के नीतिरूप बीज का अवमर्श है।

---

१ क्रोधेनावमृशेद्यत्र व्यसनाद्वा विलोभनात् ।
गर्भनिर्भिन्नबीजार्थः सोऽवमर्श इति स्मृतः।। दशरूपक १.४३

२ ना. शा. (१९.४२) प्रता. (३.१६) ना. द. (१.१९) साहित्यदर्पण (६.७९) मे भी प्रायः दशरूपक के समान ही लक्षण प्राप्त होता है। किन्तु इन सभी ग्रन्थो मे अवमर्श की जगह विमर्श नाम प्राप्त होता है।

'भर्तुस्तथा कलुषितां बहुवल्लभस्य

मार्गे कथञ्चिदवतार्य तनूभवन्तीम् ।

सर्वात्मना रतिकथाचतुरेव दूती

गङ्गां शरन्नयति सिन्धुपतिं प्रसन्नाम् ॥' मुद्रा. ३.९

बीजावमर्श है। 'मद्भृत्यै किल सोऽपि पर्वतसुतो व्याप्तः प्रविष्टान्तरैः'। (३.१३) नियताप्ति कार्यावस्था है। 'आर्याज्ञयैव मम लङ्घितगौरवस्य बुद्धिः प्रवेष्टुमिव भूविवरं प्रवृत्ता ३.३३ मे पुनः नियताप्ति वर्णित है। इसी प्रकार भागुरायण ने मलयकेतु के साथ करभक और राक्षस की छिपकर बाते सुनी और उसने राक्षस के विरोध मे मलयकेतु के मन मे संशय डाल दिया। यह सफलता मे विश्वास उत्पन्न करने के कारण नियताप्ति है। नियताप्ति एवं प्रकरी के योग से इस अवमर्श सन्धि के १३ अङ्ग हो जाते है-

तत्रापवादसम्फेटौ विद्रवद्रशक्तयः द्युतिः प्रसङ्गश्छलनं व्यवसायो विरोधनम् ।

प्ररोचनाविचलनमादानं च त्रयोदश। दशरूपक १.४४

अपवाद - दोषप्रख्यापवादः स्यात् । किसी पात्र के दोषो का कथन अपवाद कहलाता है। उदा. - चाण. (स्मितं कृत्वा) उपालब्धुं तर्हि वयमाहूताः (पृ ८५) यहाँ पर चाणक्य ने अपने उपालम्भ रूप दोष का प्रख्यापन किया है।

स्फोट - सम्फेटो रोषभाषणम् । बीज से अन्वित रोषयुक्त कथनोपकथन ही संफेट है। उदा.- राजा - (सकोपम्) आर्येणैव सर्वत्र निरुद्धचेष्टाप्रसरस्य मे बन्धनमिव राज्यम् न राज्यमिव। चाण.- वृषल! स्वयमनभियुक्तानां राज्ञामेते दोषाः सम्भवन्ति। तद्यदि न सहसे ततः स्वयमभियुज्यस्व (पृ.- ८७)

विद्रव - विद्रवो वधबन्धादिः। वध, बन्धन आदि का वर्णन ही विद्रव है। उदा. -

गृध्रैराबद्धचक्रं वियति विचलितैर्दीर्घनिष्कम्पपक्षै-

धूमैर्ध्वस्तार्कभासां सघनमिव दिशां मण्डलं दर्शयन्तः।

नन्दैरानन्दयन्तः पितृवननिलयान् प्राणिनः पश्य चैतान्

निर्वान्त्यद्यापि नैते स्रुतबहलवसावाहिनो हव्यवाहाः।। मुद्रा. - ३ २४

यहाँ पर वध रूप विद्रव प्रयुक्त है।

द्रव- द्रवो गुरुतिरस्कृतिः। गुरूजनो का तिरस्कार द्रव है। उदा - अन्येनैवेदमनुष्ठितम्किमत्रार्यस्य (पृ.९। नन्दो का वध नन्दकुल के शत्रु दैव के द्वारा किया गया है। उसमे आचार्य को क्या श्रेय? यहाँ पर राजा चन्द्र गुप्त के द्वारा की गई अपने गुरु चाणक्य के तिरस्कृति का वर्णन है। अतः यह द्रव का उदाहरण है।

शक्ति - विरोधशमनं शक्तिः। विरोध का शान्त हो जाना शक्ति है। उदा.- चाण.- कथमकौशलं भविष्यति। प्रयोजनापेक्षयैव। चाणक्य के ये वचन विरोधशमन रूप शक्ति नामक अङ्ग के उदा. है।

द्युति - तर्जनोद्वेजने द्युतिः। तर्जन एवं उद्वेजन का वर्णन द्युति है। उदा.- चाण.- आ. केन। (पृ.९४) यहाँ पर राजा चन्द्रगुप्त जब अन्येनैवेदमनुष्ठितम् कहता है तो चाणक्य अरे किसके द्वारा कहकर तर्जना करता है। अतः यहाँ पर तर्जनारूप द्युति है। इसी प्रकार संजातोप्रकम्पं कथमपि धरया धारितः पादधातः' (पृ.९५) चाणक्य के द्वारा गुस्से मे किया गया पादघात रौद्र ताण्डव करने वाले रुद्र के पादघात के समान क्रूर है। इस अंश मे उद्वेजन रूप द्युति है।

प्रसङ्ग - गुरुकीर्तनम् प्रसङ्गः। गुरुजनो का कीर्तन प्रसङ्ग है। गुरु अर्थात् अधिक कीर्तन भी प्रसङ्ग है। उदा. -

मालेवामाम्लानपुष्पा तव नृपतिशतैरुह्यते या शिरोभिः

सा मय्येव सखलन्ती कथयति विनयालङ्कृतं ते प्रभुत्वम् ।।३.२४

चाणक्य के ये वचन प्रसङ्ग के उदाहरण है।

छलन- छलनं चावमाननम् । अवहेलना करना छलन है। उदा.- राजा- एते स्वकर्मण्यभियुज्यामहे। (पृ०८८) यहाँ पर गुरु की अवमानना होने के कारण यह छलन का उदा है।

व्यवसाय- व्यवसायः स्वशक्त्युक्तिः। अपनी शक्ति का वर्णन व्यवसाय है। उदा.- चाण. - (विहस्य) वृषल मया पुनर्ज्ञातं नन्दमिव भवन्तमुद्धृत्य भवानिव भूतले मलयकेतू राजाधिराजपदे नियोजित इति। (पृ०९३) यहाँ पर राक्षस की नीति के वैभव के अधिक्षेप के लिए चाणक्य अपनी शक्ति का वर्णन करता है। नन्दो के उन्मूलन एवं चन्द्रगुप्त मौर्य को राजाधिराज पद पर प्रतिष्ठित करने की अपनी शक्ति के वर्णन के कारण यह व्यवसाय का उदाहरण है।

विरोधन- सरब्धानां विरोधनम् । आवेगपूर्ण पात्रो द्वारा अपनी शक्ति का वर्णन विरोधन है। उदा.- राजा- नन्दकुलविद्वेषिणा दैवेन' से लेकर चाण - (सकोपम्) वृषल भृत्यमिव मामारोढुमिच्छसि' (पृ०९४) तक चन्द्रगुप्त एवं चाणक्य का परस्पर वार्तालाप विरोधन है क्योकि ये दोनो इस समय आवेग से युक्त है।

प्ररोचना- सिद्धामन्त्रणतो भाविदर्शिका स्यात् प्ररोचना। यह सिद्ध हो ही गया है इस प्रकार के कथन से अथवा किसी सिद्ध पुरुष के कथन से भावी अर्थ का दर्शन कराना प्ररोचना है। उदा. राजा- (आत्मगतम्) एवमस्मासु गृह्यमाणेषु स्वकार्यसिद्धिकामः सकामो भवत्वार्यः। (पृ.९६) यहाँ पर चन्द्रगुप्त के मन में है कि चाणक्य को चिकीर्षित मलयकेतु एवं राक्षस का विरोध ठीक से हो जायेगा। यह सिद्ध के समान भावी श्रेय का कथन है अतः प्ररोचना का उदाहरण है।

विचलनम् - विकत्थना विचलनम् । आत्मश्लाघा करना विचलन है। उदा.-

केनान्येनावलिप्ता नवनवतिशतद्रुव्यकोटीश्वरास्ते।

नन्दाः पर्यायभूताः पशव इव हताः पश्यतो राक्षसस्य। २.२७

यहाँ पर चाणक्य ने आत्मश्लाघा की है।

आदान- आदानं कार्यसंग्रहः। कार्यसंग्रह आदान है। उदा.- राक्षसः - (वामाक्षिस्पन्दनं सूचयित्वा आत्मगतम्) दुरात्माचाणक्यवटुर्जयत्वतिसन्धातुं शक्य स्यादमात्य इति वागीश्वरी वामाक्षिस्पन्दनेन प्रस्तावगता प्रतिपादयति। (पृ० ९९) चाणक्यकर्तृक राक्षस के अतिसन्धान रूपी कार्य का राक्षस के द्वारा ही दुःशकुन का प्रतिपादन करने से संग्रह दृष्टिगत होता है।

इस प्रकार अवमर्श सन्धि के सभी अङ्गो का मुद्राराक्षस मे स्पष्ट प्रयोग किया गया है। इस विमर्श सन्धि का राक्षस के पक्ष मे अभाव है वह सर्वदैव शङ्कित है।

निर्वहण- बीज से सम्बन्ध रखने वाले, मुख, प्रतिमुख आदि सन्धियो मे यथास्थान बिखरे हुए प्रारम्भ आदि अर्थो का जहाँ एक प्रधान प्रयोजन के साथ सम्बन्ध दिखलाया जाता है वहाँ निर्वहण सन्धि होती है।[१]

इस सन्धि मे फलागम कार्यावस्था का कार्य (नायक व्यापार) नामक अर्थप्रकृति के साथ समन्वय होता है। वस्तुतः बीज से सम्बन्ध रखने वाले जो प्रारम्भ आदि व्यापार मुख आदि सन्धियो मे दिखलाए जाते है उनका मुख्य प्रयोजन के साथ सम्बन्ध दिखलाते हुए जहाँ उपसंहार किया जाता है, इतिवृत्त का वही भाग निर्वहण सन्धि है।

मुद्राराक्षस के पञ्चम षष्ठ और सप्तम इन तीनो अङ्को मे निर्वहण सन्धि का वर्णन है। इस सन्धि के अन्तर्गत ततः प्रविशति लेखमलङ्करणस्थगिकां च मुद्रितामादाय सिद्धार्थकः (पृ. - ११५) से लेकर पंचम अङ्क की समाप्ति तक प्रथम अङ्क मे वर्णित 'किमत्र लिखामि' से लेकर 'कर्णौ एवमिव' तक उपन्यस्त बीज का अनेक प्रकार से विकास हुआ है। इसके अनन्तर इतस्ततः फैले हुए बीज का उपसंहार किया गया है। पञ्चम अङ्क की समाप्ति के साथ मलयकेतु को पकड़ने से सम्बन्धित एक निर्वहण कार्य सम्पन्न हो जाता है। इसके पश्चात् प्रधान कार्य राक्षस को वश मे करने के लिए तथा महान् फल

---

१ बीजवन्तो मुखाद्यर्था विप्रकीर्णा यथायथम् ।
ऐकार्थ्यमुपनीयन्ते यत्र निर्वहणं हि तत् ।। दशरूपक १.४८

की सिद्धि चन्द्रगुप्त की लक्ष्मी को स्थिर करने के लिए षष्ठ एवं सप्तम अङ्को का विधान किया गया है। जिस समय राक्षस मलयकेतु के शिविर को छोड़कर चुपचाप पाटलिपुत्र की ओर चल पड़ा था उस समय उसने भद्रभट एवं उसके साथियो के द्वारा मलयकेतु को कैद किए जाने का समाचार सुन लिया था और जब वह पाटलिपुत्र के पास पहुँचा तब उसने चन्द्रगुप्त की सेना को मलयकेतु की सेना को पराजित कर नगर की ओर वापस जाते हुए देखा था। पाटलिपुत्र के बाहर जीर्णोद्यान मे राक्षस को वश मे करने के लिए चन्दनदास को मिथ्या फॉसी लगाने वाला चाणक्य का प्रणिधि राक्षस के पास पहुॅचता है। परिणामत· राक्षस अपने मित्र चन्दनदास की मुक्ति के लिए अपने आत्मसमर्पण को ही एकमात्र उपाय समझता है। इसी समय एषोऽस्मि सः (७.५) कहकर राक्षस ने आत्मसमर्पण कर दिया है। सप्तम अङ्क के १७ वे श्लोक मे चाणक्य की प्रतिज्ञा पूरी होती है। निर्वहण सन्धि मे निम्नलिखित १४ अङ्ग होते है-

सन्धिर्विबोधो ग्रथनं निर्णयः परिभाषणम्

प्रसादानन्दसमयाः कृतिभाषोपगूहनाः।

पूर्वभावोपसंहारौ प्रशस्तिश्च चतुर्दश।। दशरूपक १.४९-५०

सन्धि- सन्धिर्बीजोपगमनम् । बीज का फलागम के साथ सन्धान ही सन्धि है। उदा.- तद्गृहीतो मयार्यचाणक्येन प्रथमं लेखितोऽमात्यराक्षसस्य मुद्रालाञ्छितोऽयं लेखस्तस्यैव मुद्रालाञ्छितेयमाभरणपेटिका। चलितोऽस्मि किल पाटलिपुत्रम् (पृ.११५) यहॉ पर चाणक्यनीति रूप बीज का सन्धान कार्य सिद्धि के लिए प्रतिपादित किया गया है।

विबोध- विबोधः कार्यमार्गणम् । कार्य=फल का अन्वेषण विबोध है। उदा.- अहमपि भागुरायणान्मुद्रां याचे। (पृ ११८)

ग्रथन- ग्रथनं तदुपक्षेपः। फल का उपक्षेप अर्थात् सूचना ग्रथन है। उदा.- कष्टमेवास्मासु स्नेहवान्कुमारो मलयकेतुरतिसन्धातव्य·। अथवा

कुले लज्जायां च स्वयशसि च माने च विमुख·

शरीरं विक्रीय क्षणिकधनलोभाद्धनवति।

तदाज्ञां कुर्वाणो हितमहितमित्येतदधुना

विचारातिक्रान्तः किमिति परतन्त्रो विमृशति।। मुद्रा ५ ४

मलयकेतु के अतिसन्धान (पकड़ने) से राक्षस को वश मे करने की सूचना होने के कारण यह ग्रथन का उदाहरण है।

निर्णय- अनुभूताख्या तु निर्णयः। अनुभूत किए गये अर्थ का कथन निर्णय है। उदा.- क्षपणक (स्वगतम्) अये श्रुतं मलयकेतुहतकेन। हन्त कृतार्थोस्मि (पृ. १२२) मलयकेतु क्षपणक को सुहृत् तथा राक्षस को शत्रुमान बैठता है इस निमित्त क्षपणक की कृतार्थता निर्णय है।

परिभाषण- परिभाषा मिथो जल्पः। परस्पर वार्तालाप परिभाषण है। उदा.- पञ्चम अङ्क मे भागुरायण एवं क्षपणक का परस्पर वार्तालाप परिभाषण है।

प्रसाद- प्रसादः पर्युपासनम् । कुपित को मनाने के प्रयास पर्युपासन प्रसाद है। उदा.- मित्राणि शत्रुत्वमुपानयन्ती मित्रत्वमर्थस्य वशाच्च शत्रून् ।

नीतिर्नयत्यस्मृतपूर्ववृत्तं जन्मान्तरं जीवत एव पुंसः।। मुद्रा. ५.८

तदत्र वस्तुनि नोपालम्भनीयो राक्षसः। यहाँ पर कुपित मलयकेतु को प्रसन्न करने का प्रयास किया गया है।

आनन्द- आनन्दो वाञ्छिताप्तिः। अभीष्ट की प्राप्ति ही आनन्द है। उदा.- विगुणीकृतकार्मुकोऽपि जेतुं भुविजेतव्यमसौ समर्थ एव।

स्वपतोऽपि ममेव यस्य तन्त्रे गुरवो जाग्रति कार्यजागरूकाः।। ७.११

समय- समयः दुःखनिर्गमः। दुःख का दूर हो जाना समय है। उदा.-

गुरुभिः कल्पनाक्लेशैर्दीर्घजागरहेतुभिः।

चिरमायासिता सेना वृषलस्य मतिश्च मे।। ७.८

कृति- कृतिर्लब्धार्थशमनम् । लब्ध अर्थ का स्थिरीकरण शम है। उदा.- राजा.- आर्यप्रसाद एष चन्द्रगुप्तेनानुभूयते।

भाषणम् - मानाद्याप्तिश्च भाषणम् । मान आदि की प्राप्ति भाषण है। उदा.- राक्षस (प्रकाशनम्) एष प्रह्वोऽस्मि। (पृ० १६३) यहाँ पर प्राप्त कार्य का अनुमोदन है।

उपगूहन- अद्भुतप्राप्तिः उपगूहनम् । अद्भुत अर्थ की प्राप्ति उपगूहन है। उदा.- केनोतुङ्गशिखाकलापकपिलो बद्धः पटान्ते शिखी

पाशैः केन सदागतेरगतिता सद्यः समासादिता।

केनानेकपदानवासितसटः सिंहोऽर्पितः पञ्जरे

भीमः केन च नैकनक्रमकरो दोर्भ्यां प्रतीर्णोऽर्णवः।। ७.६

यहाँ पर चाणक्य द्वारा अद्भुत अर्थ की प्राप्ति प्रदर्शित की गयी है।

पूर्वभाव- कार्यसृष्टिः पूर्वभावः। कार्य अर्थात् फल का दर्शन पूर्वभाव है। उदा.- चाण.- भद्र निवेद्यताममात्यराक्षसाय। सोऽयमिदानी जानीते। (पृ० १६४)

उपसंहार- वराप्ति : काव्यसंहारः। वरदान की प्राप्ति काव्यार्थ का उपसंहार है। उदा.- चाण.- भो राजन् चन्द्रगुप्त भो अमात्य राक्षस उच्यतां किं वां भूयः प्रियमुपकरोमि। (पृ.-१६५) तथा चाण- किं बहुना। एष संक्षेपतः कथयानि।

भृत्या भद्रभटादयः स च तथा लेखः स सिद्धार्थक-

स्तच्चालङ्करणत्रयं स भवतो मित्रं भदन्तः किल।

जीर्णोद्यानगतः स चार्तपुरुषः क्लेशः स च श्रेष्ठिनः

सर्वोऽसौ मम वृषलस्य वीर भवता संयोगमिच्छोर्नयः। ७.९

यहाँ पर विप्रकीर्ण मुखादि अर्थो के ऐकार्थ्य को प्रस्तुत किया गया है। यहाँ चाणक्य उन उपायो का वर्णन कर रहा है जिनका आश्रय उसने राक्षस को वश में करने के लिए लिया है।

प्रशस्ति- प्रशस्तिः शुभशंसनम् । शुभ अर्थ का कथन प्रशस्ति है।

उदा.- राक्षसेन समं मैत्री राज्ये चारोपिता वयम् ।

नन्दाश्चोन्मूलिताः सर्वे किं कर्तव्यमतः परम् ।। मुद्रा ७.१८

यहाँ पर चन्द्रगुप्त चाणक्य के प्रति शुभशंसन करता है। अतः यहाँ पर निर्वहण सन्धि का प्रशस्ति नामक उत्तम अङ्ग है। इस प्रकार मुद्राराक्षस नाटक मे आधिकारिक कथावस्तु का विकास ५ अर्थप्रकृतियो एवं ५ कार्यावस्थाओ के संयोग से निर्मित होने वाली मुखादि ५ सन्धियो के रूप मे विकसित हुआ है। कथावस्तु का प्रमुख उद्देश्य राक्षस को चन्द्रगुप्त का अमात्य पद स्वीकार कराकर मौर्यसाम्राज्य की लक्ष्मी को स्थिर करना है। इसी उद्देश्य की प्राप्ति इन सन्धियो के माध्यम से इस नाटक मे प्रतिपादित की गयी है।

अर्थोपक्षेपक - नाटकों की सम्पूर्ण कथावस्तु चाहे वह ऐतिहासिक हो, काल्पनिक हो अथवा मिश्रित अपनी प्रकृति के अनुसार दो भागो मे विभक्त होती है- (१) सूच्य तथा (२) दृश्यश्रव्य[१] चूंकि नीरस एवं अनुचित वस्तु का मञ्च पर प्रदर्शन वर्जित होता है अतः ऐसी वस्तु रूपक मे संसूच्य होती है। इस संसूच्य वस्तु के प्रतिपादन के लिए विष्कम्भक, प्रवेशक, चूलिका, अङ्कावतार एवं अङ्कास्य इन पॉच अर्थोपक्षेपको का आश्रय लिया जाता है।[२]

(१) विष्कम्भक- बीते हुए तथा भविष्य मे होने वाले संसूच्य, कथाभागो के संसूचक, संक्षिप्त अर्थ वाले तथा मध्यम पात्रो के द्वारा प्रयुक्त होने वाले अर्थोपक्षेपक को विष्कम्भक कहते है।[३] इसमे अङ्को न दिखलाए जा सकने वाले इतिवृत्त की सूचना दी जाती है। विष्कम्भक का वर्ण्यविषय

---

१ नीरसोऽनुचितस्तत्र संसूच्यो वस्तुविस्तरः।
दृश्यस्तु मधुरोदात्तरसभावनिरन्तरः।। १ ५७

२ अर्थोपक्षेपकैः सूच्यं पञ्चभिः प्रतिपादयेत् ।
विष्कम्भचूलिकाङ्कास्याङ्कावतारप्रवेशकैः।। दशरूपक १.५८

३ वृत्तवर्तिष्यमाणानां कथांशानां निदर्शकः।
संक्षेपार्थस्तु विष्कम्भो मध्यपात्रप्रयोजितः।। वही. १.५९

अत्यन्त संक्षिप्त होता है। यह भूत तथा भविष्य के कथाभाग को सूचित करके कथासूत्र को अविच्छिन्न बनाता है। विष्कम्भक का अङ्को के प्रारम्भ मे प्रयोग होता है। किन्तु नाट्यदर्पणकार के अनुसार इसका प्रयोग केवल प्रथम अङ्क के ही आदि मे हो सकता है। मुद्राराक्षस मे विष्कम्भक का प्रयोग नही किया गया है। क्योकि 'क्रोधाग्नौ प्रसभमदाहि नन्दवंशः' इस वृत्त कथांश की तथा 'मौर्यन्दोर्द्विषदभियोगः' इस वर्तिष्यमाण कथांश की सूचना प्रस्तावना के द्वारा ही प्रस्तुत कर दी गयी है।

प्रवेशक - विशाखदत्त ने प्रवेशक की योजना दो स्थानो पर की है प्रथम प्रवेशक पञ्चम अंक मे आता है जहॉ सिद्धार्थक और क्षपणक का वार्तालाप है। सिद्धार्थक से यह ज्ञात होता है कि वह चाणक्य की नीति को फलान्वित करने के लिए कपटलेख और आभूषणो को लेकर पाटलिपुत्र के लिए प्रस्थान करता है। दोनो के वार्तालाप से यह भी ज्ञात होता है कि मलयकेतु ने अनधिकृत रूप से पाटलिपुत्र से आने एवं जाने वाले लोगो पर लोक लगा दी है। बिना भागुरायण से पार-पत्र लिए कोई भी आवागमन नही कर सकता है। यहॉ के प्रवेशक से यह स्पष्ट हो जाता है कि अब सिद्धार्थक मलयकेतु के अनुचरो के द्वारा पकड़ा जायेगा और कूटलेख मलयकेतु के पास पहॅुच जायेगा, जिससे चाणक्य की नीति अवश्य ही फललाभ को प्राप्त करेगी।

द्वितीय प्रवेशक षष्ठ अंक मे प्राप्त होता है। यहॉ सिद्धार्थक और समिद्धार्थक के वार्तालाप से यह ज्ञात होता है कि चाणक्य की नीति से किंकर्त्तव्यविमूढ होकर मलयकेतु ने राक्षस को निकाल बाहर किया है। और चित्रवर्मा आदि पॉच राजाओ को मरवा दिया। बाद मे मलयकेतु के सहायको एवं उनकी सेना मे खलबली मच गयी उस अस्त-व्यस्त सेना पर चाणक्य ने अधिकार कर लिया। फिर सहायको से विरहित मलयकेतु को चाणक्य के गुप्तचर भद्रभट, पुरुषदत्त, डिङ्गरात, बलगुप्त, भागुरायण आदि ने पकड़ लिया। यहाँ यह भी ज्ञात हो जाता है कि भद्रभट आदि मलयकेतु के पक्षधर नही थे, अपितु वे चाणक्य के गुप्तचर थे। यही यह बात भी मालूम हो जाती है कि तृतीय अंक के कृतक-कलह को मलयकेतु और राक्षस ने वास्तविक

कलह मान लिया था, और जिसके कारण राक्षस की नीति निष्फल हो जाती है। इसी प्रवेशक के द्वारा यह भी ज्ञात हो जाता है कि राक्षस मलयकेतु के द्वारा बहिष्कृत होकर चन्दनदास की रक्षा के निमित्त पाटलिपुत्र आ गया है और राक्षस की गतिविधियो पर ध्यान रखने के लिए चाणक्य का दुम्बर नामक गुप्तचर उसका पीछा कर रहा है। फिर सिद्धार्थक और समिद्धार्थक दोनो ही चाण्डाल का वेश धारण कर चन्दनदास को वध्यभूमि मे ले जाने के लिए उद्यत हो जाते है।

इस प्रकार प्रवेशको के प्रयोग से अनेक विगत और भविष्यत् घटनाओ की सूचना मिलती है जिनमे से अनेक घटनाओ को रंगमंच पर दिखाया नही जा सकता था।

चूलिका - पर्दे के भीतर स्थित पात्रो के द्वारा किसी संसूच्य अर्थ की सूचना चूलिका है। यही नेपथ्य है। विशाखदत्त ने दो स्थानो पर चूलिका का संयोजन किया है। प्रस्तावना के भीतर ही चूलिका की योजना करके नाटककार ने अपनी नाटकीय प्रतिभा का प्रदर्शन किया है। सूत्रधार के मुख से चन्द्रग्रहण की बाते सुनकर चन्द्रग्रहण का अर्थ चन्द्रगुप्त का ग्रहण लेते हुए चाणक्य पर्दे के पीछे से कह उठता है- "आः! क एष मयि स्थिते चन्द्रमभिभवितुमिच्छति बलात्?[१] इसे सुनते ही चाणक्य के क्रोध का अनुमान करते हुए सूत्रधार और नटी रंगमंच से निकल भागते है और चाणक्य का रंगमंच पर प्रवेश होता है। नेपथ्य से सूचना मिलने के कारण ही इसे चूलिका कहा जायेगा।[२] यदि नाटककार यहॉ चूलिका निबद्ध नही करते ते उन्हे विष्कम्भक आदि की व्यवस्था करके अनेक बातो की सूचना देनी पड़ती, अतः यहॉ की चूलिका बहुत महत्त्वपूर्ण है।

नाटककार ने तृतीय अङ्क मे भी चूलिका का संयोजन किया है। कञ्चुकी प्रवेश करके यह सूचना देता है कि चन्द्रगुप्त कौमुदी महोत्सव को देखने के लिए आ रहा है और उसी समय नेपथ्य से आवाज आती है - " इत इतो

---

१ मुद्रा० पृ० १४

२ "अन्तर्जवनिकासंस्थैश्चूलिकार्थस्य सूचना।" - दश० १.६१

देवः"[1] और उसी के साथ प्रतिहारी के साथ-साथ चन्द्रगुप्त का प्रवेश होता है। यहाँ चन्द्रगुप्त के आगमन की सूचना नेपथ्य से दी जाती है, अत इस स्थल मे चूलिका है। अङ्कावतारः विशाखदत्त कथावस्तु के अविच्छिन्न अवतरण के लिए अङ्कावतार नामक अर्थोपक्षेपक का भी प्रयोग करता है। षष्ठ अङ्क के अन्त मे आत्महत्या करने के लिए उद्यत व्यक्ति से जब राक्षस को यह ज्ञात होता है कि चन्दनदास को फॉसी पर चढ़ाया जा रहा है और उसे बचाने के लिए हाथ मे अस्त्रादि लेकर जाना उचित नही है तब वह बिना अस्त्र लिए ही चन्दनदास को बचाने के लिए चल पड़ता है[2] और सप्तम अंक के प्रारम्भ मे हम देखते है कि राक्षस चन्दनदास को बचाने के लिए बिना अस्त्र लिए आता है और आत्मसमर्पण कर देता है। यहॉ षष्ठ अंक की कथा का विच्छेद हुए बिना ही सप्तम अंक का अवतरण हो जाता है अतः अङ्कावतार नामक अर्थोपक्षेपक इस स्थल मे दृष्टिगत होता है।

अभिनय-संकेत - मुद्राराक्षस नाटक मे वाचिक, आङ्गिक, आहार्य और सात्त्विक चारो प्रकारो के अभिनयसंकेत नाटककार के द्वारा दिये गये है, जिससे नाटकीयता की श्रीवृद्धि हुई है। वाचिक संकेत, जैसे-

१. इत्यनुवाच्य २. पत्रं गृहीत्वा वाचयति ३. गृहीत्वा वाचयति आदि

आंगिक संकेत, जैसे-

१. ततः प्रविशति मुक्तां शिखां परामृशन् कुपितश्चाणक्यः २. कर्णौ पिधाय ३. गृहीत्वा पादयोर्निपत्य स्वगतम् आदि

आहार्य संकेत जैसे -

१. नाट्येन भूषणानि परिधाप्य २. इति स्वगात्रादवतार्य भूषणानि प्रयच्छति ३. नाट्येनावलोक्यात्मानमलङ्कृत्योत्थाय च आदि

---

[1] मुद्रा० पृ १२१

[2] नायं निस्त्रिंशकालः प्रथममिह कृते घातकानां विघाते
नीति कालान्तरेण प्रकटयति फलं किं तया कार्यमत्र ?
औदासीन्यं न युक्तं प्रियसुहृदि गते मत्कृते चातिघोरां
व्यापत्तिं, ज्ञातमस्य स्वतनुमहमिमां निष्क्रयं कल्पयामि।। " मुद्रा० ६.२८

सात्त्विक संकेत जैसे-

१. चिन्तां नाटयित्वा स्वगतम् २. स्मितं कृत्वा ३. सभयं तूष्णीमधोमुखस्तिष्ठति आदि

इसी प्रकार अन्यत्र भी अनेक प्रकार के संकेत प्राप्त होते है।

पताकास्थानक - नाटककारो के द्वारा सूच्य वस्तु को निर्दिष्ट करने के लिए ही पताकास्थानक की योजना की जाती है। जहॉ भविष्यत् कालीन वस्तु की अन्योक्तिमय सूचना दी जाती है वह पताकास्थानक कहलाती है।[1] यह सूचना पताका की भॉति भावी वस्तु की सूचना देती है, इसी कारण पताकास्थानक कही जाती है। विशाखदत्त ने तीन स्थानो पर पताकास्थानक को रखा है।

प्रथम अंक मे ही जिस समय चाणक्य कूटपत्र लिखने के समय अपने मन मे सोचता है - 'किमत्र लिखामि? अनेन खलु लेखेन राक्षसो जेतव्यः' उसी समय प्रतिहारी प्रवेश करके "जयतु जयत्वार्यः "[2] का उच्चारण करती है। यहॉ चाणक्य राक्षस को जीतने के लिए मन मे विचार करता रहता है उसी समय सहसा ही आकर प्रतिहारी जय शब्द का उच्चारण करती है, अतः यहॉ प्रथम प्रकार का पताकास्थानक है।[3]

एक अन्य पताकास्थानक भी प्रथम अंक मे ही प्राप्त होता है। राक्षस के निग्रह के लिए जिस समय चाणक्य अपने मन मे सोचता है 'अपि नाम दुरात्मा राक्षसो गृह्येत? उसी समय वहॉ बैठा हुआ सिद्धार्थक दूसरे प्रसंग मे कह उठता है 'आर्य गृहीतः'[4] और इसके द्वारा भावी राक्षस-निग्रहरूप वृत्त का बोध होता है। इस स्थल मे एक ही वाक्य के दो अर्थ निकलते है और दूसरा

---

[1] यत्रार्थे चिन्तितेन्यस्मिन् तल्लिङ्गोन्य प्रयुज्यते।
आगन्तुकेन भावेन पताकास्थानकन्तु तत् । सा०द०६ २७

[2] मुद्रा० पृ. ३३

[3] सहसैवार्थसम्पत्तिर्गुणवत्युपचारतः।
पताकास्थानकमिदं प्रथमं परिकीर्त्तितम् । सा०द०, ६ २८

[4] मुद्रा० पृ. ३७

अर्थ भावी वस्तु की सूचना देता है, इस कारण यहाँ चौथे प्रकार का पताकास्थानक है।[१]

तीसरा पताकास्थानक चतुर्थ अंक की समाप्ति के समय प्राप्त होता है। राक्षस क्षपणक से युद्ध के लिए प्रस्थान-वेला पूँछता है और उसका समय बताते हुए क्षपणक कहता है -

आस्ताभिमुखे सूर्ये उदिते सम्पूर्णमण्डले चन्द्रे।

गमनं बुधस्य लग्ने उदितास्तमिते च केतौ।[२]

यहाँ इस श्लोक का एक दूसरा अर्थ यह भी आता है कि जब राक्षस की महत्त्वाकांक्षा अस्त होने लगे, चन्द्रगुप्त सम्पूर्ण मण्डलो वाला हो जाय, बुद्धिसम्पन्न चाणक्य जब विराजमान हो और मलयकेतु का अन्त होने लगे उस समय प्रस्थान करना चाहिए। यही दूसरा अर्थ भावी अर्थ की सूचना देता है अतः यहाँ पताकास्थानक है। इस स्थल मे क्षपणक का वचन अत्यधिक श्लिष्ट और विभिन्न प्रकार के विषयो से युक्त है, अतः यहाँ द्वितीय प्रकार का पताकास्थानक है।[३] क्षपणक के इस वाक्य मे चन्द्रगुप्त का कल्याण दृष्टिगत होता है और उसकी विजय की सूचना भी मिलती है।

आकाशभाषित- नाटकीय वस्तु की सूचना देने के लिए आकाशभाषित का प्रयोग किया जाता है। जहाँ एक ही पात्र आकाश की ओर मुख करके स्वयं ही उत्तर-प्रत्युत्तर का निर्माण करता है वहाँ आकाशभाषित होता है। इसमे पात्र ऐसा अनुभव करता है जैसे वह दूसरे की बात सुन रहा है और उसका उत्तर देता जाता है। यहाँ दूसरा पात्र रंगमंच पर नही आता है, बल्कि यह प्रदर्शित किया जाता है कि दूसरा पात्र नेपथ्य मे विद्यमान है।

---

१ द्व्यर्थो वचनविन्यासः सुश्लिष्टः काव्ययोजितः।
प्रधानान्तराक्षेपी पताकास्थानकं परम् । सा०द०, ६.३१

२ मुद्रा० ४.१९

३ वचः सातिशयश्लिष्टं नानाबन्धसमाश्रयम् ।
पताकास्थानकमिदं द्वितीयं परिकीर्त्तितम् । सा०द० ६ २९

द्वितीय अंक के प्रारमभ मे आहितुण्डिक आकर प्रथम आकाशभाषित की स्थापना करता है।[१] इस स्थल मे आहितुण्डिक राक्षस के घर मे प्रवेश करने के लिए बहाना ढूँढता है, अत: यहाँ नाटककार ने आकाशभाषित का प्रयोग किया है।

तृतीय अंक के प्रारम्भ मे कञ्चुकी के वाक्य मे नाटकस्थित दूसरा आकाशभाषित परिलक्षित होता है जहाँ कञ्चुकी कौमुदीमहोत्सव की शीघ्र तैयारी करने के लिए पुरवासियो को आदेश देता है।[२]

तीसरा आकाशभाषित चतुर्थ अंक मे बेत हाथ मे लिए हुए व्यक्ति के वाक्यो मे प्राप्त होता है, जहाँ वह यह सूचना देता है कि लोगो को इसीलिए हटाया जा रहा है कि अभी मलयकेतु शिरोवेदना से पीड़ित राक्षस को देखने के लिए जा रहा है।[३]

एक अन्य आकाशभाषित सप्तम अंक के प्रारम्भ मे चण्डाल के वाक्यो मे प्राप्त होता है, जहाँ चण्डाल यह बताता है कि अब चन्दनदास की किसी प्रकार मुक्ति नहीं हो समती है, यदि चन्दनदास राक्षस के गृहजन को समर्पित कर दे तभी इसे मुक्ति मिल सकती है।[४]

---

१ (आकाशे) आर्य! कि भणसि कस्त्वमिति? आर्य अहं खलु आहितुण्डिको जीर्णविषो नाम। (पुनराकाशे) किं भणसि अहमप्यहिना खेलितुमिच्छामीति? अथ कतरां पुनरार्यो वृत्तिमुपजीवति? (पुनराकाशे) किं भणसि 'राजकुलसेवक' इति? ननु खेलत्येव आर्योऽहिना। मुद्रा० पृ० ४८-४९

२ (आकाशे) किं कथयन्ति भवन्त: 'एते त्वरामहे' इति? भद्राः । त्वरध्वम्, अयमागत एव देवश्चन्द्रगुप्त। मुद्रा० ७४

३ (आकाशे) आर्या ! किं भणथ, किं निमित्तमेषाऽपसारणा क्रियते? आर्या ! एष खलु कुमारो मलयकेतु: समुत्पन्नशीर्षवेदनममात्यराक्षसं श्रुत्वा प्रेक्षितुमिहैवागच्छति। एतेन कारणेनायमपसारणा क्रियते। वही पृ. १००

४ (आकाशे) आर्या:। किं भणथ? 'अस्ति किं चन्दनदासस्य मोक्षोपाय ' इति ? कुतोऽस्याधन्यस्य मोक्षोपाय: ? एतत् पुनरस्ति- स यद्यमात्यराक्षसस्य गृहजनं समर्पयति। (पुनराकाशे) किं भणथ? एष शरणागतवत्सल आत्मनो जीवितस्य कारणेनेदृशमकार्य न करिष्यतीति। आर्या। तेन ह्यवधारयतास्यसुखां गतिम्। किमिदानी युष्माकं प्रतीकारविचारेण?' वही पृ० १५४

वृत्ति - नायक आदि का व्यापार वृत्ति कहलाता है। नायक आदि के व्यापार का प्रवृत्तिरूप स्वभाव ही वृत्ति है।[१] 'नेतृव्यापारस्वभावः' का अभिप्राय है नायकस्य व्यापारानुकूलः स्वभावः। वस्तुतः नायक के व्यापार का स्वरूप विशेष ही वृत्ति है। यह स्वरूप विशेष प्रवृत्ति रूप, होता है। यहाँ प्रवृत्ति का अर्थ है - मानसिक, वाचिक और कायिक चेष्टा। सामान्यतः नायकादि के व्यापार के अनेकरूप होते है। क्योकि वह देश-भेद से भिन्न-भिन्न प्रकार की भाषा तथा वेशविन्यास का प्रयोग करता है। वह अनेक प्रकार के क्रियाकलापो मे भी संलग्न रहता है। किन्तु वृत्ति के अन्तर्गत इन सबका समावेश नही किया जा सकता। इसलिए नायकादि के सभी व्यापार एवं वेशविन्यास आदि नाट्यवृत्तियाँ नही है अपितु उसके कायिक, वाचिक एवं मानसिक व्यापार ही नाट्य मे वृत्ति कहलाते है। राजशेखर ने विलासविन्यास के क्रम को वृत्ति कहा है।[२] साहित्यदर्पण के टीकाकार ने वृत्ति को परिभाषित करते हुए इसी अभिप्राय को स्पष्ट किया है- तत्र वर्तते रसोऽनयेति व्युत्पत्तेर्नायिकादिव्यापारविशेषो वृत्तिरिति।[३] वृत्तियाँ रस से साक्षात् सम्बद्ध होती है। इन वृत्तियो का कवि रस रूप मे हृदय मे साक्षात्कार करता है अतः इन्हे नाट्य की माता कहा जाता है। नाट्यशास्त्र मे वृत्तियो को काव्य की मातृका माना गया है।[४] नाट्यदर्पणकार ने भी 'वृत्तयो नाट्यमातरः' कहकर इनके महत्त्व को अभिव्यक्त किया है। ये वृत्तियाँ चार मानी गयी है- कैशिकी, सात्त्वती, आरभटी तथा भारती, इन वृत्तियो के परस्पर पार्थक्य का आधार यह है - कि इनमे सात्त्वती वृत्ति विशेषतः मानसव्यापार रूप, भारती वाचिकव्यापाररूप तथा शेष दोनो कैशिकी एवं आरभटी कायिकव्यापाररूप होती है। यद्यपि मानसिक, वाचिक तथा कायिक व्यापारो का असङ्कीर्ण होना सम्भव नही है, क्योकि चाहे कायिक हो या वाचिक दोनो प्रकार की चेष्टाएँ मानसिक चेष्टाओ पर ही आश्रित होती है। अतः इनके आधार पर वृत्तियों का

---

१ प्रवृत्तिरूपो नेतृव्यापारस्वभावो वृत्तिः। दशरूपकवृत्ति, २.४७

२ विलासविन्यासक्रमो वृत्तिः। काव्यमीमांसा, तृतीय अध्याय

३ कुसुमप्रतिमा टीका, साहित्य दर्पण, ६.१४३

४ ना. शा. १८.४ नाट्य दर्पण ३.१५५

उपर्युक्त विभाजन असङ्गत सा प्रतीत होता है। किन्तु किसी एक व्यापार के प्राधान्य के आधार पर इनका विभाजन उसी प्रकार उपपन्न हो जाता है जैसे सांख्यमत मे यद्यपि सभी पदार्थो मे सत्त्व, रजस् एवं तमस् ये तीनो गुण विद्यमान रहते है, किन्तु सत्त्व की प्रधानता मे वस्तु को सात्त्विक, रजस् की प्रधानता मे राजस तथा तमोगुणकी प्रधानता मे तामस कहा जाता है। इसीलिए वाचिक व्यापार की प्रधानता मे भारती, मानस व्यापार की प्रधानता मे सात्त्वती तथा कायिक व्यापार की प्रधानता मे कैशिकी तथा आरभटी वृत्तियॉ होती है।[१] इसके अतिरिक्त रसभेद तथा अभिनय-भेद आदि भी वृत्तियो के भेदक माने जाते है। अभिनवगुप्त ने इन चारो वृत्तियो मे किसमे किसका प्राधान्य है इसका सुस्पष्ट उल्लेख किया है इनके अनुसार भारती मे पाठ्य की प्रधानता होती है, सात्त्वती मे अभिनय की प्रधानता होती है आरभटी मे अनुभावादि के आवेश से युक्त रस की प्रधानता होती है तथा कैशिकी मे गीत, वाद्य आदि उपरञ्जको की प्रधानता होती है।[२] नाट्य मे सभी व्यापार रस, भाव तथा अभिनय से युक्त होते है। अतः ये वृत्तियॉ भी रस, भाव तथा अभिनय का अनुसरण करती है।[३]

शृङ्गार रस मे कैशिकी, वीर मे सात्त्वती, रौद्र और बीभत्स मे आरभटी तथा भारती वृत्ति सभी रसो मे भारती वृत्ति होती है।[४] यहॉ शृङ्गार से हास्य का, वीर से अद्भुत का, रौद्र से करुण का तथा बीभत्स से भयानक का भी ग्रहण होता है। शिंगभूपाल ने चारो वेदों से क्रमशः इन चारों वृत्तियो के सम्बन्ध को स्थापित किया है -

ऋग्वेदाच्च यजुर्वेदात् सामवेदादथर्वणः।

---

१ (क) अभि०भा०, ना०शा० २०.२५ (ख) नाट्यदर्पणवृत्ति ३ १५५

२ पाठ्यप्रधाना भारती, अभिनयप्रधाना सात्त्वती, अनुभावाद्यावेशमयरसप्रधानारभटी, गीतवाद्योपरञ्जकप्रधाना कैशिकीति। अभि०भा०ना०शा०, २०.२३

३ रसभावाभिनयगाः। नाट्यदर्पण ३.१५५

४ शृङ्गारे कैशिकी वीरे सात्त्वत्यारभटी पुनः।
रसे रौद्रे च बीभत्से वृत्तिः सर्वत्र भारती।। दशरूपक २.६२

भारत्याद्याः क्रमाज्जाता इत्यन्ये तु प्रचक्षते।।[१]

कैशिकी - जहाँ विशेष प्रकार की वेशभूषा की सजावट होती है, स्त्रीपात्रो की बहुलता होती है, नृत्य, गीत आदि की प्रचुरता होती है तथा शृङ्गार प्रधान व्यवहार होता है वहाँ चारु विलासो से युक्त वृत्ति कैशिकी होती है।[२] इसके (१) नर्म (२) नर्मस्फिञ्ज (३) नर्मस्फोट तथा (४) नर्मगर्भ ये चार अङ्ग होते है।

नाटक एवं प्रकरण मे सभी वृत्तियो का समावेश किया जाताहै किन्तु विशाखदत्त प्रणीत मुद्राराक्षस मे श्रृङ्गाररस की प्रस्तुति का प्रसङ्ग न होने के कारण इसमे कैशिकी वृत्ति अनुपस्थित है। वीररस प्रधान इस नाटक मे आद्योपान्त राजनीतिक खेल चलता रहता है। जिसमे कोमल भावनाओ को प्रदर्शित करने के लिए कोई स्थान नही है। इसलिए नाटक मे सभी वृत्तियो के प्रयोग के नाट्यशास्त्रीय नियम का मुद्राराक्षस मे व्याघात दृष्टिगत होता है। अभिनवगुप्त ने इस तथ्य का स्पष्ट उल्लेख भी किया है- तत्र नाटकप्रकरणे सर्ववृत्तिपूर्ण इति नियमः, न तु विपर्ययः, मुद्राक्षसस्य कैशिकीहीनस्य कृत्यारावणस्य च दर्शनात् ।[३] वस्तुतः मुद्राराक्षस मे शृङ्गार रस के लिए विशेष अवसर ही नहीं है।अतः कैशिकी वृत्ति के लिए भी इसमे कोई विशेष स्थान नही है। केवल तृतीय अङ्क मे जहाँ पर चन्द्रगुप्त शरत्काल का वर्णन करता है वहाँ इसकी संक्षिप्त उपस्थिति यथाकथञ्चित् मानी जा सकती है।

सात्त्वती - सत्त्व, शैर्य, त्याग, दया आर्जव आदि से युक्त प्रायः शृङ्गारविहीन, शोकविहीन एवं अद्भुत जो वृत्ति होती है उसे सात्त्वती कहते है। इसके उत्थापक, संघात्य, संलाप एवं परिवर्तक ये चार अङ्ग होते है।[४] जहाँ एक पात्र दूसरे पात्र को युद्ध के लिये उत्तेजित करता है वहाँ सात्त्वती

---

१ रससुधा, पृ० २६०

२ या श्लक्ष्णनेपथ्यविशेषचित्रा स्त्रीसङ्कुला पुष्कलनृत्यगीता।
कामोपभोगप्रभवोपचारा सा कैशिकी चारु विलासयुक्ता।। सा०द० ६ १२४

३ अभि०भा०, नाट्यशास्त्र, पृ० ४४४

४ (क) दशरूपक २.५३ (ख) साहित्यदर्पण ६.१५०

वृत्ति का उत्थापक अङ्ग होता है। सात्त्वती वृत्ति के इस अङ्ग का भी मुद्राराक्षस मे अभाव है। क्योकि इसमे कूटनीततक चालो से रिपुपक्ष को परास्त किया गया है। कही पर भी युद्ध का अवसर ही नही उपस्थित हुआ। जहॉ पर परस्पर नाना भावो और नाना रसो से युक्त गंभीर उक्ति पायी जाती है वहॉ पर संलापक अङ्ग होता है। मुद्राराक्षस मे कवि ने इसका भी अवसर नही उपस्थित किया है। इस नाटक मे परिवर्तक अङ्ग का प्रयोग इस रूप मे प्राप्त होता है कि राक्षस चन्दनदास के प्राणो की रक्षा के लिए युद्ध कार्य को छोड़कर चन्द्रगुप्त का मन्त्रित्व स्वीकार कर लेता है। क्योकि एक कार्य को छोड कर दूसरे कार्य मे प्रवृत्त होना ही सात्वती का परिवर्तक अङ्ग है। जहॉ पर विपक्षी के संघ का मन्त्र शक्ति अर्थशक्ति, दैवशक्ति आदि के द्वारा भेदन किया जाता है वहॉ सात्त्वती का संघात्य अङ्ग होता है। मुद्राराक्षस मे आद्योपान्त इस अङ्ग का प्रयोग प्राप्त होता है। चाणक्य राक्षस के सहायको मे भेद उत्पन्न मन्त्रशक्ति का प्रयोग करता है। करने के लिए अपनी कूटनीति के द्वारा राक्षस के वह सहायक मलयकेतु आदि को ही राक्षस के विरुद्ध कर देता है तथा राक्षस को चन्द्रगुप्त का मन्त्री बनाने के अपने उद्देश्य मे सफल हो जाता है। दशरूपक के व्याख्याकार धनिक ने साङ्घात्य अङ्ग के उदाहरण के रूपमे मुद्राराक्षस के इसी अंश को प्रस्तुत किया है-

मन्त्रशक्त्या यथा मुद्राराक्षसे राक्षससहायादीनां चाणक्येन स्वबुद्ध्या भेदनम् ।[१] अर्थशक्ति से विपक्षियो मे परस्पर भेद उत्पन्न करने का उदाहरण भी मुद्राराक्षस मे प्राप्त होता है। पर्वतक के आभूषणो को राक्षस के हाथ मे पहुँचाकर चाणक्य मे राक्षस के सहायक मलयकेतु एवं उसके सहयोगियो को राक्षस के विरुद्ध करने मे सफल हो गया। धनिक ने इसी तथ्य को स्पष्ट करते हुए लिखा है- अर्थशक्त्या तत्रैव यथा पर्वतकाभरणस्य राक्षसहस्तगमनेन मलयकेतुसहोत्थायिभेदनम् ।[२]

---

१ दशरूपावलोक, २ ५५

२ वही,, २.५५

आरभटी- माया, इन्द्रजाल, संग्राम, क्रोध, उद्भ्रान्ति आदि की चेष्टाएँ जहाँ हो तथा जहाँ वध बन्धन आदि हों वहाँ आरभटी वृत्ति होती है। इसके संक्षिप्तिका, संफेट, वस्तूत्थापन एवं अवपातन ये चार अङ्ग होते है।[१]

शिल्प के द्वारा संक्षिप्तरूप मे किसी वस्तु की रचना अथवा नायक की प्रथम अवस्था के हट जाने पर दूसरी अवस्था का आ जाना संक्षिप्तिका है।[२] राक्षस के युद्धपरता की निवृत्ति हो जाने पर उसका शान्त होकर मन्त्रित्व स्वीकार करना इसका उदाहरण माना जा सकता है। क्रुद्ध तथा उत्तेजित दो व्यक्तियो का एक दूसरे पर प्रहार करना संफेट है। मुद्राराक्षस मे एक-दूसरे पर प्रहार का अवसर नही है। हॉ क्रोध पूर्ण उक्ति प्रत्युक्ति का प्रयोग प्रथम अङ्क मे चाणक्य एवं चन्दनदास के वचनो मे अवश्य दृष्टिगत होता है। मुद्राराक्षस मे अवपात अङ्ग प्राप्त होता है। जहाँ पात्रो के निष्क्रमण, प्रवेश त्रास एवं आग आदि लगने से हुई भगदड़ का वर्णन किया जाता है वहाँ आरभटी का अवपात अङ्ग होता है। मुद्राराक्षस मे प्रस्तावना मे चाणक्य के प्रवेश से भयभीत नटी एवं सूत्रधार का भागना अवपात है। वस्तूत्थापन अङ्ग के प्रयोग का अवसर मुद्राराक्षस मे नही है। क्योकि मायादि के द्वारा वस्तु को उपस्थित करने मे यह अङ्ग माना जाता है। मुद्राराक्षस मे मायादि के प्रयोग का कवि ने अवसर ही नही उपस्थित किया है।

भारती - नट के द्वारा प्रयुक्त संस्कृतप्राय वाग्व्यापार भारती वृत्ति है। इसके भी चार अङ्ग होते है प्ररोचना, वीथी, प्रहसन एवं आमुख।[३] नाटक के प्रारम्भ मे स्थापक नट काव्यार्थ की सूचना देने के लिए मधुर श्लोको के रूप मे भारती वृत्ति का प्रयोग करता है। इससे रङ्गस्थ सहृदय प्रसन्न होते है।[४]

---

१ दशरूपक २ ५५.५६

२ वही, २.५७,५८

३ भारती संस्कृतप्रायो वाग्व्यापारो नटाश्रयः।
भेदैः प्ररोचनायुक्तैर्वीथीप्रहसनामुखैः।। दशरूपक ३.५

४ रङ्गं प्रसाद्य मधुरैः श्लोकैः काव्यार्थसूचकैः।
ऋतुं कञ्चिदुपादाय भारती वृत्तिमाश्रयेत् । दशरूपक ३.४

इस प्रकार नाटककार ने मुद्राराक्षस मे प्राय सभी वृत्तियो का आश्रय लिया है। इस नाटक मे वीररस का प्राधान्य है अत सात्त्वती वृत्ति का अधिक प्रयोग प्राप्त होता है तथा शृङ्गार रस का प्रयोग न के बराबर है अतएव कैशिकी वृत्ति के प्रयोग का अवसर भी न के बराबर है। भारती वाग्व्यापार रूप है अत उसका प्रयोग सर्वत्र दृष्टिगत होता है। रौद्र एवं बीभत्स रसो के अनुगुण आरभटी का भी मुद्राराक्षस मे यत्र तत्र उपन्यास किया गया है।

प्रवृत्ति - देश के अनुसार पात्रो की भाषा, क्रिया और वेश आदि का उपन्यास प्रवृत्ति है। इनका अभिज्ञान लोक से होता है।[१] नाटककार लोक से इनका ठीक से अभिज्ञान करके औचित्य के अनुरूप इनका प्रयोग करते है। प्रवृत्ति भी वृत्ति के समान ही एक पारिभाषिक शब्द है। वृत्ति के समान प्रवृत्ति भी नायकादि का व्यापार स्वरूप है। किन्तु यह. व्यापार भिन्न प्रकार का है। देश के भेद से नायक आदि के भिन्न-भिन्न प्रकार के जो भाषा, वेश एवं आचार होते है, उन्हे नाटक मे प्रवृत्ति कहते है।

वृत्ति एवं प्रवृत्ति के अन्तर को इस उदाहरण से भी स्पष्ट किया जा सकता है कि वाणी से परिहास करना वाचिक व्यापार है। इसे वचोहास्यनर्मरूप कैशिकी वृत्ति के अन्तर्गत रखा जायेगा, जब कि कौन पात्र किस भाषा मे परिहास करे यह विचार करने पर देश आदि के भेद से जो भाषा भेद होगा वह प्रवृत्ति के अन्तर्गत आयेगा। नाट्यशास्त्र में प्रवृत्ति का स्वरूप स्पष्ट करते हुए भरतमुनि ने कहा है- प्रवृत्तिरिति कस्मात्? उच्यते, पृथिव्यां नानादेशवेषभाषाचारवार्ताः ख्यापयतीति।[२] अर्थात् पृथ्वी के भिन्न-भिन्न प्रदेशो के वेश, भाषा और आचार तथा कृषि आदि व्यवसायो को जो प्रकट करती है। वह प्रवृत्ति है। एक विशेष प्रदेश के रहने वाले एक वर्ग के सभी पात्र एक ही भाषा, वेष और आचार से व्यवहार करते है। इस रूप मे प्रवृत्ति इस प्रदेश के पूरे वर्ग का व्यापार माना जा सकता है। भिन्न भाषा, वेष, आदि

---

१ देशभाषाक्रियावेशलक्षणा स्यु. प्रवृत्तय।
लोकादेवावगम्यैता यथौचित्यं प्रयोजयेत् । दशरूपक ३ ६३

२ नाट्यशास्त्र १३ ३८ गद्यभाग।

का ज्ञान कवि को लोक से प्राप्त होता है। उसी रूप मे वह नाटकादि मे उसको उपनिबद्ध करता है।

नाट्यशास्त्रकार ने जहॉ देशादि भेद से भिन्न वेष, भाषा, आचार, एव व्यवसायो को प्रवृत्ति माना है वहॉ प्रवृत्ति का लक्षण करते हुए दशरूपककार ने यद्यपि देशभेद से भिन्न भाषा, क्रिया, एवं वेष को प्रवृत्ति के अन्तर्गत रखा है, किन्तु पाठ्य अर्थात् भाषा तथा सम्बोधन को इन्होने विशेष महत्त्व दिया है।[१] राजशेखर वेषविन्यास पर अधिक बल देते है। नाट्यदर्पणकार एवं साहित्यदर्पणकार ने तो भाषा-प्रयोगो एवं सम्बोधन-प्रकारो का विस्तृत विवेचन करते हुए भी इन्हे प्रवृत्ति नाम से नही अभिहित किया है।[२]

भाषा सम्बन्धी प्रवृत्ति का दशरूपककार ने विस्तृत विवेचन प्रस्तुत किया है। इनके अनुसार जो व्यक्ति नीच नही है अर्थात् जो उत्तम एवं मध्यम श्रेणी के शिष्ट पुरुष है उनकी भाषा संस्कृत होती है। आत्मसंयम करने वाली नारियो तथा संन्यासिनियो की भाषा भी संस्कृत होती है। कही-कही महारानियो मन्त्रियो की बेटियो तथा वेश्याओ की भी भाषा संस्कृत होती है।[३]

धनञ्जय की इस परिभाषा मे 'कृतात्मनाम्' शब्द विशेषण के रूप मे अथवा स्वतन्त्र रूप मे प्रयुक्त है यह विचारणीय है। स्वतन्त्र पद के रूप मे यदि इस शब्द को स्वीकार किया जाता है तो इसका अभिप्राय होगा कि जो कृतात्मा है उनकी भी भाषा संस्कृत है। विशेषण के रूप मे यह शब्द नृणाम् तथा लिङ्गिनीनां का विशेषण माना जा सकता है। कृतात्मनां नृणां का अभिप्राय है कि नीच-भिन्न उन पुरुषो की भाषा संस्कृत होती है जो कृतात्मा अर्थात् आत्मसंयमी है, शिष्ट है, मत्त, ग्रहग्रस्त, दारिद्र्यादि से पीड़ित पुरुषो की नही। इसे लिङ्गिनीनां का भी विशेषण माना जा सकता है। इसका अभिप्राय है ऐसी नारियॉ अथवा सन्यासिनियॉ जो आत्मसंयमी है इनकी भाषा

---

[१] तत्र पाठ्यं प्रति विशेषः। आमन्त्र्यामन्त्रकौचित्येनामन्त्रणमाह। दशरूपक २.६४ एवं ६७

[२] ना०द० ४ २९७-२९८ तथा सा०द०६.१४४-१४९

[३] पाठ्यं तु संस्कृतं नृणामनीचानां कृतात्मनाम् ।
लिङ्गिनीनां महादेव्या मन्त्रिजावेश्ययोः क्वचित् ।। दशरूपक २.६४

संस्कृत है। किन्तु जो कपटवेशधारण करने वाली है उनकी भाषा संस्कृत नही होती। वस्तुतः 'देहली दीपकन्याय' से इसे 'नृणाम्' तथा 'लिङ्गिनीनाम्' इन दोनो पदो का विशेषण मानना चाहिए। संस्कृत के साथ ही दशरूपककार ने नाटको मे प्राकृत भाषाओ मे से किसका किसे प्रयोग करना चाहिए इसका भी विवरण प्रस्तुत किया है-

स्त्रीणां तु प्राकृतं प्रायः शौरसेन्यधमेषु च।
पिशाचात्यन्तनीचादौ पैशाचं मागधं तथा।।
यद्देशं नीचपात्रं यत्तद्देशं तस्य भाषितम् ।
कार्यतश्चोत्तमादीनां कार्यो भाषाव्यतिक्रमः।।[१]

अर्थात् स्त्रियो की भाषा तो प्राकृत होती है तथा अधम पुरुष पात्रो की भाषा सौरसेनी होती है। पिशाच तथा अत्यन्त नीच प्रकृति के जो पात्र होते है उनकी क्रमशः पैशाची तथा मागधी प्राकृते होती है। जो नीच पात्र जिस देश का होता है उसी देश की उसकी भाषा होती है और कभी-कभी कार्यवश उत्तम आदि पात्रो मे भी भाषा का व्यतिक्रम अर्थात् परिवर्तन किया जाता है।

भाषाओ के प्रयोग की दृष्टि से मुद्राराक्षस मे संस्कृत तथा महाराष्ट्री एवं शौरसेनी इन दो प्राकृतो का ही प्रयोग प्राप्त होता है। नाटक के उत्तम पात्र सूत्रधार, चाणक्य, चन्द्रगुप्त, राक्षस, मलयकेतु, भागुरायण, आदि पात्रो की भाषा संस्कृत है। मुद्राराक्षस मे वेष विन्यास के कारण भाषा के परिवर्तन का उदाहरण प्राप्त होता है। राक्षस का गुप्तचर विराधगुप्त कुसुमपुर के वृत्तान्त को जानने के लिए आहितुण्डिक का वेषविन्यास धारण करता है। वह स्वगत मे तथा राक्षस के साथ वार्तालाप मे संस्कृत का प्रयोग करता है।[२] किन्तु लोक के समक्ष प्राकृत का ही प्रयोग करता है। मुद्राराक्षस के अन्य पात्र प्राकृत भाषाओ का प्रयोग करते है। चाणक्य का गुप्तचर निपुणक यमपट को धारण कर

---

१ दशरूपक २ ६५.६६

२ (क) स्वगतम् । संस्कृतमाश्रित्य) अहो आश्चर्यम् । चाणक्यमतिपरिगृहीतम् आदि। मुद्रा० पृ० ४९ (ख) विराधगुप्त अलममात्य शोकेन आदि। वही, पृ० ५७

सूचनाएँ एकत्र करता है वह इसीलिए प्राकृत भाषा का प्रयोग करता है। वह चाणक्य के सम्मुख भी प्राकृत भाषा मे ही व्यवहार करता है। सम्भवत वह अपने स्वरूप को तिरोहित रखने के लिए ऐसा करता है जब कि राक्षस का गुप्तचर अपने मूलस्वरूप को भी संस्कृत बोलकर प्रकट कर देता है। इस नाटक मे भाषाप्रयोग मे नाट्यशास्त्रीय नियम के अपवाद भी होते दृष्टिगत है। चन्दनदास कृतात्मा है, उत्त्मकोटि का पुरुष है। किन्तु वह नाट्यशास्त्रीय नियम के अनुसार संस्कृत का प्रयोग नही करता, अपितु प्राकृत का ही प्रयोग करता है। इस नाटक मे स्त्रीपात्र तथा निम्नश्रेणी के अन्यपात्र महाराष्ट्री तथा शौरसेनी का प्रयोग करते है। इन्होने पद्यो ने महाराष्ट्री का तथा गद्यभाग मे शौरसेनी प्राकृतो का प्रयोग किया है चाण्डाल अत्यन्त नीच पात्र है। उसके वक्तव्यो मे मागधी के लक्षण प्राप्त होते है।

महाराष्ट्री एवं शौरसेनी प्राकृतो का पृथक् अभिज्ञान इस रूप मे होता है कि इन प्राकृतो मे अन्य प्राकृत भाषाओ के समान संयुक्ताक्षरो मे समीकरण, मूर्धन्यीकरण, आदिसंयोग एवं पदान्त व्यञ्जन का अभाव, संयोगपूर्व दीर्घ को ह्रस्व करना आदि प्रवृत्तियाॅ तो प्राप्त ही होती है, किन्तु महाराष्ट्री मे तथ स्वरमध्यवर्ती स महाप्राण व्यञ्जनो के स्थानपर ह का प्रयोग किया गया है। इसमे आत्मा के लिए अप्पा शब्द मिलता है। स्वरमध्यवर्ती क च त द प य व ध्वनियो का प्रायः लोप हो जाता है। लोप की यह प्रवृत्ति महाराष्ट्री प्राकृत मे सर्वाधिक है। गीतो मे अधिक लालित्य लाने के लिए इसमे व्यञ्जनो के अधिक लोप की प्रवृत्ति परिलक्षित होती है। जब कि शौरसेनी मे ये प्रवृत्तियाॅ नही है। इसमे स्वरमध्यवर्ती उपर्युक्त व्यञ्जनो का कही कही लोप हुआ है किन्तु कम। इसकी विशिष्टता यह है कि इसमे त के लिए थ का तथा द के लिए ध का प्रयोग किया जाता है - गच्छदि गदो मलयकेदु आदि। इसमे आदि यकार के स्थान पर ज मिलता है तथा ण्य, न्य अथवा ज्ञ के लिए वैकल्पिक रूप से ञ्ञ प्राप्त होता है। क्त्वा प्रत्यय के लिए इज्ज एवं दूण का प्रयोग किया गया है। सौरसेनी मे परस्मैपद संज्ञक प्रत्ययो का ही प्रयोग किया गया है। इसमें इन विशेषताओ के अतिरिक्त अन्य सामान्य विशेषताएँ महाराष्ट्री प्राकृत के सदृश ही मिलती है।

शौरसेनी प्राकृत पैशाची प्राकृत का भी आधार है। फिर भी दोनो प्राकृतो मे कुछ भेद दृष्टिगत होता है। पैशाची मे किसी भी वर्ग की स्वरमध्यवर्ती तृतीय एवं चतुर्थ ध्वनियो के स्थान पर क्रमशः प्रथम एवं द्वितीय ध्वनियाॅ प्रयुक्त होती है - गगनं=गकनं, मेघः = मेखो आदि। ण के स्थान पर न का प्रयोग होता है। ल के लिए ड एवं ल के बीच की ध्वनि ळ प्रयुक्त होती है। कुछ स्थानो पर संयुक्त व्यञ्जनो के मध्य स्वरागम की प्रवृत्ति मिलती है। इसमे भी श एवं ष के स्थान पर स ध्वनि ही प्राप्त होती है।

इसी प्रकार मागधी प्राकृत भी शौरसेनी के अत्यधिक निकट है। किन्तु निम्नलिखित कुछ विशेषताएँ मागधी को शौरसेनी से पृथक् करती है। इसमे ष एवं स के लिए भी केवल तालव्य श का प्रयोग होता है र के लिए ल का एवं प्रथमा एकवचन मे ओ के लिए का प्रयोग होता है।

मुद्राराक्षस मे महाराष्ट्री प्राकृत के उदाहरण के रूप मे निम्नलिखित पद्यो को प्रस्तुत किया जा सकता है -

पणमह जमस्स चलणे किं कज्जं देवएहि अण्णेहि।

एसो खु अण्णभत्ताणं हरइ जीअं चडफडन्तं।।

कमलाणं मणहराणं वि रूपाहिंतो विसम्वदइ सीलं

सम्पुणमण्डलम्मि वि जाइं चन्दे विरुद्धाइं।।

इसी प्रकार शौरसेनी के उदाहरण के रूप मे प्रथम अङ्क के निम्नलिखित अंश प्रस्तुत किया जा सकता है- अज्ज णं विण्णवेमि 'आसी अम्हघरे अमच्चरक्खसस्स घरअणोत्ति।

निम्नलिखित पद्य मे भी शौरसेनी तथा महाराष्ट्री दोनो का प्रयोग नाटककार ने एक साथ किया है -

पुरिसस्स जीविदव्वं विसमादो होइ भत्तिगहिआदो।

मारेइ सब्बलोअं जो तेण जमेण जी आमो।

इसमे महाराष्ट्री के लक्षण के साथ शौरसेनी के भी लक्षण हैं क्योंकि त के स्थान पद द का प्रयोग शौरसेनी मे ही होता है। जीविदव्वं विसमादो आदि मे त का लोप न कर उसके स्थान पर द कर दिया गया है।

मुद्राराक्षस के सप्तम अङ्क मे अत्यन्त नीचपात्र चण्डाल के कथन मे मागधी का प्रयोग दृष्टिगत होता है - अज्जचन्दणदास णिखादे शूले ता सज्जो होहि।[१] इस उदाहरणमे शूल पर मे तालव्य श का प्रयोग किया गया है तथा प्रथमा एक वचन के लिए ओ का प्रयोग न कर ए का प्रयोग किया गया है।

इस प्रकार मुद्राराक्षस मे पात्रों के वर्ग के आधार पर भाषा वैविध्य दृष्टिगत होता है।

प्रवृत्ति के अन्तर्गत पात्र भेद से सम्बोधन पदो के वैविध्य का भी महत्त्व है। दशरूपककार ने पाठ्य अर्थात् भाषा के समान ही सम्बोधन को भी प्रवृत्ति के अन्तर्गत प्रमुखता दी है किस पात्र के द्वारा किस पात्र का क्या सम्बोधन होना चाहिए इसे स्पष्ट करते हुए दशरूपककार ने लिखा है -

भगवन्तो वरैर्वाच्या विद्वद्देवर्षिलिङ्गिनः।

विप्रामात्याग्रजाश्चार्या नटीसूत्रभृतौ मिथः।।

रथी सूतेन चायुष्मान् पूज्यैः शिष्यात्मजानुजाः।

वत्सेति तातः पूज्योऽपि सुगृहीताभिधस्तु तैः।।

भावोऽनुगेन सूत्री च मार्षेत्येतेन सोऽपि च।

देवः स्वामीति नृपतिर्भृत्यैर्भट्टेति चाधमैः।।[२]

अर्थात् उत्तम पात्र विद्वान्, देव, ऋषि, संन्यासी इत्यादि को 'भगवन्' कह कर तथा ब्राह्मण, अमात्य एवं बड़े भाई को 'आय' कहकर सम्बोधित करते है। इसी प्रकार नटी एवं सूत्रधार परस्पर एक दूसरे को 'आर्य' कहकर सम्बोधित करते है। सारथि रथ के स्वामी के लिए 'आयुष्मन् ' तथा गुरुजन

---

१ मुद्रा० पृ० ५६

२ दशरूपक २ ६७-६९

शिष्य, पुत्र एवं छोटे भाई को 'वत्स' कहकर तथा शिष्य पुत्र एवं अनुज पूज्य जनो को 'तात' अथवा 'सृगृहीतनामा' कहकर सम्बोधित करते है। पारिपार्श्विक सूत्रधार को 'भाव' कहकर तथा सूत्रधार पारिपार्श्विक को 'मार्ष' कहकर सम्बोधित करते है। सेवक राजा को देव या स्वामी कहकर तथा अधम पात्र भट्ट कहकर सम्बोधित करते है।

मुद्राराक्षस मे पात्रभेद से इस सम्बोधन-वैविध्य का औचित्यपूर्ण सन्निवेश किया गया है।

मुद्रा राक्षस मे चन्द्रगुप्त चर, सिद्धार्थक, ·प्रतीहारी आदि चाणक्य के लिए चाणक्य, मलयकेतु आदि राक्षस के लिए, नटी सूत्रधार के लिए तथा सूत्रधार नटी के लिए, राक्षस कञ्चकी के लिए, प्रियम्वदक आहितुण्डिक के लिए, कुटुम्बिनी चन्दनदास के लिए तथा चन्दनदास कुटुम्बिनी के लिए सम्बोधन मे आर्य शब्द का प्रयोग करते है। इसी प्रकार चाणक्य शिष्य के लिए वत्स शब्द का प्रयोग करता है चन्दनदास का पुत्र चन्दनदास के लिए तात शब्द का प्रयोग करता है इन सम्बोधनो मे नाटककार ने औचित्य का पूर्ण निर्वाह किया है। चाणक्य का चन्द्रगुप्त चूँकि शिष्य था इसलिए चाणक्य उसे प्रेमपूर्वक वृषल शब्द से सम्बोधित करता है। वृषल शब्द के प्रयोग का औचित्य द्वितीय अध्याय के अन्तर्गत सिद्ध किया जा चुका है।

इस प्रकार पात्रभेद से नाटककार ने भाषा वैविध्य एवं संबोधन वैविध्य के द्वारा नाट्यप्रवृत्ति का समुचित सन्निवेश किया है।

चतुर्थ अध्याय

मुद्राराक्षस के पात्रों का चरित्रचित्रण

मुद्राराक्षस के पात्रों का चरित्रचित्रण

मुद्राराक्षस के पात्रो मे वैविध्य दृष्टिगत होता है। इसके सभी पात्र प्राय राजनीति से साक्षात् सम्बद्ध है। राजा मन्त्री एवं गुप्तचरो के अतिरिक्त भी जो पात्र इस नाटक मे वर्णित है वे किसी न किसी रूप मे राजनीति से सम्बद्ध है। इसमे २९ पात्रो का निरूपण किया गया है। चाणक्य एवं राक्षस की नीतियो को कार्यरूप मे परिणत करने के लिए मुद्राराक्षस के पात्र दो भागो मे विभक्त दिखाई पड़ते है। नाटक मे चाणक्य एवं राक्षस दोनो क्रमश नायक एवं प्रतिनायक है। कुछ पात्र चाणक्य के पक्ष मे है तो कुछ पात्र राक्षस के पक्ष मे। चन्द्रगुप्त, भागुरायण, सिद्धार्थक, जीवसिद्धि, निपुणक इत्यादि चाणक्य के पक्षधर है जबकि मलयकेतु, चन्दनदास, विराधगुप्त, शकटदास, करभक भासुरक आदि राक्षस के पक्षधर है। चन्द्रगुप्त चाणक्य का दृढ़भक्त एवं शिष्य है। इसने मौर्यवंश की स्थापना की थी। मलयकेतु पर्वतीय राजा पर्वतक का पुत्र है पर्वतक की मृत्यु के अनन्तर यह राक्षस के सहयोग से चन्द्रगुप्त को हराकर मगधराज्य को हस्तगत करना चाहता है। नाटककार की दृष्टि में यह चन्द्रगुप्त का प्रतिस्पर्धी था।

इस रूप मे इस नाटक मे द्वन्द्व का चित्रण अत्यन्त सूक्ष्मता के साथ प्रस्तुत किया गया है। नाटक के सभी पात्र परस्पर विरोध एवं संघर्ष मे तत्पर है। सभी पात्र सुसम्बद्ध है तथा अपने लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए सर्वात्मना समर्पित है। पात्रों के पारस्परिक वैधर्म्य के चित्रण मे नाटककार पूर्णतः सफल हुए है। नाटक की गति मे उत्तरोत्तर तीव्रता दृष्टिगत होती है। इसके कुछ पात्र तो ऐतिहासिक है जैसे-चाणक्य एवं चन्द्रगुप्त किन्तु अन्य पात्रों की कवि ने कल्पना की है। यद्यपि राक्षस, मलयकेतु, सर्वार्थसिद्धि आदि पात्र अपने नाम एवं कर्म के कारण ऐतिहासिक प्रतीत होते है किन्तु इतिहास मे इसका कोई प्रामाणिक उल्लेख नही मिलता है।

नाटक के किसी भी पात्र के चरित्र का अभिज्ञान तीन प्रकार से हो सकता है १- पात्र ने 'स्वगतम् ' के माध्यम से कैसी आत्माभिव्यक्ति की है,

२- उस पात्र के बारे मे नाटकीय अन्य पात्रो की क्या सहमति है, ३- नाटककार द्वारा स्थान-स्थान पर उस पात्र के विषय मे प्रख्यापन। इन्ही तीन बिन्दुओ के आधार पर किसी भी पात्र के चरित्र को निरुपित किया जा सकता है।

चाणक्य- चाणक्य इस नाटक का प्रधान पात्र या नायक है। इसमे वे सभी गुण विद्यमान है जो एक नाटक के नायक के लिए आवश्यक है। नन्दो का समूल नाश करने के अनन्तर चाणक्य चन्द्रगुप्त मौर्य को मगध के सम्राट् के रूप मे सुस्थिर कर नन्दो के प्रधान अमात्य राक्षस को चन्द्रगुप्त के प्रधानामात्य के रूप मे सुप्रतिष्ठित करता है। उसका लक्ष्य है मौर्यसाम्राज्य की राज्यलक्ष्मी का स्थैर्य। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए वह पूर्णत॰ सन्नद्ध है।

चाणक्य ही मुद्राराक्षस का नायक है इस विषय मे कुछ विद्वानो मे मतभेद है। इस नाटक के नायक के रूप मे चाणक्य, चन्द्रगुप्त एवं राक्षस के नामो पर विचार किया गया है। भारतीय नाट्यशास्त्र के अनुसार किसी भी नाटक का नायक वह हो सकता है जो प्रख्यात राजकुल मे उत्पन्न राजर्षि हो उसे राजर्षि होने के साथ साथ धीरोदात्त होना चाहिए। इस दृष्टि से चन्द्रगुप्त के राजकुलोत्पन्न एवं धीरोदात्तत्व गुणो से युक्त होने के कारण इसे नायक माना जा सकता है जैसा कि ढुण्डिराज[१] तथा एम. आर. काले[२] स्वीकार करते हैं।

किन्तु मुद्राराक्षसकार विशाखदत्त चाणक्य को ही इस नाटक का नायक मानते हुए प्रतीत होते है। नाटक मे पदे पदे ऐसे सङ्केत प्राप्त होते है जिनमे चाणक्य को नायक मानने की धारणा पुष्ट होती है। नाटक की सभी घटनाएँ

---

१ सचिवायत्तसिद्धित्वात्पौरुषं स्वमदर्शयन् ।
गम्भीरात्मा चन्द्रगुप्तो धीरोदात्तोऽत्र नायकः।।
-मुद्रा. प्रथम अङ्क पृ १० पर ढुण्डिराज की व्याख्या

२ दग्ध्वा संभ्रान्तपौरद्विजगणरहितान्नन्दवंशप्ररोहान् दाह्याभावान्न खेदाऽऽवलन इव वने शाम्यति क्रोधवह्नि॰। -मुद्रा. १.११ भूमिका, अंग्रजी अनुवाद, काले

चाणक्य के द्वारा पूर्णतः नियन्त्रित है उसी की नीतियाँ शत्रुओ को परास्त करती है, यथा-

जयति जयनकार्य यावत् कृत्वा च सर्वम् ,

प्रतिहतपरपक्षा आर्यचाणक्यनीति।। -मुद्रा. ६.१

यद्यपि चन्द्रगुप्त को निष्कण्टक साम्राज्य तथा दृढ़ स्वामिभक्त बुद्धिमान् मन्त्री की प्राप्ति होती है तथा वह राजकुलोत्पन्न क्षत्रिय भी हैं। फिर भी मुद्राराक्षस मे वर्णित उसका व्यक्तित्व नायकत्व के अनुरूप नही हैं। वह चाणक्य के कृत्रिम क्रोध से भी भयभीत हो जाता है। उसकी सम्पूर्ण शक्ति चाणक्य पर आश्रित है। इसी प्रकार यद्यपि भरतवाक्य के पाठ के आधार पर भारतीय नाट्य-परम्परा के अनुसार राक्षस को नायक माना जा सकता है। जैसा कि देवस्थली आदि विद्वानो ने माना है।[1] किन्तु केवल भरतवाक्य पढ़ने मात्र से किसी को नायक नही माना जा सकता। इस स्थल को नाटककार द्वारा परम्परा को न स्वीकार करने का उदाहरण माना जा सकता है। राक्षस का नायकत्व कथमपि अभिप्रेत नही है। इस नाटक मे राक्षस की नीतियाँ चाणक्य की नीतियो से निरन्तर पराभूत हुई है।

वस्तुतः विशाखदत्त ने मुद्राराक्षस के नायक के रूप मे एक ऐसे पात्र का चयन किया है जो प्रख्यात सद्वंश मे उत्पन्न राजा न होकर एक ऐसा ब्राह्मण है जो विशाल साम्राज्य का प्रतिष्ठापक आचार्य है। विशाल साम्राज्य की स्थापना के पीछे उसका उद्देश्य है लोककल्याण। प्रथम सम्राट के निर्माता चाणक्य की गतिविधि ही आरम्भ से अन्त तक परिचालित दृष्टिगत होती है। उसी की नीतियाँ सफल हुई है। सम्पूर्ण कथानक का केन्द्र चाणक्य है। भले ही नाटक के अन्त मे चन्द्रगुप्त राक्षस के रूप मे एक दृढ़स्वामिभक्त बुद्धिमान् मन्त्री को प्राप्त करता है, जिससे उसके साम्राज्य की राज्यलक्ष्मी सुस्थिर हो जाती है। पर चाणक्य को भी इस अवसर पर फलागम का विशेष लाभ हुआ है। उसको आत्मतोष मिलता है। क्योंकि इसी समय चाणक्य की प्रतिज्ञा पूर्ण हुई है। सम्पूर्ण नाटक की घटना चाणक्य की प्रतिज्ञा की पूर्ति मे नियोजित है।

---

[1] आई एस एम पृ० १००

प्रथम अङ्क मे राक्षस के गुणो से प्रभावित चाणक्य राक्षस को चन्द्रगुप्त का प्रधानामात्य बनाने की प्रतिज्ञा करता है। जब राक्षस चन्द्रगुप्त का मन्त्री बनना स्वीकार कर लेता है तो वह अपने आप को पूर्णप्रतिज्ञ कहता है।[1] चन्द्रगुप्त भी आचार्य चाणक्य के आदेशो को शिरोधार्य मानता है। वह चाणक्य के कृतक कोप से भी भयभीत हो जाता है। नाटक के विभिन्न अन्य पात्र भी चाणक्य की ही नीति को प्रमाण मानते है। इस रूप मे उसका नायकत्व स्वतः सिद्ध है। मुद्राराक्षस के आधुनिक व्याख्याकार डॉ. सत्यव्रत सिंह भी चाणक्य को ही मुद्राराक्षस का नायक मानते है। इन्होने नाटक के नान्दीपद्यो की व्याख्या मे इस तथ्य को अभिव्यक्त करते हुए लिखा है 'चाणक्यः खलु नायको जयति यस्य प्राणेभ्योऽपि प्रिया कूटराजनीतिस्सहधर्मचारिणीव विराजते। ------पूर्वत्र नान्दीपद्ये नायकस्य चाणक्यस्य वीतरागस्यापि--------। अत्र तु नान्दीपद्ये चाणक्योऽयं नायकस्स्वसुखनिरभिलाषः धृतलोककल्याणव्रतः----।[2]

वस्तुतः चाणक्य को ही मुद्राराक्षस का नायक स्वीकार करना तर्कसंगत तथ्य है। क्योकि वह नाटक के सम्पूर्ण घटना चक्र का नियन्ता है। नाटक के सभी महत्त्वपूर्ण पात्र इसी की इच्छा पर कार्य करते है। नाट्यपरम्परा मे नायक के लिए जिन गुणो का होना आवश्यक बताया गया है[3] अधिकांशतः वे गुण चाणक्य मे विद्यमान है। नाटक के नायक को नेता, विनीत, मधुर, त्यागी, दक्ष, प्रिय बोलने वाला, आदि गुणो से युक्त होना चाहिए। चाणक्य त्यागी, दक्ष, शुचि, वाग्मी, रूढ़वंश, स्थिर, बुद्धिमान् उत्साही, स्मृतिमान् तथा प्रज्ञावान है। वह दृढ़ तेजस्वी एवं शास्त्रज्ञ है। इस रूप मे उसमें नायक के पर्याप्त गुण विद्यमान हैं। यद्यपि चाणक्य न तो विनीत है न मधुर न ही

---

१ विना वाहनहस्तिभ्यो मुच्यतां सर्वबन्धनम् ।
मया पूर्णप्रतिज्ञेन बध्यते केवलं शिखा।। -मुद्रा. ७.१६

२ मुद्राराक्षस पृ. ३ एवं ५

३ नेता विनीतो मधुरस्त्यागी दक्षः प्रियवदः।
रक्तलोकः शुचिर्वाग्मी रूढवंशः स्थिरो युवा।।
बुद्ध्युत्साहस्मृतिप्रज्ञाकलामानसमन्वितः।
शूरो दृढश्च तेजस्वी शास्त्रचक्षुश्च धार्मिकः।। -दश १ २

प्रियभाषी, किन्तु जिस कार्य के लिए वह प्रवृत्त है उसके लिए विनीत, मधुर एवं प्रियभाषी होना दोष है, गुण नही।

चाणक्य के चरित्र मे कई अनुकरणीय विशेषताएँ परिलक्षित होती है। चाणक्य का सबसे बड़ा गुण है निःस्वार्थ भाव से लोककल्याणकारी कार्य करना। चाणक्य के इस पक्ष को प्रस्तुत करने मे विशाखदत्त पूर्णतः सफल हुए है। यद्यपि प्राचीन भारतीय कथा परम्परा मे वह एक महत्त्वाकाङ्क्षी व्यक्ति के रूप मे वर्णित है किन्तु मुद्राराक्षस मे उसका यह रूप नही दृष्टिगत होता। वह अपने साध्य के प्रति सतत जागरूक है तथा उसमे कार्य करने की अद्भुत क्षमता विद्यमान है। वह महानीतिज्ञ है। इस गुण को प्रस्तुत करने मे नाटककार ने परम्परा को स्वीकार किया है। चाणक्य को अपनी बुद्धि पर पूरा भरोसा है। वह अपनी बुद्धि के वैभव से सब कुछ सम्पन्न कर लेता है। नन्दो के समूल नाश की उसने जो प्रतिज्ञा ली थी उसे वह अपनी अद्भुत बुद्धि की प्रखरता से ही पूर्ण करता है। वह स्वतः अपनी बुद्धि के पराक्रम को सैकड़ो सेनाओ के पराक्रम से अधिक मानता है। प्रथम अङ्क की समाप्ति पर वह कहता है कि केवल मेरी बुद्धि मेरे पास बनी रहे तो मै सब कुछ करने मे समर्थ हूँ। यह तथ्य नन्दो के विनाश की घटना से स्पष्ट है :

एका केवलमर्थसाधनविधौ सेनाशतेभ्योऽधिका।

नन्दोन्मूलनदृष्टवीर्यमहिमा बुद्धिस्तु मा गान्मम।।[१]

चाणक्य मुद्राराक्षस मे दृढ़प्रतिज्ञ कुटनीतिविशारद एवं महान् राजनीतिज्ञ के रूप मे वर्णित है। उसे अपने पुरुषार्थ के प्रति पूर्ण विश्वास है। वह 'दैवेन देयमिति कापुरुषा वदन्ति' को अक्षरशब्द स्वीकार करता है। इसीलिए वह भाग्य पर भरोसा नही करता उसके अनुसार भाग्यवादी मूर्ख होते है- 'दैवमविद्वांसः प्रमाणयन्ति।'[२] वस्तुतः चाणक्य अपने कर्तव्य को ही कार्यसिद्धि का लक्ष्य मानता है। वह अपनी उग्र एवं बड़ी प्रतिज्ञा को पूर्ण करने के लिए राक्षस के देखते-देखते नन्दो के सम्पूर्ण विनाश को अपने पराक्रम का

---

[१] मुद्रा० १.२६

[२] मुद्रा० प्रथम अङ्क पृ० ९४

परिणाम मानता है।[१] उसी के पराक्रम का परिणाम है कि चन्द्रगुप्त मगध साम्राज्य के सिंहासन पर आरूढ हो सका है। राक्षस के अनुसार चाणक्य को इस बात का अहङ्कार भी है कि मैने चन्द्रगुप्त को सम्राट् बनाया है- 'चाणक्योऽपि मदाश्रयादयमभूद्राजेति जातस्मयः।[२] अद्भुत पराक्रम के कारण चाणक्य को सूर्य से भी तेजस्वी बताया गया है। तृतीय अङ्क मे चन्द्रगुप्त का कञ्चुकी स्पष्ट शब्दो में कहता है कि चाणक्य अपने पराक्रम के तेज से सूर्य के भी तेज को अतिक्रान्त कर रहा है क्योकि उसने नन्दो का अस्त तथा चन्द्रगुप्त का उदय एक साथ ही प्रतिपादित किया है। उसका प्रकाश सर्वगामी है जबकि सूर्य कालक्रम का अनुवर्तन करता हुआ शीतत्व एवं उष्णत्व को नष्ट करता है तथा उसका प्रकाश सर्वगामी भी नही है।[३] चाणक्य किसी कार्य को उसके परिणाम तक निष्पन्न करता है। बीच मे नही छोड़ता, नन्दो का विनाश कर अपनी प्रतिज्ञा को पूर्ण कर भी वह शान्त नही हो जाता। जब तक चन्द्रगुप्त की साम्राज्य-लक्ष्मी स्थिर नही हो जाती तब तक उसे विश्राम कहॉ? इसीलिए वह कहता है कि यद्यपि मेरी प्रतिज्ञा पूर्ण हो गयी है फिर भी चन्द्रगुप्त की राजलक्ष्मी को स्थिर करने के लिए मै आज भी शस्त्र धारण कर रहा हूॅ। वह अवन्ध्यकोप है तथा आपदाओ का विहन्ता है। उसने अपने क्रोध से एक तरफ शत्रुओ को समूल नष्ट किया है तो दूसरी तरफ चन्द्रगुप्त के राजमहल मे प्रवेश के समय शत्रुओ के द्वारा चन्द्रगुप्त को मारने के लिए रचे गये सकल उपायो को विफल कर आपदाओ को दूर कर उसे राज्यारूढ किया

---

१ आरुह्यारूढकोपस्फुरणविषमिताग्राङ्गुलीमुक्तचूडाम् ,
लोकप्रत्यक्षमुग्रां सकलरिपुकुलोत्साददीर्घां प्रतिज्ञाम् ।
केनान्येवावलिप्ता नवनवतिशतद्रव्यकोटीश्वरास्ते
नन्दाः पर्यायभूताः पशव इव हताः पश्यतो राक्षसस्य।। -मुद्रा. ३.२७

२ मुद्रा. २.२३

३ यो नन्दमौर्यनृपयोः परिभूय लोक-
मस्तोदयावदिशदप्रतिभिन्नकालम् ।
पर्यायपातितहिमोष्णमसर्वगामि,
धाम्नातिशाययति धाम सहस्रधाम्नः।। -मुद्रा. ३.१७

है। इस प्रकार उसने कोप एवं प्रीति के फल को क्रमशः शत्रु एवं मित्र मे उचित रूप मे विभक्त कर दिया है।[१]

चाणक्य मे आलस्य का नाम नही है। अपने कार्य को पूर्ण करने मे उसे थोड़ी भी थकान नही लगती। नन्दो का समूल नाशकर देने पर उसकी क्रोधाग्नि इसलिए नही शान्त हो रही है कि वह थक गया है अपितु वह इसलिए शान्त हो रही है कि जलाने के लिए अब कुछ बचा ही नही है।[२] चाणक्य चन्द्रगुप्त को राज्यसिंहासन पर बैठा देने के बाद गर्व अथवा हर्ष से युक्त तो है किन्तु वह मदान्ध नही हो जाता। वह शत्रुओ की हर चाल को बहुत सावधानी से देख रहा है। चन्द्रगुप्त को चाणक्य के विरुद्ध भड़काने के लिए राक्षस द्वारा प्रयुक्त वैतालिको के वचनो को सुनकर सावधान चाणक्य तुरन्त कह उठता है- 'राक्षसस्यायं प्रयोग। दुरात्मन् राक्षस, दृश्यते भो। जागर्ति खलु कौटिल्य'[३] वह सतत जागरूक है तथा उसकी दृष्टि भविष्य पर टिकी हुई है। उसका कौमुदी महोत्सव के प्रति कोई रुझान नही है। अपितु वह इस अवसर का उपयोग शत्रुओ के प्रतीकार के लिए करता है।[४]

चाणक्य त्याग की प्रतिमूर्ति है। चाणक्य के द्वारा चन्द्रगुप्त को राजाधिराज बनाने मे उसका अपना कोई स्वार्थ नही है। इसीलए वह महान् हो जाता है। वह ऐसे सम्राट् का निर्माता है जिसके चरणो मे उत्तर मे हिमालय से लेकर दक्षिण मे समुद्र के किनारे तक के सभी राजागण नतमस्तक होते है।[५]

---

१ समुत्खाता नन्दा नवहृदयशल्या इव भुवः,
कृता मौर्ये लक्ष्मी सरसि नलिनीव स्थिरपदा।
द्वयोः सार तुल्यं द्वितयमभियुक्तेन मनसा,
फलं कोपप्रीत्योर्द्विषति च विभक्तं सुहृदि च।। मुद्रा. १.१५

२ दग्ध्वा सम्भ्रान्तपौरद्विजगणरहितान् नन्दवंशप्ररोहान् ,
दाह्याभावान्न खेदाज्ज्वलन इव वने शाम्यति क्रोधवह्निः।। -मुद्रा. १.११

३ वही, पृ. ८७

४ सोऽयं व्यायामकालो नोत्सवकाल इति दुर्गसंस्कारे प्रारब्धव्ये किं कौमुदीमहोत्सवेनेति। वही, पृ.- ९१

५ मुद्रा. ३.१९

किन्तु राजाधिराज पर आदेश चलाने वाला यह मन्त्री चाणक्य राजसी भोगविलास से पूर्णत निर्लिप्त है। इतना ही नही वह राजसी भोगविलास के केन्द्र राजभवन से दूर नगर से बाहर एक छोटी सी कुटिया मे निवास करता है। यही उसकी असाधारण विभूति है। उसकी कुटी के बाहर उपलो को तोडने के लिए एक पाषाणखण्ड है, विद्यार्थियो के द्वारा एकत्र किया गया कुशो का एक स्तूप है। उसकी कुटी की छज्जा सूखने के लिए रखी गयी लकड़ियो के कारण झुक गयी है।[1] इस श्लोक मे चाणक्य की त्यागवृत्ति का जो निदर्शन विशाखदत्त ने प्रस्तुत किया है वही भारतीय संस्कृति का वास्तविक प्रकटन है। यह आज के संदर्भ मे प्रेरक तत्त्व के रूप मे कार्य कर सकता है। इस रूप मे चाणक्य का चरित्र लोकोत्तर है।

विशाखदत्त के अनुसार चाणक्य के मन मे अपने लिए कोई स्पृहा नही है इसीलिए वह सार्वभौम शासक पर शासन ही नही करता अपितु शासक उसके लिए तिनके के बराबर है।[2]

चाणक्य प्रतिशोध एवं प्रतिहिंसा का अवतार है। इस नाटक मे चाणक्य को उग्र एवं क्रोधी पात्र के रूप मे चित्रित किया गया है। जब कोई भी कार्य उसके मन के प्रतिकूल होता है तो वह क्रुद्ध हो उठता है। उसका क्रोधी स्वभाव नाटक मे कई जगह व्यक्त हुआ है। चतुर्थ अङ्क मे शकटदास चाणक्य के कोप की चर्चा करता है- 'चाणक्यः कोपनोऽपि,' मुद्रा. ४.१२। इससे उसके क्रोधी स्वभाव को स्पष्ट किया गया है। नाटक के तृतीय अङ्क मे कृतक कलह के अवसर पर चाणक्य की क्रोध मुद्रा का कवि ने गम्भीर वर्णन किया है। नन्दो के विनाश की प्रतिज्ञा पूर्ण हो जाने पर बॉधी गयी शिखा को फिर से खोलने के लिए उसका हाथ बढ़ रहा है। पुनः प्रतिज्ञा करने के लिए पैर बढ़ रहा है। नन्दो के विनाश से जो क्रोधाग्नि शान्त हो गयी थी उसे फिर

---

१ उपलशकलमेतद् भेदकं गोमयानाम् बटुभिरुपहृतानां बर्हिषां स्तूपमेतत् ।
शरणमपि समिद्भिः शुष्यमाणाभिराभिर्विनमितपटलान्तं दृश्यते जीर्णकुड्यम् ।
-मुद्रा. ३ १५

२ निरीहाणामीशस्तृणमिव तिरस्कारविषयः। -मुद्रा. ३.१६

से प्रज्वलित कर दिया गया है।[१] चन्द्रगुप्त चाणक्य को कोप की मुद्रा मे देखकर मन ही मन कह उठता है "अये सत्यमेव कुपित आर्यः"[२] यहाँ पर यह उसका वास्तविक क्रोध नही है। वास्तविक क्रोध मे तो वह शत्रुओ को समूल विनाश के लिए ललकारने लगता है-

"उल्लङ्घयन् मम समुज्ज्वलतः प्रतापं कोपस्य नन्दकुलकाननधूमकेतोः।
सद्यः परात्मपरिमाणविवेकमूढः कः शालभेन विधिना लभतां विनाशम् ।।[३]

वास्तविक क्रोध के समय उसकी मुद्रा विलक्षण हो जाती है। ऐसे मे कवि ने उसके स्वरूप को सिंह के रूप मे चित्रित किया है। हाथी को मारकर जम्भाई लेने वाले सिंह के मुह मे हॉथ डालकर सिंह के दॉत निकालना जैसे मृत्यु का वरण करना है उसी प्रकार अभी अभी नन्दो का समूल नाश कर चुके चाणक्य के क्रोध को बढ़ाना अपने विनाश का वरण करना है।[४]

चाणक्य अपने कर्म को प्रधान मानता है। उसके लिए मन मे तनिक भी आलस्य नही है। उसे एक मिनट का भी विलम्ब सह्य नहीं है। इसी विलम्ब के कारण वह अपने शिष्य शार्ङ्गरव पर भी झुँझला उठता है। यद्यपि शिष्यो पर झुँझलाना उपाध्यायो का स्वभाव होता है किन्तु वह इस कारण शार्ङ्गरव पर नही झुँझलाता अपितु कार्य के प्रति एकाग्रता के कारण व्याकुल

---

१ शिखां मोक्तुं बद्धामपि पुनरयं धावति करः
प्रतिज्ञामारोढुं पुनरपि चलत्येष चरणः।
प्रणाशान्नन्दानां प्रशममुपयातं त्वमधुना
परीतः कालेन ज्वलयसि मम क्रोधदहनम् ।। -मुद्रा ३.२९

२ मुद्रा. पृ० ९५

३ वही १ १०

४ आस्वादितद्विरदशोणितशोणशोभां
सन्ध्यारुणामिव कलां शशलाञ्छनस्य।
जृम्भाविदारितमुखस्य मुखात्स्फुरन्ती
को हर्तुमिच्छति हरेः परिभूय दंष्ट्राम् ।। -मुद्रा १.८

रहता है।[१] उसको इस बात की व्यग्रता है कि राक्षस को शीघ्रातिशीघ्र पकड़ लिया जाय।

पूरे नाटक मे चाणक्य को पूर्ण आत्मविश्वास से युक्त चित्रित किया गया है। जब नन्दो के विनाश से क्षुब्ध राक्षस अपने पिता की हत्या से क्षुब्ध मलयकेतु जो कि सम्पूर्ण नन्दराज्य के परिपणन से प्रोत्साहित था के साथ सन्धि करके मलयकेतु के द्वारा इकट्ठी की गयी म्लेच्छ राजाओं की विशाल सेना के साथ चन्द्रगुप्त पर आक्रमण करने की योजना बनाता है तो वह घबड़ाता नही अपितु वह अपने सामर्थ्य के आधार पर इस समस्या को दूर करने मे आत्मविश्वास से परिपूर्ण है।[२] वह कहता है कि मैने सम्पूर्ण संसार के समक्ष नंदवंश के वध की कठोर प्रतिज्ञा करके दुस्तरणीय प्रतिज्ञारूपी नदी को पार कर लिया है वह मै सम्प्रति फैलती हुई इस बात को भी कि राक्षस आक्रमण कर रहा है शान्त करने मे समर्थ हूँ। चाणक्य के सामर्थ्य को लोग देख भी चुके है। जिनके सामने चाणक्य को अग्रासन से बलात् नीचे उतार दिया गया था उन्ही के सामने जैसे पर्वत शिखर से सिंह गजेन्द्र को गिराकर मार डालता है उसी प्रकार चाणक्य पुत्रो सहित नन्द को सिंहासन से च्युत कर मार डालता है। इस कार्य के लिए चाणक्य को केवल अपने पराक्रम पर भरोसा है। चाणक्य मनोविज्ञान का अद्वितीय वेत्ता है। वह अपने मन को जितना पहचानता है उतना ही दूसरे के मन को भी पहचानता है। राक्षस के मनोभावों को पहचान कर ही वह उसके कोमल हृदय पक्ष पर आघात करता है। चाणक्य ने राक्षस के मित्र चन्दनदास को इसीलिए पकड़ रखा है कि उसे ज्ञात है कि राक्षस अपने मित्र को छुड़ाने के लिए अवश्य आत्मसमर्पण कर देगा। चन्दनदास का राक्षस के प्रति विश्वास और मित्रभाव देखकर चाणक्य

---

१ वत्स कार्याभिनियोग एवास्मान् व्याकुलयति,
न पुनरुपाध्यायसहभू शिष्यजने दुःशीलता। मुद्रा. पृ - २०

२ अथवा येन मया सर्वलोकप्रकाशं नन्दवशवधं प्रतिज्ञाय निस्तीर्णा दुस्तरा प्रतिज्ञासरित्सोहमिदानी प्रकाशीभवन्तमप्येनमर्थ समर्थः प्रशमयितुम् । -वही पृ. २१

राक्षस को हस्तगत ही समझता है।[१] चाणक्य असाधारण मेधा सम्पन्न है। राक्षस के गुणो को जितना वह समझता है सम्भवतः राक्षस स्वयं भी अपने गुणो को नही जानता। वस्तुतः चाणक्य गुणग्राही है वह राक्षस की निस्वार्थ स्वामिभक्ति देखकर उसको चन्द्रगुप्त का अमात्य बनाने के लिए प्रयत्न करता है।[२] गुप्तचर से चन्दनदास के द्वारा राक्षस के कलत्र को आश्रय दिया गया है यह सुनकर चाणक्य अपने मन मे चन्दनदास को राक्षस का सुहृत्तम मानता है।[३] इसी प्रकार जब चन्दनदास चाणक्य के द्वारा डराये जाने पर भी राक्षस के परिवार को देने से मना कर देता है तो चाणक्य उसके इस निर्णय के लिए मन ही मन उसे साधुवाद देता है तथा कहता है कि राजा शिवि के अतिरिक्त और कोई ऐसा दुष्कर कार्य नही कर सकता।[४] वह अमात्य राक्षस की प्रज्ञा, पराक्रम, शक्ति एवं राजभक्ति के कारण उस पर मुग्ध हैं। चाणक्य ने शक्तिशाली नन्दो का विनाश कर चन्द्रगुप्त को राज्यसिहासन पर बैठा दिया है। अपने इस कार्य के लिए वह गर्वान्वित तथा हर्षान्वित भी है किन्तु इस अवसर पर मदान्ध नही हो जाता। एक स्थान पर पराक्रम के लिए वह दैव को कारण मानता है। सातवे अङ्क मे जब राक्षस पकड़ लिया जाता है तो चाणक्य चाण्डाल से पूँछता है कि उसने साहसिक, महाशूर, विपुल बुद्धि वाले राक्षस को पकड़ लिया है? क्योकि जिस प्रकार वस्त्र के अन्दर अग्नि को रखना, रस्सी से वायु की गति को रोकना, मदमस्त हाथियों को मारने वाले शेर को पिजड़े मे रखना तथा भुजाओ से दुस्तर सागर को पार करना कठिन कार्य है वैसे ही राक्षस को भी वश मे करना कठिन कार्य है, उत्तर मे

---

१ हन्त लब्ध इदानी राक्षस। कुतः
त्यजत्यप्रियवत् प्राणान् यथा तस्यायमापदि।
तथैवास्यापदि प्राणा नूनं तस्यापि न प्रियाः।। -मुद्रा. १.२५

२ अत एवास्माकं त्वत्सङ्ग्रहे यत्नः कथमसौ वृषलस्य साचिव्यग्रहणेन सानुग्रहः स्यादिति। वही पृ. २३

३ चाणक्यः (आत्मगतम्)नूनं सुहृत्तमः। -वही, पृ. ३०

४ चाणक्यः (स्वगतम्) साधु चन्दनदास साधु
सुलभेष्वर्थलाभेषु परसंवेदने जने।
क इदं दुष्करं कुर्यादिदानी शिबिना विना।। वही १.२३

चाण्डाल कहता है। नीतिनिपुण मतिवाले आपने ही तो राक्षस को वश मे किया है इस पर चाणक्य राक्षस को वश मे करने के लिए दैव को कारण मानता है।[१] यह उसकी उदारता है।

चाणक्य नन्दो को मारकर चन्द्रगुप्त को राज्यसिंहासन पर बैठाता है इस रूप मे वह नवीन साम्राज्य का प्रतिष्ठापक है, किन्तु वह पूरी तरह से निर्लिप्त है। साम्राज्य के विरुद्ध कार्य करने वाले शत्रुओ के विरुद्ध वह बहुत कठोर हो उठता है। अपने शत्रुओ को वह एक क्षण भी पसन्द नही करता। उनकी चर्चा भी उसको अच्छी नही लगती। उनके नाम की चर्चा आते ही वह क्रोध से तिलमिला उठता है। वह शत्रुओ के प्रति यमराज की तरह क्रूर है।

चाणक्य 'विश्वस्ते नातिविश्वसेत् , अविश्वस्ते नैव विश्वसेत्' इस सिद्धान्त का अक्षरशः पालन करता है। वह न अपने गुप्तचरो पर पूरा विश्वास करता है न ही सर्वात्मना चन्द्रगुप्त पर। चाणक्य सम्पूर्ण नाटक मे अपनी योजनाओ का सूत्रधार स्वतः है। अपनी योजनाओ के लिए वह नाटक के किसी अन्य पात्र से मन्त्रणा नही लेता है। उसको यदि किसी पर विश्वास है तो अपनी बुद्धि पर अन्यथा वह किसी पर विश्वास नही करता। उसका यही अविश्वास उसे निर्मम बना देता है। उसके हृदय मे भावुकता के लिए लेशमात्र भी स्थान नही है। चाणक्य अकरुण है इस बात को कवि ने चन्दनदास के माध्यम से व्यक्त किया है। नाटक के प्रथम अङ्क मे जब चाणक्य का शिष्य चन्दनदास को चाणक्य के सम्मुख ले जाता है तो चन्दनदास कहता है चाणक्य यदि किसी निर्दोष व्यक्ति को भी बुलाता'है तो वह भयभीत हो जाता है क्योकि वह अकरुण है।[२] किन्तु उसकी अकरुणता साम्राज्य की स्थिरता के लिए है। इसी प्रकार उसका भावुकता विहीन होना ही उसकी विजय का भी कारण है। चाणक्य का एकमात्र उद्देश्य है राक्षस को चन्द्रगुप्त का अमात्य बनाना। इसके लिए वह छल का भी आश्रय लेता है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए सर्वार्थसिद्धि जैसे तपस्वी तथा पर्वतेश्वर जैसे सहायक का वध कराने मे

---

१ नन्दकुलद्वेषिणा दैवेनेति ब्रूहि। -वही पृ. १५९

२ चाणक्येनाकरुणेन सहसा शब्दायितस्यापि जनस्य
निर्दोषस्यापि शङ्का किं पुनर्मम जातदोषस्य॥ -मुद्रा. १.२१

भी उसे सङ्कोच नही होता। इस रूप मे उसे सिद्धान्तो पर भी कोई विश्वास नही है।

चाणक्य मे सांगठनिक क्षमता पर्याप्त है। उसकी कूटनीति की यह विशेषता है कि एक ही उद्देश्य को लक्ष्य बनाकर कार्य करने वाले चाणक्य के गुप्तचर एक दूसरे से अपरिचित रहते है। उसके अनुयायी उसकी लगन, दक्षता कठोरता, जागरूकता तथा लक्ष्य के प्रति एकाग्रता से प्रेरणा प्राप्त करते है। उनका अपना कोई स्वार्थ नही रह जाता नही उनकी अपनी कोई उच्चाकाङ्क्षा होती है। चाणक्य की महत्त्वाकाङ्क्षा ही उनकी महत्त्वाकाङ्क्षा है। चाणक्य की कार्यसिद्धि ही उनकी कार्यसिद्धि है। उनके मन मे ऐसी भावना इसलिए है क्योकि चाणक्य जो भी कार्य करता है वह अपनी स्वार्थसिद्धि के लिए नही अपितु मौर्य साम्राज्य की स्थिरता के लिए। इसीलिए उसने राक्षस को कभी शत्रु नही माना अपितु अन्ततोगत्वा उसे भी अपने आदर्शो का पालक बना लेता है। राक्षस जिस चाणक्य को प्रधान शत्रु मानता है, पदे-पदे जिसके लिए कटु वचनो का प्रयोग करता है उसके नि स्वार्थ भाव को देखकर नाटक की समाप्ति के समय अपनी धारणा बदल देता है और उसकी प्रशसा करते हुए कहता है अये। अयं स दुरात्मा, अथवा महात्मा कौटिल्य। यत -

आकर सर्वशास्त्राणां रत्नानामिव सागर।

गुणैर्न परितुष्यामो यस्य मत्सरिणो वयम् ॥[१]

चाणक्य की कूटनीति पूरी तरह से सफल हुई है उसको अपनी कूटनीति की सफलता के कारण हमेशा विजय प्राप्त हुई है। राक्षस जो कि पहले अपनी पराजय के लिए तथा चाणक्य की सफलता एवं अपनी असफलता के लिए दैव को कारण मान रहा था वह छठे अङ्क मे चाणक्य की नीति को स्वतः दुर्बोध मानने लगता है।[२] राक्षस के पकड़ लिए जाने पर चाण्डाल कहता है चाणक्य की नीति से जिसके सारे बुद्धिव्यापार संयमित हो

[१] (क) राक्षसः - सखे पश्य दैवसम्पदं दुरात्मनश्चन्द्रगुप्तहतकस्य। -मुद्रा., पृ. ६४

(ख) दैवं ही नन्दकुलशत्रुरसौ न विप्रः। वही, ६.७

[२] दुर्बोधश्चाणक्यबटोर्नीतिमार्ग। वही, पृ १५२

गये है ऐसे अमात्य राक्षस को पकड़ लिया गया है।[1] चाणक्य जब राक्षस के पकड़े जाने के विषय मे पूछता है तो चाण्डाल चाणक्य की नीति मे निपुण बुद्धि को ही कारण मानता है।[2] स्वतः राक्षस भी चाणक्य के कूटनीतिक प्रयोग की प्रशंसा करता है। पर्वतेश्वर को चाणक्य विषकन्या के प्रयोग से मरवा कर उसके मरवाने के लिए राक्षस को दोषी होने का प्रवाद फैला देता है। इस पर राक्षस चाणक्य के लिए मन ही मन कहता है कि चाणक्य ने पर्वतेश्वर के वध का अपयश अपने ऊपर से हटाकर हमारे ऊपर थोप दिया है। आधे राज्य के हकदार को मारकर राज्य के बटवारे को भी बचा लिया है। इस प्रकार इसका एक भी नीतिबीज कई-कई फलो को देने वाला है।[3] राक्षस को पकड़ने के लिए उद्यत पुरुष छठे अङ्क मे श्लेष के माध्यम से चाणक्य की नीति को सर्वोत्कृष्ट बताता है। सन्धि, विग्रह, यान, आसन, द्वैधीभाव एवं आश्रय इन छह गुणो के संयोग के कारण दृढ़ अर्थात् दुर्भेद्य साम, दान, दण्ड एवं भेद इन चार उपायो की परम्परा से निर्मित पाशरूपी मुख वाली शत्रु राक्षस को वश मे करने के लिए उद्यत चाणक्य की नीति सर्वोत्कृष्ट है।[4] भागुरायण कौटिल्य की कूटनीति का नियति की तरह चित्र-विचित्र रूप मे अनुभव करता हुआ आश्चर्यान्वित है-

मुहुर्लक्ष्योद्भेदा मुहुरधिगमाभावगहना।
मुहुः सम्पूर्णाङ्गी मुहुरतिकृशा कार्यवशतः।
मुहुर्नश्यद्बीजा मुहुरपि बहुप्रापितफले-
त्यहो चित्राकारा नियतिरिव नीतिर्नयविदः।।[5]

---

१ आर्यनीतिसंयमितबुद्धिपुरुषकारो गृहीतोऽमात्यराक्षसः। वही, पृ १५९

२ नीतिनिपुणबुद्धिनार्येण। वही, पृ. १५९

३ परिहृतमयशः पातितमस्मासु च घातितोऽर्धराज्यहरः।
एकमपि नीतिबीजं बहुफलतामेति यस्य तव।। २ १९

४ षड्गुणसंयोगदृढा उपायपरिपाटीघटितपाशमुखी
चाणक्यनीतिरज्जू रिपुसंयमनोद्यता जयति।। मुद्रा. ६.४

५ वही ५ ३

छठे अङ्क मे सिद्धार्थक भी चाणक्य की नीति को दैवगति के समान भी अश्रुत गति कहता है।[१] सिद्धार्थक की दृष्टि मे आचार्यचाणक्य की नीति का अवगाहन राक्षस भी नही कर सकता था सामान्यजनो की तो बात ही क्या।[२] राक्षस भी चाणक्य की नीति से पराजित होकर कह उठता है अहो सुश्लिष्टोऽयमभूच्छत्रुप्रयोग। आर्य चाणक्य की नीति की सबसे बडी विशेषता यह है कि वह शत्रुओ को ठीक से परास्त करती है तथा अपनी विजय को दुदृढ़ करती है। इसीलिए सर्वोत्कृष्ट है।[३]

चाणक्य की राजनीति क़ी सबसे बडी विशेषता है कि उसके प्रणिधि क्षपणकजीवसिद्धि को राक्षस अपना सबसे अधिक घनिष्ठ मित्र समझता है। क्योकि राक्षस पर पर्वतेश्वर के वध का आरोप लगाते हुए मलयकेतु जब प्रमाण के रूप मे क्षपणक जीवसिद्धि का नाम लेता है। तो राक्षस कह पड़ता है - हन्त रिपुभिर्मे हृदयमपि स्वीकृतम् ।[४] राक्षस इसके द्वारा चन्द्रगुप्त पर विषकन्या के प्रयोग का दायित्व देता है इसी प्रकार भागुरायण के माध्यम से राक्षस एवं मलयकुतु मे भेद पैदा करने मे चाणक्य को सफलता मिलती है। इस भेद मे कपट पत्र का भी बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान है। चन्दनदास एवं शकरदास को भयभीत करना, विष्णुदास द्वारा राक्षस को निश्शस्त्र वध्य स्थान पर भेजना चाणक्य की नीति के अनुपम प्रयोग है जिनसे वह अपने प्रधान लक्ष्य चन्द्रगुप्त के साथ राक्षस की मैत्री कराने मे सफलता प्राप्त करता है। चाणक्य ने अपनी कूटनीति को राक्षस के सामने इस प्रकार व्यक्त किया है -

भृत्या भद्रभटादय॰ स च तथा लेख॰ स सिद्धार्थकः

तच्चालङ्करणत्रयं स भवतो मित्रं भदन्त॰ किल।।

---

१ वयस्य दैवगत्या इव अश्रुतगत्यै नमश्चाणक्यनीत्यै। वही, पृ० १४०

२ अतिमुग्धोऽसीदानी त्वं यतोऽमात्यराक्षसेनाप्यनवगाहितपूर्वमार्यचाण कस्यस्य चरितमवगाहितुमिच्छसि। वही, पृ० १४१

३ जयति जयनकार्य यावत्कृत्वा च सर्व
प्रतिहतपरपक्षा आर्यचाणक्यनीतिः। वही ६.१

४ मुद्रा० पृ० १३५

जीर्णोद्यानगतः स चापि पुरुषः क्लेशः स च श्रेष्ठिनः।

सर्व मे वृषलस्य वीर भवता संयोगमिच्छोर्नयः।। मुद्रा० ७.९

यद्यपि चाणक्य ने कई कठोर निर्णय लिए है जिन्हे अनैतिक भी कहा जा सकता है, किन्तु उसके सारे कार्य नन्दो के विनाश एवं चन्द्रगुप्त की राज्यलक्ष्मी की स्थिरता के लिए है। नन्द धनलोलुप थे, वे जनता के लिए अभिशाप बन चुके थे। उनका पूर्ण विनाश आवश्यक था। चाणक्य का लक्ष्य महान् था इसलिए उसकी पूर्ति के लिए सर्वार्थसिद्धि आदि के वध के निर्णय को भी अनुचित नहीं ठहराया जा सकता। पर्वतक, सर्वार्थसिद्धि एवं मलयकेतु के सहयोगी ५ म्लेच्छ राजाओ की हत्याएं राजनीतिक आवश्यकताएँ थी। चाणक्य की उदारता इसी तथ्य से स्पष्ट है कि मलयकेतु को कैद करके केवल छोड़ ही नही दिया गया अपितु उसे उसका राज्य भी वापस कर दिया गया।

इस प्रकार चाणक्य मुद्राराक्षस मे आत्मविश्वासी, दृढ़प्रतिज्ञ, दूरदर्शी पुरुषार्थी, बुद्धिशाली तथा कूटनीतिनिपुण रूप मे चित्रित हुआ है। नाटककार की दृष्टि में चाणक्य मे नन्दसाम्राज्य को समाप्त करने तथा मौर्यसाम्राज्य को स्थिर करने का अद्भुत सामर्थ्य विद्यमान था।

राक्षस - राक्षस नन्दो का प्रधान अमात्य था। नन्दो का विनाश हो जाने पर भी पर्वतकपुत्र मलयकेतु के सहारे राक्षस चन्द्रगुप्त को समाप्त कर अपने स्वामियो के वध का बदला लेने के लिए प्रयत्नशील रहता है किन्तु उसे सफलता नही मिलती। इस नाटक में वह प्रतिनायक के रूप मे चित्रित हुआ है इसको नाटक का प्रतिनायक उस रूप मे नहीं माना जा सकता जिस रूप मे नाट्यशास्त्रियों ने प्रतिनायक का निरूपण किया है। दशरूपककार के अनुसार प्रतिनायक लुब्ध, धीरोद्धत, स्तब्ध, व्यसनी और पापी होता है।[१] किन्तु मुद्राराक्षस का यह प्रतिनायक उन्हीं गुणों से युक्त है जो गुण नायक मे विद्यमान है। वस्तुतः यह नाटक के नायक चाणक्य के विरोधी के रूप मे चित्रित हुआ है अतः इसे प्रतिनायक माना जाता है।

---

१ लब्धो धीरोद्धतः स्तब्धः पापकृद् व्यसनी रिपुः। दशरूपक २.९

मुद्राराक्षस मे प्रथम एवं तृतीय अङ्क को छोडकर अन्य सभी अङ्को मे राक्षस के चरित्र का वर्णन किया गया है। इसके चरित्र मे जीवन के उतार चढ़ाव साफ-साफ झलकते है। कालिदास ने सूर्योदय एवं चन्द्रास्त के माध्यम से लोक मे अस्त एवं उदय का जो चित्र उपस्थित किया है। वह राक्षस के जीवन मे पूर्णतः घटता हुआ दिखायी पड़ता है। राक्षस जब चन्दनदास के प्राणो की रक्षा के लिए कुसुमपुर के समीप जीर्णोद्यान मे प्रवेश करता है तो उसे अपने उस अतीत का स्मरण हो आता है जब हजारो राजाओ से घिरा हुआ रहता था, आज वह असहाय है। वह कहता भी है कि मनुष्यो के अनुकूल और प्रतिकूल परिणाम विना किसी कल्पना के ही आने वाले होते है।[२] यही कारण है कि नाटक के अन्त मे वही असहाय राक्षस पुनः मगध साम्राज्य के प्रधान अमात्य के पद को प्राप्त करता है।

द्वितीय अङ्क मे नाटककार ने राक्षस के राजनीतिक चरित्र को अङ्कित करने का प्रयास किया है जब कि चतुर्थ अङ्क मे वह चाणक्य की पराजय के लिए कूटनीतिक योजनाओ के निर्माण एवं चन्द्रगुप्त के ऊपर आक्रमण करने की तैयारी मे व्यग्र दिखाई पड़ता है। पञ्चम अङ्क मे चाणक्य के चक्रव्यूह मे फॅस कर मलयकेतु के सम्मुख स्वतः न किये गये अपराधो के लिए भी राक्षस अभियुक्त के रूप मे हमे दृष्टिगत होता है। छठे अङ्क मे वह अपने मित्रो एवं सहायको से दूर, उद्देश्य के प्रति सर्वथा निराश अतीत काल की स्मृतियो मे सर्वथा डूबा हुआ कुसुमपुर के एक जीर्णोद्यान मे प्रवेश करता है। किन्तु सप्तम अङ्क में राक्षस का एक नया रूप दिखाई पड़ता है। वह चन्दनदास के प्राणो की रक्षा के लिए अपने आप चाणक्य के सम्मुख उपस्थित हो जाता है। इस समय चाणक्य जो राक्षस का सर्वथा शत्रु था वह मित्र हो जाता है और चन्द्रगुप्त के प्रधान अमात्य पद को स्वीकार कर लेता है।

---

१ यात्येकतोऽस्तशिखरं पतिरोषधीनामाविष्टकृतोऽरुणपुरःसर एकतोऽर्कः।
तेजोद्वयस्य युगपद्व्यसनोदयाभ्यां लोको नियम्यत इवैष दशान्तरेषु।।
अभिज्ञानशाकुन्तलम् ४ ४

२ अहो अलक्षितत्रिपाताः पुरुषाणां समविषमदशापरिणतयो भवन्ति। मुद्रा०,पृ० १४४

राक्षस उन नन्दो का प्रधान अमात्य है जिन्हे चाणक्य ने अपने क्रोधाग्नि मे समूल जला कर चन्द्रगुप्त को मगध के राजसिंहासन पर आरूढ किया है। इसीलए स्वामिभक्त राक्षस मलयकेतु का आश्रय लेकर चन्द्रगुप्त की हत्या कर उसकी लक्ष्मी का अपहरण कर स्वर्गस्थ अपने स्वामियो के उपकार का बदला चुकाने के लिए उद्यत है। राक्षस की नन्दो के प्रति अगाध एवं अटूट भक्ति है। राक्षस की यह अनन्य भक्ति निःस्वार्थ है। नन्दवंश के समाप्त हो जाने पर भी वह अपने स्वामियो के शत्रुओ का विनाश करने मे इसलिए तत्पर है कि उसका अपना कोई स्वार्थ सिद्ध नही होने वाला है अपितु उसके मन मे केवल यही भाव है कि शत्रुओ के विनाश से हमारे स्वामी, जो अब स्वर्गगत है, प्रसन्न होगे।[1] नन्दो के विनाश से वह अत्यन्त उद्विग्न है, उसने आभूषणो का भी परित्याग कर दिया है और तब तक उन्हे न धारण करने का व्रत लिया है जब तक अपने स्वामी के शत्रुओ चाणक्य एवं चन्द्रगुप्त को नष्ट कर मलयकेतु को राजसिंहासन पर बैठा नही देता। इस रूप में नाटककार ने राक्षस मे निरतिशय भक्तिगुण के वैशिष्ट्य को चित्रित किया है। अपने स्वामियो के प्रति राक्षस की प्रगाढ़ भक्ति को देखकर ही चाणक्य कहता है- अहो राक्षसस्य नन्दवंशे निरतिशयो भक्तिगुणः। स खलु कस्मिंश्चिदपि जीवति नन्दान्वयावयवे वृषलस्य साचिव्यं ग्राहयितुं न शक्यते।[2] चाणक्य एक अन्य स्थान पर भी राक्षस की निःस्वार्थ स्वामिभक्ति की प्रशंसा करता है। यह लोक ऐवश्र्यसम्पन्न व्यक्ति की सेवा अपने प्रयोजन से करता है। उनका विपत्तियो मे भी लोग साथ इस आशा से देते है कि पुनः इसकी प्रतिष्ठा हो जायेगी। किन्तु राक्षस तो ऐसा व्यक्ति है जो स्वामियो के नष्ट हो जाने पर भी पूर्वसुकृतवशात् निःस्वार्थ भक्ति से अपने दायित्व का निर्वाह कर रहा है। ऐसे व्यक्ति संसार मे दुर्लभ होते है। इसीलिए चाणक्य राक्षस को वश मे करने के लिए प्रयत्नशील है। वह चाहता है कि राक्षस कैसे भी चन्द्रगुप्त के सचिव पद को स्वीकार कर ले।[3]

---

१ देव: स्वर्गगतोऽपि शात्रववधेनाराधित स्यात् । मुद्रा. २.५

मुद्रा० पृ. २३

३ ऐश्वर्यादनपेतमीश्वरमय लोकोऽर्थतः सेवते

शकटदास भी राक्षस की स्वामिभक्ति को पृथिवी लोक मे परम प्रमाण के रूप मे देखता है-

अक्षीणभक्ति क्षीणेऽपि नन्दे स्वाम्यर्थमुद्वहन् ।

पृथिव्यां स्वामिभक्तानां प्रमाणे परमे स्थित॥ मुद्रा. २.२२

राक्षस मे स्वामिभक्ति का सर्वोत्कृष्ट गुण तो है ही वह प्रज्ञा एवं विक्रम गुण से भी परिपूर्ण है। राक्षस शास्त्रविद्या मे निपुण है। उसमे सैन्य सञ्चालन की क्षमता है। उसकी सैन्यसञ्चालन क्षमता का परिचय इस रूप मे प्राप्त होता है कि युद्ध के समय मे नन्द राक्षस को ही महत्त्व देते थे। जहाँ युद्ध मे यह मेघ के समान नीलवर्णवाली हाथियो की सेना आक्रमण कर रही है उसको समाप्त करने के लिए उस स्थान पर राक्षस जाय, घोड़ो की सेना का भी राक्षस ही निवारण कर सकता है। पदाति सैनिको को भी राक्षस विनष्ट कर दे। ऐसी नन्दो की राक्षस से अपेक्षा होती थी।[१] यह राक्षस के पराक्रमी होने का प्रमाण है। चाणक्य राक्षस के पराक्रम को समझता था। तभी चन्द्रगुप्त के द्वारा यह पूँछने पर कि राक्षस को क्यो नही पकड़ा गया, चाणक्य कहता है कि यदि उसे हठात् पकड़ा जाता तो वह तुम्हारे बहुत से सैनिकों को मार डालता अथवा लड़ते हुए स्वयं विनष्ट हो जाता। यदि वह विनष्ट हो जाता तो तुम उस प्रकार के गुणी, पराक्रमी अमात्य से वञ्चित हो जाते।[२] नाटक के अन्त मे चाणक्य राक्षस के पराक्रम का लोहा मानता हुआ कहता है कि इसने

तं गच्छन्त्यनु ये विपत्तिषु पुनस्तत्प्रतिष्ठाशया॥
भर्तुर्ये प्रलयेऽपि पूर्वसुकृतासङ्गेन निःसङ्गया
भक्त्या कार्यधुरां वहन्ति कृतिनस्ते दुर्लभास्त्वादृशा॥
अत एवास्माक त्वत्सङ्ग्रहे यत्न। कथमसौ वृषलस्य साचिव्यग्रहणेन सानुग्रहः स्यादिति। वही१ १४, पृ० २३

[१] यत्रैषा मेघनीला चरति गजघटा राक्षसस्तत्र याया
तत् पारिप्लवाम्भः प्लुतितुरगबलं वार्यता राक्षसेन।
पत्तीनां राक्षसोऽन्तं नयतु बलमिति प्रेषयन् मह्यमाज्ञामज्ञासी----॥ मुद्रा० २.१४

[२] (क) विक्रम्य गृह्यमाणो युष्मद्बलानि बहूनि नाशयेत् स्वयं वा विनश्येत् ।
(ख) ननु वृषल वियुक्तस्तादृशेनासि पुंसा॥ -मुद्रा. ३ २५

चन्द्रगुप्त की सेना तथा मेरी मति को थका डाला।[1] राक्षस कुसुमपुरोपरोध सुनकर आवेगयुक्त हो जाता है। उसे मृत्यु से भय नही है वह सैनिको को मृत्यु का भय छोड़कर शत्रुओ की सेना पर प्रहार करने के लिए अपने साथ निकल चलने के लिए ललकारता है। वीरता मे उसे यश दिखाई पड़ता है।[2] उसे अपनी तलवार पर बहुत भरोसा है, यही उसका प्रधान शस्त्र है। अपने मित्र चन्दनदास के प्राणो की रक्षा के लिए राक्षस अकेले ही खड्ग लेकर निकल पड़ता है।[3]

राक्षस भक्ति एवं पराक्रम इन दो विशिष्ट गुणो के साथ साथ प्रज्ञावान् भी है।[4] वह कूटनीतिनिपुण एवं मेधावी है। इसीलिए जब तक वह चन्द्रगुप्त के मन्त्रित्व को नही स्वीकार करता तब तक चाणक्य नन्द वंश के विनाश को सफल मानता है वही चन्द्रगुप्त की राजलक्ष्मी की स्थिरता को स्वीकार करता है।[5] वह प्रज्ञा, विक्रम एवं भकित इन तीनो गुणो से युक्त होने के कारण ही चाणक्य एवं चन्द्रगुप्त के लिए स्पृहणीय है।[6] इसीलिए चाणक्य का राक्षस के प्राणो की रक्षा के लिए भागुरायण को स्पष्ट निर्देश है।[7]

प्रज्ञा विक्रम एवं भक्ति से युक्त राक्षस निरन्तर चन्द्रगुप्त की राज्यलक्ष्मी को अस्थिर करने की चेष्टा करता रहता है। इसीलिए आहितुण्डक की दृष्टि मे

---

१ चिरमायासिता सेना वृषलस्य मतिश्च मे।। वही ७.८

२ त्यक्त्वा मृत्युभयं प्रहर्तुमनसः शत्रोर्बले दुर्बले,
ते निर्यान्तु मया सहैकमनसो येषामभीष्ट यशः।। -मुद्रा २ १ ३

३ निस्त्रिंशोऽयं सजलजलदव्योमसङ्काशमूर्ति-
र्युद्धश्रद्धापुलकित इव प्राप्तसख्यः करेण।
सत्त्वोत्कर्षात्समरनिकषं दृष्टसार परैर्मे
मित्रस्नेहाद्विवशमधुना साहसे मां नियुङ्क्ते।। -वही ६.१९

४ प्रज्ञापुरुषकाराभ्यामुपेतः। वही पृ ९२

५ अथवा अगृहीते राक्षसे किमुत्खातं नन्दवंशस्य किं वा स्थैर्यमुत्पादितं चन्द्रगुप्तलक्ष्म्याः। वही पृ. २२

६ प्रज्ञाविक्रमभक्तयः समुदिता येषां गुणा भूतये,
ते भृत्या नृपतेः कलत्रमितरे संपत्सु चापत्सु च।। वही, १.१५

७ रक्षणीया राक्षसस्य प्राणा इत्यार्यादेशः। -वही पृ. १२२

राक्षस के उद्योग की आशङ्का से बाई भुजलता को चन्द्रगुप्त के गले मे शैथिल्यपूर्वक डाली हुई राज्यलक्ष्मी आज भी चन्द्रगुप्त का दक्षिण अङ्गो से स्पर्श नही कर रही है।[१] अर्थात् स्थिर नही हो सकी है।

राक्षस इस नाटक मे एक आदर्श मित्र के रूप मे चित्रित हुआ है। उसके मैत्रीभावना, मित्र के प्रति कर्तव्यबुद्धि के सामने राज्य भी नगण्य है। अपने मित्र के प्राणो की रक्षा के लिए अपने जीवन के महान् सिद्धान्त की भी वह तिलाञ्जलि दे देता है और चाणक्य के सम्मुख आत्मसमर्पण कर देता है। वह अपने एवं मित्र के प्राणों को एक मानता है। चन्दनदास उसका असाधारण मित्र है। चाणक्य का गुप्तचर निपुणक की दृष्टि मे वह द्वितीय हृदय है - 'द्वितीयमिव हृदयम्'[२] चाणक्य भी चन्दनदास को राक्षस का सुहृत्तम मानता है। अन्यथा राक्षस चन्दनदास के घर मे अपने परिवार को नही रखता।[३] चाणक्य को राक्षस की मैत्री भावना पर विश्वास है तभी वह कहता है कि जैसे चन्दनदास राक्षस की विपत्ति के समय अपने प्राणो की तनिक भी परवाह नहीं करता उसी प्रकार चन्दनदास की विपत्ति के समय राक्षस भी अपने प्राणो की तनिक भी परवाह नही करेगा।[४] विराधगुप्त से यह सूचना पाकर कि राक्षस के परिवार को छिपा देने के आरोप मे चन्दनदास को सपरिवार जेल में डाल दिया गया तथा उसकी सम्पूर्ण सम्पत्ति जब्त कर ली गयी राक्षस स्वतः कहता है कि यदि चन्दनदास पकड़ लिया गया है तो वस्तुतः पुत्र एवं पत्नी के साथ मुझे ही पकड़ लिया गया है।[५] राक्षस अपने मे एवं चन्दनदास मे कोई भेद नही करता। अपने मित्र की रक्षा के लिए, मैत्री-

---

१ वामां बाहुलतां निवेश्य शिथिलं कण्ठे निवृत्तानना
स्कन्धे दक्षिणया बलान्निहितयाप्यङ्के पतन्त्या मुहुः।
गाढालिङ्गनसङ्गपीडितमुखं यस्योद्यमाशङ्किनी
मौर्यस्योरसि नाधुनापि कुरुते वामेतरं श्रीः स्तनम् ॥ -मुद्रा. २.१२

२ वही पृ. ३०

३ नूनं सुहृत्तमः। न ह्यनात्मसदृशेषु राक्षसः कलत्रं न्यासीकरिष्यति। -वही पृ. ३०

४ त्यजत्यप्रियवत् प्राणान् यथा तस्यायमापदि।
तथैवास्यापदि प्राणा नूनं तस्यापि न प्रियाः। -मुद्रा. १.२४

५ ननु वक्तव्यं संयमितः सपुत्रकलत्रो राक्षसः। वही पृ. ६६

भावना को अमर बनाने के लिए जब वह आत्मसमर्पण करता है तो चन्दनदास से कहता है- स्वार्थ एवानुष्ठितः।[१] वह मित्र की रक्षा के लिए शस्त्र ग्रहण करता है अर्थात् चन्द्रगुप्त का मन्त्रित्व स्वीकार करता है। वह चाणक्य से कहता भी है- 'विष्णुगुप्त। नमः सर्वकार्यप्रतिपत्तिहेतवे सुहृत्स्नेहाय का गतिरेष प्रह्वोऽस्मि।[२] इस समय मित्र की रक्षा के लिए वह जीवन भर के संघर्ष को भूल जाता है। यह अपने मित्रो पर सर्वात्मना विश्वास करता है। मित्र पर विश्वास करने के कारण ही पञ्चम अङ्क मे शकटदास द्वारा लिखे गये कूटनीतिक पत्र को अपने द्वारा ही लिखा हुआ स्वीकार कर लेता है[३] और उसका दोष अपने ऊपर धारण कर लेता है। जब प्रमाणो से शकटदास पर शङ्का होती है तो वह स्वयं उस शङ्का का समाधान करता हुआ कहता है कि शकटदास ने सम्भवतः स्वामिभक्ति को भुला दिया है इसने अपने पुत्रो एव स्त्री के विषय मे सोचा होगा। शकटदास ने अस्थिर धनो के बारे मे ज्यादा सोचा अविनश्वर यश के विषय मे नही।[४] जहॉ चाणक्य किसी का विश्वास नहीं करता है वही राक्षस का स्वभाव है कि वह सबका विश्वास कर लेता है। यही उसके लिए घातक सिद्ध होता है। उसने अनजान एवं नवीन व्यक्तियो पर भी विश्वास करने की गलती की है। जीवसिद्धि एवं सिद्धार्थक इन दो ऐसे प्राणियो पर राक्षस ने विश्वास किया है जिसके कारण सम्पूर्ण घटनाचक्र ही बदल जाता है। प्रत्येक पर विश्वास कर लेना भी राक्षस की असफलता का एक कारण है।

राक्षस अन्धविश्वासी एवं भाग्यवादी है। यह शकुनो पर विश्वास करता है। वायी ऑख के स्पन्दन को अशुभ मानता है।[५] सर्पदर्शन राक्षस की दृष्टि मे

---

१ वही, पृ १५८

२ वही पृ. १६३

३ कुमार ! यदि शकटदासेन लिखितस्ततो मयैव लिखितः। वही पृ १३२

४ स्मृतं स्यात् पुत्रदाराणां विस्मृता स्वामिभक्तयः।
चलेष्वर्थेषु लुब्धेन न यशःस्वनपायिषु।। मुद्रा. ५ १४

५ वामाक्षिस्पन्दनं सूचयित्वा। वही, पृ ५५

अपशकुन है।[१] क्षपणक को भी वह अपशकुन का सूचक मानता है।[२] एक अन्य स्थान मे राक्षस भविष्यत्काल मे होने वाली घटना की सूचक दैवीय वाणियो पर भी विश्वास करता है।[३] राक्षस को त्योतिष पर भी विश्वास है। कुसुमपुर पर आक्रमण के लिए उसे शुभ दिन की प्रतीक्षा है। अपने विजय प्रस्थान के लिए क्षपणक से वह शुभादि पूँछता है।[४] यह भाग्यवादी है। वह चाणक्य चन्द्रगुप्त के विरुद्ध अपनी योजनाओं में जब जब असफल होता है तो दैव को इसका कारण मानकर अपने भाग्य का ही दोष स्वीकार करता है। चन्द्रगुप्त को मारने के लिए प्रयुक्त दारुवर्मा, वैद्य एवं शयनाधिकृत प्रमोदक को चाण्क्य के द्वारा मार दिये जाने की घटना सुनकर राक्षस कह पड़ता है- कथमत्रापि दैवेनोपहता वयम् ।[५] अपने पक्ष के सभी लोगों के मारे जाने का कारण वह चन्द्रगुप्त के पराक्रम को न मानकर उसकी दैवसंपद् को मानता है।[६] चन्द्रगुप्त की राज्यलक्ष्मी इसलिए स्थिर हो गयी है। कि राक्षस के सम्पूर्ण प्रयत्न दैव के द्वारा विफल कर दिये जाते हैं।[७] जब मलयकेतु राक्षस से रुष्ट हो जाता है तब भी इसका श्रेय राक्षस चाणक्य को न देकर दैव को देता है। वह कहता है- दैवं हि नन्दकुलशत्रुरसौ न विप्रः।[८] वह चन्द्रगुप्त चाणक्य को नष्ट करने में अपने आपको समर्थ मानता है किन्तु अदृश्यरूप दैव उनका कवच बन कर उपस्थित हो जाता है।[९] इस रूप में अपनी असफलता के लिए

---

१ कथं प्रथममेव सर्पदर्शनम् । वही, पृ. ५५

२ कथं प्रथममेव क्षपणकः। वही, पृ १११

३ दुरात्मा चाणक्यबटुर्जयत्वतिसंधातुं शक्यः स्यादमात्य इति वागीश्वरी वामाक्षिस्पन्दनेन प्रस्तावगता प्रतिपादयति। वही, पृ. ९९

४ भदन्त, निरुप्यतां तावदस्मत् प्रस्थानदिवसः। -मुद्रा. पृ. १११

५ मुद्रा० पृ. ६३

६ सखे पश्य दैवसम्पदं दुरात्मनश्चन्द्रगुप्तहतकस्य। वही पृ. ६४

७ प्रयत्नं नो येषां विफलयति दैवं द्विषदिव। मुद्रा० ६.६

८ वही, ६.७

९ तस्यैव बुद्धिविशिखेन भिनद्धि मर्म
वर्मीभवेद्यदि न दैवमदृश्यरूपम् । वही २ ८

वह दैव को दोषी मानकर अपने आपको मन्दभाग्य कहता है।[1] राक्षस विधि को पुरुषो के प्रयत्नो को असफल बनाने वाला मानता है- विधेर्विलसितं पुंसां प्रयत्नच्छिदः।[2]

राक्षस भी चाणक्य के समान कूटनीतिक षडयन्त्रो का सहारा लेता है। शत्रुओ के वध की उसने पूरी योजना बनायी थी, किन्तु उसमे वह चाणक्य की बुद्धिमत्ता के कारण असफल हो जाता है।

राक्षस ने कुसुमपुर मे चन्दनदास के घर पर अपने परिवार को यह सोचकर छोड़ा था कि उसकी अनुपस्थिति मे भी उसके अनुयायियो का उत्साह क्षीण नही होगा। किन्तु उसका यह निर्णय उसके अभिन्न मित्र चन्दनदास के लिए विपत्तिकारक हो जाता है। उसकी मुद्रा भी निपुणक को यही से प्राप्त होती है जो उसके पराजय का कारण बनती है। चन्द्रगुप्त को मारने के लिए विषकन्या का प्रयोग असफल हो जाता है। राक्षस के द्वारा शस्त्र एवं आदि चन्द्रगुप्त को मारने के लिए नियुक्त दारुवर्मा, वैद्य, प्रमोदक आदि उन्ही उपायो से मार दिये जाते है। अपनी असफलता का वह स्वतः उल्लेख करता है-

कन्या तस्य वधाय या विषमयी गूढं प्रयुक्ता मया
दैवात् पर्वतकस्तया स निहतो यस्तस्य राज्यार्धहृत् ।
ये शस्त्रेषु रसेषु प्रणिहितास्तैरेव ते घातिताः
मौर्यस्यैव फलन्ति पश्य विविधश्रेयांसि मन्त्रीतयः।।[3]

यहाँ उसकी निराशा की चरम स्थिति दिखायी पड़ती है। राक्षस गुप्तचर वैतालिक वेषधारी स्तनकलस के द्वारा चन्द्रगुप्त एवं चाणक्य मे भेद भी डालने का प्रयास करता है किन्तु इसमे भी उसे असफलता ही मिलती है। चाणक्य के गुप्तचर ही उसे तथा उसकी सेना को घेरे हुए है। उसने मलयकेतु

---

[1] तत्किमिदानी मन्दभाग्यः करवाणि। वही पृ १३६

[2] वही ५ २०

[3] मुद्रा २.१६

को साथ लेकर मौर्य साम्राज्य को समाप्त करने की जो योजना बनायी थी उसमे भी सफल नही हुआ क्योकि चाणक्य भागुरायण के माध्यम से मलयकेतु को उसके विरूद्ध भड़काने मे सफल हो जाता है। फलतः मलयकेतु अपने ही पक्ष के ५ म्लेच्छ राजाओ को मौत के घाट उतार देता है। इस पर राक्षस कहता है कि 'तत्कथं सुहृद्विनाशाय राक्षसश्चेष्टते न रिपुविनाशाय।'[१] राक्षस की असफलता का एक प्रधान कारण है कि उसकी योजनाएँ बड़ी है। उसको यह भी विस्मृत हो जाता है कि किस गुप्तचर को किस कार्य के लिए नियुक्त किया गया था। 'कस्मिन् प्रयोजने मयायं प्रहित इति प्रयोजनानां बाहुल्यांन्न खल्ववधारयामि।'[२] किन्तु अपने मित्र की रक्षा के लिए वह अपने आपको समर्पित कर महान् बन जाता है। राक्षस इसलिए भी महान् है क्योकि उसके सारे प्रयास निःस्वार्थ है। वह उदार है। जब मलयकेतु चाणक्य के लोगो द्वारा पकड़ लिया लाता है तो वह उसके प्राणो की इसलिए रक्षा करता है क्योकि कुछ समय तक उसके साथ रहा था।[३] नाटक के अन्त मे राक्षस राष्ट्रीय हित मे अपने वैरभाव का परित्याग कर चन्द्रगुप्त के मन्त्री के रूप मे अपने नये जीवन की शुरुआत करता है।

मुद्राराक्षस मे पात्रो के परस्पर विरोधी स्वभाव का सुस्पष्ट चित्रण प्राप्त होता है। नाटक के प्रमुख चार पात्रो मे यह प्रवृत्ति दृष्टिगत होती है। राक्षस चाणक्य का प्रतिपक्षी है तो मलयकेतु चन्द्रगुप्त का। इस रूप मे नाटककार ने पात्रो को दो दो के समूह में रखकर तुलना एवं विरोध के आधार पर उनके चरित्र को चित्रित किया है। चाणक्य एवं राक्षस दोनो अमात्य है। दोनो निःस्वार्थ है। दोनों के उद्देश्य समान है इसीलिए दोनो के चरित्र मे पर्याप्त साधर्म्य दृष्टिगत होता है किन्तु नाटककार ने दोनो के चरित्र का अङ्कन विरोध की पृष्ठभूमि मे बड़े प्रभावोत्पादक ढंग से प्रस्तुत किया है। इस वैधर्म्य का

---

१ वही पृ. १३६

२ मुद्रा. पृ. ९९

३ राजन् चन्द्रगुप्त विदितमेव ते यथा वयं मलयकेतौ कञ्चित्काल मुषितास्तत्परिरक्ष्यन्तामस्य प्राणाः। -वही पृ. १६४

निरूपण कवि ने बड़ी स्वाभाविकता के साथ किया है। इसमे कही पर भी कृत्रिमता नही आने पायी है।

साधर्म्य- चाणक्य मौर्य साम्राज्य का प्रतिष्ठापक अमात्य है, राक्षस भी नन्दो का प्रधान अमात्य है। दोनो की प्रधान स्थिति है। दोनो का उद्देश्य एक समान है। दोनो अपने-अपने साम्राज्यो की स्थिरता एवं रक्षा के लिए सन्नद्ध है। चाणक्य यदि निःस्वार्थ भाव से मौर्य साम्राज्य की स्थिरता चाहता है तो राक्षस भी चन्द्रगुप्त को समाप्त कर नन्दो के विनाश का बदला लेने मे स्वार्थरहित है। दोनो अपने उद्देश्यो की पूर्ति के लिए कूटनीतिक प्रयोगो का आश्रय लेते है। राक्षस के कूटनीतिक प्रयोगो का उत्तर चाणक्य उसी रूप मे देता है। दोनो कुशल राजनीतिज्ञ है साहसी है एवं बहुविध साधनो से सम्पन्न है। द्वितीय अङ्क के प्रारम्भ मे विशाखदत्त ने दोनो की राजनीतिपुण बुद्धि की प्रशंसा की है। जहॉ चन्द्रगुप्त चाणक्य की मति से कार्य कर रहा है वहॉ उसे अपदस्थ करने का राक्षस का प्रयास यदि निरर्थक दिखाई पड़ता है तो जहॉ राक्षस की मति से कार्य करने वाले मलयकेतु को देखकर चन्द्रगुप्त सिंहासन से च्युत हुआ ही प्रतीत हो रहा है। इसी बात को भङ्ग्यन्तर से भी कवि कहता है-

कौटिल्यधीरज्जुनिबद्धमूर्ति, मन्ये स्थिरां मौर्यनृपस्य लक्ष्मीम् ।

उपायहस्तैरपि राक्षसेन, निकृष्यमाणामिव लक्षयामि।[१]

दोनो मे यह भी साधर्म्य है कि दोनो का वैर समान है। दोनो राजाओ के विरुद्ध है।[२] नाटककार की दृष्टि मे चाणक्य एवं राक्षस दोनो सुसचिव है तथा दोनो समान रूप से बुद्धिशाली हैं। तभी इन दोनों मे परस्पर विरोध के कारण नन्दकुल की राज्यलक्ष्मी कहॉ रहेगी इसमें सन्देह है। जिस प्रकार हथिनी के लिए युद्ध करते हुए दो वन गजों के बीच मे स्थित हथिनी विजय की अनिश्चितता के कारण भयभीत होती हुई खिन्न हो रही है उसी प्रकार कूटनीतिक चालों के कारण नन्दकुल लक्ष्मी एक तरफ से दूसरी तरफ जाने में

---

१ मुद्रा. २.२

२ केवलं ते साधर्म्यं मदनुकृतेः प्रधानवैरम् । -वही ३.१२

खेद का अनुभव कर रही है। कही एक जगह स्थिर नही हो पा रही है क्योकि दोनो समान रूप से पराक्रमी एवं बुद्धिशाली है।[१]

दोनो मे यह भी साधर्म्य है कि दोनो अपने अपने उद्देश्यो की पूर्ति के लिए अविचल भाव से संलग्न है। दोनो राजनैतिक उद्देश्य को पूरा करने के लिए तुच्छ से तुच्छ या जघन्य से भी जघन्य कर्म करने से नही हिचकते। दोनो की दृष्टि मे साधन की पवित्रता का कोई मूल्य नही है। चाणक्य एवं राक्षस दोनो का लक्ष्य है कि अच्छे या बुरे किसी भी साधन से अपने उद्देश्य की पूर्ति होनी चाहिए। इस प्रकार दोनो की दृष्टि मे साध्य का ही महत्त्व है। दोनो ही राजनैतिक लक्ष्य की प्राप्ति के लिए षडयन्त्र धोखा एवं हत्या का खुलकर प्रयोग करते है तथा एक दूसरे को पराजित करने के उद्देश्य से भेदनीति का आश्रय लेते है। दोनो मे निःस्वार्थभावना अद्भुत रूप से दृष्टिगत होती है। चाणक्य नन्दो की धनलोलुपता एवं प्रजा की उपेक्षाबुद्धि के कारण उनका विनाश करता है अपने किसी स्वार्थ के लिए नही वह तो निरीह है। राक्षस भी स्वामिभक्ति के कारण चन्द्रगुप्त का विनाश कर अपने स्वामियो का बदला लेना चाहता है। इसमे उसका कोई स्वार्थ नही है। इसके बदले वह आत्मप्रतिष्ठा भी नही चाहता। इस प्रकार राजनीति मे, कूटनीतिक षडयन्त्रो के प्रयोग मे साध्य की प्राप्ति के लिए साधन की पवित्रता की चिन्ता न करने मे तथा पराक्रम एवं मेधा मे दोनो समान है। डॉ. दासगुप्त एवं डा. डे ने चाणक्य एवं राक्षस के चरित्रो मे साधर्म्य दिखाया है- Both chanakya and Raksasa are absolute politicians, both resourceful and unscrapulous, but both are unselfish and unflinchingly devoted, from different motives to their respective cause

वैधर्म्य : - चाणक्य एवं राक्षस के चरित्रो में अनेक प्रकार का साधर्म्य होने पर भी पर्याप्त वैधर्म्य परिलक्षित होता है। चाणक्य एवं राक्षस मे प्रधान अन्तर यह है कि चाणक्य पूर्णतः विचारशील व्यक्ति है, वह निर्विकार बुद्धिजीवी है जबकि राक्षस बुद्धि के स्थान पर भावुक अधिक है। वह अपने

---

१ विरुद्धयोर्भृशमिह मन्त्रिमुख्ययोर्महावने वनगजयोरिवान्तरे।
अनिश्चयाद् गजवशयेव भीतया गतागतैर्ध्रुवमिह खिद्यते श्रिया।। मुद्रा २ ३

सेवको की दुर्दशा पर रो पड़ता है। इस रूप मे उसका हृदय कोमल है। राक्षस ने कोमल सहानुभूतिपूर्ण मानवीय हृदय पाया है। मित्रो के प्रति वह उदार है। वह खुले मन से उनके प्रति व्यवहार करता है। द्वितीय अङ्क मे राक्षस अपने गुप्तचर को आसन पर बैठाता है। जबकि चाणक्य के हृदय मे कोमल भावनाओ के लिए कोई स्थान नही है। चन्द्रगुप्त तक के लिए उसके हृदय मे तनिक भी कोमलता नही। चाणक्य के लिए उद्देश्य की पूर्ति ही सब कुछ है। उसमे कठोरता कूट कूट कर भरी हुई है। वह अपने शत्रुओ के प्रति तो काल है ही पर्वतक जैसे सहयोगी को भी मरवाने मे उसे सङ्कोच नही होता। चाणक्य के अपने सहयोगी इसी कारण उससे भयभीत रहते है कि वह कार्य की असिद्धि मे अत्यन्त कठोर हो उठता है। चाणक्य दूरदर्शी है, उसकी योजनाएँ सुविचारित है। वह किसी भी कार्य को पूरी तन्मयता से करता है। वह सतत जाकरूक रहता है, जबकि राक्षस हड़बड़ी मे कार्य करता है। कार्य की व्यग्रता मे उसे अपने गुप्तचरों का ही ज्ञान नही रहता कार्य की असिद्धि मे वह पूर्ण निराश हो जाता है। चाणक्य आत्मविश्वासी है। निराशा उसके पास फटकने नहीं पाती वह अपने पुरुषार्थ एवं बुद्धि पर पूर्ण विश्वास रखता है। चाणक्य दैव पर आश्रित नही रहता। इसके विपरीत राक्षस मे आत्मविश्वास की कमी है। वह अपनी असफलता के लिए दैव को दोषी मानता है। राक्षस का सबसे बड़ा दोष था कि वह किसी पर भी विश्वास कर लेता है। यही उसकी पराजय का प्रधान कारण है। जबकि चाणक्य किसी पर विश्वास नही करता। वह अपनी गुप्त योजनाओ की किसी से मन्त्रणा नही करता। उसके गुप्तचर परस्पर यह नही जानते कि वे चाणक्य के लिए कार्य कर रहे है। इसीलिए उसकी नीतियॉ गुप्त रहती है।

चाणक्य बुद्धिवादी है इसीलिए वह शकुन अपशकुन आदि का विचार नही करता जबकि राक्षस अन्धविश्वासी है। वह शकुन आदि का विचार करता है। चाणक्य और राक्षस दोनो कूटनीतिक चाले चलते हैं। राक्षस ने चन्द्रगुप्त को पराजित करने के लिए षडयन्त्रो की योजना और उनका सञ्चालन भी किया है। किन्तु षडयन्त्र ही उसका जीवन नहीं था। यह सब वह अपने महान् कर्तव्य की भावना से प्रेरित होकर कर रहा था। इस रूप मे स्वामिभक्ति के

लिए वह परम प्रमाण है। किन्तु हृदय की कोमलता उसे लक्ष्य प्राप्ति से दूर कर देती है। इसके विपरीत चाणक्य केवल अविश्वास एवं षडयन्त्रो मे जीता है। समस्त योजनाओ का वह स्वयं नियन्ता है। जहॉ तक युद्ध कौशल का सम्बन्ध है चाणक्य उससे शून्य है इसीलिए वह युद्ध से बचता है वह कूटनीति से राक्षस को वश मे करके चन्द्रगुप्त की राज्यलक्ष्मी को स्थिर करना चाहता है जबकि राक्षस मे युद्ध कौशल कूट-कूट कर भरा हुआ है। वह संग्राम मे सैन्यशक्ति का सञ्चालन स्वतः करता है। यदि चाणक्य को अपनी बुद्धि पर भरोसा है तो राक्षस को अपनी तलवार पर। चाणक्य बुद्धि प्रधान है तो राक्षस पराक्रम प्रधान। किन्तु परिस्थितियॉ चाणक्य के नियन्त्रण मे बनी रहती है। राक्षस की पराजय मलयकेतु की विवेकशून्यता के कारण होती है। चाणक्य सतत जागरूक रहता है।[१] राक्षस के द्वारा प्रयुक्त भेद को वह तुरन्त भॉप लेता है। राक्षस मे मैत्रीभाव की प्रधानता थी जिसके कारण चन्दनदास को छुड़ाने के लिए उसने आत्मसमर्पण कर दिया। चाणक्य ने साम, दान, दण्ड एवं भेद इन सभी उपायो का प्रयोग किया है किन्तु राक्षस दण्डविधान से दूर ही रहता है। नाटककार ने राक्षस के चरित्र मे प्रतिनायक होने पर भी ऐसी अलौकिकता उपस्थित की है कि सहृदय सामाजिक उसके प्रति सहानुभूति के भाव से भर जाते है। राक्षस बुद्धि के साथ पराक्रम सम्पन्न है तथा कोमल हृदय को धारण करता है। जबकि नाटक मे चाणक्य एक बुद्धिप्रधान शुष्कव्यक्तित्वसम्पन्न चरित्र के रूप मे चित्रित हुआ है जिससे सामाजिकों के हृदय मे कोई सहानुभूति नही उपजती। इस प्रकार एक ही राजनीतिक धरातल पर स्थिर होकर कार्य करने वाले इन दोनो राजनीतिज्ञों मे महान् अन्तर परिलक्षित होता है। चाणक्य स्वतः राक्षस को सम्बोधित कर कहता है तुममे और मुझमे महान् अन्तर है।[२] राक्षस मे अनेक गुणो के विद्यमान होने पर भी चाणक्य बुद्धिमत्ता मे अद्वितीय है। इसीलिए राक्षस के

---

[१] (क) दुरात्मन् राक्षस दृश्यसे भोः। जागर्ति खलु कौटिल्यः। मुद्रा. पृ. ८७
(ख) गुरवो जाग्रति कार्यजागरूकाः।। वही ७.११

[२] चाणक्यस्त्वमपि च नैव। मुद्रा. ३.१२

समस्त षडयन्त्रो को विफल करने मे वह समर्थ हो जाता है तथा अन्त मे राक्षस अपनी नीतिगत पराजय स्वीकार कर लेता है।

डॉ. दासगुप्त और डा. डे ने चाणक्य एवं राक्षस के चरित्रो मे वैधर्म्य को लक्षित किया है -

"Chanakya ıs clear-headed, self-confident and vıgılant, whıle Raksasa ıs Saft ımpulsıve and blunderıng, the one ıs secretıve dıstrustful and unsparıng, whıle the other ıs frank, amıable and generous, the one ıs feared, whıle the other ıs loved by hıs frıends and followers, the hard glıtter of the one shows off the plıable gentleness of the other It ıs precısely Raksasa's noble qualıtıes whıch prompt Chanakya to go the length of elaborate schemes to wın hım over, and ıt ıs precısely these noble qualıtıes whıch lead ultımately to hıs downfall He ıs made a vıctım of hıs own vırtues, and the pathos of the sıtuatıon lıes not ıs an unequal fıght so much as ıs the softer features of hıs character Raksasa ıs, of course, also gıven to ıntrıgue, but he does not lıve and breathe ın ıntrıgue as Chanakya does "[1]

प्रो० एम०आर० काले ने भी दोनो के वैधर्म्य को प्रदर्शित करते हुए लिखा है-

"Chanakya ıs represented as a clear-sıghted sttesman of sound judgement, never errıng ın hıs estımate of men or selectıon of proper agents He ıs fırm of resolve and coolheaded and resourceful even under tryıng cırcumstances By hıs foresıght he not only frustrated the plans of hıs enemıes, but by hıs wısdom and vıgılance turned them to hıs advantage Raksasa on the other hand, ıs represented as a better soldıer than a polıtıcıan, blunderıng ın hıs schemes and not a proper

---

१ A H S L , Page- 268

judge of means or the characters of men He is too noble-hearted is distrust any one about him "[1]

डॉ० विल्सन चाणक्य और राक्षस के चरित्र की तुलना करते हुए लिखते है-

"Chanakya has to fulfil a vow, but that accomplished, relinquishes rank and power, and raksasa, whilst he persues chandragupta with hostility, seeks only to revenge the death of his former sovereign without the thought of acquiring fortune of dignity for himself "[2]

चन्द्रगुप्त -चन्द्रगुप्तमौर्य सम्राट् है। नन्दो के विनाश के अनन्तर चाणक्य ने इसे मगध साम्राज्य के सिंहासन पर आरूढ़ किया है। वह सार्वभौम शासक है, व्यक्तमानावलेप है। किन्तु मुद्राराक्षस मे वह नायकत्व को नही प्राप्त कर पाता। क्योकि आचार्य चाणक्य ने उसकी समस्त चेष्टाओ के विस्तार को नियन्त्रित कर रखा है। इसीलिए मौर्य सम्राट का जैसा चरित्र होना चाहिए उस रूप मे चन्द्रगुप्त के चरित्र का विकास नही हो पाता। चन्द्रगुप्त नाटक मे चाणक्य के हाथो की कठपुतली है। चाणक्य के द्वारा यद्यपि उसकी मति परिगृहीत है किन्तु चाणक्य उसे सार्वभौम सम्राट के रूप में प्रतिष्ठित करना चाहता है। चन्द्रगुप्त मे वीरता का गुण है तभी उसे इस बात का खेद है कि नन्दो को पराजित करने मे तथा राक्षस एवं मलयकेतु को वश मे करने मे उसे अपने पराक्रम को प्रदर्शित करने का अवसर नही मिलता। केवल चाणक्य के बुद्धिकौशल से ही उसे शत्रुओ पर विजय मिल जाती है। सप्तम अङ्क मे इस खेद को व्यक्त करता हुआ वह कहता भी है कि- विनैव युद्धादार्येण जितं दुर्जयं परबलमिति लज्जित एवास्मि। मम हि-

फलयोगमवाप्य सायकानां विधियोगेन विपक्षतां गतानां

---

१ The Mudraraksasa, page-xxxi-xxxii

२ Ibid page-xxxi

न शुचेव भवत्यधोमुखानां निजतूणीशयनव्रतं प्रतुष्ट्यै।।[1]

वस्तुतः नाटककार की दृष्टि मे चाणक्य नाटक का नायक है। वह उसी को सर्वात्मना प्रधानभावेन लोक के समक्ष उपस्थापित करना चाहता है। इसीलिए चन्द्रगुप्त आदि अन्य पात्रो का चरित्र उस रूप मे विकसित नही हो सका जैसा एक सम्राट् का चरित्र होता है।

चन्द्रगुप्त मुद्राराक्षस के केवल तृतीय एवं सप्तम इन्ही दो अङ्को मे रङ्गमञ्च पर उपस्थित होता है। तृतीय अङ्क मे उसका प्राधान्येन निरूपण हुआ है, जब कि सप्तम अङ्क मे वह केवल नाटक के पटाक्षेप के समय ही उपस्थित होता है भले ही चन्द्रगुप्त थोड़ी देर के लिए रङ्गमञ्च पर उपस्थित होता है किन्तु वह सामाजिको पर अपने व्यक्तित्व की अमिट छाप छोड़ जाता है।

नाटक मे चन्द्रगुप्त का एक योग्य एवं विचारशील शासक के रूप मे चित्रण किया गया है। उसके विचार प्रौढ़ है तथा उसमें युवावस्था का अदम्य उत्साह है। वह मनस्वी है, राज्य के भार को वह न करने के लिए तत्पर है।[2] वह राज्यकार्य के सञ्चालन मे तत्पर है इस कार्य मे उसे दुःख का अनुभव नहीं होता। वह लोक व्यवहार को ठीक से पहचानता है।[3] उसके राज्य मे छल के लिए कोई अवकाश नही है। चन्द्रगुप्त अपने विरोधियो के प्रति अत्यन्त कठोर है। चाणक्य चन्दनदास को भयभीत करने के लिए उससे कहता है- एवमयं राजापथ्यकारिषु तीक्ष्णदण्डः।[4] वह प्रकृति से अत्यन्त प्रेम करता है। तृतीय अङ्क मे कौमुदी-महोत्सव को देखने के उद्देश्य से जब वह रङ्गमञ्च पर उपस्थित होता है तो प्रकृति की रमणीयता से उसका चित्त प्रसन्न हो जाता है।

---

१ मुद्रा. ७.१०

२ सुविश्रब्धैरङ्गैः पथिषु विषमेष्वप्यचलता
चिरं धुर्येणोढा गुरुरपि भुवो याऽस्य गुरुणा।
धुरं तामेवोच्चैर्नववयसि वोढुं व्यवसितो
मनस्वी दम्यत्वात् स्खलति न च दुःखं वहति च।। मुद्रा ३ ३

३ अभिज्ञ खल्वसि लोकव्यवहाराणाम् । मुद्रा० पृ० ३४

४ वही पृ० ४३

इस अवसर पर तीन श्लोको से नाटककार ने उसके प्रकृति प्रेम को अभिव्यक्त किया है। शरत्काल की शोभा से परिपूर्ण दिशाओ का वर्णन करते हुए वह कहता है -

शनैः श्यानीभूता· सितजलधरच्छेदपुलिना·

समन्तादाकीर्णाः कलविरुतिभिः सारसकुलैः।

चिताश्चित्राकारैर्निशि विकचनक्षत्रकुमुदै-

र्नभस्त· स्यन्दन्ते सरित इव दीर्घा दश दिशः।।[१]

जब चाणक्य ने कौमुदीमहोत्सव का प्रतिषेध कर दिया है तब वह क्रुद्ध हो जाता है जिसे देखकर कञ्चुकी भयभीत हो जाता है किन्तु उसका यह क्रोध कृत्रिम है। वह तो सर्वात्मना चाणक्य पर आश्रित है। यह सर्वत्र चाणक्य के भक्त शिष्य के रूप मे चित्रित हुआ है। वह चाणक्य का ऐसा भक्त शिष्य है कि उसके साथ कृतक-कलह से भी वह खिन्न हो जाता है तथा गुरु के प्रति किये गये अपने व्यवहार पर क्षोभ व्यक्त करता है।[२]

चन्द्रगुप्त अपने गुरु चाणक्य मे सर्वथा विश्वास करता है तथा मोह या अज्ञान के समयगुरु के अङ्कुश को अपरिहार्य मानता है। वह स्वत· कहता है-

इह विरचयन् साध्वी शिष्य· क्रियां न निवार्यते

त्यजति तु यदा मार्ग मोहात्तदा गुरुरङ्कुशः।

विनयरुचयस्तस्मात्सन्त· सदैव निरङ्कुशाः

परतरमतः स्वातन्त्र्येभ्यो वयं पराङ्मुखाः।[३]

---

१ वही ३.७

२ आर्याज्ञयैव मम लङ्घितगौरवस्य बुद्धिः प्रवेष्टुमिव भूविवरं प्रवृत्ता।
ये सत्यमेव हि गुरूनतिपातयन्तितेषां कथं नु हृदयं न भिनत्ति लज्जा।। मुद्रा. ३.३३

३ मुद्रा० ३ ६

इस प्रकार चन्द्रगुप्त अपने गुरु के नियन्त्रण मे रहना चाहता है। वह चाणक्य की सभी बातो को स्वीकार करता है। चाणक्य के निर्देशन मे उसके समस्त अभीष्टो की सिद्धि हो जाती है। इसीलिए वह अपने व्यक्तित्व के विकास के लिए गुरु के आदेशो को शिरोधार्य करता है। इसी मे वह स्वातन्त्र्य का अनुभव करता है।[१] चाणक्य का कृत्रिम क्रोध भी उसे वास्तविक सा प्रतीत होने लगता है। वह डरकर कहता है अये, कथं सत्यमेव आर्यः कुपित।[२] चन्द्रगुप्त का चाणक्य पर अटूट विश्वास है तभी वह राक्षस द्वारा प्रयुक्त स्तनकलश जैसे किसी गुप्तचर द्वारा ठगा नही जाता। यह पूर्णतः चाणक्य के संरक्षण मे कार्य करता है। इस रूप मे चन्द्रगुप्त सचिवायत्तसिद्धि है इसीलिए वह स्वतन्त्र रूप से कोई भी निर्णय नही लेता। राक्षस एवं चाणक्य दोनो उसे सचिवायत्तसिद्धि कहते है।[३] राक्षस उसे अदृष्ट लोक व्यवहार मन्दधी मानता है-

नृपोऽपकृष्टः सचिवात्तदर्पणः स्तनन्धयोऽत्यन्तशिशुः स्तनादिव।

अदृष्टलोकव्यवहारमन्दधीर्मुहूर्तमप्युत्सहते न वर्तितुम् ।।[४]

चन्द्रगुप्त वस्तुतः पूरी तरह चाणक्य पर आश्रित है। राज्यतन्त्र का सम्पूर्ण भार चारणक्य पर छोड़कर वह स्वतः निश्चिन्त हो गया है। चाणक्य स्वतः इस बात का अनुभव करता है कि मेरे द्वारा प्रयुक्त भागुरायण, इन्द्रशर्मा आदि अपना अपना कार्य कर रहे है केवल चन्द्रगुप्त राज्य का सम्पूर्ण कार्यभार मेरे ऊपर छोड़कर निश्चिन्त है।[५] ऐसा इसलिए सम्भव हुआ है क्योकि उसे चाणक्य पर पूरा विश्वास है तथा चाणक्य कोई सामान्य व्यक्ति नही है वह सतत जागरूक है। कूटनीति की साक्षान्मूर्ति है ऐसे मे वह क्यो न

---

१ शश्वदार्योपदेशसंस्क्रियमाणमतय सदैव स्वतन्त्रा वयम् । वही, पृ० ७६

२ वही पृ० ९५

३ (क) चन्द्रगुप्तस्तु दुरात्मा नित्यं सचिवायत्तसिद्धावेव स्थित.। मुद्रा० पृ० १०९
(ख) सचिवायत्तसिद्धेस्तव किं प्रयोजनान्वेषणेन। वही, पृ० ८५

४ वही ४.१४

५ वृषल एव केवलं प्रधानप्रकृतिष्वस्मास्वारोपितराज्यतन्त्रभार सततमुदास्ते। वही, पृ० २५

निश्चिन्त होकर राज्य का भोग करे? स्वत: चन्द्रगुप्त इसी अभिप्राय को अधोलिखित दो श्लोको मे व्यक्त करता है-

जगत: किं न विजितं मयेति प्रविचिन्त्यताम् ।

गुरौ षाड्गुण्यचिन्तायामार्ये चार्ये च जाग्रति।।

विगुणीकृतकार्मुकोऽपि जेतुं भुवि जेतव्यमसौ समर्थ एव।

स्वपतोऽपि ममेव यस्य तन्त्रे गुरवो जाग्रति कार्यजागरूका:।[१]

सतत जागरूक गुरु पर आश्रित होने पर भी चन्द्रगुप्त पराक्रमी है। वह नन्दो के समान धन के प्रति लुब्ध नही है अपितु प्रजा का अपरिक्लेश, उसका अनुरञ्जन ही उसका लक्ष्य है। चाणक्य की दृष्टि मे वह राजराजेश्वर है इसी अर्थ मे चाणक्य उसे वृषल कह कर पुकारता है। मगध के राजसिंहासन को उसके अनुरूप राजा चन्द्रगुप्त से युक्त देखकर चाणक्य के हृदय मे प्रसन्नता का भाव उत्पन्न हो रहा है।[२] इसी समय चाणक्य चाहता है कि देश के सभी स्थानो के राजा लोग आकर चन्द्रगुप्त के सामने नतमस्तक हो।[३] इसके लिए चन्द्रगुप्त विनम्रतापूर्वक आचार्य के प्रसाद को कारण मानता है वस्तुत: यदि चन्द्रगुप्त मे सम्राट के लिए धैर्य, पराक्रम, कृतज्ञता आदि अपेक्षित गुण नही होते तो चाणक्य नन्दो के विनाश के लिए उसका आश्रय क्यो लेता? विरोधी खेमे मे होने के कारण राक्षस भले ही उसे अदृष्टलोकव्यवहारधी मानता हो किन्तु उसके अनुसार चन्द्रगुप्त लोकाधिक तेज को धारण करने वाला पृथिवीपति है।[४] सातवे अङ्क में भी वह स्वीकार करता है कि बाल्यकाल मे ही चन्द्रगुप्त में राजा के स्पष्ट लक्षण विद्यमान थे

---

१ मुद्रा० ७.१३ एवं ७.११

२ नन्दैर्वियुक्तमनपेक्षितराजराजैरध्यासितं च वृषलेन वृषेण राज्ञाम् ।
सिंहासनं सदृशपार्थिवसंगतं च प्रीतिं परा प्रगुणयन्ति गुणा ममैते।। वही ३.१८

३ वही ३.१९

४ किं नु लोकाधिकं तेजो बिभ्राण: पृथिवीपति:। वही ४.१०

इसीलिए यह क्रमशः राज्य मे आरुढ़ होगया अर्थात् उसकी राज्यलक्ष्मी स्थिर हो गयी।[१]

राक्षस उसके पराक्रम के गुणको पहचानता है। सातवे अङ्क मे यह स्पष्ट रूप से कहता है चाणक्य को विजय का यश इसीलिए मिला कि उसने जिसका आश्रय लिया वह द्रव्य अर्थात् भव्य है तथा जिगीषु अर्थात् जय के प्रति उद्योगशील है - द्रव्यं जिगीषुमधिगम्य जडात्मनोऽपि नेतुर्यशस्विनि पदे नियतं प्रतिष्ठा।[२]

चन्द्रगुप्त राजधर्म का ठीक से पालन करता है तभी राजधर्म के पालन मे होने वाले कष्टो से वह परिचित है-

राज्यं हि नाम राजधर्मानुवृत्तिपरस्य नृपतेर्महदप्रीतिस्थानम्। कुतः -

परार्थानुष्ठाने रहयति नृपं स्वार्थपरता

परित्यक्तस्वार्थो नियतमयथार्थः क्षितिपतिः।

परार्थश्चेत्स्वार्थादभिमततरो हन्त परवान्

परायत्तः प्रीतेः कथमिव रसं वेत्ति पुरुषः।[३]

चन्द्रगुप्तराज्यलक्ष्मी को दुराराध्य मानता है- क्योकि वह तीक्ष्ण से उद्वेग करती है, कोमलहृदय के पास परिभवभयात् नही जाती, मूर्खो से द्वेष करती है अत्यन्त विद्वानो के पास भी नही जाती अधिक पराक्रमी राजा से डरती है भीरु राजाओ का उपहास करती है।[४] अतः इसके पालन मे बहुत सावधानी चाहिए।

---

१ बाल एव हि लोकेऽस्मिन् सम्भावितमहोदयः।
क्रमेणारूढवान् राज्यं यूथैश्वर्यमिव द्विपः।। वही ७.१२

२ मुद्रा० ७.१४

३ वही ३.४

४ दुराराध्या हि राज्यलक्ष्मीरात्मवद्भिरपि राजभिः। कुतः-
तीक्ष्णादुद्विजते मृदौ परिभवत्रासान्न सन्तिष्ठते
मूर्खान् द्वेष्टि न गच्छति प्रणयितामत्यन्तविद्वत्स्वपि।

इस प्रकार चन्द्रगुप्त एक पराक्रमी सम्राट होते हुए भी अपनी प्रभुशक्ति को अपने प्रधानमन्त्री की मन्त्रशक्ति की संरक्षकता मे छोड़ देता है। नाटक मे चाणक्य के प्रति उसकी अगाध श्रद्धा, भक्ति एवं विश्वास अभिव्यक्त हुए है। वह प्रजानुरञ्जन को पर्याप्त महत्त्व देता है उसके मत मे राज्य सुखभोग का साधन नही है अपितु उसका ठीक से अनुपालन करना कष्टकर है। नाटक के अन्त मे चाणक्य के प्रयास में वह राक्षस जैसे मेधासम्पन्न वीर सचिव को प्राप्त कर अपने साम्राज्य को स्थिर करने मे सफल हो जाता है।

मलयकेतु - मलयकेतु पर्वतक का पुत्र है। चाणक्य द्वारा विषकन्या के प्रयोग से अपने पिता की हत्या से वह क्षुब्ध है तथा अपने शत्रुओ की हत्या कर अपने पिता की हत्या का बदला लेने के लिए सन्नद्ध है। इसीलिए चाणक्य-चन्द्रगुप्त के विरुद्ध आक्रमण के लिए तत्पर राक्षस से उसकी सन्धि हो जाती है। राक्षस मलयकेतु के सैन्यबल एवं पराक्रम का आश्रय लेकर नन्दो के विनाश का बदला लेना चाहता है तथा चन्द्रगुप्त को मगध के राजसिंहासन से च्युतकर मलयकेतु को उस पर अधिष्ठित करना चाहता है। चन्द्रगुप्त-चाणक्य से दोनो क्षुब्ध है। राक्षस इसलिए क्षुब्ध है कि इन्होने उसके स्वामियो की हत्या की है, मलयकेतु इसलिए क्षुब्ध है कि चाणक्य ने उसके पिताकी हत्या करा दी है। इसीलिए दोनो कुसुमपुर पर आक्रमण करने की योजना बनाते है। मलयकेतु राजपुत्र है। यह पराक्रमी युवराज है यह विजिगीषु भी है। यह जल्दी से जल्दी पाटलिपुत्र पर आक्रमण करके अपने पिता की मृत्यु का बदला लेना चाहता है।

उसके पिता को मरे हुए १० माह बीत गये है और आजतक वह अपने पिता की हत्या करने वाले शत्रुओ से बदला नही ले सका है। इस बात का उसे खेद है- अद्य दशमो मासस्तस्योपरतस्य न चास्माभिर्वृथा पुरुषाभिमानमुद्वहद्भिस्तमुद्दिश्य तोयाञ्जलिरप्यावर्जितः।[1] युद्ध मे शत्रुओ को मारकर वह वीर पुरुषोचित कर्म करना चाहता है। प्रतिपक्षी के नाश के लिए

शूरेभ्योऽभ्यधिकं बिभेत्युपहसत्येकान्तभीरूनहो
श्रीर्लब्धप्रसरेव वेशवनिता दुःखोपचर्या भृशम् । मुद्रा० ३.५
मुद्रा० पृ० १००

उसका युद्ध मे विश्वास है उसकी सेना भी उत्कृष्ट है। वह शोण नद को पार कर कुसुमपुर को सद्यः रौद डालना चाहता है।[१] शात्रुओ का नाश वह जल्दी करना चाहता है मलयकेतु का विचार है कि शत्रु-व्यसन की प्रतीक्षा मे ही राक्षस बहुमूल्य समय को विनष्ट कर रहा है वह राक्षस से पूॅछता है। कितने समय तक तैयार सेनाओ के साथ शत्रु के व्यसन की प्रतीक्षा करते हुए हक मे शान्त ठहरना है।[२] वह पराक्रमी एवं पुरुषार्थी है। अपने शत्रुओ से युद्ध करते हुए मारे जाने से वह नही डरता। उसका संकल्प है कि पिता को मारकर शत्रुओ ने उसकी मॉ को जो शोक एवं पीड़ा दी है वही शोक एवं पीड़ा वह शत्रुओ को मारकर शत्रु स्त्रियो को देना चाहता है। ऐसा करके ही वह अपने पिता का श्राद्धतर्पण करना चाहता है।[३] राक्षस भी उसकी सेना को उत्कृष्ट मानता है तथा उसे आक्रमणकारी के रूप मे देखता है।[४] उसे विलम्ब असह्य हो रहा है।[५] वह युद्ध के लिए हमेशा सन्नद्ध रहता है यह देखकर अन्य भूमिपाल उसकी आज्ञा का उल्लङ्घन करने का साहस नही जुटा पाते।[६] मलयकेतु क्रोधी प्रकृति का है। वह कुलूतदेशाधिपति चित्रवर्मा, मलयनरपति सिंहनाद, कश्मीरदेशाधिपति पुष्कराक्ष, सिन्धुराज सुषेण तथा पारसीकाधिराज मेघनाद ये पॉचो मेरे विरुद्ध चन्द्रगुप्त के साथ है ऐसा सोचकर सभी को

---

१ (क) शोणं सिन्दूरशोणा मम गज पतयः पास्यन्ति शतशः। वही ४.१६
(ख) रुन्धन्तु वारणघटा नगरं मदीयाः। वही ४.१७

२ तत्कियन्तं कालमस्माभिरेवं संभृतबलैरपि शत्रुव्यसनमुदीक्षमाणैरुदासितव्यम् । वही पृ० १०७

३ (क) उद्यच्छता धुरमकपुरुषानुरूपां गन्तव्यमाजनिधनेन पितुः पथा वा।
आच्छिद्य वा स्वजननीजनलोचनेभ्यो नेयो मया रिपुवधूनयनानि बाष्पः।। वही ४.६
(ख) तादृङ्मातृजनस्य शोकजनितं सम्प्रत्यवस्थान्तरं।
शत्रुस्त्रीषु मया विधाय गुरवे देयो निवापाञ्जलिः।। मुद्रा० ४ ५

४ त्वय्युत्कृष्टबलेऽभियोक्तरि। मुद्रा० पृ० ११०

५ यद्येवमभियोगकालमार्य पश्यति ततः किमास्यते। वही, पृ० ११०

६ मर्यादां भूमिपाला जलधय इव ते देव नोल्लङ्घयन्ति। वही ४ ७

मरवा देता है।[१] राक्षस को भी अपने विरुद्ध समझकर अकेले ही चन्द्रगुप्त, चाणक्य एवं राक्षस इन तीनो को पराजित करने का साहस दिखाता हुआ कहता है -

विष्णुगुप्तं च मौर्यं च सममप्यागतौ त्वया।

उन्मूलयितुमीशोऽहं त्रिवर्गमिव दुर्नय।[२]

इस रूप मे नाटक मे यद्यपि मलयकेतु पराक्रमी एवं विजिगीषु के रूप मे चित्रित हुआ है किन्तु उसकी पराजय का कारण उसकी विवेकशून्यता है। वह राजनीति के ज्ञान से सर्वथा शून्य है। उसमे अविवेकिता एवं असमीक्ष्यकारिता कूट-कूट कर भरी है। इसीलिए वह चाणक्य की भेदनीति का शिकार होकर अपने ही लोगो पर अविश्वास करने लगता है। अपने पक्ष के ही लोगो को, अपने सुहृद्वर्ग को मौत के घाट उतरवा देता है। उसमे अपने पक्षधरो और प्रतिपक्षियो को पहचानने की सामर्थ्य नही है। जो उसका परम हितैषी है, जो उसे राजाधिराज बनाना चाहता है ऐसे राक्षस को ही अपना प्रतिपक्षी मान बैठता है और भागुरायण, क्षपणक, सिद्धार्थक आदि जो उसके निग्रह के लिए लगाए गये प्रतिपक्षी है उन्हे अपना हितैषी मानने लगता है। वह विवेकशून्य उद्धत एवं अशान्त प्रकृति का है। वह हृदय से गम्भीर भी नही है। पञ्चम अङ्क मे मलयकेतु पीछे से जाकर भागुरायण की ऑखो को बन्द करने का उपहासास्पद कार्य करता है।[३] भागुरायण उसके अधीन कार्य करने वाला व्यक्ति है फिर भी वह उसको अनुचित महत्त्व देता है यह उसकी मूर्खता का द्योतक है। इसी प्रकार जब राक्षस शकदास के साथ पूर्वकालिक घटनाओ और भविष्य की योजनाओं पर विचार-विमर्श कर रहा था तो मलयकेतु के साथ भागुरायण उनकी बात को छिपकर सुनता है। यह उसके स्वभावगत दोष का उदाहरण है। पूरे समय वह भागुरायण के हाथों की

---

१ वही, पृ० १३५-१३६

२ वही, ५.२२

३ विजये मुहूर्तमसञ्चारा भव यावदस्य पराङ्मुखस्यैव पाणिभ्यां नयने पिदधामि। मुद्रा० पृ० ११९

कठपुतली बना रहता है। राक्षस की योजना का अर्थ भागुरायण उसे विपरीत रूप मे समझता है और वह उसे ही धारण कर लेता है। अपने विवेक का प्रयोग नही करता। भागुरायण उसे यह समझाने मे सफल हो जाता है कि चन्द्रगुप्त से चाणक्य अलग हो गया है जिससे राक्षस ने चन्द्रगुप्त से सन्धि कर ली है। क्यो कि राक्षस का वैर चाणक्य से है चन्द्रगुप्त तो उसके स्वामी का पुत्र है। मलयकेतु का चित्त स्थिर नही रह पाता वह गलत तथ्यो पर भी विश्वास कर दिग्भ्रान्त हो जाता है। इसीलिए भागुरायण द्वारा चन्द्रगुप्त राक्षस-मैत्री के विषय मे उसे भ्रान्ति है कि राक्षस चन्द्रगुप्त मौर्य के साथ सन्धिकर लेगा अथवा मेरे प्रति विश्वास युक्त रहेगा।[१] इस प्रकार गलत तथ्य प्रस्तुत कर भागुरायण द्वारा वह राक्षस का शत्रु बना दिया जाता है। ऐसे राक्षस का जो रातदिन मलयकेतु के हित की चिन्ता करता है। राक्षस मलयकेतु से जब यह कहता है कि अब चन्द्रगुप्त पर आक्रमण किया जा सकता है, क्यो कि चन्द्रगुप्त सचिवायत्तसिद्धि है तथा चाणक्य चन्द्रगुप्त से अलग हो गया है अतः सचिवायत्तसिद्धि चन्द्रगुप्त को पराजित करना आसान है तो उस पर उचित प्रतिक्रिया न व्यक्तकर अपने मन मे सोचता है कि अच्छा है कि मै सचिवायत्तसिद्धि नही हूँ और राक्षस पर सन्देह करता हुआ उससे तमाम तरह के प्रश्न पूँछने लगता है। अपने आपको सचिवायत्तसिद्धि न मानकर वह सन्तोष एवं गर्व का अनुभव कर रहा है किन्तु यही उसकी सबसे बड़ी मूखर्ता है। यही मूर्खता उसके पराजयका कारण बनती है। राक्षसपर अविश्वास के कारण वह भागुरायण की हर बात को अक्षरशः स्वीकार कर लेता है। शकटदास द्वारा लिखित पत्र जब सिद्धार्थक के पास से मिलता है तब मलयकेतु भागुरायण की इस बात को स्वीकार कर लेता है शकटदास के अन्य हस्तलेख को लाकर उससे यह पत्र के अक्षरों को मिलाया जाय। यदि शकटदास को बुलाकर स्पष्टीकरण किया जाता तो सम्भवतः हस्तलेख का

---

१ भक्त्या नन्दकुलानुरागदृढता नन्दान्वयालम्बिना।
किं चाणक्यनिराकृतेन कृतिना मौर्येण सन्धास्यते।
स्थैर्य भक्तिगुणस्य वाधिगणयन् किं सत्यसन्धो भवे-
दित्यारूढकुलालचक्रमिव मे चेतश्चिरं भ्राम्यति। मुद्रा० ५ ५

रहस्य प्रकट हो जाता तथा चाणक्य की भेदनीति का भेद भी खुल जाता किन्तु मलयकेतु मे इतना विवेक कहाँ था। मलयकेतु की विवेकशून्यता उस समय अपने चरम पर पहुँच जाती है जब राक्षस पर पर्वतक को मरवाने के आरोप को वह सत्य मान लेता है। उसे क्षपणक की यह बात सत्य लगती है कि चाणक्य तो विषकन्या का नाम भी नही जानता तथा पर्वतक को विषकन्या के प्रयोग से मरवाने वाला तो राक्षस है। राक्षस ने पर्वतक की हत्या करायी भी है कि नही इस पर विना विचार किए मलयकेतु राक्षस को अन्वर्थतः राक्षस कहने लगता है।[१]

वह चाणक्य के गुप्तचरो के बॅहकावे मे आकर राक्षस को क्रूर भी कहता है और आरोप लगाता है कि तुम मुझे ही नष्ट करने मे तत्पर हो। अन्त मे मलयकेतु राक्षस के विरुद्ध अपने आक्रोश को इस रूप मे व्यक्त करता है-

कन्यां तीव्रविषप्रयोगविषमां कृत्वा कृतघ्न त्वया

विश्रम्भप्रवणः पुरा मम पिता नीतः कथाशेषताम् ।

सम्प्रत्याहितगौरवेण भवता मन्त्राधिकारे रिपौ

प्रारब्धाः प्रलयाय मांसवदहो विक्रेतुमेते वयम् ।।[२]

वह मलयकेतु जो पराक्रमी था, उत्साही था उत्कृष्ट सेनावाला था तथा जिसे राक्षस के रूपमे वीर एवं बुद्धिमान् एकनिष्ठ सहायक मिला था अपने अविवेक के कारण, अस्थिर स्वभाव के कारण शत्रुओ द्वारा पराजय का मुख देखता है। राक्षस भी उसकी विवेकशून्यता के लिए पश्चात्ताप करता है[३] तथा

---

१ मित्रं ममेदमिति निर्वृतचित्तवृत्तिं विश्रम्भतस्त्वयि निवेशितसर्वकार्यम् ।
तातं निपात्य सह बन्धुजनाश्रुतोयै रन्वर्थतोऽपि ननु राक्षस राक्षसोऽसि। मुद्रा०
५.७

२ वही ५ २१

३ यो नष्टानपि जीवनाशमधुना शुश्रूषते स्वामिन-
स्तेषां वैरिभिरक्षतः कथमसौ सन्धास्यते राक्षसः?
इत्थं वस्तुविवेकमूढमतिना म्लेच्छेन नालोचितं

अपनी असफला के लिए अद्रव्य अर्थात् अयोग्य मलयकेतु को दोषी मानता है।[१]

इस प्रकार नाटक मे मलयकेतु उद्धत, अशान्त विवेकहीन एवं असमीक्ष्यकारी रूप मे चित्रित हुआ है। पराक्रमी होता हुआ भी राजनीति मे शून्य है। विवेकहीन होने के कारण वह स्वपक्ष एवं परपक्ष के ज्ञान मे असमर्थ है। स्वतः अनजाने मे ही वह अपनी तुलना दुर्नीति से कर बैठता है।

चन्द्रगुप्त एवं मलयकेतु का तुलनात्मक चरित्र - जिस प्रकार चाणक्य के राक्षस एक दूसरे के विरुद्ध खड़े है उसी प्रकार चन्द्रगुप्त एवं मलयकेतु। नाटककार ने इन दोनो के चरित्रो के वैधर्म्य को स्पष्ट करने का प्रयास किया है। चन्द्रगुप्त एवं मलयकेतु दोनो राजा हैं। चन्द्रगुप्त को मौर्यसाम्राज्य की स्थापना का, नव राज्य की स्थापना का श्रेय है तो मलयकेतु भी पर्वतीय राजा पर्वतक का पुत्र है। चन्द्र गुप्त का सहयोगी चाणक्य है। तो मलयकेतु का सहयोगी राक्षस। चाणक्य चन्द्रगुप्त की राज्यलक्ष्मी की स्थिरता के लिए चन्द्रगुप्त का सहयोग कर रहा है तो राक्षस उसको अपदस्थ कर मलयकेतु को राजाधिराज बनाना चाह रहा है। इस स्थिति मे चन्द्रगुप्त एवं मलयकेतु दोनो अपनी सिद्धि के लिए क्रमशः चाणक्य एवं राक्षस पर आश्रित है। किन्तु चन्द्रगुप्त एवं मलयकेतु में एक मौलिक अन्तर है वह यह कि चन्द्रगुप्त चाणक्य पर सर्वात्मना विश्वास करता है और एक तरह से उसके हाथो की कठपुतली बना हुआ है। इसके विपरीत मलयकेतु राक्षस पर सर्वात्मना विश्वास नही करता है। उसे इस बात का मिथ्या अभिमान भी है कि मै सचिवायत्तसिद्धि नही हूँ। मेरा अपना स्वतन्त्र अस्तित्व भी है जहाँ चाणक्य के प्रति चन्द्रगुप्त की आस्था को कोई डिगा नही सकता वही मलयकेतु का विश्वास भागुरायण आदिके द्वारा विपरीत भाव मे ला दिया जाता है परिणामस्वरूप वह अपने हितचिन्तको पर अविश्वास करता है तथा परपक्ष के लोगो पर विश्वास, जिस कारण से उसकी पराजय होती है। चन्द्रगुप्त के हृदय

दैवेनोपहतस्य बुद्धिरथवा सर्वा विपर्यस्यति।। वही ६.८

१ अद्रव्यमेत्य तु विशुद्धनयोऽपि मन्त्री
शीर्णाश्रयः पतति कूलजवृक्षवृत्त्या।। वही, ७.१४

मे चाणक्य के प्रति दृढ़ श्रद्धा एवं भक्ति विद्यमान है, वह चाणक्य के साथ कृतक कलह को भी महान् पातक मानता है जब कि मलयकेतु भागुरायण एव क्षपणक के वहकावे मे आकर राक्षस को अपमानित करता है। चन्द्रगुप्त मन्त्रशक्ति के महत्त्व को समझता है जब कि मलयकेतु प्रभुशक्ति को सर्वोपरि मानता है। नाटक मे चन्द्रगुप्त का चरित्र गुरुभक्त विवेकी प्रजानुरञ्जक, शान्त एवं गम्भीर शासक के रूप मे अभिव्यक्त हुआ है जब कि मलयकेतु अविश्वासी उद्धत, अविवेकी एवं मूर्ख रूप मे चित्रित हुआ है राक्षस ने चन्द्रगुप्त एवं मलयकेतु के स्वाभाविक वैधर्म्य को बहुत सारगर्भित एवं सक्षिप्त रूप मे प्रस्तुत किया है -

द्रव्यं जिगीषुमधिगम्य जडात्मनोऽपि
नेतुर्यशस्विनि पदे नियतं प्रतिष्ठा।
अद्रव्यमेत्य भुवि शुद्धनयोऽपि मन्त्री
शीर्णाश्रयः पतति कूलजवृक्षवृत्त्या।।[१]

इस पद्य मे राक्षस चन्द्रगुप्त को द्रव्य अर्थात् योग्य कहता है तथा मलयकेतु को अद्रव्य अर्थात् अयोग्य। चन्द्रगुप्त कृतवेदी है, योग्य एवं विवेकी है जब कि मलयकेतु कृतघ्न, अयोग्य एवं अविवेकी। वह अपने हितैषी को भी नही पहचान पाता। इस प्रकार इन दोनो के चरित्र मे महान् अन्तर है।

श्री इन्द्रपाल सिंह 'इन्द्र' चन्द्रगुप्त और मलयकेतु के चरित्रों की तुलना करते हुए लिखते है- "मलयकेतु चन्द्रगुप्त का प्रतिद्वन्द्वी है, किन्तु उसका चरित्र उससे सर्वथा विपरीत है। चन्द्रगुप्त तो अपने साम्राज्य का संचालन-सूत्र चाणक्य को समर्पित करके निश्चिन्त हो जाता है, किन्तु मलयकेतु राक्षस का विश्वास नही कर पाता। उसे इस बात का असत्य अहंकार है कि वह स्वायत्तसिद्धि राजा है और उसका यह अहंकार ही उसके पतन का कारण

---

[१] मुद्रा० ७.१४

बनता है क्योकि वह अहंकारी के साथ-साथ अविवेकी भी है। उसमे विचार-शून्यता और अदूरदर्शिता पायी जाती है।"[१]

श्री एम०आर० काले ने दोनो मे वैधर्म्य प्रदर्शित करते हुए लिखा है-

Of the other two rivals chandragupta is represented as having a proper regard, nay veneration, for his Guru, while malayaketu's regard for Raksasa is very scanty, chandragupta is a very competent prince who has the good sense to put absolute confidence in the ability and diplomatic skill of his preceptor and entirely submits to his counsels malayaketu has no confidence in Raksasa, but regards him with suspicion He not only allows his faith in him to be easily shaken but actually dismisses him from his services "[2]

डॉ० दासगुप्त और डॉ० दोनो चरित्रो मे वैधर्म्य को स्पष्ट करते हुए लिखते है-

"Although they are pawns in the game, they are yet not mere puppets in the hands of the rivals statesman though low born and ambitious, the maurya is a sovereign of dignity and strength of character, well trained, capable and having entire faith in his preceptor and minister, Chanakya, but the capricious young mountaineer, moved as he is by filial love, is concited, weak and foolishly stuleborn, and has his confidence and mistrust equally misplaced "[3]

इस प्रकार हम देखते है कि यद्यपि चन्द्रगुप्त और मलयकेतु दोनो ही राजा है, नाटकस्थित अन्य पात्र चाणक्य, राक्षस, चन्द्रगुप्त तथा मलयकेतु के अतिरिक्त नाटक मे भागुरायण, सिद्धार्थक, विराधगुप्त शकटदास, चन्दनदास आदि अन्य पात्रो का भी चित्रण किया गया है। ये पात्र यद्यपि गौण हैं किन्तु इनकी भूमिका बहुत महत्त्वपूर्ण है। ये गौण पात्र नाटक मे इस प्रकार प्रस्तुत

---

१ स०ना०सं०,पृ० १७०

२ The mudraraksasa, page-xxxiii-xxxiv

३ A H S L page 268-269

किए गये है कि इन्हे हटा देने पर नाटक की नाटकीयता मे कमी आती और उसका सौन्दर्य नष्ट हो जाता। सभी पात्र अपने आप मे स्पष्ट एवं सशक्त है। नाटक मे इनकी भूमिका एवं यथार्थता स्पष्ट है। सभी गौण पात्र दो वर्गो मे विभक्त है कुछ चाणक्य और चन्द्रगुप्त के लिये व्यापारयुक्त हैं तो कुछ इनके प्रतिपक्षी राक्षस एवं मलयकेतु के लिए। दोनो वर्गो के पात्र अपने-अपने पक्ष की विजय के लिए उसी प्रकार सन्नद्ध है जिस प्रकार उनके नेता। इनके चरित्र मे प्रतिवद्धता एवं योग्यता का वही अन्तर दृष्टिगत होता है जो चाणक्य एवं राक्षस के चरित्र मे। चाणक्य के गुप्तचर की कार्यसिद्धि को अपनी कार्यसिद्धि मानते है। इनमे आत्मविश्वास अधिक है। इसके विपरीत राक्षस के प्रणिधि अपनी सफलता के प्रति मन मे आशङ्काग्रस्त रहते है।

भागुरायण- भागुरायण सेनापति सिंहबल का छोटा भाई है। यह चाणक्य के लिए कार्य करता है। प्रथम अङ्क की समाप्ति पर शिष्य शार्ङ्गरव से यह सूचना पाकर कि भागुरायण भाग गया है चाणक्य अपने मन मे कहता है- व्रजतु कार्यसिद्धये।[१] भागुरायण मलयकेतु का विश्वास अर्जित कर उसके अमात्य के रूप मे कार्य करने लगता है। वह मलयकेतु का कपट-मित्र बना हुआ है। चाणक्य ने भागुरायण को मलयकेतु के पास इसलिए नियुक्त किया है कि वह मलयकेतु के मन मे राक्षस के प्रति अविश्वास उत्पन्न कर दे। उसे यह विश्वास दिला दे कि राक्षस चन्द्रगुप्त के साथ मिल गया है। इस प्रकार मलयकेतु को राक्षस के विरुद्ध करने के दायित्व का वह सफलता पूर्वक निर्वाह करता है। उसे चाणक्य का आदेश है कि राक्षस के प्राणो की क्षति नहीं होनी चाहिए।

जब मलयकेतु के हाथो वह राक्षस के प्राणो का सङ्कट देखता है तो बड़ी बुद्धिमानी से मलयकेतु को ऐसा करने से मना करता है। चाणक्य के कार्य-निर्वाह में भागुरायण परतन्त्रता का अनुभव करता है। वह अपने कार्य से घृणा करता है तथा एकान्त मे उसका प्रायश्चित्त करता है। भागुरायण मलयकेतु का मित्र बना हुआ था अतः उसे धोखा देना उसे अनुचित लगता है। किन्तु

---

१ मुद्रा०, पृ० ४५

सेवक होने के कारण वह बँधा हुआ है। इस बात का उसे कष्ट है कि धन के बदले उसने अपने शरीर को बेच दिया है तथा अपने अन्तःकरण की भावना का आदर नही किया है-

कष्टमेवमप्यस्मासु स्नेहवान् कुमारो मलयकेतुरतिसंधातव्य इत्यहो दुष्करम् ।

कुले लज्जायां स्वयशसि च माने च विमुखः

शरीरं विक्रीय क्षणिकमपि लोभाद्धनवति।

तदाज्ञां कुर्वाणो हितमहितमित्येतदधुना

विचारातिक्रान्त किमितिपरतन्त्रो विमृशति।[१]

भागुरायण चाणक्य की कूटनीति की प्रशंसा करता है। वह चाणक्य के लक्ष्य को अपना सर्वस्व मानते हुए अपनी भावनाओ का हनन करके भी उसकी परिणति तक कार्य-निष्पादन करता है। वह जिस कार्य के लिए नियुक्त है उस कार्य को इमानदारी एवं लगन से पूरा करता है। गौण पात्र होने पर उसके कार्य से कई स्थानो पर नाटक की आत्मा की रक्षा हुई हैं सामान्य पात्र होते हुए भी उसका कार्य विशिष्ट है।

सिद्धार्थक- भागुरायण के समान सिद्धार्थक भी चाणक्य का गुप्तचर है। चाणक्य ने इसकी नियुक्ति शकटदास की गतिविधियो पर निगरानी रखने के लिए की है। उसे निर्देश मिला है कि वह शकटदास का कपट मित्र बनकर उसके साथ रहे तथा उसकी गतिविधियो पर अङ्कुश रखे। इसीलिए यह वध्यस्थल से शकटदास को छुड़ाकर उसके साथ ही कुसुमपुर से भाग जाता है। शकटदास राक्षस के पक्ष मे कार्यरत रहता है उसी के साथ वह राक्षस के पास पहुँचने तथा उसका विश्वासपात्र बनने मे वह सफल हो जाता है। सिद्धार्थक के द्वारा शकटदास को बचाया हुआ जानकर राक्षस सिद्धार्थक पर विश्वास करने लगता है तथा उसे अपना अनुचर बना लेता है। पञ्चम अङ्क मे सिद्धार्थक का पूर्ण चरित्र हमारे सामने स्पष्ट हो जाता है। वह विना पारपत्र

---

१ मुद्रा० ५.४

लिए हुए ही मलयकेतु के कैम्प मे प्रवेश करता है जहाॅ उसके अनुचरो द्वारा पकड़ लिया जाता है तथा भागुरायण एवं मलयकेतु के सम्मुख लाया जाता है उसके पास से शकटदास द्वारा लिखा गया एक गूढ़ पत्र प्राप्त होता है, जिसमे मौखिक सन्देश भेजने की बात लिखी रहती है। इस प्रकार सिद्धार्थक अपने प्रयास से राक्षस एवं मलयकेतु मे भेद डालने मे पूर्णत सफल हो जाता है। वह पत्रस्थित मौखिक सन्देश मलयकेतु के मन मे यह धारणा उत्पन्न करने मे सफल हो जाता है कि राक्षस चन्द्रगुप्त के साथ मिला हुआ है। उसके पास से आभूषणो की पेटी भी प्राप्त होती है।

चाणक्य के कार्यनिर्वाह मे सिद्धार्थक अपने स्वामी के आदेश के गुणावगुणो की ओर से सर्वथा अपनी ऑखे बन्द कर लेता है। यह स्वामिभक्ति को प्रमाण मानता है। इसके अनुसार स्वामी की भक्ति से प्रेरित होकर उसकी कार्यसिद्धि के लिए यदि कही अनुचित भी कार्य हो जाता है तो वह गुणरूप ही होता है उसमे किसी प्रकार का दोष नही होता।[१] चाणक्य के आदेश के सामने इसकी अपनी इच्छाशक्ति का कोई महत्त्व नहीं है। क्योकि यह चाणक्य से भयभीत भी रहता है इसके हृदय में यह बात घर कर गयी है कि चाणक्य के आदेश का पालन न करने का अभिप्राय है अपने जीवन की समाप्ति। इसीलिए अनिच्छा होने पर भी वह चाण्डाल का वेश धारण कर चन्दनदास को वध्यभूमि की ओर ले जाने के लिए प्रस्तुत रहता है- वयस्य, को जीवलोके जीवितुकाम आर्यचाणक्यस्याज्ञप्तिं प्रतिकूलयति। तदेहि, चाण्डालवेषधारिणौ भूत्वा चन्दनदासं वध्यस्थानं नयावः।[२] इस रूप में सिद्धार्थक ने परिस्थिति के अनुसार अपने अन्तःकरण को ढाल लिया है यह चाणक्य की कार्यसिद्धि को अपनी कार्यसिद्धि मानता है तथा अपने कर्म का निर्वाह बड़ी ईमानदारी एवं लगन से करता है।

निपुणक- निपुणक चाणक्य का गुप्तचर है। पाटलिपुत्र मे कौन-कौन राक्षस के विश्वासपात्र हैं तथा उसके लिए कार्य कर रहे है तथा कौन-कौन

---

१ आनन्त्यै गुणेषु दोषेषु पराङ्मुखं कुर्वत्यै
अस्मादृशजनन्यै प्रणमामः स्वामिभक्त्यै। मुद्रा ५.९

२ वही पृ० १४२

चन्द्रगुप्त के साथ यह पता लगाने के लिए वह यम पट का आश्रय लेकर घूमता है। चन्दनदास, क्षपणक, जीवसिद्धि और शकटदास को निपुणक चाणक्य से राक्षस के लिए कार्य करने वाला बताता है। निपुणक ही चन्दनदास के घर के बाहर से राक्षस के नाम से अङ्कित अङ्गुलीयक-मुद्रा प्राप्त करता है। चाणक्य इसी मुद्रा का प्रयोग राक्षस एवं मलयकेतु मे भेद डालने के लिए करता है। यह मुद्रा नाटक-निर्माण मे केन्द्र-बिन्दु का कार्य करती है। अतः नाटक मे गौणपात्र होने पर भी निपुणक का महत्त्व बढ़ जाता है।

विराधगुप्त - विराधगुप्त राक्षस का गुप्तचर है। जो कार्य प्रथम अङ्क मे निपुणक चाणक्य के लिए करता है वही कार्य आहितुण्डिक के वेश मे विराधगुप्त राक्षस के लिए करता है। विराधगुप्त पाटलिपुत्र के सारे वृत्तान्त को लाकर विस्तार पूर्वक राक्षस को सुनाता है। विराधगुप्त द्वारा कुसुमपुरोपरोध के वृत्तान्त को सुनकर जब राक्षस आवेग युक्त होकर शत्रुओ पर आक्रमण के लिए उठ खड़ा होता है तो उसे वह आवेग से रोकता है। शत्रु के विनाश के लिए प्रयुक्त अपने सभी प्रयासो को विफल होता देख राक्षस जब कष्ट का अनुभव करता है तो वह उसको प्रारम्भ किये गये कार्य को न छोड़ने की प्रेरणा देता है। विराधगुप्त राक्षसके प्रति गहरी प्रेमभावना के कारण अपने कर्तव्य का निर्वाह करता है। उसका निर्व्याज कार्य श्लाघ्य है। यद्यपि वह अपने गुप्तचरत्व के दायित्व का पूरी निष्ठा के साथ निर्वाह करता है किन्तु उसमे वह कर्तव्यनिष्ठा, महत्त्वाकाङ्क्षा नही है जो चाणक्य के गुप्तचरो मे दिखायी पड़ती है। राक्षस का विश्वसनीय गुप्तचर होने पर भी विराधगुप्त के मन मे चाणक्य पर राक्षस की विजय को लेकर हमेशा संशय बना रहता है-

कौटिल्यधीरज्जुनिबद्धमूर्तिं मन्ये स्थिरां मौर्यनृपस्य लक्ष्मीम् ।
उपायहस्तैरपि राक्षसेन निकृष्यमाणामिव लक्षयामि।।
तदेवमनयोर्बुद्धिशालिनोः सुसचिवयोर्विरोधे संशयितेव नन्दकुललक्ष्मीः।[१]

---

[१] मुद्रा० २.२, पृ० ५०

शकटदास - शकटदास राक्षस का सेवक है। राक्षस का विश्वस्त बनने के लिए सिद्धार्थक प्रथम अङ्क मे उसे वध्यस्थान से भगाकर राक्षस के पास ले जाता है। शकटदास भी विराधगुप्त के समान ही राक्षस के प्रति गम्भीर प्रेम के साथ अपने कर्तव्य का निर्वाह करता है। शकटदास की सत्यता एवं उसकी ईमानदारी स्पृहणीय है। किन्तु इससे अज्ञानवश ऐसी गलती हो जाती है जिससे राक्षस की सारी योजना मे पानी फिर जाता है। शकटदास राक्षस का परम विश्वसनीय लेखाध्यक्ष था। वह सिद्धार्थक के जाल मे फसकर चाणक्य के लिए ऐसे कूटपत्र को लिख देता है जिससे चाणक्य की विजय सुनिश्चित हो जाती है। और राक्षस की पराजय। राक्षस उसे अपना विश्वसनीय मित्र मानता है। यद्यपि कूटलेख का दोष जब सामने आता है उसे उस पर संदेह होता है कि इसने धन के लोभ से ऐसा किया होगा। किन्तु सप्तम अङ्क मे शकटदास के प्रति राक्षस का सन्देह तब दूर हो जाता है जब चाणक्य कहता है कि तपस्वी शकटदास से मैने उसकी विना जानकारी के यह लेख लिखवा लिया है। इससे राक्षस को सन्तोष का अनुभव होता है।[१] क्यो कि वह शकटदास के स्वभाव से परिचित था कि वह अपने स्वामी से छल नही कर सकता।

चन्दनदास- चन्दनदास मुद्राराक्षस नाटक का सबसे अधिक हृदयस्पर्शी चरित्र है। यह राक्षस के परम मित्र के रूप मे चित्रित हुआ है कुसुमपुर से बाहर जाते समय राक्षस अपने परिवारको इसी के घर पर न्यास के रूप मे रखता है। इसी से यह स्पष्ट हो जाता है कि चन्दनदास राक्षस का श्रेष्ठ मित्र है। क्यो कि राक्षस कभी भी अनात्मसदृश व्यक्ति के पास अपने परिवार को नही छोड़ सकता। इसी आधार पर चाणक्य राक्षस को पकडा हुआ ही समझता है। चन्दनदास अपने प्राणो का सङ्कट उपस्थित हो जाने पर भी राक्षस के परिवार को चाणक्य को नही सौपता। वह सहर्ष कहता है कि इस के लिए वह किसी भी दण्ड को सहने के लिए तैयार है उसके दुष्कर इस निर्णय से

---

१ (क) शकटदासोऽपि तपस्वी तं तादृश लेखमजानन्नेव कपटलेखं मया लेखित इति। मुद्रा०, पृ० १६०

(ख) दिष्ट्या शकटदासं प्रत्यपनीतो विकल्पः। वही, पृ० १६०

चाणक्य उससे मन ही मन बहुत प्रसन्न होता है। उसने इसकी तुलना शिवि से की है-

सुलभेष्वर्थलाभेषु परसंवेवदनेजने।

क इदं दुष्करं कुर्यादिदानी शिविना विना।[१]

जब चन्दनदास को फॉसी पर लटकाने के लिए लाया जाता है तो उसे इस बात पर सन्तोष है कि वह किसी अपनी गलती के कारण विनाश को नही प्राप्त हो रहा है अपितु उसका विनाश मित्र के कार्य के लिए हो रहा है। वह नगर का बड़ा व्यवसायी है उसके पास अपार सम्पत्ति है जब चाणक्य उसकी सम्पूर्ण सम्पत्ति को अधिगृहीत करने का आदेश देता है[२] तो उसे लेशमात्र कष्ट नही होता। राक्षस कहता है कि जिस धन के लिए पुत्र पिताओ को पिता पुत्रो को शत्रुओ के समान मार डालते है तथा मित्र मित्रो के प्रति सौहार्द का परित्याग कर देते है, उस प्रियधन का वणिक होने पर भी चन्दनदास ने मित्र के लिए व्यसन के समान शीघ्र ही परित्याग कर दिया है इसलिए उसका धन सफल हो गया है।[३] इससे भी आगे बढ़कर चन्दनदास तो अपने मित्र के लिए अपने प्राणो की भी परवाह नहीं करता। बार बार मृत्यु का भय दिखाये जाने पर भी वह राक्षस के परिवार को मित्रता के कारण नही दे रहा है जब कि उसका मित्र उपस्थित भी नही है। इसीलिए वह शिवि से भी अधिक यशस्वी है। क्योकि शिवि ने तो शरणागत के सम्मुख अपने प्राणो का उत्सर्ग किया था।[४] इसीलिए राक्षस उस समय उसके सुचरित के मात्र

---

१ मुद्रा० १ २४

२ गृहीतसारमेनं सपुत्रकलत्रं संयम्य तावद्रक्ष यावन्मया वृषलाय कथ्यते। मुद्रा० पृ० ४४

३ पितॄन् पुत्राः पुत्रान्परवदभिहिसन्ति पितरो
यदर्थ सौहार्द सुहृदि च विमुञ्चन्ति सुहृदः।
प्रियं मोक्तुं तद्यो व्यसनमिव सद्यो व्यवसितः
कृतार्थोऽयं सोऽर्थस्तव सति वणिक्तोऽपि वणिजः। मुद्रा० ६.१७

४ शिबेरिव समुद्भूतं शरणा गतरक्षया।
निचीयते त्वया साधो यशोऽपि सुहृदा विना।। वही ६.१७

एकदेश का अनुकरण कर पाता है जब वह अपने मित्र की रक्षा के लिए आत्मसमर्पण करने को उद्यत हो जाता है।[१] राक्षस आत्मसमर्पण करते समय उसके प्रति इसी त्यागभावना के कारण नतमस्तक है -

दुष्कालेऽपि कलावसज्जनरुचौ प्राणैः परं रक्षता,

नीतं येन यशस्विनातिलघुतामौशीनरीयं यशः

बुद्धानामपि चेष्टितं सुचरितैः क्लिष्टं विशुद्धात्मना।

पूजार्होऽपि स यत्कृते तव गतः शत्रुत्वमेषोऽस्मि सः।।[२]

चन्दनदास दृढ़तापूर्वक चाणक्य का विरोध करना चाहता है। चाणक्यके प्रति उसके मन मे आक्रोश इतना प्रबल है कि वह अपने पुत्र को चाणक्य के देश मे न रहने के लिए कहता है। जब उसके प्राणो की रक्षा के लिए राक्षस चाणक्य चन्द्रगुप्त के समक्ष आत्मसमर्पण करता है तो वह दुखी हो जाता है। उसे लगता है कि हमारा सम्पूर्ण प्रयास ही विफल हो गया है। इस नाटक मे वह त्याग की मूर्ति के रूप मे चित्रित हुआ है अपने मित्र के कार्य के लिए उसे सबकुछ त्याग देने मे जरा सी भी पीड़ा नही होती। मित्र कार्य ही उसके लिए सब कुछ है। अपने पुत्र को भी वह यही शिक्षा देता है कि यदि विनाश सुनिश्चित हो तो मित्र कार्य को करते हुए विनष्ट हो जाना।[३] चन्दनदास का यह कुलधर्म बन गया है कि भिन्न कार्य को सिद्ध करने मे विनाश भी हो जाय तो पीछे नही हटना चाहिए।[४] मित्रता के निर्वाह मे त्याग की इस भावना के लिए चन्दनदास की तुलना नागानन्दनाटक के जीमूतवाहन से की जा सकती है।

इस प्रकार भागुरायण आदि का नाटक की वस्तुयोजना मे महत्त्वपूर्ण स्थान है इसमे से किसी भी पात्र को हटा देने पर नाटकीयता का निर्वाह नही हो सकता। इनके अतिरिक्त भी अन्य गौण पात्रो का प्रयोग नाटककार ने

---

१ त्वदीयसुचरितस्यैकदेशस्यानुकरण किलैतत् । वही १५८

२ वही, ७ ५

३ जात अवश्यं भवितव्ये विनाशे मित्रकार्य समुद्वहमानो विनाशमनुभव। मुद्रा० पृ० १५७

४ तात किमिदम भणितव्यम्। कुलधर्मः खल्वेषोऽस्माकम्।। वही १५७

नाटक की आवश्यकता के अनुरूप किया है नाटक के सभी पात्र अपने-अपने विशिष्ट आदर्शो की पूर्ति के लिए हमेशा प्रयत्नशील है। इन सभी पात्रो की भूमिका नाटक मे अनिवार्य ईप्रतीत होती है। नाटक मे प्रत्येक पात्र वैयक्तिकता एवं विविधता से परिपूर्ण है।

नाटक मे प्रमुख स्त्री-पात्रो का प्रयोग नही प्राप्त होता है। वस्तुत राजनीति ही इसकी नायिका है। यह नायिका अशरीरिणी है। विशाखदत्त के नाटक मे ४ गौण स्त्री पात्रो का प्रयोग किया है- १. शाणोत्तरा २. विजया ३. कुटुम्बिनी एवं ४. नटी। इनमे से शाणोत्तरा एवं विजया क्रमशः चन्द्रगुप्त एवं मलयकेतु की प्रतिहारी है। विशाखदत्त द्वारा इनके प्रयोग मे अन्य नाटको का अनुकरण किया गया है। नाटकीय नियम के निर्वाह के लिए सूत्रधार की पत्नी के रूप मे प्रस्तावना मे नटी को उपस्थापित किया गया है इन तीनो की अपेक्षा कुटुम्बिनी की भूमिका अधिक महत्त्वपूर्ण है। कुटुम्बिनी सातवें अङ्क मे रङ्गमञ्च पर उपस्थित होती है यह प्रतिपरायणा है, साध्वी है, सहृदय है तथा स्त्रियोचित कोमलता के गुण से ओत-प्रोत है। फॉसी पर लटकानेके लिए ले जाए जाने पर अपने पति चन्दनदास का अनुसरण करती है।[१] किन्तु पति द्वारा समझाये जाने पर अपने पुत्र के जीवन के लिए वह प्राणोत्सर्ग का विचार छोड़ देती है। यद्यपि नाटक मे इसकी भूमिका बहुत थोड़ी है किन्तु नाटककार अपनी प्रतिभा के बल पर इसके चरित्र को भी अनुकरणीय बना देता है।

परलोकं प्रस्थित आर्यो न पुनर्देशान्तरं तदयोग्यमिदानीं कुलजनस्य निवर्तितुम् ।
मुद्रा० पृ० १५६

पञ्चम अध्याय

मुद्राराक्षस में रस-निरूपण

मुद्राराक्षस में रस-निरूपण

किसी काव्य अथवा नाटक की ग्राह्यता का विचार रस की दृष्टि से होता है। नाट्यशास्त्र के अनुसार रस ही प्रधान तत्त्व है। इसके विना किसी भी अर्थ की अभिव्यक्ति सम्भव नही है- नहि रसादृते कश्चिदर्थः प्रवर्तते।[१] आचार्य भरत के इस वाक्य का अभिप्राय स्पष्ट करते हुए अभिनव गुप्त ने भी स्वीकार किया है कि रस के विना आनन्द की प्राप्ति नही हो सकती। इसीलिए रस की स्थिति मे ही पदार्थो के व्याख्यान के लिए विभावादि बुद्धि मे उपस्थित होते है। सामाजिक व्याख्याता एवं नट आदि को होने वाली आनन्द की अनुभूति रस के कारण होती है। अत एव इनकी अपेक्षा से काव्य में रस को प्रधान तत्त्व के रूप मे स्वीकार किया गया है। रस क्या है? इस प्रश्न का उत्तर है- 'रस्यते आस्वाद्यते अनेनेति रसः'। काव्य के पढ़ने, सुनने अथवा उसके देखने से सामाजिक को जो आनन्दानुभूति होती है वही रस है।[२]

रस का स्वरूप :- शास्त्रीय दृष्टि से रस का एक सिद्धान्त के रूप मे सर्वप्रथम आचार्य भरत ने अपने नाट्यशास्त्र मे विवेचन प्रस्तुत किया है। रस की मूलधारणा को प्रतिपादित करने वाला सूत्र है- 'विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगाद्ररनिष्पत्तिः'।[३] इसका अभिप्राय है विभाव अनुभाव एवं व्यभिचारी भावो के संयोग से रस की निष्पत्ति होती है। जिस प्रकार अनेक व्यञ्जनों औषधियो एवं द्रव्यो के संयोग से पेयरस की निष्पत्ति होती है उसी प्रकार नाना भावो के उपयोग से रस की निष्पत्ति होती है। जिस प्रकार गुणादि द्रव्यो व्यञ्जनो तथा औषधियो के संयोग से षाडवादि रसो की निर्वृत्ति होती है उसी प्रकार नाना भावो से उपगत स्थायी भाव भी रस रूपता

---

१ नाट्यशास्त्र, अभि. भा. पृ. २७२

२ हि यस्माद् रसं विना विभावादिरर्थो बुद्धौ व्याख्येयतया न प्रवर्तते यतश्च विनार्थ प्रयोजनं प्रीतिपुरःसरं व्युत्पत्तिमयं न प्रवर्तते। अतो व्याख्यातृनटसामाजिकाभिप्रायेण तस्यैव प्राधान्यमिति। अ भा ना. शा. ६.३

३ ना. शा. ६.३

को प्राप्त हो जाते है। यहाँ उन्होने स्वयं यह भी कहा है कि रससंज्ञा आस्वाद्यत्वप्रयुक्त है। अर्थात् रस आस्वाद्य होता है। जिस प्रकार अनेक प्रकार के व्यञ्जनो से संस्कृत अन्न का मानव आस्वादन करते है तथा हर्षादि का अनुभव करते है उसी प्रकार नाना प्रकार के अभिनयो से अभिव्यक्त वाणी, अङ्ग, सत्त्व एवं आहार्यो से उपेत स्थायी भावो का सामाजिक आस्वादन करते है तथा हर्षादि का अनुभव करते है। भरत का वस्तुतः अभिप्राय है कि रस का सामाजिको को अनुभव होता है। यह आस्वाद्य ही होता है। विभाव अनुभाव एवं सञ्चारी भावो से उपगत स्थायी भाव ही रस कहलाता है। यही आस्वाद का विषय बनता है।[१] किन्तु भरत के परवर्ती आचार्यो ने इस रससिद्धान्त की व्याख्या मे बहुत कुछ परिवर्तन किया है। उन्होने रस को आस्वाद्य न कहकर उसकी आस्वादरूपता का विवेचन किया है। इसका कारण है इन आचार्यो का दार्शनिक दृष्टिकोण उदाहरण के रूप मे आचार्य अभिनवगुप्त ने रस को आनन्दात्मक माना है। आनन्द तो आत्मगत धर्म है विषयगत नही। विषय तो आत्मपरामर्श का माध्यममात्र है अभिनव के अनन्तर भी मम्मट आदि आचार्य काव्य, नाट्य आदि के द्वारा भावो की स्थिति मे आत्मविश्रान्तिमयी आनन्दचेतना को रस मानते है।

आचार्य भरत ने यह भी प्रतिपादित किया है कि जिस प्रकार नाना प्रकार के द्रव्यो से व्यञ्जन की भावना की जाती है उसी प्रकार भाव अभिनयो के साथ होकर रसो की भावना करते है। न भाव से हीन रस की कल्पना होती है न रस के विना भाव की। जैसे व्यञ्जन एवं औषधि का संयोग अन्न को सुस्वाद बना देता है वैसे ही रस एवं भाव परस्पर एक दूसरे को भावित करते रहते है तथा जिस प्रकार वृक्ष के मूल बीज है तथा वृक्ष, पुष्प, फल आदि के मूल है, उसी प्रकार भावों के मूलकारण रस हैं। रसो के कारण ही भाव व्यवस्थित होते है।[२]

---

१ ना. शा. ६.३१ का भाष्य

२ ना. शा. ६.३४-३८

भरत के रस सूत्र की व्याख्या मे अभिनवगुप्त के द्वारा रस का स्वरूप निर्धारित करते हुए कहा गया है कि लोक मे जो कारण इत्यादि के द्योतक तथा पोषक माने गये है वे यदि काव्य तथा नाट्य मे उपात्त किए जाते है तो विभाव, अनुभाव तथा व्यभिचारीभाव कहलाते है। काव्य अथवा नाटक मे उपनिबद्ध विभावादि अलौकिक होते हैं। इन अलौकिक विभावादिको से अभिव्यक्त चर्व्यमाणतैकप्राण रस की सहज अनुभूति होती है। रस विभावादि के रहने पर ही रहता है। पान के चर्वण मे एला, मरिच आदि वस्तुओ के समुदाय से सम्पादित विलक्षण आस्वाद्यता जिस प्रकार रहती है उसी प्रकार विभावादिवैलक्षण्येन रस की चर्व्यमाणता मानी गयी है। चर्वणा के अतिरिक्त काल मे इसकी सम्भावना नही की जा सकती। इसको आस्वाद रूप ही मानना पड़ता है, क्योकि रस चर्वणा के अतिरिक्त कुछ भी नही है। यह अलौकिक चमत्काररूप, स्मृत्यादि से विलक्षण तथा ब्रह्मास्वादसहोदर है।[१] मम्मट तथा विश्वनाथ ने भी अभिनव के मत को ही सिद्धान्त रूप में स्वीकार किया है।

रति आदि स्थायी भावो की उत्पत्ति के जो कारण होते है उन्हे विभाव, रत्यादि के कार्यो को अनुभाव तथा सहकारी कारणो का व्यभिचारी भाव कहते है। रत्यादि स्थायी भावो के कारण दो प्रकार के होते है एक आलम्बन रूप तथा दूसरे उद्दीपन रूप। सीता, राम आदि एक दूसरे की प्रीति के आलम्बन कारण होते है अतः ये आलम्बन विभाव है। इस रति को उबुद्ध करने वाली चॉदनी, उद्यान, नदीतीर आदि उद्दीपन विभाव है। इस प्रकार आलम्बन एवं उद्दीपन विभाव दोनो मिलकर स्थायी की अभिव्यक्ति करते है। ये दोनो रस के

---

१ तत्र लोकव्यवहारे कारणकार्यसहचारात्मकलिङ्गदर्शने स्थाय्यात्मपरचित्तवृत्त्यनुमानाभ्यासपाटवादधुना तैरेव विभावनानुभावना-समुपरञ्जकत्वमात्रप्राणैरत एवालौकिकविभावादिव्यपदेशभाग्भिः सामाजिकधियि सम्यग्योगं सम्बन्धमैकाग्र्य वासादितवद्भि अलौकिकनिर्विघ्नसंवेदनात्मकचर्वणागोचरतां नीतोऽर्थश्चर्व्यमाणतैकसारो न तु सिद्धस्वभावः तात्कालिक एव न तु चर्वणातिरिक्तकालावलम्बी स्थायिविलक्षण एव रसः . तेनालौकिकचमत्कारात्मा रसास्वादः स्मृत्यनुमानलौकिकस्वसंवेदनविलक्षण एव। अ. भा., ना. शा. ६.३१, पृ० ४८३

बाह्यकारण है। इसी प्रकार अनुभाव तथा व्यभिचारी उस आन्तर रसानुभूति से उत्पन्न, उसकी बाहयाभिव्यक्ति के प्रयोजक शारीरिक तथा मानसिक व्यापार है। इन्हे रत्यादि स्थायी का क्रमशः कार्य तथा सहकारी कहा जाता है। भरत मुनि के अनुसार जो वाचिक या आङ्गिक अभिनय के द्वारा रत्यादि स्थायी भाव की आन्तर अभिव्यक्ति रूप अर्थ का बाह्यरूप मे अनुभव कराता है वह अनुभाव है।[१] अलग-अलग रस को प्रकाशित करने वाले स्मित आदि बाह्य व्यापार 'अनुभाव' कहलाते है और वे प्रत्येक रस मे अलग अलग होते है। व्यभिचारी भावो को व्यभिचारी इसलिए कहा जाता है कि वे रसो मे नाना रूप से विचरण करते है और रसो को पुष्ट कर आस्वाद के योग्य बनाते है।[२] रसानुभति का मुख्य एवं आन्तरिक कारण स्थायी भाव है। स्थायी भाव हृदय मे स्थिर रूप से प्रसुप्त रहने वाला संस्कार है। यह हृदय मे वासना रूप मे स्थित रहता है। अनुकूल आलम्बन तथा उद्दीपन रूप उद्बोधक सामग्री को प्राप्त कर अभिव्यक्त हो उठता है। जिससे हृदय मे एक अपूर्व आनन्द का संचार हो जाता है। रति, हास, शोक, क्रोध, उत्साह, भय, जुगुप्सा तथा विस्मय इन आठ स्थायी भावो की सत्ता प्रथमतः स्वीकार की गयी थी फिर निर्वेद को भी मिलाकर ९ स्थायी भाव स्वीकार कर लिए गये। ये नवों स्थायी भाव मनुष्य के हृदय मे सामान्य रूप से अव्यक्तावस्था मे विद्यमान रहते है। विभावादि के संयोग से व्यक्त होकर यही रत्यादि स्थायीभाव रस्यमान होकर रसरूपता को प्राप्त हो जाते है। मनोविज्ञान की दृष्टि से इन्हे मूलप्रवृत्तियो से सम्बद्ध मनःसंवेग कहा जा सकता है। प्रकृतिप्रदत्त शक्तियो के प्राप्त मूल प्रवृत्तियो के कारण ही कोई भी प्राणी किसी विशेष प्रकार के पदार्थ की ओर ध्यान देता है और उसकी उपस्थिति मे विशेष प्रकार के संवेग या मनःक्षोभ का अनुभव करता है। यदि स्थायी भाव या मूल प्रवृत्तियाँ मानव के हृदय मे

---

१ वागङ्गाभिनयेनेह यतस्त्वर्थोऽनुभाव्यते।
शाखाङ्गोपाङ्गसंयुक्तस्त्वनुभावस्ततः स्मृतः।। ना. शा. ७ ५

२ विविधम् आभिमुख्येन रसेषु चरन्तीति व्यभिचारिणः।
वागङ्गसत्त्वोपेताः प्रयोगे रसान्नयन्तीति व्यभिचारिण।। ना शा. ७.१० का भाष्य

विद्यमान न हो तो कोई व्यक्ति किसी से प्रेम, किसी पर क्रोध या करूणा, किसी से भय या जुगुप्सा आदि नही कर सकता।

इन विभावादिको तथा स्थायीभाव का भी साधारणीकरण हो जाता है। साधारणीकरण का अभिप्राय है स्वकीयता अथवा परकीयता की भावना का विलोप। काव्य के महिमा अथवा नट के अभिनय के वैशिष्ट्य से विभावादि मे स्वकीय परकीय की भावना का विलोप हो जाता है। यही साधारणीकरण है। विभावादि के साथ साथ सामाजिक की चित्तवृत्ति का भी साधारणीकरण हो जाता है। यदि यह साधारणीकरण का अलौकिक व्यापार न हो तो दूसरे की रति को देखने तथा अपनी रति के प्रदर्शन दोनो के ही लज्जादिजनक होने से रसानुभूति नही हो सकती है। इसलिए रसानुभूति की प्रक्रिया मे साधारणीकरण का व्यापक महत्त्व है।[१] भट्टनायक, अभिनवगुप्त आदि आचार्यो को अभिप्रेत साधारणीकरण को पण्डितराज जगन्नाथ यथावत् नही स्वीकार करते। पण्डित राज नव्यमत के रूप मे अपने मत को प्रस्तुत करते हुए प्रतीत होते है। इन्होने रस-प्रक्रिया अथवा काव्यास्वाद की प्रक्रिया की भावनादोष के आधार पर व्याख्या की है और आश्रय पात्र अथवा नायक के साथ सामाजिक की अभेद-सिद्धि पर बल दिया है। भावना दोष के कारण सामाजिक अपने को दुष्यन्तशकुन्तला विषयक रति से युक्त अनुभव करता है और इस प्रकार आश्रय दुष्यन्त से उसका अभेद हो जाता है। सामाजिक की चेतना में भावना का उदय होते ही सहृदय की अन्तरात्मा कल्पित दुष्यन्तत्व से आच्छादित हो जाती है, सामाजिक अपने को दुष्यन्त समझने लगता है इस रूप मे वह अपने को शकुन्तला का प्रेमी भी समझने लगता है अर्थात् उसकी चेतना मे शकुन्तला विषयक रति भी उत्पन्न हो जाती है।

दूरी और चाकचिक्य आदि दोषो के कारण सीप मे चाँदी की प्रतीति के समान ही उपर्युक्त प्रतीति भी दोषात्मक ही है। क्योकि न तो सामाजिक

---

१ (क) काव्ये नाट्ये चाभिधातो द्वितीयेन विभावादि साधारणीकरणात्मना भावकत्वव्यापारेण भाव्यमानः स्थायी..... भोगेन भुज्यते। का०प्र० ४.२८ की वृत्ति

(ख) हिन्दी अभिनव भारती पृ.- ४७१

दुष्यन्त है और न ही उसके चित्त मे शकुन्तला विषयक रति का अनुभव है, फिर भी वह अपने को दुष्यन्त समझता हुआ अपने मे शकुन्तलात्वावच्छिन्न रति का अनुभव करने लगता है। यहाॅ स्पष्ट है कि यह भावना वस्तु के यथार्थ स्वरूप को आच्छादित कर उस पर अयथार्थ रूप का प्रक्षेप करती है इसीलिए यह दोष है। इस प्रकार पण्डित राज ने भावनादोष के द्वारा सामाजिक के अन्तःकरण मे रत्यादि संवलित विभावादि का प्रकाशन स्वीकार किया है। सामाजिक की दुष्यन्तत्वशकुन्तलात्वावच्छिन्नरतिप्रतीति मायावत् अनिर्वचनीय है क्योकि कल्पित होने के कारण न इस प्रतीति को सत् कह सकते है न ही साक्षात् बोधगम्य होने के कारण असत् । इसी प्रकार रति रूप रस भी ज्ञान होने के कारण अनिर्वचनीय है।[१]

आचार्य रामचन्द्रशुक्ल का भी एवं साधारणीकरण विषयक विचार गम्भीर एवं मौलिक है। इनके अनुसार साधारणीकरण के प्रभाव से पाठक का हृदय लोक सामान्य का हृदय हो जाता है। पाठक की पृथक् सत्ता की भावना का परिहार हो जाता है, वह काव्य मे प्रस्तुत विषय को व्यक्तिगत हृदय से नही लेता अपितु निर्विशेष, शुद्ध और मुक्त हृदय मे उसका ग्रहण करता है। आचार्य शुक्ल के अनुसार पाश्चात्यो ने इसी को अहं के विसर्जन की स्थिति या निःसङ्गता की स्थिति कहा है। इन्होने विभाव, अनुभाव, सञ्चारीभाव, स्थायीभाव, पाठक, कवि और वर्णित पात्र सभी का साधारणीकरण माना है।[२]

नायक तथा सामाजिक की चित्तवृत्ति के तादात्म्य अर्थात् अभेद-साधारणीकरण होने के कारण ही अनुमान, आगम एवं योगिप्रत्यक्ष से उत्पन्न तटस्थ प्रमाता एवं प्रमेय से विलक्षण तथा परकीय लौकिक चित्तवृत्ति से भिन्न रूप मे प्रतीत होने वाली प्रधान चित्तवृत्ति रूप नायक की चित्तवृत्ति निर्विघ्न

---

१ काव्ये नाट्ये च, कविना नटेन च प्रकाशितेषु विभावादिषु व्यञ्जनाव्यापारेण दुष्यन्तादौ शकुन्तलादिरतौ गृहीतायामनन्तरं च सहृदयतोल्लासितस्य भावनाविशेषरूपस्य दोषस्य महिम्ना कल्पितदुष्यन्तत्वावच्छादिते स्वात्मन्यज्ञानावच्छिन्ने शुक्तिकाशकल इव रजतखण्डः समुत्पद्यमानोऽनिर्वचनीयः साक्षिभास्यशकुन्तलाविषयकरत्यादिरेव रसः। रसगङ्गाधर प्रथम आनन पृ. ११०

२ रसमीमांसा, पृ ७१

अनुभूति की विश्रान्तिरूप आस्वादन नाम से कहे जाने वाले व्यापार के द्वारा गृहीत होने के कारण 'रस्यते इति रसः' इस व्युत्पत्ति के अनुसार 'रस' शब्द से कही जाती है। इसलिए रस का ही नाम नाट्य है। रस की अनुभूति नाट्य का फल है। इसीलिए 'नहि रसादृते कश्चिदर्थः प्रवर्तते' वाक्य मे 'रसात् ' पद मे आचार्य भरत ने एक वचन का प्रयोग किया है। इस प्रकार नाट्य रस स्वरूप है तथा रसानुभूति अनुमान, आगम तथा योगिप्रत्यक्ष आदि से विलक्षण होती है।

रस के भेद एवं एक का अङ्गित्व :

विभाव, अनुभाव एवं व्यभिचारी भावो के साथ संयोग के कारण अभिव्यक्त होकर रसरूपता को प्राप्त हुए स्थायी भावो की अनेकता के कारण रस भी अनेक है। स्थायी भावो के आधार पर ही शृङ्गार, हास्य, करूण, रौद्र, वीर, भयानक बीभत्स एवं अद्भुत इन आठ रसो को मानने की परम्परा प्रचलित थी किन्तु शान्त को भी नवे रस के रूप मे आचार्य स्वीकार करते है। कुछ विद्वानों ने नौ रसो के अतिरिक्त भक्ति एवं वात्सल्य इन दो रसो को भी स्वीकार किया है। इसी प्रकार भोजराज के मत मे प्रेयस् भी एक पृथक् रस है। यहाँ यह भी स्पष्ट करना आवश्यक है कि नाटक के अनेक विभावादि या पात्रादि के व्यापारो से एक ही रस की निष्पत्ति होती है। अर्थात् नाटक का प्रधान रस ही सभी पात्रो के व्यापार से निष्पाद्य होता है। उसके साथ अन्य रसो की स्थिति नगण्य होती है। अभिनवगुप्त ने इस तथ्य को उदाहरण के द्वारा पुष्ट किया है। जैसे स्फोटवाद सिद्धान्त के अन्तर्गत पदस्फोट मे वर्णो की तथा वाक्यस्फोट मे पदो की असत्य स्थिति होती है इसी प्रकार नाटक के प्रधान रस मे अन्य रसो की स्थिति असत्य होती है।[1] इसका अभिप्राय यह है कि जैसे स्फोटवाद के अनुसार वाक्य अथवा पद के रूप मे एक अखण्ड इकाई की प्रतीति होती है उनमे अवयवो की प्रतीति कल्पना मात्र है इसी प्रकार नाटक का एक प्रधान रस ही होता है उसमे अन्य गौण रसो की स्थिति

---

[1] ततश्च मुख्यभूतात महारसात् स्फोटसदृशीव असत्यानि वा ... रसान्तराणि भागाभिनिवेशदृष्टानि रूप्यन्ते। अ. भा , ना. शा. पृ. ४२९

असत्य ही मानी जा सकती है। इसीलिए किसी भी काव्य या नाटक मे विभिन्न रसो मे से किसी एक ही रस को कवि का नाटककार प्रधान रस के रूप मे प्रस्तुत करता है तथा अन्य रस उस मुख्य रस के सहायक होकर आते है। नाटक के लिए प्रायः सभी शास्त्रकार वीर अथवा शृङ्गार रस को ही प्रमुख रस के रूप मे स्वीकार करते है तथा अन्य रसो के गौण रस के रूप मे प्रयोग को मानते है।[१] किन्तु इस नियम के कई अपवाद संस्कृत नाटको मे प्राप्त होते है। 'उत्तररामचरितम् ' मे भवभूति ने करूण रस को ही प्रमुख रस के रूप मे स्वीकार किया है। उनकी उक्ति है- एको रसः करूण एव निमित्तभेदात् । इसी प्रकार प्रबोध चन्द्रोदय एवं संकल्पसूर्यो आदि नाटको मे भी वीर अथवा शृङ्गार को मुख्य रस के रूप मे प्रस्तुत करने के नियम को नही माना गया है। इन दोनो नाटको मे मुख्य रस के रूप मे शान्तरस का परिपाक हुआ है। इसी प्रकार नारायण पण्डित ने भी परम्परा से हटकर अद्भुत रस को ही सर्वश्रेष्ठ रस के रूप मे स्वीकार किया है। फिर भी अधिक नाटककारो ने वीर अथवा शृङ्गार को ही अङ्गी रस के रूप मे अपने नाटको मे प्रतिष्ठित किया है।

वीर रस- मुद्राराक्षस मे कवि विशाखदत्त ने जो कथानक प्रस्तुत किया है उसमे वीर रस ही प्रधान रस के रूप मे प्रतिष्ठित हुआ है अन्य शृङ्गारादि रस अङ्ग अर्थात् गौण रूप मे। चाणक्य राक्षस, एवं मलयकेतु के वचनो मे पदे पदे वीररस की अभिव्यक्ति है। संस्कृत साहित्य मे वीररस की प्रचुर अभिव्यक्ति हुई है रामायण एवं महाभारत इन दोनो आर्षकाव्यो मे वीररस का पूर्ण परिपाक हुआ है। इसीलिए परवर्ती लेखकों मे भी वीररस का महत्त्व अक्षुण्ण रहा। धनिक तथा धनञ्जय आदि आचार्यो ने नौ मौलिक मनःसंवेगो अथवा स्थायी भावो के स्थान पर केवल जिन चार मौलिक स्थायी भावो या रसों को मानने का निर्णय किया है उनमे भी वीर रस का स्थान है।[२]

---

१ एको रसोऽङ्गीकर्तव्यो वीरः शृङ्गार एव वा।
अङ्गमन्ये रसाः सर्वे कुर्यान्निर्वहणेऽद्भुतम् ॥

२ विकासविस्तरक्षोभविक्षेपैः स चतुर्विधः शृङ्गारवीरबीभत्सरौद्रेषु मनसः क्रमात् ।
हास्याद्भुतभयोत्कर्षकरुणानां त एव हि॥ -दशरूपक ४.४४

वीर रस का स्थायी भाव उत्साह है। इस का लक्षण प्रस्तुत करते हुए आचार्य भरत ने माना है कि वीर रस उत्तम प्रकृति वाला एवं उत्साहात्मक होता है। इसकी उत्पत्ति भ्रमादि के अभाव से निश्चय नीति, इन्द्रियजय, विनय सेना पराक्रम, सामर्थ्य, प्रताप और प्रभाव आदि विभावो से होती है। स्थिरता, धैर्य, शौर्य, त्याग, निपुणता आदि अनुभावो के द्वारा उसका अभिनय किया जाता है। धृति, मति, गर्व, आवेग, उग्रता, अमर्ष, स्मृति, रोमाञ्च और प्रतिबोध आदि इसके सञ्चारीभाव है।[1] भरत ने अपने मत के समर्थन मे इसी अभिप्राय को व्यक्त करने वाली दो आर्याओ को भी उद्धृत किया है-

उत्साहोऽध्यवसायादविषादित्वादविस्मयामोहात् ।

विविधादर्थविशेषाद्वीररसो नाम सम्भवति।।

स्थितिधैर्यवीर्यगर्वैरुत्साहपराक्रमप्रभावैश्च।

वाक्यैश्चाक्षेपकृतैर्वीरसः सम्यगभिनेयः।।[2]

अर्थात् निश्चय, अखिन्नता, विस्मयराहित्य और मोहशून्यता एवं नाना प्रकार के विशेष अर्थो से उत्साह रूप वीर रस की उत्पत्ति होती है। स्थिरता, धैर्य, शौर्य, गर्व, उत्साह, पराक्रम, प्रभाव एवं अपमानजनक वाक्यो के द्वारा वीररस का उचित रीति से अभिप्राय करना चाहिए।

आचार्य भरत द्वारा प्रयुक्त उत्तमप्रकृति शब्द की अभिनवगुप्त ने 'उत्तमानां प्रकृतिः स्वभावः' तथा 'उत्तमाः प्रकृतयः यस्य' इन दो विग्रहो के आधार पर दो अभिप्राय व्यक्त किए हैं। इनका अभिप्राय है कि क्योंकि वीर रस का स्थायी भाव उत्साह उत्तम जनो की प्रकृति अर्थात् स्वभाव होता है अतः वीररस भी उत्तमप्रकृति होता है। अथवा काव्य एवं नाटक में प्रयुक्त उत्तम पुरुष ही जिस उत्साह की प्रकृति अर्थात् कारण है। वस्तुतः उत्तम वर्णो

---

[1] वीरो नामोत्तमप्रकृतिरुत्साहात्मकः। ना. शा. पृ. ५९३ हि. अ. भा.

[2] ना. शा मे उद्धृत, पृ. ५९५, हि. अ. भा.

का उत्साह सर्वत्र आस्वाद्य होता है। इस रूप मे उत्तम पुरुषो को वीर रस की प्रकृति अर्थात् कारण कहा जा सकता है।[1]

इसके विभावो मे से सन्धि, विग्रह, यान, आसन, सश्रय द्वैधीभाव रूप राजनीति के छह गुणो का उचित प्रयोग 'नय' या नीति है। इन्द्रियो पर विजय 'विनय' है। हाथी, घोड़े रथ तथा पैदल सेना 'बल' है। शत्रुसैन्य आदि को पराजित कर देना 'पराक्रम' है। युद्ध की सामर्थ्य 'शक्ति' है। शत्रु को सन्ताप देने वाली प्रसिद्धि 'प्रताप' है। कुल, धन मन्त्री आदि की सम्पत्ति 'प्रभाव' है। इनके अतिरिक्त यश आदि भी वीररस के विभाव होते है। इन्ही विभावो से वीररस की अभिव्यक्ति होती है ये सब वीररस के जनक है। ये विभाव उत्तम पुरुषो के साथ-साथ सचिवायत्तसिद्धि नायक वाले काव्यो अथवा नाटको मे मन्त्रियो मे तथा प्रतिनायको मे भी रहने पर ये गुण उत्साह के व्यञ्जक हो सकते है।

इसके अनुभावो मे से अविचल रहना 'स्थैर्य' है। गम्भीरता के कारण अपने मनोभावो का गोपन 'धैर्य' है। युद्ध आदि की क्रिया 'शौर्य' है। दान 'त्याग' है। साम, दाम, दण्ड एवं भेद इन चारो का प्रयोग 'वैशारद्य' है। वीररस की अभिव्यक्ति के लिए इन अनुभावो का नाटककार अथवा कवि यथावसर प्रयोग करते है।

वीररस के लिए आक्षेप भी महत्त्वपूर्ण है अपने प्रतिपक्षी मे वीरता से भिन्न कायरता, छल आदि रूप अन्य वस्तुओ को सूचित करना 'आक्षेप' है। वस्तुतः आक्षेप वाक्यो से भी वीररस की उत्पत्ति और अभिनय करने में सहायता मिलती है। वेणीसंहार, मुद्राराक्षस आदि अनेक नाटकों मे आक्षेप वाक्यो से वीररस की अभिव्यक्ति की गयी है।[2]

आचार्य विश्वनाथ ने भी वीररस का लक्षण प्रस्तुत किया है। इनका'उत्तमप्रकृतिर्वीर उत्साहस्थायिभावकः' वाक्य नाट्यशास्त्रीय वीररस विषयक विवरण का अनुवाद मात्र है। इसके अतिरिक्त वीररस का देवता

---

१ अभि. भा., ना. शा. पृ. ५९३, हि. अ. भा

२ आक्षेपो वस्त्वन्तरस्य सूचनम् । अ० मा०,ना० शा० पृ० ५९६ हि०अ० भा०

महेन्द्र को तथा इसके रङ्ग को सुवर्ण सदृश माना है। इसमे जीतने योग्य पात्र आलम्बन विभाव तथा इनकी विजयार्थ चेष्टा उद्दीपन विभाव होते है। युद्ध के सहायक सेना, धनुष आदि का अन्वेषणादि इसके अनुभाव है। धैर्य, मति, गर्व, स्मृति, तर्क, रोमाञ्च आदि इसके सञ्चारीभाव है।[1] विश्वनाथ ने वीररस के स्थायी भाव उत्साह का भी लक्षण प्रस्तुत किया है इनके अनुसार कार्य के सम्पादन मे स्थिरतर तथा उत्कट संरम्भ अर्थात् आवेश को उत्साह कहते है- कार्यारम्भेषु संरम्भ स्थेयानुत्साह उच्यते।[2] जहॉ तक रसो का पुरुषार्थो से सम्बन्ध का प्रश्न है वहॉ वीररस को धर्मप्रधान माना गया है। अभिनवगुप्त ने रौद्र के अनन्तर वीररस के परिगणन के औचित्य का निर्देश करते समय इस तथ्य को स्पष्ट करते हुए कहा है-

ततः कामार्थयोर्धर्ममूलत्वाद्वीरः। स हि धर्मप्रधानः।[3]

आचार्यो ने उत्तमप्रकृति, उत्साह स्थायीभाव वाले वीररस के अनेक भेदो का भी निर्देश किया है। प्रथमतः आचार्य भरत ने वीररस के दानवीर, धर्मवीर तथा युद्धवीर इन तीन रूपो मे तीन भेदो का निरुपण किया है-

दानवीरं धर्मवीरं युद्धवीरं तथैव च।

रसं वीरमपि प्राह ब्रह्मा त्रिविधमेव हि।[4]

आचार्य धनञ्जय भी वीररस के विभावादि का निर्देश करने के अनन्तर इसके भेदो का निरुपण करते है। इन्होने भी वीररस के तीन भेद माने है।

---

१ उत्तमप्रकृतिर्वीर उत्साहस्थायिभावक।
महेन्द्रदैवतो हेमवर्णोऽयं समुदाहृतः।।
आलम्बनविभावस्तु जेतव्यादयो मता।
विजेतव्यादि चेष्टाद्यास्तस्योद्दीपनरूपिण।।
अनुभावास्तु तत्र स्युः सहायान्वेषणादय।
संचारिणस्तु धृतिमतिगर्वस्मृतितर्करोमाञ्चा।। -सा० द०, का० २३२-२३४

२ वही, का० १७८

३ अभि० भा०, ना० शा० पृ०- ४३२ हि० अ० भा०

४ ना० शा० ६.५४

भरत के विवेचन से इनके विवेचन मे अन्तर यह है कि इन्होंने धर्म के स्थान पर दया शब्द का प्रयोग किया है तथा क्रम भी बदल दिया है। इस रूप मे इन्होने दयावीर, युद्धवीर एवं दानवीर इन तीन प्रकार के वीररस के भेदो का निरुपण किया है-

वीरः प्रतापविनयाध्यवसायसत्त्वामोहाविषादनयविस्मयविक्रमाद्यैः।

उत्साहभूः स च दयारणदानयोगात्त्रेधा किलात्र मतिगर्वधृतिप्रहर्षाः।।[१]

आचार्य विश्वनाथ इसमे भी एक परिवर्तन करते है। इन्होने दयावीर से धर्मवीर को भिन्न माना है इस प्रकार इनके मत मे दानवीर धर्मवीर युद्धवीर तथा दयावीर इन चार भेदो मे वीररस को विभक्त किया गया है। इन्होने क्रम भरत का ही स्वीकार किया है उसमे केवल दयावीर इस एक अतिरिक्त भेद को और जोड़कर भरत एवं धनञ्जय के मतो का समन्वय कर दिया है-

स च दानधर्मयुद्धैर्दयया च समन्वितश्चतुर्धा स्यात् ।[२]

रसगंगाधरकार पण्डितराज जगन्नाथ ने भी विश्वनाथ को मान्य वीररस के चारो भेदो को स्वीकार किया है- वीरश्चतुर्धा, दानदयायुद्धधर्मैस्तदुपाधेरुत्साहस्य चतुर्विधत्वात् ।[३] इन्होने वीररस की उपाधि उत्साह के चातुर्विध्य के कारण वीररस के चतुर्विधता का उपपादन किया है तथा इनकी सोदाहरण व्याख्या की है। पण्डितराज ने इस भेद विवेचन का आधार प्राचीन आचार्यो के विवेचन को माना है। इनके मत मे वीररस के इन चार भेदो के अतिरिक्त इसके और भी अनेक भेद होते है।[४] सत्यवीर, पाण्डित्यवीर, क्षमावीर एवं बलवीर इन चार वीररस के भेदों को भी परिगणित कर वीररस के आठ भेदो की पण्डितराज ने सोदाहरण व्याख्या की है। किन्तु इनके मत मे वीररस के भेदो की यह अन्तिम संख्या नहीं है इनके अतिरिक्त भी भेदो की कल्पना की जा सकती है।

---

१ दशरुपक ४.७२

२ सा० द० ३.२३४

३ रसगङ्गाधर प्रथम आनन, पृ० १६४

४ वस्तुतस्तु वीररसस्य शृङ्गारस्येव प्रकारा निरुपयितुं शक्यन्ते। वही पृ० १७५

मुद्राराक्षस में वीररस का प्रयोग- मुद्राराक्षस नाटक का अङ्गी रस वीर ही है इसमे किसी भी विद्वान् को कोई विप्रतिपत्ति नही है, किन्तु इसमे किस प्रकार के वीररस की नाटककार ने स्थापना की है यह विचारणीय है। इस नाटक की संरचना विशाखदत्त द्वारा बड़े कौशल से की गयी है। इसका नायक चाणक्य है। वह विना युद्ध के ही शत्रुओ पर विजय प्राप्त कर लेता है। इस कारण चन्द्रगुप्त को अपना पराक्रम दिखाने का अवसर नहीं प्राप्त होता।

दुर्जेय शत्रुओ पर विजय के लिए नाटक मे सर्वत्र युद्ध की पृष्ठभूमि तो तैयार मिलती है। प्रतिनायक राक्षस मलयकेतु का आश्रय लेकर कुसुमपुर पर आक्रमण के लिए सन्नद्ध है। किन्तु वह चाणक्य की कूटनीति का शिकार हो जाता है। नाटक के प्रथम अङ्क मे चाणक्य के कथनो से इस तथ्य की तो पुष्टि होती है कि चाणक्य चन्द्रगुप्त ने भयङ्कर युद्ध मे नन्दो का समूल विनाश कर एक नये मौर्य साम्राज्य की स्थापना की थी किन्तु यह विवरण नाटक की कथावस्तु के पूर्व की घटना को इङ्गित करता है। नाटक मे केवल यही सूचित किया गया है कि चाणक्य ने नन्दो का समूल नाश कर चन्द्रगुप्त को राज्यसिंहासन पर बैठाया था किन्तु नन्दो ने चाणक्य का कैसे प्रतिरोध किया तथा चाणक्य एवं चन्द्रगुप्त ने किस प्रकार युद्ध मे इन्हे मार डाला इसकी कोई चर्चा नाटक मे नही मिलती । नाटकीय कथावस्तु को आधार बनाकर यदि विचार किया जाय तो अपने स्वामी नन्दों के विनाश का बदला लेने के लिए सन्नद्ध राक्षस को तथा अपने पिता के वध का बदल लेने के लिए तत्पर मलयकेतु को चाणक्य अपनी कूटनीति से ही वश में करता है इसीलिए युद्ध का विशेष अवसर इस नाटक मे नहीं आ पाता।

मुद्राराक्षस मे जिस कथावस्तु की योजना प्रस्तुत की गयी है उसका मुख्य उद्देश्य है चन्द्रगुप्त को राज्यसिंहासन से हटाकर मलयकेतु को उस पर अधिष्ठित करने के लिए प्रयत्नशील दृढ़स्वामिभक्त, पराक्रमी राक्षस को वश मे करके चन्द्रगुप्त का सचिव बनाना। चूँकि राक्षस मलयकेतु के बल का आश्रय लेकर चाणक्य-चन्द्रगुप्त के विनाश के लिए तत्पर है अतः चाणक्य अपनी कूटनीति से दोनों मे भेद उत्पन्न कर अपने लक्ष्य की सिद्धि करता है।

राक्षस भी चाणक्य एवं चन्द्रगुप्त मे भेद स्थापित करने के लिए प्रयत्नशील रहता है जिससे चन्द्रगुप्त को आसानी से जीता जा सके। कुसुमपुर के राजप्रासाद मे चन्द्रगुप्त के प्रथम प्रवेश के समय राक्षस उसे मारने के लिए विभिन्न प्रकार के प्रयास करता है चाणक्य की बुद्धिमत्ता के कारण उसके प्रयास पूरी तरह निष्फल हो जाते है। इस रूप मे नायक एव प्रतिनायक अपने प्रतिपक्षी के अपनी-अपनी राजनीति के बल से पराजय के लिए उत्साहित दिखायी पड़ते है।

चाणक्य नाटक का प्रधान पात्र है उसके चरित्र चित्रण के अवसर पर यह स्पष्ट किया जा चुका है कि वह अपने कर्म एवं बुद्धि को ही कार्यसिद्धि का प्रधानकारण मानता है। नन्दो के उन्मूलन के अवसर पर लोगो को जिसके पराक्रम का प्रत्यक्ष हो चुका है तथा जो सैकड़ो सेनाओ से भी अधिक शक्तिशाली है ऐसी अपनी बुद्धि पर उसे सर्वाधिक भरोसा है। उसके कर्मवाद के सामने दैव का कोई महत्त्व नही है। उसके अनुसार दैव को तो मूर्ख व्यक्ति प्रमाण मानते है। वह राक्षस की नीति के रहस्य को तुरन्त समझ लेता है तथा दृढ़ता से उसका प्रतिकार करता है। चाणक्य-चन्द्रगुप्त की शक्ति को पराजित करने के लिए प्रयत्नशील राक्षस एवं मलयकेतु वीररस के प्रति आलम्बन विभाव है। राक्षस के प्रयत्न उसकी नन्दवंश के प्रति दृढ़ एवं एकनिष्ठ स्वामिभक्ति इत्यादि इसके उद्दीपन विभाव है। प्रतिक्षण प्रतिपक्षियो के विनाश एवं नियन्त्रण के लिए सचेष्ट चाणक्य के वाक्यो में धृति, मति, गर्व, तर्क एवं स्मृति आदि वीररस के विभिन्न सञ्चारीभावो का भी व्यापक प्रयोग हुआ है। इस प्रकार इन विभावो, अनुभावो एवं सञ्चारी भावो से उत्साह स्थायी भाव की पुष्टि हुई है। अतः यहाँ वीररस की अनुभूति सहृदयो को होती है।

मुद्राराक्षस के नायक चाणक्य के द्वारा प्रतिपक्षियो पर विजय प्राप्त करने मे तलवारो की खनक तो सुनाई पड़ती है किन्तु उसका कहीं पर प्रयोग नही हुआ चन्द्रगुप्त की सेना तथा मलयकेतु की सेना आमने-सामने युद्ध के लिए प्रस्तुत तो है किन्तु चाणक्य की नीति के पराक्रम से कभी उनके बीच युद्ध नही हुआ। इस बात का खेद तो चन्द्रगुप्त को भी है कि बिना युद्ध के ही चाणक्य ने शत्रुओं को परास्त कर दिया है। इस नाटक नायक के द्वारा

राजनीति मात्र के प्रयोग से कैसे दुर्जेय शत्रुबल को पराजित कर दिया गया इसका उल्लेख नाटककार ने एक स्थान पर इस रुप मे किया हैं-

तन्मयाप्यस्मिन्वस्तुनि नशयानेन स्थीयते यथाशक्ति क्रियते तद्ग्रहणं प्रति यत्नः। कथमिव। अत्र तावद्वृषलपर्वतकयोरन्यतरविनाशेनापि चाणक्यस्यापकृतं भवतीति विषकन्यया राक्षसेनास्माकमत्यन्तोपकारि मित्रं घातितस्तपस्वी पर्वतक इति सञ्चारितो जगति जनापवादः। लोकप्रत्ययार्थमस्यैवार्थस्याभिव्यक्तये पिता ते चाणक्येन घातित इति रहसि त्रासयित्वा भागुरायणेनापवाहित: पर्वतकपुत्रो मलयकेतु:। शक्यः खल्वेष राक्षसमतिपरिगृहीतोपि व्युत्तिष्ठमानः प्रज्ञया निग्रहीतुम् । न पुनरस्य निग्रहात्पर्वतकवधोत्पन्नं राक्षस्यायशः प्रकाशीभवत्प्रमार्ष्टुमिच्छामि। प्रयुक्ताश्च स्वपक्षपरपक्षयोरनुरक्तापरक्तजनजिज्ञासया बहुविधदेशवेषभाषाचारसञ्चारवेदिनो नानाव्यञ्जनाः प्रणिधयः। अन्विष्यते च कुसुमपुरवासिनां नन्दामात्यसुहृदां निपुणं प्रचारगतम् । तत्तत्कारणमुत्पाद्य कृतकृत्यतामापादिता- श्चन्द्रगुप्तसहोत्थायिनो[१] भद्रभटप्रभृतय: प्रधानपुरुषाः। शत्रुप्रयुक्तानां च तीक्ष्णरसदायिनां प्रतिविधानं प्रत्यप्रमादिन: परीक्षितभक्तयः क्षितिपतिप्रत्यासन्ना नियोजितास्तत्र तत्राप्तपुरुषाः। अस्ति चास्माकं सहाध्यायि मित्रमिन्दुशर्मा नाम ब्राह्मणः। स चौशनस्यां दण्डनीत्यां चतुःषष्ट्यङ्गे ज्योतिः शास्त्रे च परं प्रावीण्यमुपगतः। स मया क्षपणकलिङ्गधारी नन्दवंशवधप्रतिज्ञानन्तरमेव कुसुमपुरमुपनीय सर्वनन्दामात्यैः सह सख्यं ग्राहितो विशेषतश्च तस्मिन् राक्षसः समुत्पन्नविश्रम्भः। तेनेदानी महत्प्रयोजनमनुष्ठेयं भविष्यति। तदेवमस्मत्तो न किंचित्परिहीयते।[२]

लोक मे यह अपवाद फैलवा देता है कि चन्द्रगुप्त अथवा पर्वतक में से कोई भी यदि मारा जाता है तो चाणक्य का ही अपकार होगा यह सोचकर राक्षस ने चाणक्य को कमजोर करने के उद्देश्य से उसके अत्यन्त उपकारी मित्र तपस्वी पर्वतक को मरवा दिया। साथ ही भागुरायण के द्वारा एकान्त मे पर्वतक के पुत्र मलयकेतु को भय दिखवाकर कि तुम्हारे पिता की हत्या

---

१ तत्तत्कृत्यताम्

२ मुद्रा० पृ० २४ २५

राजनीति मात्र के प्रयोग से कैसे दुर्जेय शत्रुबल को पराजित कर दिया गया इसका उल्लेख नाटककार ने एक स्थान पर इस रुप मे किया है-

तन्मयाप्यस्मिन्वस्तुनि नशयानेन स्थीयते यथाशक्ति क्रियते तद्ग्रहणं प्रति यत्नः। कथमिव। अत्र तावद्वृषलपर्वतकयोरन्यतरविनाशेनापि चाणक्यस्यापकृतं भवतीति विषकन्यया राक्षसेनास्माकमत्यन्तोपकारि मित्रं घातितस्तपस्वी पर्वतक इति सञ्चारितो जगति जनापवादः। लोकप्रत्ययार्थमस्यैवार्थस्याभिव्यक्तये पिता ते चाणक्येन घातित इति रहसि त्रासयित्वा भागुरायणेनापवाहितः पर्वतकपुत्रो मलयकेतुः। शक्यः खल्वेष राक्षसमतिपरिगृहीतोपि व्युत्तिष्ठमानः प्रज्ञया निग्रहीतुम् । न पुनरस्य निग्रहात्पर्वतकवधोत्पन्नं राक्षस्यायशः प्रकाशीभवत्प्रमार्ष्टुमिच्छामि। प्रयुक्ताश्च स्वपक्षपरपक्षयोरनुरक्तापरक्तजनजिज्ञासया बहुविधदेशवेषभाषाचारसञ्चारवेदिनो नानाव्यञ्जनाः प्रणिधयः। अन्विष्यते च कुसुमपुरवासिनां नन्दामात्यसुहृदां निपुणं प्रचारगतम् । तत्तत्कारणमुत्पाद्य कृतकृत्यतामापादिता- श्चन्द्रगुप्तसहोत्थायिनो[1] भद्रभटप्रभृतयः प्रधानपुरुषाः। शत्रुप्रयुक्तानां च तीक्ष्णरसदायिनां प्रतिविधानं प्रत्यप्रमादिनः परीक्षितभक्तयः क्षितिपतिप्रत्यासन्ना नियोजितास्तत्र तत्राप्तपुरुषाः। अस्ति चास्माकं सहाध्यायि मित्रमिन्दुशर्मा नाम ब्राह्मणः। स चौशनस्यां दण्डनीत्यां चतुःषष्ट्यङ्गे ज्योतिः शास्त्रे च परं प्रावीण्यमुपगतः। स मया क्षपणकलिङ्गधारी नन्दवंशवधप्रतिज्ञानन्तरमेव कुसुमपुरमुपनीय सर्वनन्दामात्यैः सह सख्यं ग्राहितो विशेषतश्च तस्मिन् राक्षसः समुत्पन्नविश्रम्भः। तेनेदानी महत्प्रयोजनमनुष्ठेयं भविष्यति। तदेवमस्मत्तो न किंचित्परिहीयते।[2]

लोक मे यह अपवाद फैलवा देता है कि चन्द्रगुप्त अथवा पर्वतक मे से कोई भी यदि मारा जाता है तो चाणक्य का ही अपकार होगा यह सोचकर राक्षस ने चाणक्य को कमजोर करने के उद्देश्य से उसके अत्यन्त उपकारी मित्र तपस्वी पर्वतक को मरवा दिया। साथ ही भागुरायण के द्वारा एकान्त मे पर्वतक के पुत्र मलयकेतु को भय दिखवाकर कि तुम्हारे पिता की हत्या

---

१ तत्तत्कृत्यताम्

२ मुद्रा० पृ० २४.२५

चाणक्य ने करायी है राक्षस ने नही। चाणक्य उसे पाटलिपुत्र से बाहर भगा देता है कैद नही करता। इससे नागरिको मे फैली हुई यह बात कि पर्वतक को राक्षस ने मरवाया है चाणक्य ने नही, और भी अधिक विश्वसनीय हो जाती है। दूसरे चाणक्य से दिखावे के लिए अलग होकर मलयकेतु के साथ जाकर भागुरायण राक्षस का विश्वसनीय बन जाता है। यदि चाणक्य मलयकेतु को भगाता नही अपितु कैद कर लेता तो उसके पिता की हत्या का दोष चाणक्य पर ही आ पड़ता। तथा राक्षस पर पर्वतक की हत्या का जो आरोप लगा था वह समाप्त हो जाता है। चाणक्य को यह भी विश्वास था कि भले ही राक्षस से मिलकर राक्षस की बुद्धि के अनुसार आचरण कर मलयकेतु पाटलिपुत्र पर आक्रमण के लिए सन्नद्ध होगा उसे उपायो से राक्षस के साथ ही वश मे कर लिया जायेगा।

अपनी राजनीति की सफलता के लिए चाणक्य ने चाणक्यचन्द्रगुप्त पक्ष मे अनुरक्त तथा विरक्त तथा शत्रुपक्ष मे अनुरक्त तथा विरक्त मनुष्यो के अभिज्ञान के उद्देश्य से अनेक प्रकार के छद्मवेशो को धारण किए हुए गुप्तचरो की नियुक्ति कर दी है। ये गुप्तचर अत्यधिक निपुण है। ये कुसुमपुर मे रहने वाले नन्दो के प्रति अनुरक्त पुरुषो तथा नन्दो के अमात्य राक्षस आदि के मित्रो द्वारा चन्द्रगुप्त चाणक्य के विरुद्ध प्रच्छन्न रूप से की जाने वाली कपट गतिविधियो पर निगाह रखते है और चाणक्य को सूचना देते है। चाणक्य के द्वारा विभिन्न अवसरो पर चन्द्रगुप्त के योग्य सहयोगी भद्रभट आदि पुरुषो को पारितोषिको से पुरस्कृत भी किया गया है। शत्रुओं द्वारा प्रयुक्त विष देने वालो का प्रतिकार करने के लिए सावधान, परीक्षित भक्ति वाले विश्वस्त व्यक्तियो को चन्द्रगुप्त के साथ निरन्तर रहने के लिए चाणक्य ने नियुक्त कर दिया है। इन्दुशर्मा चाणक्य का एक सहाध्यायी मित्र था। उसके शुक्राचार्य प्रणीत दण्डनीति तथा ६४ अङ्गो वाले ज्योतिष् शास्त्र मे परम प्रावीण्य अधिगत किया था।

चाणक्य ने नन्दों के समूल विनाश की प्रतिज्ञा के पश्चात् ही कुसुमपुर लाकर नन्दो के सभी मन्त्रियो के साथ उसकी मैत्री करा दी थी। राक्षस का तो वह पूर्ण विश्वास पात्र बन गया था। इस क्षपणक वेशधारी इन्दुशर्मा पर

चाणक्य ने बड़े कार्यो का दायित्व दे रखा है। इस प्रकार शत्रुओ को पराजित करने के लिए चाणक्य के द्वारा सम्पूर्ण व्यवस्था कर ली गयी है। आगे चलकर चाणक्य की यही राजनीति राक्षस एवं मलयकेतु को वश मे करने मे समर्थ होती है। चाणक्य की सफलता का कारण है उसकी सावधानी।

कुसुमपुर के वृतान्त को जानने के लिए राक्षस ने भी गुप्तचर लगाए थे। वह भी शत्रुओ चन्द्रगुप्त चाणक्य के विनाश के लिए प्रयत्नशील है किन्तु चाणक्य की सावधानी से उसके सारे प्रयत्न विफल कर दिए जाते है। कुसुमपुर के वृत्तान्त को जानने के लिए उसके द्वारा नियुक्त गुप्तचर विराधगुप्त के द्वारा प्रस्तुत किए गए विवरण मे राक्षस के द्वारा शत्रु-विनाश के लिए किये गये प्रयत्नो तथा उनके प्रतिकार की सूचना हमे प्राप्त होती है। विराधगुप्त राक्षस को बताता है कि चन्द्रगुप्त चाणक्य द्वारा कुसुमपुर के घेर लिए जाने पर सर्वार्थ सिद्धि तपोवन चले गये तथा पुन: नन्द राज्य की प्रतिष्ठा की आशा से आप के सुरङ्ग मार्ग से नगर से बाहर चले जाने पर चन्द्रगुप्त के निधन के लिए आप के द्वारा प्रयुक्त की गयी विषकन्या से चाणक्य ने पर्वतक को मारकर अपने आधे राज्य को बचा लिया है। विराधगुप्त आगे सूचना देता है कि विश्वास उत्पन्न करने के लिए चाणक्य ने मलयकेतु को पितृवध के भय से डराकर भगा दिया तथा पर्वतक के भाई वैरोचक को आधे राज्य का अधिकारी बना दिया। चाणक्य का यह प्रयास पर्वतक के वध से उत्पन्न अयश का परिहार करने के लिए आधी रात के समय नन्द भवन मे चन्द्रगुप्त का प्रवेश ज्योतिष् की दृष्टि से उचित है, यह सोचकर राजभवन के संस्कार की घोषणा चाणक्य ने की। किन्तु चाणक्य यह जान कर कि सूत्रधार दारुवर्मा ने चन्द्रगुप्त के राजभवन मे प्रवेश को लक्ष्य कर पहले ही राजभवन का संस्कार कर दिया है जागरूक हो गया और पहले वैरोचक को नन्दभवन मे प्रवेश के लिए भेजता है जिससे चाणक्य के कई प्रयोजन एक साथ सिद्ध होते है-

चन्द्रगुप्त बचा लिया जाता है। आधे राज्य का हकदार वैरोचक मार दिया जाता है। राजा के विनाश के लिए प्रयुक्त राक्षस के व्यक्ति पकड़ कर मार दिये जाते हैं। राक्षस ने चन्द्रगुप्त की हत्या के लिए सविष औषध की

कल्पना करने वाले वैद्य की भी नियुक्ति की थी किन्तु चाणक्य की नीतिपटुता के कारण चन्द्रगुप्त यहाँ पर भी बचा लिया जाता है। अन्य प्रमोदक आदि भी राक्षस के द्वारा चन्द्रगुप्त के वध के लिए नियुक्त किये जाते है किन्तु चाणक्य सबको पकड़ लेता है और जिन उपायो से वे चन्द्रगुप्त को मारने के लिए नियुक्त है उन्ही उपायो से उन्हे मरवा देता है। राक्षस अपने प्रयास एवं चाणक्य द्वारा उनके परिहार को संक्षेप मे प्रस्तुत करता हुआ कहता है-

कन्या तस्य वधाय या विषमयी गूढं प्रयुक्ता मया
दैवात् पर्वतकस्तया स निहतो यस्तस्य राज्यार्धहृत् ।
ये शस्त्रेषु रसेषु च प्रणिहितास्तैरेव ते घातिता
मौर्यस्येव फलन्ति विविधश्रेयांसि मन्त्रीतयः।।[१]

इस पूरे प्रकरण मे चाणक्य की राजनीति की उत्कृष्टता कवि ने प्रतिपादित की है। चाणक्य द्वारा शत्रुओ का प्रयास विफल कर दिया गया है किन्तु चाणक्य का इस सफलता मे न तो उसने अस्त्र-शस्त्र आदि उपकरणो का प्राधान्येन आश्रय लिया है न ही किसी सैन्य बल का। वस्तुतः इस नाटक मे प्रारम्भ से लेकर अन्त तक अपने प्रतिपक्षी पर विजय के लिए केवल राजनीति रूप उपकरण का ही प्राबल्य है।

अपने उद्देश्य की सफलता को सुनिश्चित करने के लिए चाणक्य किसी भी घटना की उपेक्षा नही करता। वह छोटे से छोटे शत्रु की भी उपेक्षा नही करता-

'कायस्थ इति लघ्वी मात्रा, तथापि न युक्तं प्राकृतमपि रिपुमवज्ञातुम् ।[२]

शत्रुओ को वश मे करने के लिए चाणक्य उनको परस्पर पृथक् करने के लिए भेदनीति का सहारा लेता है। उसके द्वारा नियुक्त भृत्यो ने मलयकेतु के हृदय मे स्थान बना लिया है। सिद्धार्थक आदि भी उसकी कार्य-सिद्धि मे लगे हुए है। जिससे चाणक्य राक्षस को मलयकेतु से पृथक् कर देगा। राक्षस

---

१ मुद्रा. १ १६
२ मुद्रा. ३.१३

के विश्वसनीय मित्र शकटदास से चाणक्य का गुढ लेख लिखवाना उसकी भेदनीति की पराकाष्ठा का द्योतक है। लेख मे प्रकारान्तर से चाणक्य यह लिखवा देता है कि कुछ राजा जो चाणक्य के प्रतिपक्षी बनकर मलयकेतु मलयकेतु का साथ दे रहे है वे मलयकेतु के खजाने और हस्ति समूह के इच्छुक है तो कुछ उसके राज्य के ही इच्छुक है। लेख मे यह भी लिखा दिया गया है कि पर्वतक के आभूषण राक्षस को मिल गये है जो कि सत्यवान् के द्वारा भेजे गये थे। अन्त मे लेख मे यह भी निर्दिष्ट है कि लेखहस्त व्यक्ति आप्ततम है यह मौखिक सन्देश भी बतायेगा जिसे सुन लेना। इसे विश्वसनीयता के लिए राक्षस की मुद्रा मे मुद्रित भी किया गया है। इस पत्र को पाकर मलयकेतु राक्षस के सर्वथा विरूद्ध हो जायेगा यही चाणक्य की योजना थी। राक्षस के विरूद्ध भड़काने के लिए चाणक्य ने भागुरायण को पहले से ही मलयकेतु के साथ लगा दिया था। क्षपणक वेशधारी इन्दुशर्मा का भी प्रयोग चाणक्य इसी उद्देश्य से करता है। वह मलयकेतु को राक्षस के विरूद्ध करने के लिए इस असत्य का भी आश्रय लेता है कि उसके पिता पर्वतक की हत्या चाणक्य ने नही राक्षस ने करायी थी चाणक्य अपनी इस योजना मे पूरी तरह सफल हो जाता है क्योकि मलयकेतु उन राजाओ की हत्या करा देता है जो पत्र मे उल्लिखित थे यद्यपि वे उसी के पक्ष के थे। वह राक्षस को ही शत्रु समझ बैठता है तथा राक्षस को अपमानित. करता है।

चाणक्य चन्दनदास के निग्रह का भी राक्षस को वश मे करने के लिए उपयोग करता है। चन्दनदास राक्षस का श्रेष्ठ मित्र है तभी राक्षस ने अपने कलत्र को उसके घर पर न्यास के रूप मे रखा है। चाणक्य इसी से यह निष्कर्ष निकाल लेता है कि चन्दनदास के निग्रह से राक्षस को वश में किया जा सकता है। क्योकि राक्षस के परिवार की रक्षा के लिए चन्दनदास अपने प्राणो को भी न्योछावर करने के लिए प्रस्तुत है उसी प्रकार राक्षस भी चन्दनदास को बचाने के लिए आत्मसमर्पण कर देगा।

त्यजत्यप्रियवत् प्राणान् यथा तस्यायमापदि।

तथैवास्यापदि प्राणा नूनं तस्यापि न प्रियाः।।

राक्षस भी चन्द्रगुप्त को चाणक्य के विरूद्ध भड़काने के लिए तृतीय अङ्क मे स्तन कलश नामक वैतालिक के माध्यम से भेदनीति का प्रयोग करता है। किन्तु जागरूक चाणक्य उसके इस प्रयास को समझ जाता है और कहता है- आ ज्ञातं राक्षस्यायं प्रयोग दुरात्मन् राक्षस दृश्यसे भो जागर्ति खलु कौटिल्य:। इस प्रकार राक्षस का प्रयास निष्फल हो जाता है।

इस प्रकार राक्षस के प्रयासो की असफलता एवं चाणक्य के प्रयासो से शत्रुपक्ष के नियन्त्रण के विवरण मे नाटककार ने जिस वीर रस का प्रयोग किया है उसमे राक्षस एवं मलयकेतु को आलम्बन विभाव के रूप मे प्रस्तुत किया है। इनके द्वारा प्रयुक्त चन्द्रगुप्त के वध के लिए किए गये प्रयास, चन्द्रगुप्त के चाणक्य से पृथक्करण के लिए प्रयुक्त भेदनीति के प्रयत्न आदि उद्दीपन विभाव के रूप मे प्रयुक्त किये गये है। चाणक्य द्वारा इनके प्रयत्नो को विफल करने के लिए प्रयुक्त विभिन्न उपाय तथा राक्षस एवं मलयकेतु को वश मे करने के लिए प्रयुक्त भेदनीति के सफल उपाय अनुभाव के रूप मे प्रस्तुत किये गये है। चाणक्य के धृति, मति, स्मृति, गर्व आदि सञ्चारी भाव है। चाणक्य का उत्साह स्थायी भाव है इन सब के संयोग से नाटककार ने इस नाटक मे राजनीति से ओत-प्रोत वीररस की प्रभावपूर्ण स्थापना की है। इसी रूप मे सहृदय सामाजिको को राजनीति प्रवण वीररस की अनुभूति होती है। इसी प्रकार अन्य स्थलों पर भी चाणक्य की राजनीति की वीरता की सिद्धि होती है।

चाणक्य को प्रणिधियों से सूचना मिलती है कि म्लेच्छ राजा की सेना के मध्य से ५ प्रधान राजा अत्यधिक सुहृद्भाव से राक्षस का अनुसरण कर रहे है। (१) कुलत आधुनिक कुल्लू का राजा चित्रवर्मा, (२) मनुष्यो में श्रेष्ठ, मलयदेश का राजा सिंहनाद, (३) काश्मीर देश का राजा पुष्कराक्ष, (४) शत्रुओ की सामर्थ्य को नष्ट करने वाला, सिन्धुदेश का राजा सिन्धुषेण तथा (५) पारसीक देश का अधिपति मेघ इन पॉच राजाओ के सहयोग से राक्षस कुसुमपुर पर आक्रमण कर चन्द्रगुप्त को राजसिंहासन से उखाड़ फेकना चाहता है। इसीलिए चाणक्य इनके नाम उस सूची में लिख देता है जिसमें उसके द्वारा मारे गये लोगो के नाम लिखे गये हैं-

कौलूतश्चित्रवर्मा मलयनरपति सिंहनादो नृसिंह
काश्मीरः पुष्कराक्ष क्षतरिपुमहिमा सैन्धव सिन्धुषेण।
मेघाख्य पञ्चमोऽस्मिन् पृथुतुरगबल पारसीकाधिराजो
नामान्येषां लिखामि ध्रुवमहमधुना चित्रगुप्तः प्रमार्ष्टु।।[1]

ये प्रमुख शासक मारे जाते है इसकीसूचना हमे पॉचवे अङ्क मे प्राप्त होती है किन्तु इन्हे चाणक्य अपने हाथो से न मरवा कर मलयकेतु के ऊपर कूट लेख आदि के प्रयोग से ऐसी नीति चलता है कि मलयकेतु इन्हे अपना विरोधी समझ कर स्वतः मरवा देता है। इस स्थान पर भी चाणक्य की राजनीति सफल हुई है।

इस वाक्यार्थ से भी वीर रस की अभिव्यकित हुई। इस वीर रस का भी आश्रय चाणक्य है। चाणक्य के प्रतिपक्षी राजा चित्रवर्मा आदि यहॉ पर आलम्बन विभाव है। इन राजाओ के चाणक्य विरोधी आचरणो का ज्ञान एवं स्मरण उद्दीपन विभाव है। चाणक्य का 'मैने इन प्रतिपक्षी राजाओ का नाम (जिनकी हत्या की जानी है उनकी) सूची मे लिख लिया है' यह कथन यहॉ पर अनुभाव है। चित्रगुप्त भी इन्हे बचा नही सकते। इस रूप मे व्यक्त चाणक्य का गर्व संचारी भाव है तथा चाणक्य में शत्रुओ को समाप्त करने के लिए निरन्तर वर्धमान उत्साह स्थायी भाव है। इस प्रकार इस स्थल पर भी राजनीति प्रवण वीर रस की स्थापना हुई है।

चाणक्य राक्षस को चन्द्रगुप्त का मन्त्री बनाना चाहता है, किन्तु यह कार्य तब तक सम्भव नही है जब तक वह राक्षस को वश मे नही कर लेता। राक्षस पराक्रमी है उसे वश मे करना उसी प्रकार कठिन है जैसे वन्य हाथी को वश मे करना। फिर भी चाणक्य राक्षस को अपने बुद्धि के वैभव से वश मे कर लेता है-

स्वच्छन्दमेकचरमुज्ज्वलदानशक्ति मुत्सेकिना बलमदेन विगाहमानम् ।
बुद्ध्या निगृह्य, वृषलस्य कृते क्रियाया मारण्यकं गजमिव प्रगुणीकरोमि।

---

१ मुद्रा १ २०

इस श्लोक मे नाटककार ने वीर रस की स्थापना की है। चाणक्य इसका आश्रय है। राक्षस आलम्बन विभाव है, राक्षस की स्वच्छन्दता, एकचरता, उज्ज्वलदानशक्तिमत्ता, अपकार की चेष्टा एवं उसका बलावलेप आदि उद्दीपन विभाव है। चाणक्य द्वारा बुद्धि का प्रयोग कर राक्षस का निग्रह अनुभाव है।

जगली हाथी को वश मे करने से चाणक्य के मति, धृति गर्व आदि की प्रस्तुति सञ्चारी भावो के रूप मे की गयी है। राक्षस को पकडकर चन्द्रगुप्त के मन्त्रित्व की स्वीकृति करा देने मे प्रयुक्त चाणक्य का उत्साह स्थायीभाव है। इस प्रकार इस श्लोक मे भी वीर रस की विशाखदत्त ने स्थापना की है। इस नाटक मे दान, धर्म युद्ध दया आदि का बहुत संक्षिप्त विवरण हुआ है। नाटक का नायक चाणक्य युद्ध, दान, दया, धर्म आदि से बहुत दूर है वह अपनी जागरूक दृष्टि, भेदकुशल राजनीति तथा अपनी बुद्धि के बल पर ही अपने प्रधान लक्ष्य की सिद्धि करता है।

चाणक्य की राजनीति के द्वारा शत्रुओ को वश मे करने का वर्णन ही इस नाटक का प्रधान उद्देश्य है और इसी रूप मे इस नाटक मे प्रधान रूप से वीररस की प्रतिष्ठा हुई है। वस्तुतः इस वीररस का नामकरण राजनीति वीर के रूप मे किया जा सकता है।

इस नाटक मे युद्ध वीरता, बलवीरता, दानवीरता एवं दयावीरता के भी विवरण यत्र-तत्र प्राप्त होते है। इसमे एक पक्ष अपने प्रतिपक्षी को पराजित करने के लिए जहॉ उद्यत दृष्टिगत होता है वही पर वह वीरोचित युद्धादि कार्य करता हुआ भी वर्णित किया गया है। नाटक मे ऐसे अनेक उदाहरण प्राप्त होते है जिन्हे युद्धवीर, दानवीर, बलवीर, दयावीर के उदाहरण के रूप मे प्रस्तुत किया जा सकता है। चूँकि पूरे नाटक मे दो पक्षो के बीच घात-प्रतिघात चलता रहता है इसलिए युद्धवीर के उदाहरण प्रायः सर्वत्र प्राप्त होते है। द्वितीय अङ्क मे जब राक्षस विराधगुप्त से कुसुमपुरोपरोध का वृत्तान्त सुनता है तो वह युद्ध के लिए प्रस्तुत हो जाता है। शस्त्र निकालकर शत्रु को ललकारता हुआ वह कहने लगता है- मयि स्थिते कः कुसुमपुरमुपरोत्स्यति। प्रवीरक प्रवीरक क्षिप्रमिदानीम् -

प्राकारं परित शरासनधरै क्षिप्रं परिक्रम्यतां
द्वारेषु द्विरदै प्रतिद्विपघटाभेदक्षमै स्थीयताम् ।
त्यक्त्वा मृत्युभयं प्रहर्तुमनसः शत्रोर्बले दुर्बले
ते निर्यान्तु मया सहैकमनसो येषामभीष्टं यश ।।[१]

अर्थात् धनुर्धारी योद्धा दुर्ग के प्राचीर के चारो ओर चक्कर लगाना शुरू कर दे। शत्रुओ के हाथियो के समूह को छिन्न भिन्न करने मे समर्थ हमारे हाथी कुसुमपुर के दरवाजो पर स्थित हो जाये। जिनको यश प्रिय है अर्थात् जो वीरगति को प्राप्त होने से नही डरते वे मृत्यु के भय को छोड़कर शत्रु की दुर्बल सेना पर प्रहार करने के लिए मेरे साथ निकल चले।

इस उदाहरण मे राक्षस आश्रय है। शत्रुबल आलम्बनविभाव है। उनके द्वारा किया गया कुसुमपुर का उपरोध उद्दीपन विभाव है। धनुर्धारी योद्धाओ को व्यापारयुक्त करना, दरवाजो पर समर्थ हाथियो की नियुक्ति तथा शत्रुबल पर प्रहार की इच्छा अनुभाव है। शत्रु बल को दुर्बल कहकर अपने आपको बलवान् समझने का गर्व सञ्चारी भाव है। शत्रुओ को पराजित करने का उत्साह स्थायीभाव है। इस प्रकार यहॉ पर वीररस की अभिव्यक्ति हुई है। युद्ध के उपकरणो का यहॉ पर वर्णन प्राप्त होता है अतः यह युद्धवीर का उदाहरण है।

चतुर्थ अङ्क मे जब मलयकेतु राक्षस से पाटलिपुत्र पर चढ़ाई के लिए अपनी सेना के प्रस्थान को विज्ञापित करता है तो उसका कथन वीररस से परिपूर्ण है-

उत्तुङ्गास्तुङ्गकूलं स्रुतमदसलिलाः प्रस्यन्दिसलिलं
श्मामाः श्यामोपकण्ठद्रुममतिमुखराः कल्लोलमुखरम् ।
स्रोतः खातावसीदत्तटमुरुदशनैरुत्सादिततटा
शोणं सिन्दूरशोणा मम गजपतयः पास्यन्तु शतशः।।[१]

---

[१] मुद्रा. २.१३

अपि च -

गम्भीरगर्जितरवाः स्वमदाम्बुमिश्र मासारवर्षमिव शीकरमुद्गिरन्त्यः।

विन्ध्यं विकीर्णसलिला इव मेघमाला

रुन्धन्तु वारणघटा नगरं मदीया।।[२]

इस स्थल मे वीररस का आश्रय मलयकेतु है आलम्बन विभाव पाटलिपुत्र का अधिपति चन्द्रगुप्त है। शत्रुओ के द्वारा मलयकेतु के पिता का वध उद्दीपन विभाव है। उसके हाथियो की विशाल सेना को शोण को पार करना तथा उसके द्वारा पाटलिपुत्र का घेरा जाना अनुभाव है। शत्रुओ के विनाश के लिए मलयकेतु का उत्साह स्थायीभाव है। उसकी युद्ध के प्रति सन्नद्धता स्मृति आदि व्यभिचारी भाव है। यह प्रसङ्ग युद्धवीर का उदाहरण है क्योकि युद्ध के उपकरणभूत गजो की सामर्थ्य का यहाँ पर उल्लेख किया गया है।

इसी प्रकार मलयकेतु का कपट मित्र भागुरायण राक्षस से मलयकेतु को अलग कर उसे जल्दी पकड़ लेने के उद्देश्य से सद्यः पाटलिपुत्र पर आक्रमण के लिए मलयकेतु से जहाँ आदेश देने के लिए कहा है वहाँ पर भी वीररस की अनुभूति होती है-

गौडीनां लोध्रधूली परिमलबहुलान् धूमयन्तः कपोलान्

क्लिश्नन्तः कृष्णिमानं भ्रमरकुलरुचः कुञ्चितस्यालकस्य।

पांशुस्तम्बा बलानां तुरगखुरपुटक्षोभलब्धात्मलाभाः

शत्रूणामुत्तमाङ्गे गजमदसलिलच्छिन्नमूलाः पतन्तु।।[३]

---

१ मुद्रा. ४ १६

२ वही ४ १७

३ मुद्रा. ५.२३

इस श्लोक मे भी युद्ध के उपकरण घोड़ो एवं हाथियो की शत्रुओ पर आक्रमण की सन्नद्धता का वर्णन किया गया है। यहाँ भी पूर्ववत् युद्धवीर का ही उदाहरण है।

राक्षस युद्धवीर होने के साथ साथ भक्तिवीर भी है। वह अपने किसी स्वार्थ के लिए शत्रुओ का वध नही करना चाहता है। वह केवल अपने स्वामियो के प्रति निस्वार्थ भक्ति से प्रेरित होकर वह उनके शत्रुओं को नष्ट करने के लिए प्रयत्नशील रहता है। चाणक्य इस बात को स्वत स्वीकार करता है कि राक्षस अपने स्वामियो का प्रलय हो जाने पर भी भक्ति के कारण उनके दायित्व का निर्वाह करने के कारण महान् है। राक्षस केवल इसलिए अपने स्वामियो का स्वर्गलोक जाने पर अनुसरण नही करता कि उसे उनके शत्रुओ से बदला लेना है। वह स्वामिभक्तो के इस रूप मे परम प्रमाण है। इस प्रकार अपने स्वामियो के प्रति भक्ति के लिए शत्रुओ के नाश मे राक्षस की तत्परता एवं उत्साह भक्ति वीर रस के पोषक है।

इस नाटक मे विशाखदत्त ने दानवीर रस का भी प्रयोग किया है। इसके उदाहरण हैं- चन्दनदास एव राक्षस ये दोनो दानवीर के रूप मे चित्रित हुए है। चन्दनदास अमात्य राक्षस के पुत्र एवं कलत्र की रक्षा के लिए अपने प्राणो का उत्सर्ग करने के लिए तैयार है। चाणक्य द्वारा यह कहने पर कि राक्षस के परिवार को मुझे सौपकर अपनी तथा अपने परिवार की रक्षा कर सकते हो इस पर चन्दनददास का दृढता पूर्वक यह कहना है कि 'आर्य किं मे भय दर्शयसि। सन्तमपि गेहे अमात्यराक्षसस्य गृहजनं न समर्पयामि किं पुनरसन्तम्।'[1] उसकी दानवीरता का चरम प्रमाण है। चन्दनदास अपने इस निर्णय से नही विचलित होता। इस पर चाणक्य उसकी दानवीर राजा शिबि से तुलना करता है।[2] चाणक्य कहता है कि चन्दनदास राक्षस की विपत्ति पर अपने प्राणो का ऐसे उत्सर्ग कर रहा है जैसे उसे अपने प्राणो से तनिक भी प्रीति नही हैं वैसे ही राक्षस भी चन्दनदास को बन्धन से छुड़ाने मे अपने

---

[1] मुद्रा पृ ४३

[2] सुलभेष्वर्थलाभेषु परसंवेदने जने।
क इदं दुष्कर कुर्यादिदानी शिबिना विना।। वही, १.२३

प्राणो की परवाह नही करता है। चाणक्य राक्षस की दानवीरता से परिचित था-

त्यजत्यप्रियवत् प्राणान् यथा तस्यायमापदि।

तथैवास्यापदि प्राणा नूनं तस्यापि न प्रिया॥[1]

राक्षस अपने प्राणो के बदले चन्दनदास के प्राणो को बचाने के लिए स्वत उपस्थित हो जाता है और कहता है चन्दन दास के गले मे फॉसी का फन्दा उतारकर मेरे गले मे डाल दो।[2] इस प्रकार राक्षस मे भी दानवीरता स्पष्ट रूप से दृष्टिगत होती है। इसके साथ ही राक्षस क्षमा, वीरता आदि के गुण से भी युक्त है अपने प्रति अनुचित आचरण करने वाले मलयकेतु को वह क्षमा कर देता है।[3]

इस प्रकार मुद्राराक्षस मे वीर रस के प्रायः सभी भेदो का वर्णन यथास्थान प्रस्तुत किया गया है। किन्तु पूरे नाटक मे राजनीति की ही प्रधानता है राजनीति के ही बल से दोनो पक्ष अपने-अपने प्रतिषक्षियो को पराजित करने का प्रबल प्रयत्न करते है अतः प्रधान रूप से राजनीति वीररस का ही इसमे प्रयोग दृष्टिगत होता है। इससे भी यह तथ्य स्पष्ट है कि चाणक्य को जब क्रोध आता है तो वह किसी को मारने नही दौड़ता अपितु उसके विनाश के लिए प्रतिज्ञा करता है। तृतीय अङ्क मे कृतककलह के प्रसङ्ग मे चाणक्य चन्द्रगुप्त पर क्रुद्ध हो जाता है और कहता है-

शिखां मोक्तुं बद्धामपि पुनरयं धावति करः

प्रतिज्ञामारोढुं पुनरपि चलत्येष चरणः।

प्रणाशान्नन्दानां प्रशममुपयातं त्वमधुना

---

[1] वही १.२४

[2] आत्मा यस्य वधाय वः परिभवक्षेत्रीकृतोऽपि प्रिय-
स्तस्येयं मम मृत्युलोकपदवी वध्यस्रगावध्यताम्॥ वही ७.४

[3] त्रयं मलयकेतौ कञ्चित्कालमुषितास्तत्परिरक्ष्यन्तामस्य प्राणाः। वही पृ. १६४

परीतः कालेन ज्वलयसि मम क्रोधदहनम् ।[१]

इस स्थल पर भी वीररस की कवि ने पुष्टि की है चाणक्य इस वीररस का आश्रय है। चन्द्रगुप्त आलम्बन विभाव है। चन्द्रगुप्त द्वारा राक्षस एवं मलयकेतु की प्रशंसा, उसका यह कथन कि नन्दो का विनाश दैव ने किया चाणक्य ने नही, उद्दीपन विभाव है। चाणक्य के हाथो का शिखा खोलने मे प्रवृत्त होना, पुनः प्रतिज्ञा पर आरूढ होने के लिए चाणक्य का आगे बढना तथा नन्दो का पूर्ण विनाश हो जाने से शान्त हो चुकी क्रोधाग्नि का फिर से जलने लगना अनुभाव है। नन्दप्रणाशजनित गर्व, पराक्रम आदि सञ्चारी भाव है तथा इन सबमे चाणक्य का उत्साह स्थायी भाव है अत यह वीर रस का उदाहरण है।

विशाखदत्त ने वीररस को अङ्गीरस के रूप मे प्रस्तुत करने के साथ-साथ रौद्र, करूण, भयानक, बीभत्स, अद्भुत एवं शान्त रसो की भी अङ्ग रस के रूप मे प्रस्तुति की है। इस नाटक मे केवल हास्यरस के लिए कोई स्थान नही है क्योकि राजनीति मे शृङ्गार एवं हास्य के लिए कोई अवसर नही होता। इसीलिए इस नाटक मे शृङ्गार भी नाममात्र के लिये प्रयुक्त हुआ है।

तृतीय अङ्क मे कौमुदीमहोत्सव के प्रारम्भ मे चन्द्रगुप्त द्वारा शरत् कालीन गङ्गा की नायिका के रूप मे प्रस्तुति को शृङ्गार के उदाहरण के रूप मे प्रस्तुत किया जा सकता है-

भर्त्तुस्तथा बहुवल्लभस्य मार्गे कथञ्चिदवतार्य तनूभवन्तीम् ।

सर्वात्मना रतिकथाचतुरेव दूती गङ्गां शरन्नयति सिन्धुपति प्रसन्नाम् ।।[२]

रौद्र रस का वर्णन नाटक मे अनेक स्थलो पर किया गया है। चाणक्य अपने तिरस्कार का बदला लेने के लिए नन्दों पर क्रोध करता है। चाणक्य सिंह के समान हिंसा करने पर उतारू है। उसकी शिखा नन्दकुल के लिए

---

[१] मुद्रा. ३.२९

[२] मुद्रा. ३ ९

कालरूपी सर्पिणी है तथा क्रोधाग्नि से निकलती हुई अत्यन्त कृष्ण धूमलता वाली, कालरूपी सर्पिणी है। उसका क्रोध चन्द्रगुपत को अस्थिर करने का प्रयास करने वाले राक्षस एवं मलयकेतु ऊपर है। चाणक्य का कोप नन्दकुलकानन के विनाश के लिए धूमकेतुरूप है। उसके क्रोध के प्रताप का उल्लङ्घन करने वाले का विनाश सुनिश्चित है-

उल्लङ्घयन् मम समुज्ज्वलतः प्रतापं

कोपस्य नन्दकुलकाननधूमकेतोः।

सद्यः परात्मपरिमाणविवेकमूढः

कः शालेन विधिना लभतां विनाशम् ॥[१]

चाणक्य की क्रोधाग्नि नन्दो का समूल नाश कर ही शान्त होती है। उसने क्रोध मे अपना अपमान करने वाले नन्दो को सिंहासन से गिराकर इस प्रकार से मारा है जैसे सिंह गजेन्द्र को अद्रिशिखर से गिराकर मार डालता है।[२]

प्रथम अङ्क के इन स्थलो पर क्रोध का आश्रय चाणक्य है नन्दो के विनाश का बदला लेने के लिए तत्पर राक्षस एवं मलयकेतु आलम्बन विभाव है। राक्षस की मलयकेतु से सन्धि तथा मलयकेतु के द्वारा इकट्ठी की गयी सेना के साथ चन्द्रगुप्त पर राक्षस एवं मलयकेतु द्वारा आक्रमण की तैयारी आदि उद्दीपन विभाव है। सम्पूर्ण लोक के समक्ष नन्दो के विनाश के लिए ली गयी प्रतिज्ञा को पूर्ण करने वाले चाणक्य की राक्षस एवं मलयकेतु के निग्रह की सामर्थ्य अनुभाव है। नन्दो के विनाश का गर्व, मति आदि व्यभिचारी भाव है। चाणक्य चन्द्रगुप्त के विरोध मे सक्रिय राक्षस एवं मलयकेतु पर चाणक्य का क्रोध स्थायी भाव है। इस प्रकार यहाँ पर रौद्र रस की अभिव्यक्ति हुई है।

---

१ वही १ १०

२ ते पश्यन्ति तथैव सम्प्रति जना नन्दं मया सान्वयं
सिंहेनेव गजेन्द्रमद्रिशिखरात् सिंहासनात् पातितम् ॥ मुद्रा. १.१२

विशाखदत्त ने तृतीय अङ्क मे भी रौद्ररस का उदाहरण प्रस्तुत किया है। जब चन्द्रगुप्त चाणक्य से कृतककलह के प्रकरण मे राक्षस एवं मलयकेतु की प्रशंसा करता है उस समय चाणक्य की क्रोधाग्नि प्रदीप्त हो जाती है वह पुन प्रतिज्ञा करने के लिए उद्यत हो जाता है। उस समय चन्द्रगुप्त को लगता है आर्य चाणक्य वास्तव मे क्रुद्ध हो गये। चाणक्य के रौद्ररूप का वर्णन करते हुए वह कहता है-

मंरम्भम्पन्दिपक्ष्मक्षरदमलजलक्षालनक्षामयापि

भ्रूभङ्गोद्भेदधूम ज्वलितमिव पुरः पिङ्गया नेत्रभासा।

मन्ये रुद्रस्य रौद्रं रसमभिनयतस्ताण्डवेषु स्मरन्त्या

सञ्जातो ग्रप्रकम्पं कथमपि धरया धारितः पादघातः।।[1]

यहाँ पर चन्द्रगुप्त चाणक्य के क्रोध का आलम्बन है। चन्द्रगुप्त द्वारा राक्षस एवं मलयकेतु की प्रशंसा करना, उसका यह कहना कि नन्दो के विनाश का कारण दैव है न कि चाणक्य तथा विद्वान् अपने आप अपनी प्रशंसा नही करते, उद्दीपन विभाव है। क्रोधावेश से चाणक्य की ऊपर की ओर उठती हुई पलको से क्रोधाश्रुओ का गिरना तथा लालवर्ण की आँखो पर भ्रुकुटिभङ्गिमा रूपी धुएँ का प्रदीप्त होना तथा पृथिवी पर चरण प्रहार ये सब उसके अनुभाव है। उसके इस चरण प्रहार को ताण्डव के समय रौद्ररस का अभिनय करते हुए रुद्र का स्मरण करती हुई पृथिवी ने कथमपि धारण किया क्योकि इस चरण प्रहार से सम्पूर्ण पृथिवी में उग्र कम्पन होने लगा। इस प्रकार क्रोध स्थायी भाव है। रौद्रताण्डव करने वाले रुद्र के पादघात के समान चाणक्य का पादघात भी अत्यन्त रौद्र रूप में प्रस्तुत किया गया है। अतः यहाँ पर रौद्ररस की पुष्टि हुई है। नाटककार ने मुद्राराक्षस मे करुण रस का भी अङ्ग रस के रूप मे अनेक अवसरो पर मार्मिक चित्रण किया है। इस नाटक मे चाणक्य एवं चन्द्रगुप्त सफल हुए है तथा राक्षस एवं मलयकेतु असफल। राक्षस के स्वामी नन्दो की बड़ी क्रूरता से हत्या कर दी गयी है। राक्षस को प्रधानामात्य के रूप मे नन्दों से बड़ा सम्मान प्राप्त होता था। चाणक्य द्वारा

---

[1] मुद्रा ३ ३०

उनका विनाश कर दिये जाने पर राक्षस के पूर्ववृत्त के स्मरणो मे, अपने स्वामियो के गुणो के स्मरणो मे करुण रस की अभिव्यक्ति हुई है। राक्षस अपने स्वामियो के विनाश के लिए दैव को कारण मानता है वह कहता है-

वृष्णीनामिव नीतिविक्रमगुणव्यापारशान्तद्विषां
नन्दानां विपुले कुलेऽकरुणया नीते नियत्या क्षयम् ।
चिन्तावेशसमाकुलेन मनसा रात्रिन्दिवं जाग्रतः
सैवेयं मम चित्रकर्मरचना भित्तिं विना वर्तते।।[१]

यहाँ पर करुण का आश्रय राक्षस है। नन्द आलम्बन विभाव है। अकरुण नियति के द्वारा जिन्होने अपने दण्ड विधान एवं शौर्य से शत्रुओ को शान्त कर दिया है ऐसे नन्दो के कुल का विनाश उद्दीपन विभाव है। चिन्ता के आवेश से उद्विग्न मन से रात दिन राक्षस का जागरूक रहना अनुभाव है। चिन्ता, निराशा आदि व्यभिचारी भाव है। नन्दो के लिए राक्षस का शोक स्थायी भाव है। इस प्रकार यह करुण रस का स्थल है।

षष्ठ अङ्क मे चाणक्य की भेदनीति से आहत राक्षस चन्दनदास के प्राणो को बचाने के लिए जब कुसुमपुर की समीपवर्तिनी भूमि पर पहुँचता है तो उसे अपने स्वामियो की सत्ता का स्मरण हो आता है और वह शोकमग्न होकर कहता है-

शार्ङ्गाकर्षावमुक्तप्रशिथिलकविकाप्रग्रहेणात्र देशे
देवेनाकारि चित्रं प्रजविततुरगं बाणमोक्षश्चलेषु।
अस्यामुद्यानराजौ स्थितमिह कथितं राजभिस्तैर्विनेत्थं
सम्प्रत्यालोक्यमानाः कुसुमपुरभुवो भूयसा दुःखयन्ति।।[२]

इस स्थल पर भी राक्षस ही करुण रस का आश्रय है। नन्द आलम्बन है। नन्दो के साथ की गयी क्रीडा का स्मरण तथा उनसे विरहित पाटलिपुत्र

---

१ मुद्रा. २.४
२ मुद्रा. ६.९

की भूमियो का अवलोकन उद्दीपन विभाव है। उसका अत्यधिक दुःखी होना अनुभाव है। चिन्ता शोक, मोह आदि सञ्चारी भाव है। इन सबसे शोक स्थायी की पुष्टि हुई है अतः यह करुण रस का उदाहरण है।

द्वितीय अङ्क मे राक्षस जहाँ पूर्ववृत्तो का, अपने प्रति नन्दो के अत्यधिक स्नेह का स्मरण करता हुआ शोक एवं आवेग से युक्त होकर मञ्च पर उपस्थित होता है वहाँ पर भी करुण रस की पुष्टि हुई है-

यत्रैषा मेघनीला चलति गजघटा राक्षसस्तत्र याया-

देतत् पारिप्लवाम्भः प्लुतितुरगबलं वार्यतां राक्षसेन।

पत्तीनां राक्षसोऽन्तं नयतु बलमिति प्रेषयन्मह्यमाज्ञा -

मज्ञासीः स्नेहयोगात् स्थितमिह नगरे राक्षसानां सहस्रम् ।।[१]

यहाँ पर राक्षस उत्साह एवं शोक का एक साथ अनुभव करता है। उसके स्वामी जब जीवित थे तो शत्रु की हाथियो की सेना, अश्वो की सेना अथवा पदाति सेना के विनाश का दायित्व राक्षस पर ही रहता था। इस प्रकार उनका उस पर अतिशय स्नेह था किन्तु अब वे जीवित नही है अतः पूर्वसुकृत के कारण राक्षस उनके प्रति शोक कर रहा है। इसी प्रसङ्ग मे वह हाथियो, घोड़ो अथवा पैदल सेना का स्मरण कर वीरता का भी अनुभव कर रहा है। इस श्लोक की आलोचना करते हुए मुद्राराक्षस की शशिकला टीका मे डॉ. सत्यव्रत सिंह ने इसी तथ्य को स्पष्ट किया है- अत्र वीरकरुणयोरेकाश्रये परस्परं विरुद्धयोरपि वृत्तवर्तमानदशाभेदेन भिन्नप्रक्रमतयावस्थितयोरविरोध एव चमत्कारास्पदम् । तथा चैतेन राक्षसहृदये विरुद्धयोर्भावयोरायोधनं तथात्वेऽपि च राक्षसस्य प्रारब्धनिर्वाहप्रवणत्वं सुसूक्ष्ममुद्भाव्यमानमन्यदेव चारुत्वं नाटकस्येति सर्वमवदातम् ।[२]

पञ्चम अङ्क मे मलयकेतु जब अपने पिता का स्मरण करके शोकमग्न हो जाता है तो उस स्थल पर भी करुणरस की कवि ने प्रतिष्ठा की है-

---

[१] मुद्रा० २ १४

[२] मुद्रा. १ २१

एतानि तानि तव भूषणवल्लभस्य गात्रोचितानि कुलभूषण भूषणानि।

यैः शोभितोऽसि मुखचन्द्रकृतावभासो नक्षवानिव शरत्समयप्रदोष ।।[1]

यहाँ पर करुण रस का आश्रय मलयकेतु है। चाणक्य ने इसके पिता पर्वतक की हत्या करा दी थी। यह उसका बदला लेने मे अभी तक मफल नही हो सका है। राक्षस के द्वारा धारित एवं प्रेषित आभूषणों की प्रतीहारी विजया के द्वारा पर्वतक के आभूषणो के रूप मे पहचान कर लिए जाने पर उनको देखकर मलयकेतु को शोक उद्दीप्त हो जाता है। अतः यहाँ पर पर्वतक आलम्बन विभाव है। पर्वतक के द्वारा धारित आभूषणो की पर्वतक के आभूषणो की पहॅचान उद्दीप्त विभाव है। पर्वतक के गुणो का स्मरण अनुभाव है। वाष्प आदि का आना सञ्चारी भाव है। इनसे मलयकेतु के शोक स्थायीभाव की पुष्टि हुई है अत यह करूण रस का स्थल है।

मुद्राराक्षस मे भयानक रस का भी विवरण प्राप्त होता है। चन्दनदास ने चाणक्य के प्रतिपक्षी राक्षस के कलत्र को अपने घर पर शरण देकर शासन के विरूद्ध आचरण किया है जिससे चाणक्य के क्रूर दण्ड से वह भयभीत है। उसे चाणक्य सिर पर विद्यमान फणधारी सर्प के रूप मे दिखाई पड़ता है-

उपरि घनं घनरटितं दूरे दयिता किमेतदापतितम् ।

हिमवति दिव्यौषधयः शीर्षे सर्पः समाविष्टः।।[2]

इस उदाहरण मे भय का आश्रय चन्दनदास है। चाणक्य आलम्बन विभाव है। चाणक्य की धमकी- 'भोः श्रेष्ठिन्, शिरसि भयमतिदूरे तत्प्रतीकारः' उद्दीपन विभाव है। चन्दनदास का स्वगत यह कहना कि चाणक्य रूपी सर्प शिर पर सवार है जबकि राक्षस के प्रयास की सफलता रूपी दिव्य औषधि अत्यन्त दूर हिमालय पर अनुभाव है। चिन्ता एवं जड़ता सञ्चारीभाव है। चाणक्य से भय स्थायी भाव है इस प्रकार यहाँ भयानक रस की पुष्टि हुई है।

---

१ वही, ५.१६

२ वही, १.२२

इसी प्रकार चन्दनदास के अधोलिखित कथन मे भी भयानक रस की अभिव्यक्ति हुई है-

चाणक्येनाकरुणेन सहसा शब्दायितस्यापि जनस्य।

निर्दोषस्यापि शङ्का किं पुनर्मम जातदोषस्य।।[१]

नाटककार ने एक स्थान पर बीभत्स रस का भी प्रयोग किया है। तृतीय अङ्क मे चन्द्रगुप्त के साथ कृतक कलह के अवसर पर चाणक्य ने नन्दो के जलते शवो से युक्त चिताओ तथा श्मशान का उल्लेख किया है-

गृध्रैराबद्धचक्रं वियति विचलितैर्दीर्घनिष्कम्पपक्षै-

र्धूमैर्ध्वस्तार्कभासां सघनमिव दिशां मण्डलं दर्शयन्तः।

नन्दैरानन्दयन्तः पितृवननिलयान् प्राणिनः पश्य चैतान्

निर्वान्त्यद्यापि नैते स्रुतबहलवसावाहिनो हव्यवाहाः।।[२]

इस उदाहरण मे बीभत्स रस की स्पष्ट प्रतीति हो रही है। चिता मे जलते हुए नन्दो के शवो से स्रुत अत्यधिक वसा से युक्त चिता की लपटे तथा श्मशान भूमि मे गृध्रो की उपस्थिति उद्दीपन विभाव है। चाणक्य के क्रोध से अभी भी उनका न बुझना अनुभाव है। वशा इत्यादि को देखने से उत्पन्न जुगुप्सा स्थायी भाव है इस प्रकार यहाँ पर बीभत्स रस की पुष्टि हुई है।

नाटक मे आचार्य चाणक्य की नीति के वैचित्र्य मे अद्भुत रस की उपलब्धि होती है। चाणक्य की नीति उसी प्रकार विचित्र है जैसे नियति-

मुहुर्लक्ष्योद्भेदा मुहुरधिगामाभावगहना

मुहुः सम्पर्णाङ्गी मुहुरतिकृशा कार्यवशतः।

मुहुर्नश्यद् बीजा मुहुरपि बहुप्रापितफलेत्यहो

चित्राकारा नियतिरिव नीतिर्नयविदः।।[१]

---

[१] वही १.२१

[२] वही ३.२८

इस स्थल पर भागुरायण आश्रय है। चाणक्य की नीति आलम्बन विभाव है। इसके मुहुः लक्ष्योद्भेदकत्व, अधिगमाभावगहनत्व, सम्पूर्णाङ्गित्व अतिकृशात्व, नश्यद्बीजत्व, बहुप्रापितफलत्व एवं नियतिरूपत्व उद्दीपन विभाव है। नीति के बल पर शत्रुओ को वश मे करना अनुभाव है। उसकी चित्रा-कारता से आविर्भूत विस्मय स्थायी भाव है इस प्रकार यह अद्भुत रस का उदाहरण है।

नाटककार ने मुद्राराक्षस मे शान्तरस का भी प्रकरण उपस्थित किया है। यद्यपि राजनीति परक इस नाटक मे शान्त रस के लिए बहुत स्थान नही है फिर भी विशाखदत्त ने तृतीय अङ्क मे कञ्चुकी के वाक्य मे शान्तरस की स्थापना की है-

रूपादीन् विषयान् निरूप्य करणैर्यैरात्मलाभस्त्वया
लब्धस्तेष्वपि चक्षुरादिषु हताः स्वार्थावबोधक्रियाः।
अङ्गानि प्रसभं त्यजन्ति पटुतामाज्ञाविधेयानि मे
न्यस्तं मूर्ध्नि पदं तवैव जरया तृष्णे मुधा ताम्यसि।।[२]

अर्थात् हे तृष्णे, जिन चक्षुरादि ज्ञानेन्द्रियो से रूपादि विषयो का ग्रहण करके तुमने अपने अस्तित्व को प्राप्त किया है उन चक्षुरादियो मे भी अपने-अपने विषय के ज्ञान की क्षमता नहीं बची है। तुम्हारी आज्ञा का पालन करने वाली कर्मेन्द्रियाँ भी हठात् शिथिल हो रही है। वृद्धावस्था आ चुकी है ऐसी स्थिति मे तुम निरर्थक चञ्चल हो रही हो।

यहाँ पर कञ्चुकी निर्वेद का आश्रय है। ज्ञानेन्द्रियो एवं कर्मेन्द्रियों की शिथिलता एवं वृद्धावस्था के जाने पर भी तृष्णा की चञ्चलता पर कञ्चुकी को निर्वेद का अनुभव हो रहा है अतः यह शान्त रस का उदाहरण है। इस उदाहरण को प्रस्तुत कर नाटककार विशाखदत्त ने उस मान्यता की पुष्टि की

---

१ मुद्रा. ५.३
२ वही ३.१

है जिसमे नाट्यशास्त्रियो ने नाटको मे शान्त रस के वर्णन को भी आवश्यक माना है।

इस प्रकार नाटककार ने मुद्राराक्षस में मात्र हास्य रस का प्रयोग नही किया है। क्योकि राजनीति प्रवण इस नाटक मे उसके लिए उचित स्थान नही है। राजा, मन्त्री गुप्तचर सभी अपने अपने व्यापार मे तत्परता से संलग्न हैं। उन्हे हॅसने का अवसर ही नही मिलता। इसके अतिरिक्त अङ्गरस के रूप मे नाटककार ने अन्य सभी रसो को इस नाटक मे उचित स्थान देकर इसके अङ्गी वीररस की स्थापना की है। वीर मे भी राजनीति की ही आद्योपान्त प्रधानता है। इस नाटक मे राजनीतिक वीर रस की जो अनुभूति सहृदय सामाजिक को होती है वह अन्यत्र दुर्लभ है। सभी समीक्षको ने राजनीतिक सुसम्बद्धता एवं संश्लिष्टता के लिए इस नाटक को अद्वितीय माना है।

षष्ठ अध्याय

मुद्राराक्षस की भाषा-शैली

मुद्राराक्षस की भाषा-शैली

मुद्राराक्षस एक घटना-प्रधान नाटक है। विशाखदत्त ने नाटकीय कथावस्तु को सशक्त, प्रवाहपूर्ण एवं प्रभावोत्पादक बनाने के लिए सभी नाटकीय वैशिष्ट्यो का समुचित सन्निवेश किया है। नाटककार ने पूरे नाटक मे भावो के अनुरूप ही भाषा का प्रयोग किया है। शब्दो की उचित योजना का वैशिष्ट्य पदे-पदे परिलक्षित होता है। इन्होने भावो की प्रभावपूर्ण अभिव्यक्ति के लिए छन्द, अलङ्कार, गुण, वृत्ति रीति एवं प्रवृत्ति सबका औचित्यपूर्ण उपनिबन्धन किया है। इस दृष्टि से इनकी काव्य-कला स्पष्ट, प्रभावोत्पादक एवं प्रवाहपूर्ण है। इन्होने अपनी शैली का स्वतः निर्माण किया है तथा उसका आद्योपान्त निर्वाह किया है। इनकी शैली नाटक के विषय के अनुरूप चलती है। कही पर भी शब्दाडम्बर नही दिखाई पड़ता। शब्दो का चयन एवं विन्यास स्वाभाविक है। नाटक के कथोपकथन एवं पद्य आवश्यक नाटकीय गुणो से समन्वित एवं स्वाभाविकता तथा रोचकता से परिपूर्ण है। उदाहरणस्वरूप तृतीय अङ्क के चाणक्य एवं चन्द्रगुप्त के कथोपकथन को प्रस्तुत किया जा सकता है-

राजा - अन्येनैवेदमनुष्ठितम् ।

चाणक्यः - आः केन?

राजा - नन्दकुलद्वेषिणा दैवेन।

चाणक्यः - दैवमविद्वांसः प्रमाणयन्ति।

राजा - विद्वांसोऽप्यविकत्थना भवन्ति।

विशाखदत्त ने इसी नाटकीयता को अक्षुण्ण बनाए रखने के लिए, नाटकीय औचित्य की दृष्टि से काव्यमय कल्पनाओ को या तो दूर ही रखा है या फिर उनमे भी नाटकीयता उत्पन्न कर दी है, यथा-

कामं नन्दमिव प्रमथ्य जरया चाणक्यनीत्या यथा

धर्मो मौर्य इव क्रमेण नगरे नीतः प्रतिष्ठां मयि।

तं सम्प्रत्युपचीयमानमनु मे लब्धान्तर सेवया
लोभो राक्षसवज्जयाय यतते जेतुं न शक्नोति च।[१]

इसी प्रकार द्वितीय अङ्क मे ही शकटदास की निम्नलिखित उक्ति मे भी काव्य कल्पना को कवि ने नाटकीय रंग मे रंग दिया है-

दृष्ट्वा मौर्यमिव प्रतिष्ठितपदं शूलं धरित्र्यास्तले
तल्लक्ष्मीमिव चेतनाप्रमथिनीं मूर्द्धावबद्धस्रजम् ।
श्रुत्वा स्वाम्यपरोपरौद्रविषमानाघाततूर्यस्वनान्
न ध्वस्तं प्रथमाभिघातकठिनं मन्ये मदीयं मनः।।[२]

इस रूप मे नाटक की शैली गम्भीर, सशक्त एवं लक्ष्यता से परिपूर्ण है। नाटकीय वस्तु का निर्वाह भी मुद्राराक्षस मे औचित्यपूर्ण रीति से हुआ है। नाटक का निर्माण करते समय नाटककार स्वतः अनुभूत कठिनाइयों को उल्लिखित करते हुए कहता है-

कार्योपक्षेपमादौ तनुमपि रचयंस्तस्य विस्तारमिच्छन्
बीजानां गर्भितानां फलमतिगहनं गूढमुद्भेदयंश्च।
कुर्वन् बुद्ध्या विमर्श प्रसृतमपि पुनः संहरन् कार्यजातम्
कर्ता वा नाटकानामनुभवति क्लेशमस्मद्विधो वा।[३]

संस्कृत साहित्य मे अनेक नाटककार हुए है जिनके अपने-अपने वैशिष्ट्य है। कालिदास के नाटको में काव्य-प्रतिभा, कल्पनात्मक वैशिष्ट्य एवं कलात्मक चारुता, शूद्रक के हास्य, व्यङ्ग्य एवं करुणा का परिवेश, भवभूति के करुण का अजस्र प्रवाह, हर्ष का कोमल एवं विलासिता पूर्ण प्रणयचित्रण एवं भट्टनारायण के नाटक में वीरत्व का उत्साह यदि अद्वितीय है तो विशाखदत्त की भी राजनैतिक घटना-प्रधान नाट्य-कल्पना अपने आप मे अद्वितीय है। राजनीति जैसे नीरस विषय को भी काव्य एवं नाटक का विषय

---

१ मुद्रा २ ९
२ मुद्रा. २.२१
३ मुद्रा ४.३

बना देना, उसमे सरसता एवं मनोरञ्जकता का समावेश कर देना तथा उनको अभिनय के गुणो से भरपूर कर देना नाटककार विशाखदत्त को इस विधा मे अप्रतिम बना देते है। प्रथम अङ्क मे चाणक्य की स्वगत उक्ति तथा षष्ठ अङ्क मे राक्षस की स्वगत उक्ति लम्बी होने के कारण भले ही नीरस प्रतीत होती है किन्तु नाटककार का यह प्रयोग एक उद्देश्य विशेष को स्पष्ट करने के लिए है। चाणक्य के स्वगतोक्ति से जहाँ उसकी राजनीति का पूर्ण प्रतिपादन हुआ है वही राक्षस की स्वगतोक्ति से नाटककार ने राक्षस की मानव प्रकृति को, उसकी कोमल भावनाओ को तथा भावात्मक अनुभूतियो को सुस्पष्टता के साथ लोक के समक्ष प्रस्तुत किया है। इस स्थल पर एक निराश महान् व्यक्तित्व की प्रकृति के साथ एकमयता तथा एकरसता का जो चित्रण किया गया है वह भावाभिव्यक्ति मे अद्वितीय है। मानवीय भावो के विश्लेषण मे विशाखदत्त वस्तुतः सिद्धहस्त है। राक्षस के विरोध मे मलयकेतु के उहापोह का चित्रण द्रष्टव्य है-

भक्त्या नन्दकुलानुरागदृढया नन्दान्वयालम्बिना
किं चाणक्यनिराकृतेन कृतिना मौर्येण सन्धास्यते।
स्थैर्य भक्तिगुणस्य वाधिगणयन् किं सत्यसन्धो भवे-
त्यारूढकुलालचक्रमिव मे चेतश्चिरं भ्राम्यति।।[१]

तृतीय अङ्क मे ह्रासशील शक्तियों का वर्णन कञ्चुकी जिस ढंग से करता है वह सहृदयो के हृदय को बलात् आकृष्ट कर लेता है। कञ्चुकी निर्वेद को प्रस्तुत करता हुआ कहता है-

रूपादीन् विषयान् निरूप्य करणैर्यैरात्मलाभस्त्वया
लब्धस्तेष्वपि चक्षुरादिषु हताः स्वार्थावबोधक्रियाः।
अङ्गानि प्रसभं त्यजन्ति पटुतामाज्ञाविधेयानि ते,
न्यस्तं मूर्ध्नि पदं तवैव जरया तृष्णे मुधा ताम्यसि।[२]

---

[१] मुद्रा. ५.५

[२] मुद्रा. ३.१

राक्षस के समयोचित साहस की सौन्दर्य पूर्ण प्रस्तुति करते हुए कवि कहता है-

प्राकारं परितः सरासनधरै क्षिप्रं परिक्रम्यतां
द्वारेषु द्विरदैः प्रतिद्विपघटाभेदक्षमैः स्थीयताम् ।
त्यक्त्वा मृत्युभयं प्रहर्तुमनसोः शत्रोर्बले दुर्बले।।
ते निर्यान्तु मया सहैकमनसो येषामभीष्टं यशः।।[१]

इसी प्रकार अपने मित्र चन्दनदास के प्राणो को बचाने के लिए राक्षस के निश्चय की अभिव्यक्ति भी प्रभावपूर्ण है-

नायं निस्त्रिंशकालः प्रथममिह कृते घातकानां विघाते
नीतिः कालान्तरेण प्रकटयति फलं किं तया कार्यमत्र।
औदासीन्यं न युक्तं प्रियसुहृदि गते मत्कृते चातिघोरां
व्यापत्तिं ज्ञातमस्य स्वतनुमहमिमां निष्क्रय कल्पयामि।[२]

राज्य धर्म का पालन करने मे कठिनाई का अनुभव करते हुए चन्द्रगुप्त की उक्ति भी अद्वितीय है-

परार्थानुष्ठाने रहयति नृपं स्वार्थपरता
परित्यक्तस्वार्थो नियतमयथार्थः क्षितिपतिः।
परार्थश्चेत्स्वार्थादभिमततरो हन्त परवान्
परायत्तः प्रीतेः कथमिव रसं वेत्ति पुरुषः।।[३]

इस प्रकार के स्थलो पर नाटककार की भावाभिव्यक्ति की प्रतिभा अपने उत्कृष्ट रूप मे अभिव्यक्ति हुई है। वे मानवीय भावो की अभिव्यक्तियों में पूर्ण सफल हुए है। नाटकीय परिस्थितियो का समुचित निर्माण करते हुए अपने राजनैतिक विचारो को लोक के समक्ष प्रस्तुत किया है।

---

१ वही २.१३

२ मुद्रा. ६ २१

३ वही ३.४

पाँचवे अङ्क मे विशाखदत्त ने कुशल राजनीतिज्ञ की राजनीति का जो सजीव एवं मनोरम चित्र उपस्थित किया वह अद्वितीय है-

मुहुर्लक्ष्योद्भेदा मुहुरधिगमाभावगहना
मुहु सम्पूर्णाङ्गी मुहुरतिकृशा कार्यवशत।
मुहुर्नश्यद्बीजा मुहुरपि बहुप्रापितफले-
त्यहो चित्राकारा नियतिरिव नीतिर्नयविद॥[१]

अलङ्कारो का विशाखदत्त ने सोद्देश्य प्रयोग किया है। चमत्कार की अपेक्षा-रसाभिव्यक्ति ही इनके प्रयोग का प्रधान उद्देश्य है।

नाटक की कथावस्तु को प्रस्तुत करने के लिए दण्डी आदि आचार्यो ने स्वभावोक्ति एवं वक्रोक्ति इन दो विधियों का प्रतिपादन किया है। विशाखदत्त ने नाटकीय औचित्य का निर्वाह करने के लिए इन दोनों का प्रयोग किया है। राक्षस का निम्नलिखित भावपूर्ण वचन स्वभावोक्ति का उदाहरण है-

मौर्यस्तेजसि सर्वभूतलभुजामाज्ञापको वर्तते
चाणक्योऽपि मदाश्रयादयभूद्राजेति जातस्मयः।
राज्यप्राप्तिकृतार्थमेकमपरं तीर्णप्रतिज्ञार्णवं
सौहार्दात् कृतकृत्यतैव नियतं लब्धान्तरा भेत्स्यति॥[२]

नान्दी मे वस्तु निर्देश के लिए कवि ने वक्रोक्ति का सुन्दर प्रयोग किया है-

धन्या केयं स्थिता ते शिरसि शशिकला किन्नु नामैतदस्या
नामैवास्यास्तदेतत्परिचितमपि ते विस्मृतं कस्य हेतो।
नारी पृच्छामि नेन्दुं कथयतु विजया न प्रमाणं यदीन्दु-
र्देव्या निह्नोतुमिच्छोरिति सुरसरितः शाठ्यमव्याद्विभोर्व।

---

१ मुद्रा. ५ ३ की
२ मुद्रा. २ २३
३ मुद्रा १ १

इस पद्य के द्वारा नाटकीय कथावस्तु की सूचना दी गयी है। जिस प्रकार शिव जी की शठता ने पार्वती जी से गङ्गा की रक्षा की है उसी प्रकार चाणक्य की कुटिल नीति ने सङ्कट के समय राक्षस से चन्द्रगुप्त की रक्षा की है।

इसी प्रकार राक्षस के निम्नलिखित वक्रोक्तिपूर्ण कथन मे भावप्रवणता लक्षणीय है-

पृथिव्यां किं दग्धा॰ प्रथितकुलजा भूमिपतय॰
पतिं पापे मौर्य यदसि कुलहीनं वृतवती?
प्रकृत्या वा काशप्रभवकुसुमप्रान्तचपला
पुरन्ध्रीणां प्रज्ञा पुरुषगुणविज्ञानविमुखी।।[१]

विशाखदत्त ने श्लेष के प्रयोग से भी भावो को सुन्दर अभिव्यक्ति दी है। सभी पताका स्थानक इसी श्लेष पर आश्रित है। मुद्राराक्षस मे दो अर्थो की अभिव्यक्ति लाक्षणिक रूप से हुई है। भङ्ग्यन्तरकथन की शैली भी अपनायी गयी है। कवि किसी बात को पहले गद्य मे कहता है फिर उसी बात को पद्य मे भी प्रस्तुत कर देता है। नाटकीय दृष्टि से यह औचित्यपूर्ण है। नाटककार ने द्वितीय अङ्क मे भङ्ग्यन्तरकथन का प्रयोग किया है-

अहो आश्चर्यम् । चाणक्यमतिपरिगृहीतं चन्द्रगुप्तमवलोक्य विफलमिव राक्षसप्रयत्नमवगच्छामि। राक्षसमतिपरिगृहीतं मलयकेतुमवलोक्य चलितमिवाधिराज्याच्चन्द्रगुप्तमवगच्छामि। कुत॰-

कौटिल्यधीरज्जुनिबद्धमूर्ति मन्ये स्थिरां मौर्यनृपस्य लक्ष्मीम् ।
उपायहस्तैरपि राक्षसेन निकृष्यमाणामिव लक्षयामि।।
तदेवमनयोर्बुद्धिशालिनोः सुसचिवयोर्विरोधे संशयितेव नन्दकुललक्ष्मीः।
विरुद्धयोर्भृशमिह मन्त्रिमुख्ययोर्महावने वनगजयोरिवान्तरे।
अनिश्चयाद्गजवशयेव भीतया गतागतैर्ध्रुवमिह खिद्यते श्रिया।।[२]

---

१ वही २ ७

२ मुद्रा. पृ. ४९.५०

विशाखदत्त ने नाटकीय सौष्ठव के लिए छोटे-छोटे वाक्यो से गम्भीर अभिप्रायो को व्यक्त करने की चेष्टा की है। नाटकीय सौष्ठव के विघातक प्रलम्बसमास, वर्णनो का आधिक्य एवं क्लिष्ट कल्पना से वह दूर है। राजनीति के विवरण को प्रस्तुत करने मे क्लिष्ट कल्पना अथवा अधिक वर्णनो का अवसर ही कहाँ उपस्थित होता है। अनेक स्थानो पर एक शब्द के प्रयोग से ही अधिकाधिक भावो को अभिव्यक्ति मिली है। इस दृष्टि से प्रथम अङ्क के प्रथम श्लोक का 'धन्या' पद लक्षणीय है। राक्षस की 'सत्य नगरान्निष्क्रामतो मम हस्ताद् ब्राह्मण्या उत्कण्ठाविनोदार्थ गृहीता' इस उक्ति मे 'ब्राह्मण्या' शब्द से राक्षस की समस्त करुणा एवं वेदना घनीभूत होकर बाहर निकल पड़ती है। इसी प्रकार चन्दनदास के पुत्र की 'तात इदमपि भणितव्यम्।' कुलधर्मः खल्वेषोऽस्माकम्। इस उक्ति मे कवि की प्रतिभा निदर्शनीय है। यह उक्ति जितनी संक्षिप्त और अलङ्कृत है उतनी ही भावपूर्ण और मर्मस्पर्शी भी। इस प्रकार प्रायः सम्पूर्ण नाटक मे विशाखदत्त ने आकर्षक वाक्यो का सुन्दर प्रयोग किया है। वीररस की पुष्टि के लिए इन्होने ओजस्विनी भाषा का प्रयोग किया है। गद्य एवं पद्य दोनो के प्रयोग मे इनका समान अधिकार दृष्टिगत होता है। इनकी भाषा काव्यमय एवं लालित्यपूर्ण है, साथ ही भावावेश के चित्रण में पूर्णतः समर्थ। लाकोक्तियो का भी इन्होंने नाटक मे यथास्थान समुचित सन्निवेश किया है। भाषा सौन्दर्य के कुछ उदाहरण द्रष्टव्य है-

'तन्मयाप्यस्मिन् वस्तुनि नशयानेन स्थीयते।'[१]

सर्वज्ञतामुपाध्यायस्य चोरयितुमिच्छसि।[२]

ननु वक्तव्यं राक्षस एवास्मदङ्गुलिप्रणयी संवृत्तः।[३]

कीदृशस्तृणानामग्निना सह विरोधः।[४]

न निष्प्रयोजनमधिकारवन्तः प्रभुभिराहूयन्ते।[१]

---

१ मुद्रा पृ. २४

२ वही, पृ. २७

३ वही, पृ. ३१

४ वही, पृ. ४

न प्रयोजनमन्तरा चाणक्य स्वप्नेऽपि चेष्टते।[३]

अयमपरो गण्डस्योपरि स्फोट।[४]

किं न जानात्यार्य यथानुचित उपचारो हृदयस्य परिभवादपि महददु खमुत्पादयति।[४]

आर्य यद्येवं तदिदानीमकाल कुलजनस्य निवर्तितुम् ।[५]

मुद्राराक्षस मे पद्यो मे भी भाषा के सौन्दर्य, माधुर्य, लालित्य एवं औचित्य के अनेक उदाहरण विद्यमान है-

"आस्वादितद्विरदशोणितशोणशोभां
सन्ध्यारुणामिव कलां शशलाञ्छनस्य।
जृम्भाविदारितमुखस्य मुखात्स्फुरन्ती
को हर्तुमिच्छति हरे परिभूय दंष्ट्राम् ।"[६]

"अप्राज्ञेन च कातरेण च गुणः स्याद्भक्तियुक्तेन कः?
प्रज्ञाविक्रमशालिनोऽपि हि भवेत किं भक्तिहीनात् फलम् ।
प्रज्ञाविक्रमभक्तयः समुदिता येषां गुणा भूतये
ते भृत्या नृपतेः कलत्रमितरे सम्पत्सु चापत्सु च।।"[७]

"प्रारभ्यते न खलु विघ्नभयेन नीचैः
प्रारभ्य विघ्नविहता विरमन्ति मध्याः।
विघ्नैः पुनः पुनरपि प्रतिहन्यमानाः
प्रारब्धमुत्तमगुणाः न परित्यजन्ति।"[१]

---

१ वही, पृ. ८४
२ वही, पृ. ८५
३ वही, पृ. १३५
४ वही, पृ. ३८
५ वही, पृ. १५६
६ मुद्रा. पृ.- १.८
७ वही पृ.- १.१५

"किं शेषस्य भरव्यथा न वपुषि? क्ष्मां न क्षिपत्येष यत्
किं वा नास्ति परिश्रमो दिनपतेरास्ते न यन्निश्चलः।
किन्त्वङ्गीकृतमुत्सृजन् कृपणवच्छ्लाघ्यो जनो लज्जते
निर्वाहः प्रतिवन्नवस्तुषु सतामेतद्धि गोत्रव्रतम् ।।"[२]
"आशैलेन्द्राच्छिलान्तस्खलितसुरधुनीशीकरासारशीता-
त्तीरान्तान्नैकरागस्फुरितमाणिरुचो दक्षिणस्यार्णवस्य।
आगत्यागत्यभीतिप्रणतनृपशतैः शश्वदेव क्रियन्तां
चूडारत्नांशुगर्भास्तवचरणयुगस्याङ्गुलीरन्ध्रभागाः।।"[३]

इसी प्रकार अन्य अनेक स्थलो पर नाटककार भाषा सौष्ठव के अप्रतिम उदाहरण प्रस्तुत करते है। इन स्थलो पर नाट्यौचित्य का पूर्ण निर्वाह हुआ है।

छन्द - वेद के छह अङ्गो मे छन्दःशास्त्र का भी परिगणन किया गया है। व्याकरण, शिक्षा एवं निरुक्त के समान छन्दस् भी भाषा के विश्लेषण से साक्षात् सम्बद्ध शास्त्र है। वैदिक संहिताओ मे प्राप्त विभिन्न छन्दो के विश्लेषण के लिए आचार्य पिङ्गल ने छन्दःसूत्र लिखे है। वैदिक छन्दो मे गायत्री, उष्णिक् , अनुष्टुप्, बृहती, पङ्क्ति त्रिष्टुप् जगती छन्द प्रमुख है।

लौकिक छन्दो का विभाजन- (१) मात्रिक एवं (२) वार्णिक इन दो रूपो मे किया जाता है। वर्णिक छन्दो की संरचना गणो के आधार पर होती है। विशिष्ट क्रम मे रखे गये गुरु लघु ३ वर्णो का एक गण होता है। कुल आठ गण होते है। गणो का विवरण निम्नवत् है-

१. यगण - आदिलघु - ।ऽऽ　　२. मगण - सभी गुरु - ऽऽऽ
३. तगण - अन्तलघु - ऽऽ।　　४. रगण - मध्य लघु - ऽ।ऽ
५. जगण - मध्य गुरु - ।ऽ।　　६. भगण - आदि गुरु -ऽ।।
७. नगण - सर्वलघु - ।।।　　८ मगण - अन्तगुरु - ।।ऽ

---

१ वही पृ.- १ १७
२ वही पृ - २ 18
३ मुद्रा. पृ ३ १९

श्लोक के प्रत्येक चरण का इन्ही गणो मे विभाजन कर छन्द की व्यवस्था की जाती है। गणो मे वर्णो का विभाजन कर लेने पर एक चरण मे दो या एक वर्ण बचे रह सकते है। उनमे से दोनो गुरु भी हो सकते है, लघु भी, अथवा लघु गुरु भी हो सकते है। इसी प्रकार अवशिष्ट एक वर्ण लघु हो सकता है या गुरु।

आर्या आदि मात्रिक छन्दो मे पॉच गण होते है उनका स्वरूप इस प्रकार है- सर्वगुरु ऽऽऽ, अन्तगुरु ।।ऽ, मध्यगुरु ।ऽ।, आदिगुरु ऽ।। तथा सर्वलघु ।।।, इसमें लघु की एक तथा गुरु की दो मात्राएँ ही होती है।

गुरु लघु वर्ण- दीर्घ स्वर से युक्त वर्ण गुरु होता है तथा ह्रस्व स्वर से युक्त वर्ण लघु। सानुस्वार तथा जिसके बाद विसर्ग हो अथवा जिसके अव्यवहित बाद व्यञ्जनसंयोग हो तो ह्रस्व स्वर भी गुरु होता है। पाद के अन्त मे ह्रस्व स्वर प्रयोजनानुसार गुरु भी होता है लघु भी।

पाद - श्लोक को चार भागो मे बॉटने पर प्रत्येक भाग को पाद कहते है। इसे चरण भी कहते है।

यति - विराम यति है। श्लोक मे माधुर्य के प्रयोजन से जहॉ विराम किया जाता है उसे यति कहते है। प्रत्येक छन्द मे यतिस्थान नियत होते है। लक्षणो मे इनका निर्देश तृतीयान्त पदो के द्वारा किया जाता है।

वृत्तभेद - सामान्यतः चार पादो से निर्मित होते है। इनके तीन भेद है- (१) सम (२) अर्धसम तथा (३) विषम। जिस छन्द के चारो पाद समान लक्षण से युक्त होते है वे समवृत्त है। जिस छन्द के प्रथम एवं तृतीय तथा द्वितीय एवं चतुर्थ पाद समान हो वह अर्धसम वृत्त है। जिस छन्द के चारो चरणो के लक्षण परस्पर भिन्न हो उसे विषम वृत्त कहते है।

मुद्राराक्षस में प्रयुक्त छन्द - विशाखदत्त ने इस नाटक मे १९ प्रकार के छन्दो का विभिन्न स्थानों पर प्रयोग किया है। औचित्य को ध्यान में रखते हुए नाटककार ने छन्दो का चयन विषयानुरूप किया है। शिव की शठता एवं ताण्डव नृत्य की दुष्करता को व्यक्त करने के लिए इन्होंने नाटक के नान्दी पद्यो मे स्रग्धरा छन्द का प्रयोग किया है-

धन्या केयं स्थिता ते शिरसि शशिकला किन्नु नामैतदस्याः,[१]

पादस्याविर्भवन्तीमवनतिमवने रक्षतः स्वैरपातैः,[२]

आदि श्लोको के द्वारा जो भाव व्यक्त किया गया है वह स्रग्धरा के अतिरिक्त अन्य किसी छन्द के द्वारा प्रभावोत्पादक रीति से नही किया जा सकता। चाणक्य की गर्वोक्ति की भी प्रभावपूर्ण अभिव्यक्ति के लिए नाटककार ने स्रग्धरा वृत्त का प्रयोग किया है-

श्यामीकृत्याननेन्दूनरियुवतिदिशां सन्ततैः शोकधूमैः

कामं मन्त्रिद्रुमेभ्यो नयपवनहृतं मोहभस्म प्रकीर्य।

दग्ध्वा सम्भ्रान्तपौरद्विजगणरहितान् नन्दवंशप्ररोहान्

दाह्याभावान्न खेदाज्ज्वलन इव वने शाम्यति क्रोधवह्निः।।

इसी प्रकार के विषयो को प्रस्तुत करने के लिए पूरे नाटक मे स्रग्धरा वृत्त का २४ स्थानो पर प्रयोग किया गया है। नाटककार द्वारा मलयकेतु के औद्धत्य को प्रतिपादित करने के लिए सुवदना छन्द का प्रयोग द्रष्टव्य है-

उत्तुङ्गास्तुङ्गकूलं स्रुतमदसलिलाः प्रस्यन्दिसलिलं

श्यामाः श्यामोपकण्ठद्रुममतिमुखराः कल्लोलमुखरम् ।

स्रोतःखातावसीदत्तटमुरुदशनैरुत्सादिततटाः

शोणं सिन्दूरशोणा मम गजपतयः पास्यन्ति शतशः।।[४]

इसी प्रकार वसन्ततिलका शिखरिणी प्रहर्षिणी आदि छन्दों का भी औचित्यपूर्ण प्रयोग नाटक मे दृष्टिगत होता है। चाणक्य के कथनो मे वसन्ततिलका छन्द का प्रयोग द्रष्टव्य है -

१ आस्वादितद्विरदशोणितशोणशोभां

---

[१] मुद्रा. १.१

[२] वही, १.२

[३] वही, १.११

[४] वही, ४ १६

सन्ध्यारुणामिव कलां शशलाञ्छनस्य।

जृम्भाविदारितमुखस्य मुखात् स्फुरन्ती

को हर्तुमिच्छति हरेः परिभूय दंष्ट्राम् ।।[1]

२. उल्लङ्घयन् मम समुज्ज्वलतः प्रतापम्

कोपस्य नन्दकुलकाननधूमकेतोः।

सद्यः परात्मपरिमाणविवेकमूढः

कः शालभेन विधिना लभतां विनाशम् ।।[2]

३. स्वच्छन्दमेकचरमुज्ज्वलदानशक्ति-

मुत्सेकिना मदबलेन विगाहमानम् ।

बुद्ध्या निगृह्य वृषलस्य कृते क्रियाया-

मारण्यकं गजमिव प्रगुणीकरोमि।।

मुद्राराक्षस मे किस छन्द का किन किन स्थानो पर नाटककार ने प्रयोग किया है, लक्षण सहित उनका पूर्ण विवरण अधोलिखित सारणी मे प्रस्तुत किया गया है-

---

१ मुद्रा. १.८

२ वही १.१०

छन्दोनाम	वर्णसंख्या	प्रयोग के स्थान	योग	लक्षण
अनुष्टुप्	८	I 3, 15, 24, 25, II 20, 21, 23, III 23, 31, IV 8, 9, 10, V 14, 17, 23, VI 15, 18, VII 8, 9, 13, 14, 17	२२	पञ्चम लघु सर्वत्र सप्तम द्विचतुर्थयो। गुरु षष्ठ च पादाना चतुर्णा स्यादनुष्टुभि।।
इन्द्रवज्रा	११	V 8	१	स्यादिन्द्रवज्रा यदि तौ जगौ ग। उपेन्द्रवज्रा जतजास्ततो गौ।
उपजाति		II 3	१	अनन्तरोदीरितलक्ष्म भाजौ। पादौ यदीयावुपजातयस्ता।।
वशस्थविल	१२	IV 13	१	वदन्ति वशस्थविल जतौ जरौ।
प्रहर्षणी	१३	I 7, III 12, V 13	३	त्र्याशाभिर्मनजरगा प्रहर्षणीयम् ।
रुचिरा		II 4, V 6	२	चतुर्ग्रहर्वद रुचिरा जभस्जगा।
वसन्ततिलका	१४	I 9, 23, 27, II. 7, 9, 18, III. 9, 17, 18, 30, 32, IV 6, 11, 16, V 7, 16, VI. 7, 13, VII 15	१९	उक्ता वसन्ततिलका तभजा जगौ ग।
मालिनी	१५	III 15, 25, VI 1, 3	३+१	ननमयययुतेयं मालिनी भोगिलोकै।
शिखरिणी	१७	I 12, II 8, 11, III 3, 4, 7, 8, IV 16, 28 V 3, 4, 12, VI 6, 11, VII 12, 14, 17	१८	रसै रुद्रैश्छिन्ना यमनसभलाग शिखरिणी।
हरिणी		III 6, IV 2, VI 20	३	नसमरसलाग षड्वेदैर्हयैर्हरिणी मता।
पृथ्वी		VI 16	१	जसौ जसलया वसुग्रहयतिश्च पृथ्वी गुरु।
मन्दाक्रान्ता		VI. 19	१	मन्द्राक्रान्ता जलधिषडगैर्मो भनौ तौ गयुग्मम्।
शार्दूलविक्रीडीत	१९	I 11, 13, 14, 22, 26, II 5, 6, 10, 13, 14, 16, 17, 22, 24, III 1, 2, 5, 13, 14, 26, IV 5, 14, V 5, 10, 15, 18, 21, 22, 25, VI 5, 8, 10, VII 5, 6, 7, 10, 16,	३७	सूर्याश्वैर्यदि म सजौ सततगा शार्दूलविक्रीडितम्।
सुवदना	२०	IV 15	१	अश्वैरश्वैश्च षड्भिर्मरभनयभला ग स्यात् सुवदना।
स्रग्धरा	२१	I 1, 2, 10, 19, II 15, III 10, 19, 20, 21, 22, 24, 27, 29, IV 3, 7, 12, 21, V 11, 19, 20, 24, VI 9, 21, VII 18	२४	म्रभ्नैर्यानां त्रयेण त्रिमुनियतियुता स्रग्धरा कीर्तितेयम् ।

माल्यभारिणी	११/१२	VII 11, 12	२	विषमे ससजा गुरू समे चेत् सभरा यो वद माल्यभारिणी ताम्।
पुष्पिताग्रा	१२/१३ Number of syllabic instants	I 4	१	अयुजि नयुगरेफतो यकारो युजि च नजौ जरगाश्च पुष्पिताग्रा।
आर्या	३०/२७	I 5, 6, 8, 16, 17, 18, 20, 21, II 1, 2, 12, 19 IV 1, 4, 17, 18, 19, 20 V 1, 2, 9 VI 2, 4 VII 1, 2, 3, 4	२७	पूर्वार्धे सप्त गणा अजविषमा स्युश्चतुष्कला गश्च। षष्ठो जो वा न्लौ वा ल उत्तरार्धे भवत्यायी।।
गीति		IV 20		आर्या प्रथमार्धसमं यस्या परार्धमीरिता गीति।

I 16, 11 1, V 2, VI 2 तथा VII 2 श्लोको मे विपुला आर्या है तथा शेष मे पथ्या।

अलङ्कार एवं गुण - काव्य अथवा नाटक मे अलङ्कारो एवं गुणो के प्रयोग से शब्दार्थ का उत्कर्ष कर रस का उत्कर्ष किया जाता है। अलङ्कार कविता मे चमत्कृति उत्पन्न करते है किन्तु यदि कविता सरस होती है तो उस स्थिति मे अलङ्कार उस रस मे उत्कर्ष का आधान करते है। यद्यपि जिन कविताओ मे नैसर्गिक शोभा प्रोद्दीप्त हो रही हो वहॉ अलङ्कारादि की अप्रधानता ही रहती है, फिर भी अलङ्कारो की कविता मे आवश्यक स्थिति इसलिए स्वीकार की जाती है कि ये युक्ति के अविभाज्य अङ्ग बनकर अन्तस्तत्त्व लावण्य मे ही अन्तर्भूत होकर कवि या नाटककार के अभिप्राय के समग्रतत्त्व को और अधिक सशक्त रूप मे प्रस्तुत कर देते है। इसीलिए कवि प्रसङ्ग विशेष के अनुरूप अलङ्कारो का प्रयोग करते है। आलङ्कारिक आचार्यो ने अलङ्कारो का स्वरूप निरूपित करते हुए माना है कि अलङ्कारो के प्रयोग से वाक्यो मे उत्कर्ष आ जाता है तथा वक्ता आदि के अभिप्रायो की सशक्त अभिव्यक्ति होती है। जिस प्रकार हार आदि आभूषण कण्ठादि अङ्गो मे उत्कर्षाधान के द्वारा शरीरी को भी उपकृत करते है उसी प्रकार शब्द एवं अर्थ के उत्कर्ष का प्रतिपादन करते हुए जो तत्त्व काव्य के प्राणभूत तत्त्व रस का उपकार करते है वे अनुप्रास उपमा आदि अलङ्कार कहे जाते है।[१] गुणो द्वारा भी रस का उत्कर्ष किया जाता है किन्तु गुणों एवं अलङ्कारो में एक मौलिक अन्तर है। गुण काव्यशोभा के विधायक होते है जब कि गुणो के द्वारा उत्पादित काव्य शोभा में अतिशयता का उपपादन अलङ्कारो का कार्य है। इन दोनो मे यही मौलिक अन्तर है। जिस प्रकार शौर्य आदि आत्मा के नित्यधर्म होते है तथा उसके उत्कर्ष की नित्य अभिव्यक्ति करते है उसी प्रकार गुण अङ्गी रस के नित्य धर्म हैं तथा उसके उत्कर्ष की नित्य अभिव्यक्ति करते है। इनकी स्थिति अव्यभिचरित होती है।[२] ये रस के विना नही रह सकेत रहने पर

---

१ उपकुर्वन्ति तं सन्तं येऽङ्गद्वारेण जातुचित् ।
हारादिवदलङ्कारास्तेऽनुप्रासोपमादयः।। काव्य प्रकाश ८.६७

२ ये रसस्याङ्गिनो धर्माः शौर्यादय इवात्मनः।

रस का उपकार अवश्य करते है। जबकि अलङ्कारो की स्थिति स्थिर नही होती। वे कही उपस्थित होकर भी रस का उपकार नही करते तथा कहीं रस के न रहने पर भी उपस्थित रहते हैं। इसी कारण इन्हे गुणो मे पृथक् माना जाता है।

विशाखदत्त ने मुद्राराक्षस मे काव्यशोभा की अभिवृद्धि एवं अपने पात्रो के भावो की सशक्त अभिव्यक्ति के लिए प्राय: सभी अलङ्कारो का समुचित प्रयोग किया है। विषयानुरूप अलङ्कारो के चयन मे नाटककार सिद्धहस्त प्रतीत होते है। उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक, काव्यलिङ्ग, स्वभावोक्ति, व्यतिरेक आदि अलङ्कारो का इन्होने व्यापक प्रयोग किया है।

उपमा - उपमान एवं उपमेय का साधर्म्य उपमा अलङ्कार है। यह साधर्म्य सादृश्य का प्रयोजक होता है। साधर्म्य के कारण ही उपमान से उपमेय का सादृश्य स्थापित किया जाता है। उपमा अलङ्कार की प्रस्तुति मे (१) उपमान (२) उपमेय (३) साधारण धर्म तथा (४) वाचक शब्द, जहॉ इन चारो का प्रयोग किया गया रहता है वहॉ पूर्णोपमा होती है। इनमे से किसी का लोप होने पर लुप्तोपमा। विशाखदत्त ने विषयानुरूप उपमाओ का प्रयोग किया है। चतुर्थ अङ्क मे पूर्णोपमा का उदाहरण द्रष्टव्य है'

गम्भीरगर्जितरवाः स्वमदाम्बुमिश्रमासारवर्षमिव शीकरमुद्गिरन्त्यः।

विन्ध्यं विकीर्णसलिला इव मेघमाला रुन्धन्तु वारणघटा नगरं मदीयाः।।[१]

इस उदाहरण मे मेघमालाएँ उपमान हैं वारणघटाएँ उपमेय है। गम्भीरगर्जितखत्व विकीर्णसलिलत्व साधारण धर्म है तथा उपमा का वाचक इव शब्द भी प्रयुक्त है अतः यह पूर्णोपमा का उदाहरण है।

प्रथम अङ्क मे चाणक्य की उक्ति मे पूर्णोपमा का प्रयोग विषयानुकूल उत्कृष्टता से युक्त है-

शोचन्तोऽवनतैर्नराधिपभयात् धिक्शब्दगर्भैर्मुखै-

उत्कर्षहेतवस्ते स्युरचलस्थितो गुणाः।। वही, ८.६६

१ मुद्रा. ४.१७

र्मामग्रासनतोऽवकृष्टमवशं ये दृष्टवन्तः पुरा।

ते पश्यन्ति तथैव सम्प्रति जना नन्दं मया सान्वयं

सिंहेनेव गजेन्द्रमद्रिशिखरात् सिंहासनात् पातितम् ।।[1]

सिंह गजेन्द्र, अद्रिशिखर उपमान है चाणक्य सान्वय नन्द सिंहासन उपमेय है पातित्व साधारण धर्म है इव शब्द उपमा का वाचक है। अतः यह भी पूर्णोपमा का उदाहरण है। यहाँ पराक्रम रूप साधारण धर्म गम्य भी है।

इसी प्रकार तृतीय अङ्क मे राजलक्ष्मी की दुराराध्यता का विचार करने वाले चन्द्रगुप्त की इस उक्ति मे उपमा का सुन्दर प्रयोग द्रष्टव्य है-

तीक्षादुद्विजते, मृदौ परिभवत्रासान्न सन्तिष्ठते,

मूर्ख द्वेष्टि, न गच्छति प्रणयितामत्यन्तविद्वत्स्वपि।

शूरेभ्योऽप्यधिकं बिभेत्युपहसत्येकान्तभीरूनहो

श्रीर्लब्धप्रसरेव वेशवनिता दुःखोपचर्या भृशम् ।।[2]

यहाँ वेशवनिता उपमान है राज्यलक्ष्मी उपमेय है भृशं दुःखोपचर्यत्व साधारण धर्म है इव शब्द उपमा का वाचक है अतः यह भी पूर्णोपमा का उदाहरण है।

विशाखदत्त ने पञ्चम अङ्क मे विषयानुरूप उपमा का उत्तम निदर्शन प्रस्तुत किया है-

विष्णुगुप्तं च मौर्य च सममप्यागतौ त्वया।

उन्मूलयितुमीशोऽहं त्रिवर्गमिव दुर्नयः।।[3]

राक्षस पर क्रुद्ध होकर मलयकेतु कहता है चाणक्य एवं चन्द्रगुप्त दोनों तुम्हारें साथ मिलकर भी यदि मेरे सामने आते हैं तो दुर्नय जैसे धर्म, अर्थ

---

१ मुद्रा. १.१२

२ मुद्रा. ३.५

३ वही, ५.२२

एव काम को नष्ट कर देता है उसी प्रकार तुम तीनो को नष्ट करने मे मै समर्थ हूँ।

यहाँ पर दुर्नय एवं त्रिवर्ग उपमान है। मलयकेतु, चाणक्य, चन्द्रगुप्त एवं राक्षस उपमेय है। उन्मूलनसामर्थ्य साधारण धर्म है। इव उपमा का वाचक शब्द है। यहाँ पर कितनी सजीवता से विशाखदत्त ने रोषावेश से युक्त मलयकेतु के दौरात्म्य की अभिव्यक्ति के लिए दुर्नय से उसकी उपमा प्रस्तुत की है तथा चाणक्य चन्द्रगुप्त एवं राक्षस की उद्योग व्यापृतता के कारण त्रिवर्ग धर्म अर्थ एवं काम से। लुप्तोपमा का उदाहरण नाटककार ने इस रूप मे प्रस्तुत किया है-

शिखां मोक्तुं बद्धामपि पुनरयं धावति करः

प्रतिज्ञामारोढुं पुनरपि चलत्येष चरणः।

प्रणाशान्नन्दानां प्रशममुपयातं त्वमधुना

परीतः कालेन ज्वलयसि मम क्रोधदहनम् ।[१]

यहाँ पर चन्द्रगुप्त उपमेय है। काल के द्वारा वशीकृत कोई व्यक्ति उपमान है। कालवशीकृतत्व साधारण धर्म है किन्तु उपमा का वाचक इव शब्द लुप्त है अतः यह वादि लुप्तोपमा का उदाहरण है।

उत्प्रेक्षा- भामह दण्डी मम्मट आदि आचार्यो ने उत्प्रेक्षा का प्रायः एक ही लक्षण प्रस्तुत किया है। उपमेय की उपमान के साथ तादात्म्य अर्थात् एकरूपता से जो सम्भावना की जाती है वह उत्प्रेक्षा है।[२] मन्ये, शङ्के, ध्रुवं, प्रायः नूनम्, इति, एवम्, इव आदि के प्रयोग करने पर वाच्योत्प्रेक्षा होती है अन्यथा गम्योत्प्रेक्षा।

नाटककार ने उपमा के समान उत्प्रेक्षा अलङ्कार का भी व्यापक प्रयोग किया है। तृतीय अङ्क मे कृतक कलह के अवसर पर चाणक्य के रौद्र रूप की कल्पना में कवि ने उत्प्रेक्षा अलङ्कार का समुचित सन्निवेश किया हैं-

---

१ मुद्रा ३ २९

२ सम्भावनमथोत्प्रेक्षा प्रकृतस्य समेन यत् । का. प्र. १०.१३६

संरम्भस्पन्दिपक्ष्मक्षरदमलजलक्षालनक्षामयापि
भ्रूभङ्गोद्भेदधूमं ज्वलितमिव पुन पिङ्गया नेत्रभासा।
मन्ये रुद्रस्य रौद्रं रसमभिनयतस्ताण्डवे संस्मरन्त्या
संजातोदग्रकम्पं कथमपि धरया धारित पादघात ।।[1]

अर्थात् क्रोधावेश से ऊपर चलते हुए पलको से गिरते हुए विशद क्रोधाश्रुओ से धोने के कारण मन्द भी लाल नेत्रो की ज्वाला से भृकुटि-भङ्गिमारूपी धुऑ मानो सम्मुख प्रदीप्त हुआ है। मै ऐसा मानता हूँ कि चाणक्य के पादघात को पृथ्वी ने बड़ी कठनाई से धारण किया क्योकि उसको ताण्डव नृत्य के रौद्ररस का अभिनय करते हुए रुद्र की स्मृति आ गयी। यहॉ चाणक्य के पादघात की सम्भावना रुद्र के ताण्डव नृत्य के समय चरण प्रहार के रूप मे की गयी है। उत्प्रेक्षा-वाचक मन्ये का प्रयोग किया गया है अतः यह उत्प्रेक्षा अलङ्कार का उदाहरण है।

विशाखदत्त ने चन्द्रगुप्त के सिंहासन धारण से पृथ्वी की मूर्च्छा की उत्प्रेक्षा की है-

आलिङ्गन्तु गृहीतधूपसुरभीन् स्तम्भान् पिनद्धस्रजः,
सम्पूर्णेन्दुमयूखसंहतिरुचां सच्चामराणां श्रियः।
सिंहाङ्कासनधारणाच्च सुचिरे सञ्जातमूर्च्छामिव
क्षिप्रं चन्दवारिणा सकुसुमः सेकोऽनुगृह्णातु गाम।।[2]

अत्यन्त गौरवशाली राजसिंहासन सुगाङ्गभूमि पर स्थित है जिसको धारण करने से मानो जिस पृथ्वी मे मूर्च्छा उत्पन्न हो गयी है ऐसी पृथ्वी का सिञ्चन किया जाय। इस रूप में यहाँ पर वस्तु की उत्प्रेक्षा की गयी है। यहाँ पर चामरों की शोभाएँ स्तम्भों का आलिङ्गन करें ऐसा कहने से कामियों के उपभोग की प्रतीति कराने से समासोक्ति अलङ्कार भी प्रयुक्त हुआ है।

---

१ मुद्रा. ३.३०

२ मुद्रा. ३.२

विषयानुरूप उत्प्रेक्षा के अन्य उदाहरण भी द्रष्टव्य हैं-

क्षताङ्गानां तीक्ष्णैः परशुभिरुदग्रैः क्षितिरुहां

रुजा कूजन्तीनामविरतकपोतोपरुदितैः।

स्वनिर्मोकच्छेदैः परिचितपरिक्लेशकृपया

श्वसन्तः शाखानां व्रणमिव निबध्नन्ति फणिनः।।[१]

कुल्हाड़ी से शाखाओ के काटे जाने के कारण घाव की पीड़ा में वृक्षों का उच्चैः रुदन कबूतरो की ध्वनि के माध्यम से अभिव्यक्त हो रहा है। इससे दयाभाव से युक्त होकर सर्प अपनी केचुल से मानो वृक्षो के घावो पर पट्टी कर रहे है।

अन्तः शरीरपरिपोषमुदग्रयन्तः कीटक्षतिं शुचमिवातिगुरुं वहन्तः।

क्षायावियोगमलिना व्यसने निमग्ना वृक्षाः श्मशानमुपगन्तुमिव प्रवृत्ता।।[२]

कीटक्षति के कारण निर्गत वृक्षो का रस ही मानो उनके ऑसू हैं। शाखाओ के कट जाने के कारण सूर्य की तेज धूप मे ये सूख गये है। सूखे हुए वृक्ष मानों विपत्तिग्रस्त होकर श्मशान मे जाने की तैयारी कर रहे है। यहॉ पर भी कवि ने उत्प्रेक्षा अलङ्कार के माध्यम से जीर्णोद्यान की अरमणीयता को प्रस्तुत किया है।

विशाखदत्त ने इसी स्थान पर नान्दीनाद की अनेक रूपो मे कल्पना प्रस्तुत की है-

प्रमृद्नञ्छ्रोतॄणां श्रुतिपथमसारं गुरुतया

बहुत्वात्प्रासादैः सपदि परिपीतोज्झित इव।

असौ नान्दीनादः पटुपटहशङ्खध्वनियुतो

दिशां द्रष्टुं दैर्घ्यं प्रसरति सकौतूहल इव।[१]

---

१ मुद्रा. ६.१२

२ वही ६.१३

पटुपटहशङ्खध्वनि से युक्त इस नान्दीनाद का प्रासादों ने पहले पान किया था किन्तु आधिक्य के कारण मानो प्रतिध्वनि के रूप मे उसका वमन कर रहे है। यह नान्दीनाद दिशाओ की दूरी को मापने के लिए कौतुक से युक्त हुआ मानो सभी दिशाओ मे फैल रहा है। इस प्रकार यहाँ उत्प्रेक्षा अलङ्कार है।

रूपक - जिनका पार्थक्य स्पष्ट है ऐसे उपमान एवं उपमेय का सादृश्यातिशयवशात् अभेदवर्णन रूपक अलङ्कार है।

विशाखदत्त ने मुद्राराक्षस मे रूपक अलङ्कार का अनेक स्थानो पर प्रयोग किया है-

श्यामीकृत्याननेन्दूनरियुवतिदिशां सन्ततैः शोकधूमैः

कामं मन्त्रिद्रुमेभ्यो नयपवनहृतं मोहभस्म प्रकीर्य।

दग्ध्वा सम्भ्रान्तपौरद्विजगणरहितान् नन्दवंशप्ररोहान्

दाह्याभावान्न खेदाज्ज्वलन इव वने शाम्यति क्रोधवह्निः।।[2]

इस श्लोक मे नाटककार ने अनेक रूपको का प्रयोग किया है। रिपुस्त्रियो एवं दिशाओ, आनन एवं इन्दु, शोक एवं धूम, मन्त्रि एवं द्रुम, नय एवं पवन, मोह एवं भस्म, पौर एवं द्विजगण, नन्द एवं वंश तथा क्रोध एवं वह्नि मे परस्पर अभेद का प्रतिपादन किया गया है। इसमे क्रोध उपमेय पर वह्नि उपमान का आरोप प्रधान रूपक है। इसके उपपादन के लिए रिपुस्त्रियो पर दिशाओ का, आनन पर इन्दु का, शोक पर धूम का, मन्त्रियो पर द्रुमो का, नय पर पवन का, मोह पर भस्म का, नगरवासियो पर पक्षिसमूह का तथा नन्दों पर वंशप्ररोहो का आरोप नाटककार ने बड़ी कुशलता से प्रस्तुत किया है। यह समस्तवस्तुविषय रूपक का उदाहरण है। क्योंकि यहाँ पर आरोपविषय के साथ आरोप्यमाण को भी शब्दतः कहा गया है।

---

१ मुद्रा ६.१४

२ मुद्रा. १ ११

निम्नलिखित पद्य मे विशाखदत्त ने अनुभय ताद्रूप्य रूप रूपक अलङ्कार का प्रयोग किया है-

उल्लङ्घयन् मम समुज्ज्वलत॰ प्रतापम्

कोपस्य नन्दकुलकाननधूमकेतो॰।

सद्य॰ परात्मपरिमाणविवेकमूढ॰

क॰ शालभेन विधिना लभतां विनाशम् ।।[1]

यहाँ पर नन्दकुल एवं कानन का तथा वह्नि एवं कोप का न्यूनाधिक्य रहित ताद्रूप्य बताया गया है अत॰ इस अनुभयताद्रूप्य रूप रूपक का उदाहरण है। इसी प्रकार नाटक के भरत वाक्य मे चन्द्रगुप्त का विष्णु के रूप मे वर्णन भी अनुभयताद्रूप्यरूप रूपक का उदाहरण है।

नाटककार ने मुद्राराक्षस के निम्नलिखित पद्य में व्यस्तरूपक का भी उदाहरण प्रस्तुत किया है-

गृध्रैराबद्धचक्रं वियति विचलितैर्दीर्घनिष्कम्पपक्षै-

र्धूमैर्ध्वस्तार्कभासां सघनमिव दिशां मण्डलं दर्शयन्तः।

नन्दैरानन्दयन्तः पितृवननिलयान् प्राणिनः पश्य चैतान्

निर्वान्त्यद्यापि नैते स्रुतबहलवसावाहिनो हव्यवाहाः।।[2]

प्रज्वलित अग्नियों के अङ्गारमात्र शेष रह जाने के कारण वास्तविक धूम के अभाव मे गृध्रों का ही धूमत्वेन वर्णन होने के कारण यह व्यस्तरूपक का उदाहरण है। औचित्य की दृष्टि से मुद्राराक्षस के द्वितीय अङ्क मे तेईसवे श्लोक मे प्रतिपादित प्रतिज्ञा एवं अर्णव का ताद्रूप्य, रूपक अलङ्कार का उत्तम निदर्शन है।

अर्थान्तरन्यास - सामान्य का विशेष के द्वारा तथा विशेष का समान्य के द्वारा जहाँ समर्थन किया जाता है वहाँ अर्थान्तरन्यास अलङ्कार होता है।

---

[1] मुद्रा १ १०

[2] वही, ३.२८

सामान्य का विशेष के द्वारा अथवा विशेष का सामान्य के द्वारा यह समर्थन साधर्म्य अथवा वैधर्म्य इन दो प्रकारो से किया जाता है अतः इस अलङ्कार के चार भेद हो जाते है।

मुद्राराक्षस मे अर्थान्तरन्यास अलङ्कार के अनेक उत्तम उदाहरण प्राप्त होते है। द्वितीय अङ्क मे राक्षस के द्वारा लक्ष्मी की भर्त्सना मे अर्थान्तरन्यास का आश्रय लेकर प्रभाव उत्पन्न किया गया है-

पृथिव्यां किं दग्धाः प्रथितकुलजा भूमिपतयः

पतिं पापे मौर्य यदसि कुलहीनं वृतवती?

प्रकृत्या वा काशप्रभवकुसुमप्रान्तचपला

पुरन्ध्रीणां प्रज्ञा पुरुषगुणविज्ञानविमुखी।।[1]

'स्त्रियो की काशपुष्पाग्र के समान अत्यधिक चञ्चल प्रज्ञा स्वभावतः पुरुषो के गुणो को पहचानने मे असमर्थ होती है' इस सामान्य से 'क्या पृथिवी के सभी प्रसिद्ध भूपति समाप्त हो गये है जो कुलहीन मौर्य का पति के रूप मे तुमने वरण किया है?' इस विशेष का समर्थन किया गया है। स्त्रियो की प्रज्ञा एवं राज्यलक्ष्मी इन दोनो मे साधर्म्य है- 'पुरुषगुणविज्ञानविमुखत्व' तथा 'काशकुसुमप्रान्तचपलत्व।' अतः यह साधर्म्य के द्वारा सामान्य से विशेष का समर्थन रूप अर्थान्तरन्यास अलङ्कार है।

अस्ताभिलाषी भगवान् भास्कर का वर्णन करने के लिए चतुर्थ अङ्क मे विशाखदत्त ने अर्थान्तरन्यास अलङ्कार का प्रयोग किया है-

आविर्भूतानुरागाः क्षणमुदयगिरेरुज्जिहानस्य भानोः

पर्णच्छायैः पुरस्तादुपवनतरवो दूरमाश्वेव गत्वा।

एते तस्मिन्निवृत्ताः पुनरपरगिरिप्रान्तपर्यस्तबिम्बे

प्रायो भृत्यास्त्यजन्ति प्रचलितविभवं स्वामिनं सेवमानाः।।[2]

---

[1] मुद्रा २.७

[2] मुद्रा ४.२२

उदय के समय सूर्य का वृक्ष पर्णच्छाया से कुछ दूर तक अनुसरण कर अस्त होने के समय लौट आये इस विशेष का प्रायः विभवरहित स्वामी को भृत्य छोड़ देते है इस सामान्य के द्वारा समर्थन किया गया है। यह भी साधर्म्यमूलक सामान्य से विशेष का समर्थन रूप अर्थान्तरन्यास है। यहाँ पर अर्थान्तरन्यास से राक्षस के भाव की प्रभावपूर्ण अभिव्यक्ति हुई है।

वक्रोक्ति - वक्ता के द्वारा अन्य अभिप्राय से कहे गये वाक्य की श्रोता द्वारा काकु अथवा श्लेष के माध्यम से अन्य अर्थ मे जहाँ कल्पना कर ली जाती है वहाँ वक्रोक्ति अलङ्कार होता है।

नान्दीपाठ मे विशाखदत्त ने वक्रोक्ति का सुन्दर निदर्शन प्रस्तुत किया है-

धन्या केयं स्थिता ते शिरसि शशिकला किन्नु नामैतदस्याः

नामैवास्यास्तदेतत् परिचितमपि ते विस्मृतं कस्य हेतोः।

नारी पृच्छामि नेन्दुं कथयतु विजया न प्रमाणं यदीन्दु-

र्देव्या निह्नोतुमिच्छोरिति सुरसरितं शाठ्यमव्या द्विभोर्वः।।[1]

नाटककार ने यहाँ पर काकु वक्रोक्ति के द्वारा नाटकीय वस्तु का निर्देश किया है।

स्वभावोक्ति- बालक आदि की अपनी स्वाभाविक क्रिया, रूप अर्थात् वर्ण एवं अवयवसंस्थान आदि का वर्णन स्वभावोक्ति अलङ्कार है।

नाटककार ने नाटक की प्रस्तावना मे घर के किसी उत्सव की तैयारी का वर्णन स्वभावोक्ति के द्वारा आकर्षक ढंग से प्रस्तुत किया है-

वहति जलमियं पिनष्टि गन्धानियमुद्ग्रथते स्रजो विचित्राः।

मुसलमिदमियं च पातकाले मुहुरनुयाति कलेन हुंकृतेन।।[2]

---

[1] मुद्रा. १ १

[2] वही १.४

इसी प्रकार चतुर्थ अङ्क मे मलयकेतु की सेना-सनाह के वर्णन की स्वाभाविकता द्रष्टव्य है-

सोत्सेधै स्कन्धदेशै खरतरकविकाकर्षणात्यर्थभुग्नै-

रश्वा कैश्चिन्निरुद्धा खमिव खुरपुटै खण्डयन्तः पुरस्तात् ।

केचिन्मातङ्गमुख्यैर्विहतजवतया मूकघण्टैर्निवृत्ता

मर्यादां भूमिपाला जलधय इव ते देव। नोल्लङ्घयन्ति।।[१]

काव्य लिङ्ग - हेतु का वाक्यार्थ अथवा पदार्थ रूप मे कथन काव्यलिङ्ग अलङ्कार है।

मुद्राराक्षस मे अपने अभिप्राय को हेतु से परिपुष्ट रूप मे अभिव्यक्त करने के उद्देश्य से नाटककार ने काव्यलिङ्ग अलङ्कार का आश्रय लिया है।

वामां बाहुलतां निवेश्य शिथिलं कण्ठे विवृत्तानना

स्कन्धे दक्षिणया बलान्निहितयाप्यङ्के पतन्त्या मुहुः।

गाढालिङ्गनसङ्गपीडितमुखं यस्योद्यमाशङ्किनी

मौर्यस्योरसि नाधुनापि कुरुते वामेतरं श्रीः स्तनम् ।।[२]

मौर्य की राज्यलक्ष्मी आज भी राक्षस के उद्यम की आशङ्का से उसका गाढालिङ्गन नही कर रही है। गाढालिङ्गन करने के प्रति राक्षसोद्यमाशङ्कित्व रूप कारण पदार्थो के रूप मे प्रस्तुत किया गया है अतः यहॉ काव्यलिङ्ग अलङ्कार है।

कृतक कलह के लिए प्रस्तुत चन्द्रगुप्त की निम्न उक्ति मे काव्यलिङ्ग अलङ्कार की सुन्दर प्रस्तुति हुई है-

परार्थानुष्ठाने रहयति नृपं स्वार्थपरता

परित्यक्तस्वार्थो नियतमथार्थो क्षितिपतिः।

---

१ वही ४.७

२ मुद्रा. २.१२

परार्थश्चेत् स्वार्थादभिमततरो, हन्त परवान्

परायत्तः प्रीतेः कथमिव रसं वेत्ति पुरुष।।[1]

दूसरो का प्रयोजन सिद्ध करने मे विषयो के उपभोग राजा को छोड देते है। अपने स्वार्थ से विमुख राजा अवास्तविक है। यदि अपने स्वार्थ मे परार्थ अधिक अभीष्ट है तो यह उसकी पराधीनता है। राजा अपने विषयोपभोग के लिए स्वतन्त्र नही है इसलिए वह दूसरो की भलाई के लिए अपने कर्तव्य के प्रति परतन्त्र है। पराधीन को सुखानुभूति कैसी। यहाँ राजा की अयथार्थता के कारण के रूप मे स्वार्थ से विमुख होना प्रस्तुत किया गया है अतः यह काव्यलिङ्ग अलङ्कार का उदाहरण है।

समासोक्ति - श्लिष्ट विशेषणो के द्वारा प्रकृत अर्थ के प्रतिपादक वाक्य से अप्रकृत अर्थ का भी कथन समासोक्ति अलङ्कार है।

मुद्राराक्षस मे समासोक्ति अलङ्कार के माध्यम से मलयकेतु का निग्रह, राक्षस के मद का अपहरण तथा चन्द्रगुप्त के विनय को प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत किया गया है-

अपामुद्वृत्तानां निजमुपदिशत्या स्थितिपदं

दधत्या शालीनामवतिमुदारे सति फले।

मयूराणामुग्रं विषमिव हरन्त्या मदमहो

कृतः कृत्स्नस्यायं विनय इव लोकस्य शरदा।।[2]

यहाँ पर 'उद्वृत्तानाम्' विशेषण के द्वारा मलयकेतु के भावी निग्रह, 'उग्रम् मदम्' इन विशेषणो के द्वारा राक्षस के अत्युग्र विक्रमनीतिविषयक विष के समान मद के अपहरण तथा विनय विशेषण के द्वारा साम्राज्य का लाभ करने वाले महोन्नतिशील चन्द्रगुप्त तथा 'विनयः' इन अप्रस्तुत अर्थो का

---

[1] वही ३.४

[2] मुद्रा. ३ ८

प्रभावपूर्ण प्रतिपादन करने के लिए विशाखदत्त ने समासोक्ति अलङ्कार को प्रस्तुत किया है।

इसी प्रकार निम्नलिखित उदाहरण मे भी समासोक्ति का कवि ने औचित्यपूर्ण प्रयोग किया है-

आलिङ्गन्तु गृहीतधूपसुरभीन् स्तम्भान् पिनद्धस्रजः

संपूर्णेन्दुमयूखसंहतिरुचां सच्चामराणां श्रियः।[1]

यहाँ 'चामराणां श्रियः गृहीतधूपसुरभीन् पिनद्धस्रज स्तम्भान् आलिङ्गन्तु' कथन के द्वारा अप्रस्तुत नायक नायिकाओ के उपभोग का कवि ने वर्णन किया है। अतः यह समासोक्ति का उदाहरण है।

रूपकातिशयोक्ति- जहाँ पर उपमान के द्वारा जिसका निगरण कर लिया जाता अर्थात् पृथक् कथन नही होता ऐसे उपमेय का जो अध्यवसान अर्थात् उपमान के साथ आहार्य या कल्पित अभेदनिश्चय होता है वहाँ रूपकातिशयोक्ति अलङ्कार होता है इस अतिशयोक्ति मे उपमान के द्वारा उपमेय का निगरण कर उपमान के साथ उसका आहार्य भेद निश्चय किया जाता है। अर्थात् इसमे धर्मी का अभेदनिश्चय किया जाता है।

विशाखदत्त ने रूपकातिशयोक्ति का बहुत ही सारगर्भित उदाहरण प्रस्तुत किया है-

आस्वादितद्विरदशोणितशोणशोभां

सन्ध्यारुणामिव कलां शशलाञ्छनस्य।

जृम्भाविदारितमुखस्य मुखात्स्फुरन्ती

को हर्तुमिच्छति हरेः परिभूय दंष्ट्राम् ॥[2]

यहाँ पर 'सिंह के समान अत्यन्त क्रूर भी मुझ चाणक्य का तिरस्कार कर महान् प्रयत्न के द्वारा अधिगत मौर्यलक्ष्मी का राक्षस अपहरण करने के

---

१ मुद्रा ३ २

२ मुद्रा. १.८

लिए उद्यत है यह अर्थ रूपकातिशयोक्ति के द्वारा ध्वनित हो रहा है। जँभाई लेने वाले सिंह के मुख से स्फुरणशील द्रष्ट्रा को सिंह का परिभव कर कौन निकालना चाह रहा है यह उपमान है इसके द्वारा उपमेय चाणक्य, मौर्यलक्ष्मी आदि का निगरण कर लिया जाता है अतः यह रूपकातिशयोक्ति का उदाहरण है।

मुद्राराक्षस मे चाणक्य द्वारा राक्षस की दुर्धर्षता का तथा उन्ही बहाने उसको वश मे करने के अपने पराक्रम के कारण अपनी आत्मश्लाघा को प्रस्तुत करने के लिए रूपकातिशयोक्ति का प्रयोग आकर्षक है-

केनोत्तुङ्गशिखाकलापकपिलो बद्धः पटान्ते शिखी

पाशैः केन सदागतेरगतिता सद्यः समासादिता।

केनानेकपदानवासितसटः सिंहोऽर्पितः पञ्जरे

भीमः केन च नैकनक्रमकरो दोर्भ्यां प्रतीर्णोऽर्णवः।।[1]

अग्नि को कपड़े मे बाँधना, वायु को पाशो से रोकना, सिंह को पिंजड़े मे बन्द करना तथा भीमार्णव को भुजाओ से पार करना ये उपमान है इनका वश मे करना कठिन है। इनके द्वारा उपमेय राक्षस के वशीकरण की कठिनता का निगरण कर लिया गया है। अग्नि आदि को कपड़े मे बाँधने के समान राक्षस को किसने वश मे कर लिया है ऐसा प्रतिपादित कर चाणक्य ने रूपकातिशयोक्ति के द्वारा आत्मश्लाघा की है।

व्यतिरेक - सामान्यतः उपमेय की अपेक्षा उपमान मे उत्कृष्ट गुण होते है। किन्तु यदि उपमान की अपेक्षा उपमेय के गुणों का आधिक्य प्रतिपादित किया जाता है तो व्यतिरेक अलङ्कार होता है।

विशाखदत्त ने चाणक्य द्वारा नन्दो का अस्त तथा मौर्य का अभ्युदय एक साथ ही कर दिया गया इस तथ्य को प्रभावोत्पादक रूप मे प्रस्तुत करने के लिए व्यतिरेक अलङ्कार का सुन्दर प्रयोग किया है-

---

१ वही, ७.६

यो नन्दमौर्यनृपयो परिभूय लोक मस्तोदयौ प्रतिदिशन्नविभिन्नकालम् ।

पर्यायपातितहिमोष्णमसर्वगामि धाम्नातिशाययति धाम सहस्त्रधाम्न ।।[१]

सूर्य का तेज उपमान है वह सर्वत्र गमन नही करता, असर्वगामी है तथा वह पर्याय से अर्थात् क्रम से हिम एवं उष्ण का विधान करता है किन्तु उपमेय भूत चाणक्य का तेज तो लोक का अतिक्रमण करने वाला है उसने नन्द एवं मौर्य मे एक ही समय मे अस्त एवं उदय का विधान किया है इसलिए सूर्य के तेज से वह अतिशयित है। इस प्रकार सूर्य के तेज से चाणक्य के तेज के आधिक्य कथन के कारण व्यतिरेक अलङ्कार यहाँ प्रयुक्त हुआ है।

इसी प्रकार राक्षस द्वारा चन्द्रमा की अपेक्षा राजा नन्द के आधिक्य कथन मे व्यतिरेक अलङ्कार द्रष्टव्य है-

कौमुदी कुमुदानन्दे जगदानन्दहेतुना।

कीदृशी सति चन्द्रेऽपि नृपचन्द्र त्वया विना।।[२]

यहाँ चन्द्रमा उपमान है। वह केवल कुमुद को आनन्दित करने वाला है जबकि उपमेयभूत नन्द सम्पूर्ण जगत् को। अतः उपमान की अपेक्षा उपमेय का आधिक्य कथन होने से यह व्यतिरेक अलङ्कार का उदाहरण है।

विरोध- वास्तविक विरोध न होने पर भी विरुद्ध रूप से वर्णन करने पर विरोध अलङ्कार होता है। इसे विरोधाभास भी कहते है। विरोध वास्तविक नहीं होता। उसका केवल आभास होता है।

मुद्राराक्षस के सातवे अङ्क मे चन्द्रगुप्त के कथन मे विरोध अलङ्कार को कवि ने प्रस्तुत किया है-

फलयोगमवाप्य सायकानामनियोगेन विलक्षतां गतानाम् ।

स्वशुचेव भवत्यधोमुखानां निजतूणीशयनव्रतप्रतिष्ठा।।[१]

---

[१] मुद्रा. ३.१७

[२] मुद्रा. ४.९

इस श्लोक का अर्थ है दैवयोग से अन्यत्र चाणक्य की नीतिव्यापार से शत्रुविजय रूपी कार्यसिद्धि की प्राप्ति को अन्यत्र शल्ययोग को प्राप्त करके भी विरोधी भाव को प्राप्त हुए (विरोध) कङ्कपक्षियो की पङ्क्ता को प्राप्त हुए (विरोध-परिहार) अत एव मानो शोक से नीचे मुख किए बाणो का अपने तूणीर मे शयन रूपी व्रत सन्तुष्टि के लिए नही होता है।

यहाँ 'फलयोगमवाप्य' अर्थात् कार्यसिद्धि को प्राप्त करके भी 'विपक्षतां गतानाम्' अर्थात् विरोधी भाव को प्राप्त हुए इस रूप मे विरोध है किन्तु 'विपक्षताम् ' का अर्थ वीनां पक्षिणां पक्षाः तेषां भावः विपक्षता तां विपक्षताम् अर्थात् कङ्कपक्षियो की पङ्क्ता को प्राप्त हुए ऐसा अर्थ करने से आपतित विरोध का परिहार हो जाता है अत यह विरोध अलङ्कार का उदाहरण है। इसमे कवि ने उत्प्रेक्षा अलङ्कार का भी प्रयोग किया है।

इसी प्रकार इस नाटक मे इन अलङ्कारों के अतिरिक्त विशाखदत्त ने परिकर, दृष्टान्त, दीपक, अप्रस्तुतप्रशंसा, अर्थापत्ति, तुल्ययोगिता परिसंख्या विषम, सम, पर्यायोक्त, भाविक, समुच्चय, परिवृत्ति, विनोक्ति आदि अलङ्कारों का विषयौचित्य को ध्यान में रखते हुए यत्र तत्र प्रयोग किया है।

एक एक श्लोकों में अनेक अलङ्कारों के अङ्गाङ्गिभाव पूर्वक स्थिति से सङ्कर तथा परस्पर निरपेक्ष भाव से स्थिति से संसृष्टि अलङ्कारों को भी इस नाटक में प्रस्तुत किया गया है। इस रूप में इसमें विषयानुरूप अलङ्कारो का वैविध्य दिखाई पड़ता है।

गुण- यद्यपि वामन शब्दगुण एवं अर्थगुण के रूप मे गुणों के २० भेद मानते हैं- ओजःप्रसादश्लेषसमतासमाधिमाधुर्य सौकुमार्योदारतार्थ-व्यक्तिकान्तयो बन्धगुणाः।[२] त एवार्थ गुणाः।[३] किन्तु परवर्ती आचार्य मम्मट इनके इस विभाजन को अस्वीकार करते हैं। वस्तुतः गुण शब्द अथवा अर्थ के धर्म न होकर रस के धर्म हैं। इसलिए उनका शब्दगतत्वेन अथवा अर्थगतत्वेन

---

[१] मुद्रा. ७.१०

[२] वामन काव्यालङ्कार सूत्र, ३ १.४

[३] वही ३.२.१

विभाजन अनुपपन्न है। मम्मट ने वामन को अभिमत १० गुणो के स्थान पर केवल ३ गुणो को स्वीकार किया है। माधुर्य ओज एवं प्रसाद इन्ही तीनो गुणो मे अन्य गुणो का अन्तर्भाव हो जाता है। इन दस गुणो मे से श्लेष, समाधि, उदारता और प्रसाद इन चार गुणो का अन्तर्भाव मम्मट ने ओज गुण के अन्तर्गत माना है। वामन को अभिमत माधुर्य गुण सभी को अभिप्रेत है। अर्थव्यक्ति प्रसाद गुण है। समता कही कही दोष रूप हो जाता है अतः गुण नही है। सौकुमार्य तथा कान्तिगुण कष्टत्व तथा ग्राम्यत्व दोष के परिहार स्वरूप है अत उन्हे पृथक् गुण के रूप मे स्वीकृति नही मिली है।[1]

चित्त के द्रवीभाव का कारण तथा शृङ्गार मे रहने वाला आह्लादकत्व माधुर्य गुण है। आहलादकत्व का अभिप्राय आह्लादस्वरूपत्व है। क्योकि शृङ्गार आदिरस आह्लादस्वरूप ही होते है न कि आह्लादजनक। माधुर्यगुण संभोग शृङ्गार, सामान्यतः सम्भोग शृङ्गार मे द्रुति का कारण किन्तु करुण, विप्रलम्भ शृङ्गार तथा शान्त रस मे वह उत्तरोत्तर अतिशयान्वित अर्थात् अधिक चमत्कार जनक होता है।[2] इस माधुर्य रस के व्यञ्जक वर्णो का भी आचार्यो ने परिगणन किया है। अपने ही वर्ग के पञ्चम से संयुक्त वर्ण जैसे ङ्ग ङ्क न्त म्प आदि, टवर्ग को छोड़कर शेष स्पर्श अर्थात् टवर्गरहित क से म तक के वर्ण तथा ह्रस्व स्वर से व्यवहित रेफ तथा णकार, समासरहित अथवा अल्पसमास से युक्त तथा अन्य पदों के साथ योग अर्थात् सन्धि से युक्त माधुर्ययुक्त रचना ये तीनो माधुर्यगुण के वयञ्जक होते है।[3]

ओजोगुण सामान्यतः वीररस में रहता है परन्तु बीभत्स एवं रौद्र रसो में क्रमशः इसका आधिक्य अर्थात् विशेष चमत्कारजनकत्व रहता है।[4]

---

[1] केचिदन्तर्भवन्त्येषु दोषत्यागात् परे श्रिताः।
अन्ये भजन्ति दोषत्वं कुत्रचिन्न ततो दश।। का. प्र ८.७२

[2] आह्लादकत्वं माधुर्य शृङ्गारे द्रुतिकारणम् ।
करुणे विप्रलम्भे तच्छान्ते चातिशयान्वितम् ।। का. प्र. ८.६८-६९

[3] मूर्ध्नि वर्गान्त्यगाः स्पर्शा अटवर्गा रणौ लघू।
अवृत्तिर्मध्यवृत्तिर्वा माधुर्ये घटना तथा। वही ८.७४

[4] दीप्त्यात्मविस्तृतेर्हेतुरोजो वीररसस्थिति।

टवर्गरहित अपने ही वर्ग के प्रथम का द्वितीय के साथ तथा तृतीय का चतुर्थ के साथ संयोग, ऊपर नीचे अथवा दोनो जगह विद्यमान रेफ के साथ जिस किसी भी वर्ण का संयोग, ट-ठ-ड-ढ का प्रयोग शकार तथा षकार का प्रयोग दीर्घ समास एवं विकट रचना ओजो गुण के व्यञ्जक होते है।[१] ओजोगुण चित्त के विस्तार रूप दीप्तत्व का जनक होता है।

जिस शब्द समास या रचना के द्वारा श्रवणमात्र से शब्द से अर्थ की प्रतीति हो जाती है वह सब वर्णो समासो तथा रचनाओ मे रहने वाला प्रसाद गुण माना जाता है। सूखे इन्धन मे अग्नि के समान अथवा स्वच्छ धुले हुए वस्त्र में जल के समान जो चित्त मे सहसा व्याप्त हो जाता है वह सभी रसो मे रहने वाला प्रसाद गुण है।[२]

मुद्राराक्षस मे विशाखदत्त ने सभी गुणो का प्रयोग किया है। इस नाटक का अङ्गीरस वीर है अतः इसकी रौद्र एवं बीभत्स रसो की समुचित अभिव्यक्ति के लिए नाटककार ने ओजोगुण का अधिक प्रयोग किया है किन्तु करुण शान्त आदि रसो की अभिव्यक्ति के लिए माधुर्य गुण का भी कई स्थानों पर प्रयोग किया गया है। प्रसाद गुण तो नाटक मे सर्वत्र व्याप्त होता है।

वीर रस की अभिव्यक्ति के लिए कवि द्वारा ओजोव्यञ्जक वर्णो के प्रयोग का उदाहरण द्रष्टव्य है -

आस्वादितद्विरदशोणितशोणशोभां

सन्ध्यारुणामिव कलां शशलाञ्छनस्य।

बीभत्सरौद्रयोस्तस्याधिक्यं क्रमेण च।। वही ८.६९

१ योग आद्यतृतीयाभ्यामन्त्ययो रेण तुल्ययोः
टादिः शषौ वृत्तिदैर्घ्यं गुम्फ उद्धत ओजसित ।। का. प्र ८ ७५

२ श्रुतिमात्रेण शब्दात्तु येनार्थप्रत्ययो भवेत्
साधारणः समग्राणां स प्रसादो गुणो मतः।। वही ८.७६
शुष्केन्धनाग्निवत् स्वच्छजलवत् सहसैव यः।
व्याप्नोत्यन्यत् प्रसादोऽसौ सर्वत्र विहितस्थितिः।। वही ८ ७०-७१

जृम्भाविदारितमुखस्य मुखात्स्फुरन्ती

को हर्तुमिच्छति हरे परिभूय दंष्ट्राम् ।[१]

आस्वादितद्विरदशोणितशोणशोभाम् , सन्ध्यारुणाम् , शशलाञ्छनस्य, हर्त्तु तथा दंष्ट्राम् आदि मे दीर्घसमास एवं ओजोव्यञ्जक श सयुक्त र ष् एव ट वर्णो का प्रयोग कर वीर रस की अभिव्यक्ति की गई है।

इसी प्रकार राक्षस की वीररस पूर्ण उक्ति मे ओजोव्यञ्जक वर्णो का प्रयोग किया गया है-

प्राकारं परित शरासनधरै क्षिप्रं परिक्रम्यतां

द्वारेषु द्विरदै प्रतिद्विपघटाभेदक्षमै स्थीयताम् ।

त्यक्त्वा मृत्युभयं प्रहर्तुमनसः शत्रोर्बले दुर्बले

ते निर्यान्तु मया सहैकमनसो येषामभीष्टं यशः।।[२]

यहाँ संयुक्त रेफ, दव् का संयोग तथा श, ष, ट आदि के प्रयोग से ओजोगुण के माध्यम से वीररस की प्रभावपूर्ण अभिव्यक्ति कवि ने की है।

नाटक के चतुर्थ अङ्क मे मलयकेतु की निम्नलिखित उक्ति मे भी वीररस के प्रभावपूर्ण प्रस्तुतीकरण के लिए ओजोव्यञ्जक वर्णो एवं प्रलम्बसमास का प्रयोग द्रष्टव्य है-

उत्तुङ्गास्तुङ्गकूलं स्रुतमदसलिलाः प्रस्यन्दिसलिलं

श्यामाः श्यामोपकण्ठद्रुममतिमुखराः कल्लोलमुखरम् ।

स्रोतःखातावसीदत्तटमुरुदशनैरुत्सादिततटाः,

शोणं सिन्दूरशोणा मम गजपतयःपास्यन्ति शतशः।।[३]

---

[१] मुद्रा. १.८

[२] मुद्रा. २.१३

[३] मुद्रा. ४.१६

कवि ने रौद्ररस की अभिव्यक्ति के लिए भी ओजोगुण के व्यञ्जक वर्णो का समुचित प्रयोग किया है इस दृष्टि से चाणक्य की निम्न उक्ति उदाहरणीय है-

शोचन्तोऽवनतैर्नराधिपभयाद् धिक्शब्दगर्भैर्मुखै-

र्मामग्रासनतोऽवकृष्टमवशं ये दृष्टवन्त पुरा।

ते पश्यन्ति तथैव सम्प्रति जना नन्दं मया सान्वयं

सिंहेनेव गजेन्द्रमद्रिशिखरात् सिंहासनात् पातितम् ॥[१]

बीभत्स रस की अभिव्यक्ति के लिए भी नाटककार ने ओजोगुण का प्रयोग किया है-

गृध्रैराबद्धचक्रं वियति विचलितैर्दीर्घनिष्कम्पपक्षै-

र्धूमैर्ध्वस्तार्कभासं सघनमिव दिशां मण्डलं दर्शयन्त।

नन्दैरानन्दयन्तः पितृवननिलयान् प्राणिन पश्य चैतान्

निर्वान्त्यद्यापि नैते स्रुतवहलवसावाहिनो हव्यवाहा॥[२]

संभोगाभिलाष शृङ्गाररस की अभिव्यक्ति के लिए विशाखदत्त ने माधुर्यगुण का सुन्दर प्रयोग द्वितीय अङ्क मे आहितुण्डिक के कथन मे प्रस्तुत किया है-

वामां बाहुलतां निवेश्य शिथिलं कण्ठे विवृत्तानना

स्कन्धे दक्षिणया बलान्निहितयाप्यङ्के पतन्त्या मुहुः।

गाढालिङ्गसङ्गपीडितमुखं यस्योद्यमाशङ्किनी

मौर्यस्योरसि नाधुनापि कुरुते वामेतरं श्रीः स्तनम् ।[३]

इस श्लोक मे प्रधानतया माधुर्यव्यञ्जक वर्णो का प्रयोग किया गया है।

---

१ वही, १ १२

२ वही ३.२८

३ मुद्रा. २ १२

प्रसादगुण का भी नाटककार ने अनेक स्थानो पर प्रयोग किया है। प्रथम अङ्क मे उग्रता से युक्त वीर भाव को प्रकट करने मे प्रासादगुण का प्रयोग द्रष्टव्य है-

उल्लङ्घयन् मम समुज्ज्वलतः प्रतापं कोपस्य नन्दकुलकाननधूमकेतोः।

सद्यः परात्मपरिमाणविवेकमूढः कः शालभेन विधिना लभतां विनाशम्।।[१]

यहाँ पर वीररस की प्रतीति कराने के लिए प्रसाद गुण का प्रयोग उचित ही है। क्योकि प्रसाद गुण का प्रयोग सभी रसो की अभिव्यक्ति के लिए किया जा सकता है।

रीति- आचार्य वामन ने प्रथमतः रीति का विवेचन प्रस्तुत किया है। पद संघटना रीति है। रसादि को उपकृत करने वाली पदो की विशिष्ट संघटना को रीति कहते है।[२] वामन के अनुसार यही रीति काव्य की आत्मा है- 'रीतिरात्मा काव्यस्य।' इस की व्युत्पत्ति है 'रीयते ज्ञायते गुणविशेषोऽनया इति रीतिः'। इस व्युत्पत्ति से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि रीति का गुण से साक्षात् सम्बन्ध है। जैसे तीन गुण है वैसे ही तीन रीतियाँ मानी गयी है वैदर्भी, गौडी तथा पाञ्चाली। उद्भट आदि आचार्यो ने इन तीनो रीतियो के स्थान पर तीन वृत्तियो का उल्लेख किया है। वै है उपनागरिका, परुषा तथा कोमला ये सात्त्वती, आरभटी, कैशिकी एवं भारती इन चारो नाट्यवृत्तियो से भिन्न है।

माधुर्यगुण के व्यञ्जक वर्णो से युक्त ललित रचना वैदर्भी रीति है। वामन वैदर्भी रीति मे दसो गुणो की सत्ता मानते है- समग्रगुणा वैदर्भी। जिस काव्य या नाटक मे वैदर्भी का प्रयोग किया जाता है वह रचना उत्कृष्ट मानी जाती है। ओजोव्यञ्जक वर्णो का तथा उत्कृष्ट बन्ध एवं समासबहुल रचना का जहाँ प्रयोग किया जाता है वहाँ गौडी रीति होती है।[३] मुद्राराक्षस मे गौडी रीति

---

१ वही, १ १०

२ पदसंघटना रीतिरङ्गसंस्थाविशेषवत् ।
उपकर्त्री रसादीनाम् ।। सा द ९ १

३ ओजः प्रकाशकैर्वर्णैर्बन्धः आडम्बरः पुनः।

का अधिक प्रयोग किया गया है। माधुर्य एवं ओजोगुण के व्यञ्जक वर्णो से भिन्न वर्णो अर्थात् प्रसाद गुण के व्यञ्जक वर्णो तथा पॉच या छह पदो का समस्त प्रयोग जहॉ होता है वहॉ पाञ्चाली नामक रीति होती है।[1] वैदर्भी एवं पाञ्चाली के बीच की रीति को लाटी रीति कहते हैं। काव्यप्रवशकार लार्टी रीति का उल्लेख नही करते।[2] किन्तु आचार्य विश्वनाथ इसका स्पष्ट लक्षण प्रस्तुत करते है- लाटी तु रीति वैंदर्भी पाञ्चाल्योरन्तरा स्थिता।[3]

मुद्राराक्षस मे जैसे ओजोगुण की प्रधानता है वैसे ही गौडी रीति की तथा परुषा (उद्भटादि को अभ्रिमत) वृत्ति की प्रधानता है। क्योकि जहॉ ओजोव्यञ्जक वर्ण होते है वही गौडी रीति होती है जहॉ गौडी रीति होती है वही परुषा वृत्ति होती है। जहॉ तक वैदर्भी तथा पाञ्चाली रीतियो के प्रयोग का प्रश्न है इन दोनो के भी क्रमशः उन स्थलो पर उदाहरण प्राप्त होते है जहॉ पर माधुर्य एवं प्रसाद गुणो का प्रयोग किया गया है।

मुद्राराक्षस मे गौडी रीति के अनेक उदाहरण प्राप्त होते है - ओजोगुण के उदाहरण के रूप मे प्रस्तुत - 'उत्तुङ्गास्तुङ्गकूलम्' 'शोचन्तोऽवनतैर्नराधिपभयाद् धिक्शब्दगर्भैर्मुखैः' आदि श्लोक गौडी रीति के उत्कृष्ट उदाहरण है। पञ्चम अङ्क मे अपने शत्रु की कूटनीति के सुश्लिष्ट प्रयोग के विषय मे राक्षस स्वगत कथन मे नाटककार ने वैदर्भी रीति का उचित सन्निवेश किया है-

लेखोऽयं न ममेति नोत्तरमिदं मुद्रा मदीया यतः
सौहार्द्र शकटेन खण्डितमिति श्रद्धेयमेतत् कथम् ?
मौर्ये भूषणविक्रयं नरपतौ को नाम सम्भावयेत् ?

समासबहुला गौडी। सा. द. ९.४

१ वर्णैः शेषैः पुनर्द्वयोः।
समस्तपञ्चषपदो बन्धः पाञ्चालिका मता। वही ९.५

२ एतास्त्रिस्रो वृत्तयः वामनादीनां मते वैदर्भीगौडीपाञ्चाल्याख्या रीतयो मताः।
का. प्र ९.८१

३ सा. द. ९.६

तस्मात् सम्प्रतिपत्तिरेव हि वरं न ग्राम्यमत्रोत्तरम् ।[1]

यहाँ माधुर्य व्यञ्जक वर्णो का प्रयोग किया गया है तथा समास का अभाव है अतः यह वैदर्भी का उदाहरण है। इसके अतिरिक्त गुणो के प्रसङ्ग मे माधुर्यगुण के उदाहरणो के रूप मे प्रस्तुत पद्यो मे भी वैदर्भी रीति का प्रयोग कवि ने किया है।

तृतीय अङ्क मे चाणक्य के द्वारा कौमुदी महोत्सव के प्रतिषेध के प्रयोजन का निर्देश करने मे पाञ्चाली रीति का प्रयोग लक्षणीय है-

अम्भोधीनां तमालप्रभवकिसलयश्यामवेलावनाना-

मापारेभ्यश्चतुर्णा चटुलतिमिकुलक्षोभितान्तर्जलानाम् ।

मालेवाम्लानपुष्पा तव नृपतिशतैरुह्यते या शिरोभिः

सा मय्येव स्खलन्ती कथयति विनयालङ्कृतं ते प्रभुत्वम् ।।[2]

इस उदाहरण मे न तो माधुर्य व्यञ्जक वर्णो का प्रयोग है नही ओजोव्यञ्जक वर्णो का। अपितु यहाँ प्रसाद गुण के व्यञ्जक वर्णो का प्रयोग है तथा 'तमालप्रभवकिसलयश्यामवेलावनानाम्' तथा 'चटुलतिमिकुलक्षोभितान्तर्जलानाम् ' मे छह पदो का समस्त रूप प्रयुक्त है इस प्रकार यह पाञ्चाली रीति का उत्कृष्ट उदाहरण है।

द्वितीय अङ्क मे राक्षस मुहुर्मुह, चाणक्य चन्द्रगुप्त के विनाश के लिए प्रयुक्त अपनी नीति के फलाफल के विषय मे निर्धारण नही कर पा रहा है इस स्थिति का वर्णन करने के लिए नाटक कार ने लाटी रीति का प्रयोग किया है-

वृष्णीनामिव नीतिविक्रमगुणव्यापारशान्तद्विषां

नन्दानां विपुले कुलेऽकरुणया नीते नियत्या क्षयम् ।

चिन्तावेशसमाकुलेन मनसा रात्रिन्दिवं जाग्रतः

---

[1] मुद्रा. ५.१८

[2] मुद्रा. ३.२४

सैवेयं मम चित्रकर्मरचना भित्तिं विना वर्तते।।[१]

यहाँ लाटी रीति है क्योकि यह वैदर्भी एवं पाञ्चाली के बीच का प्रयोग है।

इस प्रकार यद्यपि मुद्राराक्षस मे रसानुकूल सभी रीतियो का विशाखदत्त ने प्रयोग किया है किन्तु वीर रस के अङ्गी रस होने के कारण इसमे गौडी रीति का ही प्राधान्य है।

---

१ मुद्रा. २.४

सप्तम अध्याय

मुद्राराक्षसकालीन समाज

मुद्राराक्षसकालीन समाज

मुद्राराक्षस यद्यपि राजनैतिक घटनाओ से परिपूर्ण नाटक है इस लिए इसमे तत्कालीन समाज के स्वरूप के अभिज्ञान के लिए पर्याप्त सामग्री का अभाव है फिर भी विभिन्न पात्रो की उक्ति प्रत्युक्तियो मे तत्कालीन समाज का यथार्थ चित्र उपस्थित हो जाता है। सामाजिक स्थिति के निरूपण के लिए समाज के मानवो की स्थिति, रहन सहन, वेशभूषा, आचार-विचार, स्थान पशु-पक्षी आदि का विचार किया जाता है। जिस समय मुद्राराक्षस का निर्माण किया जा रहा था उस समय भारतीय समाज मे वर्णो का सुस्पष्ट स्वरूप दिखाई पड़ता है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र इन चार वर्णो मे भारतीय समाज सुनियोजित था। सब वर्णो के कार्यो का सुस्पष्ट विभाजन था। किन्तु सभी मिलकर सामाजिक दायित्व का निर्वाह करते थे। वर्णो का कर्म के अनुसार ही महत्त्व निर्धारित होता था।

मुद्राराक्षस मे चारो वर्णो का निरूपण किया गया है ब्राह्मणो का सम्मानजनक स्थान था। धार्मिक अनुष्ठानो मे ब्राह्मणो को बुलाकर भोजन कराया जाता था। उनके आतिथ्य को श्रेयस्कर माना जाता था। प्रथम अङ्क में सूत्रधार नटी से चन्द्रग्रहण न होने पर भी ब्राह्मणो को बुलाकर भोजन कराने के लिए कहता है। इतना ही नही वह ब्राह्मणो के लिए 'भगवान्' इस विशेषण का प्रयोग करता है।[१] जिससे ब्राह्मणो के महत्त्व का पता चलता है यह सम्भवतः इसलिए था कि वे त्यागमय जीवन जीते थे। मगध जैसे राज्य का मन्त्री होने पर भी चाणक्य के पास वैभव के रूप मे मात्र एक जीर्ण कुटी थी तथा वहाँ केवल कुशो लकड़ियो एवं कण्डियो का संग्रह था।[२] जो वि

---

१ तत् प्रवर्त्यता भगवतो ब्राह्मणानुद्दिश्य पाकः, चन्द्रोपराग प्रति तु केनापि विप्रलब्धासि। मुद्रा०, पृ०१६

२ उपलशकलमेतद्भेदकं गोमयाना बटुभिरुपहृताना वर्हिषां स्तूपमेतत्।
शरणमपि समिद्भि शुष्यमाणाभिराभिर्विनमितपटलान्तं दृश्यते जीर्णकुड्यम्।
मद्रा० ३.१५

धार्मिक क्रिया को सम्पन्न करने के लिए अनिवार्य थे। ब्राह्मणो को दान मे आभूषण आदि दिये जाते थे किन्तु उसके लिए उनका गुणवान् होना आवश्यक था।[१] ब्राह्मणो का मुख्य कर्म अध्ययन अध्यापन था। सूत्रधार चौसठ अङ्गो के साथ ज्योतिष शास्त्र मे निष्णात था।[२] इसी प्रकार चाणक्य के साथ अध्ययन करने वाला उसका मित्र इन्दुशर्मा ब्राह्मण शुक्राचार्य प्रणीत दण्डनीति तथा चौसठ अङ्गो वाले ज्योतिष शास्त्र मे परम प्रवीण बताया गया है।[३] चाणक्य भी आश्रम मे शिष्यो को शिक्षा देता था। आचार्य शिष्यो पर अङ्कुश भी रखते थे।[४] इससे स्पष्ट है कि उस समय ब्राह्मण सर्वात्मना अध्ययन-अध्यापन का कार्य करते थे। शास्त्रमर्मज्ञ, दण्डनीति मे पारङ्गत ब्राह्मण ही सचिव का पद सम्भालते थे। इस रूप मे ये समाज पर उचित नियन्त्रण रखते थे। ब्राह्मण-परम्परा मे मौखिक अध्ययन-अध्यापन का ही महत्त्व था। यद्यपि लेखनकला से वे परिचित थे किन्तु उनके द्वारा प्रयत्नपूर्वक भी लिखे गये अक्षर अस्पष्ट ही होते थे।[५]

राज्य के शासन का दायित्व क्षत्रियो पर था। ये ब्राह्मण सचिवो के निर्देशन मे अपने दायित्व का निर्वाह करते थे। ये शक्ति सम्पन्न, उत्साही, पराक्रमी दानी तथा गुरुभक्त होते थे। वैश्य वाणिज्य कर्म करते थे। इनका शासन के प्रति अपूर्व सहयोग होता था। वैश्य तीनो वर्णो के लिए आधार के रूप मे कार्य करते थे। आवश्यकतानुसार अपने राजा को धनादि भी देते थे, क्योकि राजकीय सहयोग से इनकी वाणिज्या मे वृद्धि होती थी।[६] इस नाटक मे कायस्थ जाति का भी उल्लेख प्राप्त होता है। इनका मुख्य कार्य लेखन था।

---

१ इच्छाम्यहमार्येणाभ्यनुज्ञातो देवस्य पर्वतेश्वरस्य पारलौकिकम् कर्तुम्, तेन च धारितपूर्वाण्याभरणानि गुणवतां ब्राह्मणानां प्रतिपादयामि। वही,, पृ० ३३

२ आर्ये कृतश्रमोऽस्मि चतुःषष्ट्यङ्गे ज्योतिःशास्त्रे। मुद्रा० पृ० १६

३ अस्ति चास्माकं सहाध्यायि मित्रमिन्दुशर्मा नाम ब्राह्मणः स चौशनस्यां दण्डनीत्यां चतुःषष्ट्यङ्गे ज्योतिःशास्त्रे च परं प्रावीण्यमुपगतः। वही,, पृ०२५

४ त्यजति तु यदा मार्ग मोहात्तदा गुरुरङ्कुशः। वही,, पृ०३.६

५ वत्स श्रोत्रियाक्षराणि प्रयत्नलिखितान्यपि नियतमस्फुटानि भवन्ति। वही,, पृ०३५

६ आर्यस्य प्रसादेन अखण्डिता मे वाणिज्या। मुद्रा० पृ० ३९

सुन्दर एवं स्पष्ट लेखन के लिए कायस्थो की प्रसिद्धि थी किन्तु इन्हे अधिक समर्थ नही माना जाता था।[१] चाण्डाल जातियाँ भी उस समय थी जिन्हे अस्पृश्य माना जाता था।[२]

मुद्राराक्षस कालीन समाज मे धर्म-कर्म के प्रति पूर्ण विश्वास था। लोग ईश्वर मे भी विश्वास करते थे। वे ईश्वर की उपासना से अपने अभीष्ट की सिद्धि करते थे। धार्मिक अनुष्ठानों की चर्चा हमे मुद्राराक्षस मे प्राप्त होती है। चन्द्रग्रहण के प्रसङ्ग को उपस्थित करते हुए विशाखदत्त ने यह स्पष्ट किया है। चन्द्रग्रहण को लोग धार्मिक अनुष्ठान के रूप मे देखते थे। उस दिन ब्राह्मणो को बुलाकर भोजन कराना श्रेयस्कर माना जाता था।[३] गन्धद्रव्यो मालाओ एवं दक्षिणा से उनका सम्मान किया जाता है। चन्द्रग्रहण के दिन पूरे महोत्सव का ही आयोजन किया जाता था।[४]

इसी प्रकार समाज मे श्राद्धकर्म का बहुत बड़ा महत्त्व था। जब चाणक्य विषकन्या के प्रयोग से चन्द्रगुप्त के सहयोगी राजा पर्वतक की हत्या करा देता है तो चन्द्रगुप्त उसके लिए पारलौकिक कर्म अर्थात् श्राद्ध करने की योजना बनाता है। यह श्राद्ध कर्म पूरे अनुष्ठान के साथ किया जाता था और उस समय गुणवान् ब्राह्मणो को पर्याप्त दक्षिणा दी जाती थी।[५] जिसकी मृत्यु होती थी उसके समस्त आभूषण दान मे दे दिये जाते थे। पर्वतीय राजा पर्वतेश्वर का पुत्र मलयकेतु भी अपने पिता की मृत्यु हो जाने पर श्राद्ध कर्म एवं तर्पण कर्म करना चाहता है। किन्तु वह क्षत्रिय है, उत्साही है। वह अपने शत्रुओ का विनाश कर अपनी माँ के आसुओं को अपने शत्रुओ की स्त्रियों की आँखो मे

---

१ कायस्थ इति लघ्वी मात्रा। वही,, पृ० ३०

२ न चाण्डालस्पर्शदूषितं स्प्रष्टुमर्हसि। वही, पृ० १६०

३ नटी-आर्य आमन्त्रिता मया भवगन्तो ब्राह्मणाः। सूत्रधारः - कथय कस्मिन्निमित्ते। नटी - उपरज्यते किल भगवान् चन्द्र इति। मुद्रा पृ० १६

४ अये तत्किमिदमस्मद्=गृहेषु महोत्सव इव दृश्यते। वही, पृ० १४

५ इच्छाम्यहमार्येणाभ्यनुज्ञातो देवस्य पर्वतेश्वरस्य पारलौकिकं कर्तुम् । तेन च धारितपूर्वाण्याभरणानि गुणवतां ब्राह्मणानां प्रतिपादयामि। वही, पृ० ३३

पहुँचाकर ही अपने पिता को निवापाञ्जलि देना चाहता है।[1] इससे यह सिद्ध होता है कि पूरे भारत मे श्राद्धकर्म का अनुष्ठान विधिवत् होता था। इसको निष्पन्न करना अनिवार्य था। कुछ मनुष्य अपने भावी मरण की सम्भावना मे अपनी मृत्यु से पूर्व ही अपना सब कुछ दान कर देते थे।[2] दीनो को दान दिया जाना श्रेयस्कर माना जाता था।

मुद्राराक्षस कालीन समाज मे लोग ईश्वर की उपासना करते थे। उस समय यद्यपि प्रायः सभी देवी-देवताओ की पूजा होती थी किन्तु सर्वाधिक उपासना शिव की होती थी। नाटककार ने नान्दी मे शिव की आराधना से इस तथ्य को अभिव्यक्त किया है। विशाखदत्त ने प्रथम नान्दी मे शिव के उस रूप की उपासना प्रस्तुत की है जिसमे हिमालय मे स्थित शिव के शिर पर गङ्गा विराजमान है तथा वामाङ्क मे पार्वती।[3] द्वितीय नान्दी-पद्य मे कष्ट-साध्य उग्र ताण्डव नृत्य करने वाले शिव की आराधना की गयी है।[4] शिव के ताण्डव नृत्य की, उनके रौद्ररूप की तृतीय अङ्क मे भी चर्चा की गयी है।[5] उग्र ताण्डव नृत्य करने वाले शिव क्लेश का हरण करने वाले देवता के रूप मे मानवो द्वारा पूजे जाते थे।[6] ऋग्वैदिक काल से ही रुद्र का आदरणीय स्थान बना हुआ है।

शिव जी के समान ही विष्णु की भी लोग उपासना करते थे। नाटककार ने शेषशायी भगवान् विष्णु से लोक की रक्षा की प्रार्थना की है।

---

[1] वक्षस्ताडनभिन्नरत्नवलय भ्रष्टोत्तरीयाशुकं
हा हेत्युच्चरितार्तनादकरुणं भूरेणुरूक्षालकम् ।
तादृङ्मातृजनस्य शोकजनितं सम्प्रत्यवस्थान्तरम् ।
शत्रुस्त्रीषु मया विधाय गुरवे देयो निवापाञ्जलिः।। मुद्रा० ४.५

[2] सम्प्रतिदीनजनदत्ताभरणादिविभवो ज्वलनं प्रवेष्टुकामो नगरान्निष्क्रान्तः। वही,, पृ० १४७

[3] मुद्रा० १.१

[4] वही, १.२

[5] मन्ये रुद्रस्य रौद्रं रसमभिनयतस्ताण्डवेषु स्मरन्त्या। वही, ३ ३०

[6] हरतु तनुरिव क्लेशमैशी शरद्वः। मुद्रा ३.२०

विष्णु की शय्या शेषनाग है। तकिया शेषनाग के फनो का समूह है। विष्णु जी सोकर उठ रहे है अत उनकी दृष्टि आकेकरा है। शेषनाग की मणियो के प्रकाश मे उनकी दृष्टि ठहर नही पा रही है सोने के पश्चात् विष्णु ने जभाई भी ली है, जिससे नेत्रो मे अश्रुबिन्दु आ गये है। उनकी दृष्टि रक्तवर्ण की हो गयी है। विष्णु ऐसे नेत्रो से लोग अपनी रक्षा की प्रार्थना करते थे।[१] नाटक के भरतवाक्य मे वराहावतार विष्णु की स्तुति की गयी है।[२] प्रलय के समय पृथ्वी की दाँतो से रक्षा करने वाले विष्णु भगवान् ही सम्भवत तत्कालीन राजाओ के भी उपास्य थे। अश्वरूपधारी केशी का वध करने वाले भगवान् कृष्ण की भी तत्कालीन समाज मे पूजा होती थी।[३] मुद्राराक्षस मे भगवान् भास्कर की उपासना के भी विवरण प्राप्त होते है।[४] इससे यह सिद्ध होता है कि तत्कालीन समाज मे सूर्य की भी उपासना प्रचलित थी। सूर्य के समान ही चन्द्रमा की भी उपासना होती थी उस समय नये चन्द्रमा को आदर की दृष्टि से देखा जाता था।[५] चन्द्रमा लोक के संताप को दूर करने वाले देवता के रूप मे लोगो के द्वारा पूजा जाता था।[६] लोगो का देवताओ पर अटूट विश्वास था। जब कोई स्वर्ग चला जाता था तो उसकी अनुपस्थिति मे देवता उसके दुःखी परिवार की रक्षा करते थे।[७]

यमराज को मृत्यु का देवता माना जाता था। लोग उससे भयभीत रहते थे। यमराज की इच्छा से लोग जीवन-धारण करते है। अन्य देवो के भक्तों का वह जीवन ले लेता है,[८] ऐसी धारणा बनी हुई थी। यम के रूप मे मृत्यु का

---

१ निद्राच्छेदाभिताम्रा चिरमवतु हरेर्दृष्टिराकेकरा वः। वही, ३.२१

२ वावही,मात्मयोनेस्तनुमवनविधावास्थितस्यानुरूपां।
यस्य प्राग्दन्तकोटिं प्रलयपरिगता शिश्रिये भूतधात्री। वही, ७.१९

३ जयति जलदनील केशव केशिघाती। मुद्रा० ६ १

४ अये अस्ताभिलाषी भगवान् भास्कर। वही,, पृ० ११४

५ पौरैरङ्गुलिभिर्नवेन्दुवदहं निर्दिश्यमानः शनैः। वही, ६ १०

६ सन्तापे तारेशानाम् । वही, ६.२

७ स्वर्ग गतानां तावद्देवा दुःखितं परिजनमनुकम्पन्ते। मुद्रा. पृ० १५६

८ प्रणमत यमस्य चरणौ किं कार्य देवैरन्यैः?
एष खल्वन्यभक्तानां हरति जीवं परिस्फुरन्तम् । मुद्रा. १.१७

इतना भय था कि यमपट देखकर लोग आसानी से धन दे देते थे।[1] यमराज के सहायक के रूप मे जीवित लोगो का लेख-जोखा रखने के लिए चित्रगुप्त भी था।

दैव अर्थात् विधि का तत्कालीन मानवजीवन मे बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान था। राक्षस की नीतियाँ असफल हो रही है।[2] उसके प्रतिपक्षी अपनी नीतियो के प्रयोग मे सफल हो रहे है इसको नाटककार विधिविलसित[3] मानता है पदे-पदे दैव पर विश्वास की बात का समर्थन होता है।[4] नाटक के प्रारम्भ मे 'दैवमविद्वांसः प्रमाणयन्ति' कहने वाला चाणक्य भी बदल जाता है और राक्षस को पकड़ने मे सफलता के लिए दैव को कारण मानता है।[5] इससे तत्कालीन समाज मे दैव के प्रति आस्था विद्यमान थी, यह स्पष्ट हो जाता है। किन्तु लोग कर्म पर भी विश्वास करते थे 'दैवमविद्वांसः प्रमाणयन्ति' यह केवल सिद्धान्त मे नही था, व्यवहार मे भी कर्म को ही अधिक महत्त्व दिया जाता था। कार्यगतिवैचित्र्य पर भी विश्वास था। इसके सामने विधि का आदेश भी बाध्यकारी नही था।[6]

इस प्रकार मुद्राराक्षस कालीन समाज धार्मिक आस्था से ओतप्रोत था। ईश्वर की उपासना सभी करते थे। हिन्दू लोग शिव, विष्णु, कृष्ण, सूर्य तथा चन्द्रमा की पूजा करते थे। दैव पर पूर्ण विश्वास करते थे। उस समय हिन्दू धर्म की आस्तिकता के साथ-साथ बौद्ध एवं जैन विचारधाराये भी भारत मे

---

१ पुरुषस्य जीवितव्यं विषमाद् भवति भक्तिगृहीतात् ।
मारयति सर्वलोकं यस्तेन यमेन जीवामः।। वही, १.१८

२ नामान्येषां लिखामि ध्रुवमहमधुना चित्रगुप्तः प्रमार्ष्टु।। मुद्रा. पृ.१.२०

३ तस्येदं विपुलं विधेर्विलसितं पुंसा प्रयत्नच्छिदः। वही, पृ ५ २०

४ (क) प्रयत्नं नो येषां विफलयति दैवं द्विषदिव। वही, पृ ६ ६
(ख) दैवं हि नन्दकुलशत्रुरसौ न विप्रः। वही, पृ ६ ७
(ग) दैवेनोपहतस्य बुद्धिरथवा सर्वा विपर्यस्यति।। वही, पृ ६ ८

५ नन्दकलुद्वेषिणा दैवेनेति ब्रूहि। वही,, पृ० १५९

६ कार्याणां गतयो न यन्त्याज्ञाकारत्वं चिरात् । वही, पृ.७.१६

प्रचलित थी। बौद्ध विचारधारा का समाज मे आदरणीय स्थान था।[१] जैन सन्यासियो का उतना सम्मान नही था। क्योकि ये दिगम्बर थे। इनका दर्शन शुभ नही माना जाता था। जब वे आम लोगो कें बीच मे आते थे तो उन्हे कपड़ा पहनना पड़ता था।[२] लोगो की केवल इनके वेशविन्यास से अरुचि थी अन्यथा ये मोहव्याधिवैद्य थे तथा पथ्य का ही उपदेश करते थे।[३] ये बुद्धि मे गम्भीर थे। लोकोत्तर मार्ग से लोक मे इन्हे सिद्धि प्राप्त हो जाती थी।[४] मुद्राराक्षसकालीन समाज मे धर्म अथवा जाति के आधार पर कही पर भी वैमनस्य नही दिखाई पड़ता। हिन्दू विचारधारा का बौद्ध एवं जैन विचारधारा के साथ पूर्ण सामञ्जस्य था। सब एक दूसरे का आदर करते थे। यही कारण था कि चाणक्य का गुप्तचर इन्दुशर्मा ब्राह्मण बौद्ध भिक्षु बनाना स्वीकार करता है।

उस समय किसी शुभ कार्य को करने के लिए ज्योतिष का बड़ा महत्त्व था। सूत्रधार ज्योतिष के ज्ञान से युक्त होने के कारण यह समझ जाता है कि चन्द्रग्रहण नही है।[५] इन्दुशर्मा ज्योतिष शास्त्र का प्रकाण्ड पण्डित है।[६] राक्षस कुसुमपुर पर चढ़ाई करने के लिए प्रस्थान का शुभ दिन पूॅछता है।[७] यात्रा-विचार में ज्योतिष की वारीकियो का ध्यान रखा जाता था। तिथि एवं नक्षत्र दोनों का विचार किया जाता था।[८]

---

१ बुद्धानामपि चेष्टितं सुचरितैः क्लिष्ट विशुद्धात्मना। मुद्रा० पृ ७ ५

२ अये कथं प्रथममेव क्षपणक।
अबीभत्सदर्शनं कृत्वा प्रवेशय। वही, पृ० १११

३ शासनमर्हतां प्रतिपद्यध्वं मोहव्याधिवैद्याना।
ये मुहूर्तमात्रकटुकं पश्चात् पथ्यमुपदिशन्ति।। वही, ४.१८

४ आर्हतानां प्रणमामि ये ते गम्भीरतया बुद्धेः
लोकोत्तरै र्लोके सिद्धिं मार्गैर्गच्छन्ति। वही, ५ २

५ वही, पृ० १६

६ वही, पृ० २५

७ वही, पृ० १११

८ मुद्रा० पृ० ११२-११३

वैवाहिक विवरण अधिकतर इस नाटक मे प्राप्त नही होते। इसलिए विवाह संस्था के बारे मे अधिक नही कहा जा सकता किन्तु अपने वर्णो मे लोग विवाह करते थे एवं दाम्पत्य सुखमय था। पत्नी का समाज मे सम्मान था। विपत्ति के समय उसका पति उसकी सुरक्षा का दायित्व अपने किसी अत्यन्त विश्वस्त मित्र को सौप देता था।[१] उसकी सुरक्षा का पूर्ण दायित्व पति पर होता था। वधुएँ चञ्चल नही होती थीं अपने कुलधर्म का पालन करती थी[२] तथा धरेलू मामलो मे वे पूर्ण स्वतन्त्र होती थी। किन्तु समाज मे कुलटाओ का भी अस्तित्व था जो पुरुषो के गुणागुण का विचार नही करती थीं। अपितु धनादि के लोभ मे अन्य कुलो या व्यक्तियो के पास भटकती थी।[३] इनका समाज मे सम्मान नही था। समाज मे उनका सम्मान होता था जो अपने पति के साथ जीवन निर्वाह करती थीं। स्त्रियॉ अपने पति की मृत्यु पर उसी का अनुगमन कर आत्मोत्सर्ग कर देती थी। स्वामी के अनुगमन मे आत्मोत्सर्ग मे वे आत्मानुग्रह मानती थी।[४] किन्तु यदि सन्तान छोटी है तो उसके भरण-पोषण के लिए उसे अपना जीवन धारण करना पड़ता था।[५] स्त्रियॉ अपने पति की आज्ञा का पूर्णतः पालन करती थी। पति के विदेश गमन पर परिवार की रक्षा आदि का दायित्व पत्नी पर होता था। तत्कालीन स्त्रियो मे चारित्रिक दृढ़ता दृष्टिगत होती है। यदि किसी शत्रु के द्वारा पति की हत्या की गयी है तो वे पुत्र को इस बात के लिए प्रेरित करने के लिए जीवित रहती थीं। कि उनका पुत्र शत्रुओ से बदला लेकर उनके ऑसुओ को धुल दे।

---

१ नूनं सुहृत्तमः न ह्यनात्मसदृशेषु राक्षसः कलत्रं न्यासीकरिष्यति। वही,, पृ० ३०

२ मम चरणपार्श्वं समागत्य प्रणामनिभृता कूलवधूरिव निश्चला संवृत्ता। वही,,पृ० ३०

३ उच्छिन्नाश्रयकातरेव कुलटा गोत्रान्तरं श्रीर्गता। वही, ६.५

४ भर्तुश्चरणावनुगच्छन्त्या आत्मानुग्रहो भवतीति। वही, पृ० १५६

५ आर्ये दुर्व्यवसितमिदं त्वया। अयं पुत्रकऽश्रुतलोकसंव्यवहारो बालोऽनुगृहीतव्यः। वही,, पृ० १५६

मुद्राराक्षस कालीन समाज मे आम जीवन मे कपट का व्यवहार नही होता था। राजनीतिवश यदि किसी को धोखा देना पडता था तो मन को अत्यधिक वेदना होती थी।[१]

स्त्रियो के समान ही मित्र, शिष्य, पुत्र एवं परिजन पूर्ण विश्वास से आचरण करते थे। एक मित्र अपने मित्र के लिए प्राणोत्सर्ग करने मे आत्मगौरव समझता था। उन्हे आत्मदोष से यदि मृत्युदण्ड मिलता था तो वे ग्लानि का अनुभव करते थे। किन्तु मित्र के कार्य से आत्मविनाश मे उन्हे लेशमात्र भी पीड़ा नही होती थी।[२] मित्रता का इतना अच्छा उदाहरण अन्य किसी समाज मे नही प्राप्त होता।[३] मित्र परस्पर एक दूसरे से आगे बढ़कर उदारता दिखाते थे। मित्रता का निर्वाह कुलधर्म माना जाता था।[४]

किन्तु कुछ ऐसे भी मित्र होते थे जो मृत्यु के समय विनाश के भय से दूर हट जाते थे। किन्तु दु:खी मन से वे भी ऑसू बहाते थे।[५] सम्भवतः उनमे मृत्यु के भय को सहने की दृढ़ता नही रही होगी। एक मित्र दूसरे का इतना विश्वास करता था कि अपने परिजनो को अपने मित्र के घर रख कर इतना निश्चिन्त हो जाता था जैसे उनका परिवार उसके अपने साथ हो।[६] मित्र अपने

---

१ कष्टमेवमयमस्मासु स्नेहवान् कुमारो मलयकेतुरतिसन्धातव्य इत्यहो दुष्करम् । मुद्रा० पृ० ११८

२ मित्रकार्येण मे विनाशो नायुक्तकार्येण तत्किं हर्षस्थानेऽपि रुद्यते। वही, पृ० १५७

३ राक्षस के परिवार की रक्षा के लिए चन्दनदास का प्राणोत्सर्ग, चन्दनदास को बचाने के लिए अपने सम्पूर्ण जीवन का उद्देश्य भूलकर राक्षस का आत्मसमर्पण, चन्दनदास के लिए विष्णुदास का आत्मोत्सर्ग विष्णुदास के लिए पुरुष का आत्मोत्सर्ग आदि। मुद्रा० सप्तम अङ्क

४ जात अवश्यं भवितव्ये विनाशे मित्रकार्य समुद्वहमानो विनाशमनुभव। पुत्र:-तात कुलधर्मः खल्वेषोस्माकम् । वही,, पृ० १५७

५ एतेऽस्मत्प्रियवयस्या अश्रुपातमात्रेण कृतप्रतीकारा निवर्तमाना दीनवदना सबाष्यगुर्व्या दृष्ट्या मामनुगच्छन्ति। वही,, पृ० १५५

६ राक्षस द्वारा चन्दनदास के घर पर अपने परिवार का रखना वही, प्रथम अङ्क

मित्र के इस विश्वास की रक्षा भी आत्मोत्सर्ग अथवा अपने परिवार का उत्सर्ग करके भी करता था।[१]

तत्कालीन समाज मे गुरु-शिष्य परम्परा बहुत दृढ़ थी। गुरु ब्राह्मण हुआ करते थे। वे शिष्य के अज्ञान को दूर करते थे। जब शिष्य को किसी प्रकार का मोह या अज्ञान होता था तो वे अङ्कुश का कार्य करते थे। गुरु शिष्य से कुछ लेते नही थे। भले ही वह सम्राट् ही क्यो न हो। वे विभव से दूर रहते थे। शिष्य उनकी सेवा मे केवल यज्ञादि के लिए कुश समिधा आदि का आहरण कर सकता था।[२] वैसे स्वभावतः गुरु शिष्य के प्रति दुःशील अर्थात् कठोर होते है, किन्तु उस समय कभी-कभी कार्य की व्यग्रता मे ही कठोरता दृष्टिगत होती है। अन्यथा वे शिष्य के प्रति स्नेह से युक्त होते थे।[३] शिष्य तो गुरु का अपार सम्मान करते थे। शिष्य के लिए गुरु सर्वज्ञ होते थे। वे शत्रुओ को भी अपने उपाध्याय के दोषो को नही खोजने देते थे।[४] गुरु की आज्ञा से किये गए कृतक कलह मे भी उनके विरुद्ध कुछ भी कहना पातक समझा जाता था। सत्य मे गुरु के विरुद्ध कुछ कहने अथवा सोचने का तो प्रश्न ही नही उठता था।[५] शिष्य उपाध्याय की बातो को पूर्ण तत्परता से ग्रहण करते थे तथा उनका पालन करते थे।[६] आचार्य भी शिष्य के सम्पूर्ण योगक्षेम के लिए सतत जागरुक रहते थे। इसीलिए शिष्य अपने योग-क्षेम के प्रति निश्चिन्त हो जाते थे।[७] उस समय पुत्र भी पिता के वचनो का आदर करते

---

१ चन्दनदास का आत्मोत्सर्ग के लिए तैयार रहना। वही,, सप्तम अङ्क

२ बटुभिरुपहृतानां बर्हिषां स्तूपमेतत् । वही,, ३.१५

३ वत्स कार्याभिनियोग एवास्मान् व्याकुलयति। न पुनरुपाध्यायसहभूः शिष्यजने दुःशीतता। मुद्रा० पृ० २०

४ (क) किं भवानस्मदुपाध्यायादपि धर्मवित्तरः। वही, पृ० २७
(ख) मूर्ख सर्वज्ञतामुपाध्यायस्य चोरयितुमिच्छसि। वही, पृ० २७

५ आर्याज्ञयैव मम लङ्घितगौरवस्य बुद्धिः प्रवेष्टुमिव भूविवरं प्रवृत्ता।
ये सत्यमेव हि गुरुनतिपातयन्ति तेषां कथन्नु हृदयं न भिनत्ति लज्जा। वही, ४.३३

६ गृहीत आर्यसन्देशः। तस्माद् गमिष्यामि कार्यसिद्ध्यै। वही, पृ० ३७

७ जगतः किं न विजितं मयेति प्रविचिन्त्यताम् ।

थे।[1] किन्तु पिता-पुत्र के बीच के सम्बन्धो मे गुरु शिष्य के बीच के सम्बन्धो जैसी दृढ़ता नही थी, क्योकि धन के लिए पुत्र पिता को तथा पिता पुत्र को मार सकता था।[2]

तत्कालीन समाज मे स्वामी एवं सेवक के मध्य सम्बन्ध अच्छे थे। सेवक अपने स्वामी के लिए पूर्णत॰ विश्वस्त होते थे। जिनसे उन्हे जीविका प्राप्त होती थी उनके कार्य को वे पूरी निष्ठा से निष्पन्न करते थे। अपने स्वामी के प्रति इतने कर्तव्यपरायण होते थे कि वे उनकी कार्य-सिद्धि के लिए अन्यो को धोखा भी दे सकते थे। उनका अपना स्वयं का अस्तित्व समाप्त हो जाता था। ऐसे मे स्वामी की कार्यसिद्धि ही उनका लक्ष्य रह जाता था तथा वे परतन्त्र हो जाते थे।[3] सेवको के उचित व्यवहार से प्रसन्न होकर स्वामी उन्हे पर्याप्त पारितोषिक प्रदान करते थे।[4] तत्कालीन समाज मे कुछ लोग स्वामिभक्ति के परम प्रमाण थे।[5] स्वामियो के न रहने पर भी उनके शत्रुओ से बदला लेकर स्वर्गस्थ अपने स्वामियो की आराधना करने के लिए उद्यत रहते थे।[6] स्वामी प्राय॰ सेवको पर क्रूर व्यवहार नही करते थे। किन्तु आज्ञाभङ्ग आदि पर वे क्रूर हो उठते थे तथा उन्हे प्राण दण्ड भी दे सकते थे। इसलिए अपने दायित्व की पूर्ति न करने की स्थिति मे उच्च-पदस्थ अधिकारी भी

गुरौ षाड्गुण्यचिन्तायामार्ये चार्ये च जाग्रति।। वही, ७.१३

१ तत्किमिदानी मया तातविरहितेनानुष्ठातव्यम् । वही, १५६

२ पितॄन् पुत्रा॰ पुत्रान् परवदभिहिंसन्ति पितरो।। ६ १७

३ कुले लज्जायाञ्च स्वयशसि च माने च विमुख॰
शरीरं विक्रीय क्षणिकधनलोभाद्धनवति।
तदाज्ञां कुर्वाणो हितमित्येतदधुना
विचातिक्रान्तः किमिति परतन्त्रो विमृशति। मुद्रा० ५ ४

४ भद्र श्रुतम् । अपसर न चिरादस्य परिश्रमस्यानुरूपं फलमधिगमिष्यासि। वही, पृ० ३२

५ अक्षीणभक्तिः क्षीणेऽपि नन्दे स्वाम्यर्थमुद्वहन् ।
पृथिव्यां स्वामिभक्तानां प्रमाणे परमे स्थितः। वही, २.२२

६ देवः स्वर्गगतोऽपि शात्रववधेनाराधितः स्यात् ।। २.५

स्वामी से भयभीत रहते थे।[१] इसलिए सेवावृत्ति को हमेशा की तरह उस समय भी कष्टकर लाघवकारिणी तथा श्ववृत्ति माना जाता था।[२]

मुद्राराक्षस नाटक मे ब्राह्मणो, क्षत्रियो, वैश्यो एवं शूद्रो का उल्लेख तो प्राप्त होता है किन्तु उनके जीवकिा के साधनो का अधिक उल्लेख नही मिलता ब्राह्मण विद्याध्ययन-अध्यापन मे लगे रहते थे। गृहस्थ उन्हे विशिष्ट अवसरो पर भोजन कराते थे, दान देते थे। इससे उनकी जीविका का निर्वाह होता था। किन्तु आश्रम व्यवस्था थी अतः आश्रम के विद्यार्थी जिस प्रकार कुश आदि लाते थे उसी प्रकार जीवन के लिए अन्नादि का भी भिक्षाटन आदि से संग्रह करते रहे होगे। क्षत्रियो को राज्य से पैसा प्राप्त होता था। वे व्यापारियो से भी वसूलते थे। कुछ राजा तो अत्यधिक धनसंग्रह मे लिप्त रहते थे। किन्तु कुछ राजा धन के संग्रह मे रुचि न लेकर कर से प्राप्त धन का भी उपयोग प्रजा के कल्याण के लिए करते थे। प्रजा का अपरिक्लेश ही उनका साध्य था।[३] वैश्यवर्ग व्यापार करता था। इनके व्यापार मे किसी प्रकार की कोई रुकावट नही थी।[४] कायस्थ लेखन का कार्य करके अपनी जीविका चलाते थे। कृषि भी होती थी। कृषि बहुत उपजाऊ थी। मुख्यत धान की खेती होती थी।[५] खेत अच्छे थे जिससे कृषको को विना परिश्रम के अच्छी फसले मिल जाती थीं। सम्भवत कृषिकार्य व्यापक पैमाने पर होता था। जीविका के अन्य साधन भी ज्ञात है। वैद्यक के द्वारा लोग जीविकोपार्जन करते थे। वैद्य

---

१ (क) वयस्य को जीवलोके जीवितुकाम आर्यचाणक्याज्ञप्तिं प्रतिकूलयति। वही, पृ० १४२
(ख) भयं तावत् सेव्यादभिनिविशते सेवकजनम् ।
ततःप्रत्यासन्नाद्भवति हृदये चैव निहितम् ।। वही, ५.१२

२ कष्टं खलु सेवा। सेवां लाघवकारिणी कृतधियः स्थाने श्ववृत्तिं बिदुः। वही, ३.१४

३ नन्दस्यैवार्थरुचेरर्थसम्बन्धः प्रीतिमुत्पादयति। चन्द्रगुप्तस्य तु भवतामपरिक्लेश एव। मुद्रा० पृ० ४०

४ आर्यस्य प्रसादेन अखण्डिता मे वाणिज्या। वही, पृ० ३९

५ चीयते बालिशस्यापि सत्क्षेत्रपतिता कृषिः।
न शाले स्तम्बकरिता वप्तुर्गुणमपेक्षते।। वही, १.३

महान् वैज्ञानिक होते थे।[१] कारीगर बढ़ई आदि भी थे। मकान का परिष्कार आदि कर ये जीविकोपार्जन करते थे।[२] कुछ लोग सर्प आदि को दिखाकर तथा कुछ यमपट दिखाकर अपनी जीविका का निर्वाह करते थे।[३] उस समय मांस का विक्रय कर भी कुछ लोग जीविकोपार्जन करते थे।[४]

उस समय उत्सवो का आयोजन किया जाता था। शरत्काल मे पाटलिपुत्र मे कौमुदीमहोत्सव का आयोजन होता था जिसमे सभी नगरवासी भाग लेते थे। किन्तु युद्धादि के समय ऐसे महोत्सवो के आयोजन रोक दिये जाते थे।[५] चन्द्रग्रहण आदि पर्वो पर भी छोटे-छोटे उत्सव आयोजित किये जाते थे। गृहस्थ लोग इन अवसरो पर ब्राह्मणो तथा परिजनो को भोजन कराते थे। सभी उत्सवो मे सामान्य जन भी भाग लेते थे। यद्यपि वह राजनैतिक उठापटक का युग था किन्तु आम लोगो मे पारस्परिक सौहार्द था। लोगो के आचरण उत्तम थे। यद्यपि मांसभक्षण, मद्य एवं परस्त्रीगमन के उदाहरण मिलते है, किन्तु इन्हे हेय माना जाता था। राजसेवक तो इन दुर्व्यसनो मे लिप्त पाये जाने पर अधिकार से च्युत कर दिये जाते थे।[६]

इस प्रकार यद्यपि मुद्राराक्षस नाटक राजनैतिक नाटक है इसलिए इसमे सामाजिक स्थिति के निरूपण के लिए अधिक अवसर नही है, फिर भी इस नाटक से तत्कालीन समाज की धार्मिक आस्था, वर्णाश्रमव्यवस्था, लोगो के पारस्परिक सम्बन्ध एवं दायित्व आदि का अभिज्ञान प्राप्त होता है।

---

१ महान् विज्ञानराशिरुपरतः। वही, पृ० ६३

२ सूत्रधारेण दारुवर्मणा कनकतोरणन्यासादिभिः संस्कारविशेषै सस्कृतं राजभवनद्वारम् । अचिरादस्य दाक्ष्यस्यानुरूपं फलमधिगमिष्यसि। वही, पृ० ६०

३ आहितुण्डिक एवं क्षपणक क्रमशः सर्पोपजीवी एव यमपटोपजीवी है।

४ प्रारब्धाः प्रणयाय मांसवदहो विक्रेतुमेतेवयम् । वही, ५.२२

५ सोऽयं व्यायामकालो नोत्सवकाल इति दुर्गसंस्कारे प्रारब्धव्ये किं कौमुदी महोत्सवेनेति प्रतिषिद्धः। मुद्रा० पृ० ९१

६ एतौ खलु स्त्रीमद्यमृगयाशीलौ हस्त्यश्वावेक्षणेऽनभियुक्तौ इति स्वाधिकाराभ्यामवरोप्य मया स्वजीवनमात्रेणैव स्थापितौ। वही, पृ० ८९

वन्य जीवजन्तुओ की संक्षिप्त चर्चा भी मुद्राराक्षस मे प्राप्त होती है। सिंह का दो स्थानो पर उल्लेख किया गया है।[१] वन्य हाथियो का भी विवरण प्राप्त होता है। वन्य हाथियो को विभिन्न उपायो से पकड़कर सैन्यकार्य मे लगाया जाता था।[२] इन हाथियो के झुण्ड होते थे। उनके यूथ मे से कोई एक बलवान् हाथी सब मे प्रधान होता था।[३] अश्वो का भी तत्कालीन सेना मे प्रयोग होता था। हाथी तथा घोड़े तत्कालीन सेना के प्रधान अङ्ग थे।[४] इसके अतिरिक्त पक्षियो मे हंस,[५] मयूर,[६] एवं सारस[७] का सरीसृपो मे सर्प[८] का, जल जन्तुओ मे नक्र एवं मकर[९] का तथा भ्रमरो[१०] का उल्लेख इस नाटक मे प्राप्त होता है।

मुद्राराक्षस से उस समय के प्रदेशो, स्थानो, नदियो तथा जातियो का भी अभिज्ञान प्राप्त होता है। नाटक मे कूलूत, सिन्धु, मलय, काश्मीर तथा पारसीक प्रदेशो का एक ही स्थान पर उल्लेख किया गया है।[११] इसमे उस समय के शासको के नाम भी मिलते है। चित्रवर्मा, सिंहनाद, पुष्कराक्ष, सिन्धुषेण तथा मेघ ये क्रमशः इन राज्यो के शासक थे। इनके सहयोग से ही पर्वतकपुत्र मलयकेतु चन्द्रगुप्त को परास्त करना चाहता था। तत्कालीन

---

१ (क) को हर्तुमिच्छति हरेः परिभूय दंष्ट्राम्। मुद्रा १.८
(ख) केनानेकपदानवासितसटः सिंहोऽर्पितः पञ्जरे।। वही, ७ ६

२ वनगज इव सोऽभ्युपायैविनेयः। वही, ३.२५

३ क्रमेणारूढवान् राज्यं यूथैश्वर्यमिव द्विपः। वही,, ७.१२

४ अश्वाः कैश्चिन्निरुद्धाः। वही, ४.७

५ हासश्रीराजहंसा। वही, ३.२०

६ मयूराणामुग्रं विषमिव हरन्त्या मदमहो। वही,, ३.८

७ समन्तादाकीर्णाः कलचिवरुतिभिः सारसकुलैः। वही, ३.७

८ ननु खेलत्येवार्योऽहिना। वही, पृ० ४९

९ भीमः केन चलैकनक्रमकरो दोर्भ्यां प्रतीर्णोऽर्णवः। वही, ७.६

१० यदुद्गिरति भ्रमरः। वही, २ ११

११ कौलूतश्चित्रवर्मा मलयनरपतिः सिंहनादो नृसिंहः
काश्मीरः पुष्कराक्षः क्षतरिपुमहिमा सैन्धवः सिन्धुषेणः।
मेघाख्यः पञ्चमोऽस्मिन् पृथुतुरगबलः पारसीकाधिराजो। वही, १ २०

विदेशी जातियो का भी परिचय मुद्राराक्षस से हमे मिलता है इसमे चीण तथा हूण, खश, मगध, गान्धार, शक, यवन, किरात, काम्बोज, पारसीक एवं बाह्लीक जातियो का उल्लेख किया गया है। ये सभी विदेशी थे। इन्हे म्लेच्छ कहा जाता था।[१] नगरो मे पाटलिपुत्र का वर्णन किया गया है इसे पुष्पपुर अथवा कुसुमपुर भी कहते थे। इसका उल्लेख प्रथम, तृतीय, छठे तथा सप्तम अङ्को मे प्राप्त होता है। द्वितीय तथा चतुर्थ अङ्क मे मलयकेतु की राजधानी का तथा पञ्चम अङ्क मे उसी के नगर स्कन्धावार का उल्लेख किया गया है। नदियो मे केवल गङ्गा[२] एवं शोण[३] इन दो नदियो का ही उल्लेख है। शोण नद है। नाटक मे दक्षिण अर्णव[४] अर्थात् समुद्र का भी उल्लेख किया गया है।

मुद्राराक्षस मे विभिन्न कालो की भी सूचना प्रस्तुत की गयी है प्रथम अङ्क मे फाल्गुन पूर्णिमा के पूर्वाह्ण की, द्वितीय अङ्क मे फाल्गुन अमावास्या के पूर्वाह्ण की, चतुर्थ अङ्क मे कार्तिक पूर्णिमा के पूर्वरात्र की, चतुर्थ अङ्क मे कार्तिक पूर्णिमा के पूर्वरात्र की चतुर्थ अङ्क मे मार्गशीर्ष पूर्णिमाके मध्याह्न एवं अपराह्ण की, प्रवेशक एवं पञ्चम अङ्क मे पौष पूर्णिमा के अपराह्ण की, प्रवेशक, छठे एवं सातवे अङ्क मे पौषकृष्ण पक्ष के पूर्वाह्ण की तथा तृतीय अङ्क मे शरद् ऋतु की काल-सूचक प्रस्तुति प्राप्त होती है। इससे उस समय ज्योतिष के अनिवार्य ज्ञान की सिद्धि होती है।

---

१ प्रस्थातव्यं पुरस्तात्खसमगधगणैर्मामनुव्यूह्य सैन्यै
गर्न्धार्रमध्ययाने सयवनपतिभि॰ संविधेयः प्रयत्नः।
पश्चात्तिष्ठन्तु वीराः शकनरपतयः सम्भृताश्चीणहूणैः। मुद्रा० ५.११

२ गङ्गां शरन्नयति सिन्धुपतिं प्रसन्नाम् । वही, ३.९

३ शोणं सिन्दूरशोणा मम गजपतयः पास्यन्ति शतशः। वही, ४.१६

४ आ तीरान्नैकरागस्फुरितमणिरुचो दक्षिणस्यार्णवस्य। वही, ३.१९

अष्टम अध्याय

मुद्राराक्षस की राजनीति के सैद्धान्तिक आधार

मुद्राराक्षस की राजनीति के सैद्धान्तिक आधार

विशाखदत्तप्रणीत मुद्राराक्षस पूर्णतः राजनैतिक नाटक है। इसके सभी पात्र राजनैतिक उद्देश्य से सञ्चालित है। नन्दो का विनाश हो जाने पर चन्द्रगुप्त को मगध साम्राज्य पर प्रतिष्ठित करने के बाद भी चाणक्य उसकी राज्यलक्ष्मी की स्थिरता के लिए प्रयत्नशील है। राक्षस अपने स्वामियो का बदला लेने के लिए, चाणक्य-चन्द्रगुप्त को राज्य से अपदस्थ करने के लिए उद्यत है। इसके लिए उसे मलयकेतु का सहयोग प्राप्त है। किन्तु चाणक्य राक्षस की स्वामिभक्ति के गुण से प्रभावित होकर उसे अपने वश मे करके चन्द्रगुप्त का मन्त्री बनाना चाहता है। चाणक्य अपनी बुद्धि के वैभव से राक्षस से मलयकेतु को पृथक् कर राक्षस को वश मे करने मे सफल भी हो जाता है। इसी कथानक को प्रस्तुत करने के लिए विशाखदत्त ने इस नाटक की रचना की है। नाटककार की यह प्रस्तुति इतनी संश्लिष्ट है कि इसे देखकर लगता है कि विशाखदत्त राजनीतिक दॉवपेच से स्वतः पूर्ण अभिज्ञ थे। एक सामान्य व्यक्ति इतनी राजनैतिक सूक्ष्मताओ मे नही जा सकता। इन्होंने जो राजनैतिक विवरण प्रस्तुत किये है उनसे यह भी स्पष्ट है कि इन्होने कौटिल्य के अर्थशास्त्र एवं कामन्दक के नीतिसार आदि ग्रन्थो का सूक्ष्म एवं गम्भीर ज्ञान प्राप्त किया था।

इस नाटक मे राजनीति के लिए आवश्यक सभी तत्त्वो की व्याख्या की गयी है। किसी भी राज्य के लिए स्वामी, अमात्य, जनपद, दुर्ग, कोश, दण्ड एवं मित्र ये सात प्रकृतियॉ आवश्यक मानी गयी है। अर्थशास्त्र मे इनका उल्लेख प्राप्त होता है- स्वाम्यमात्यजनपददुर्गकोशदण्डमित्राणि प्रकृतयः।[१]

---

[१] अर्थशास्त्र ५ १ पृ० ४४९

कामन्दक नीतिसार[१] तथा शुक्रनीति[२] मे भी इसी सप्ताङ्ग सिद्धान्त का प्रतिपादन किया गया है। शुक्रनीति मे नृप रूप प्रकृति को सर्वश्रेष्ठ माना गया है। मुद्राराक्षस मे इन सातो राज्यप्रकृतियो का विवरण प्राप्त होता है। चन्द्रगुप्त एवं मलयकेतु राजा है। इन्ही के क्रमशः चाणक्य एवं राक्षस क्रमशः अमात्य है। जनपद मगध है। दुर्ग सुगाङ्ग [३] प्रासाद है। मुद्राराक्षस मे कोश, दण्ड तथा मित्र का भी उल्लेख प्राप्त होता है।

नन्दो ने विशाल कोश का सञ्चय किया था।[४] चन्द्रगुप्त तीक्ष्ण दण्ड देने वाला राजा था।[५] पर्वतक चन्द्रगुप्त का मित्र था। नन्दो पर विजय प्राप्त करने पर इसे आधा राज्य देना पड़ता। इसीलिए चाणक्य ने पर्वतक को मरवा दिया।[६] राजा के प्रसङ्ग मे यह तथ्य उल्लेखनीय है कि नीतिशास्त्रो के अनुसार राजा प्रधान प्रकृति है। इसे हमेशा अपने राज्य के प्रति सचेष्ट रहना चाहिए। लेकिन मुद्राराक्षस मे इसके विपरीत व्यवहार मिलता है। मुद्राराक्षस का राजा सचिवायत्त सिद्धि है। चाणक्य ही राज्य के प्रति सजग है। राजा चन्द्रगुप्त

---

१ स्वाम्यमात्यञ्च राष्ट्रञ्च दुर्ग कोशो बलं सुहृत् ।
परस्परोपकारीदं सप्ताङ्गं राज्यमुच्यते।। कामन्दक ४.१

२ स्वाम्यमात्यसुहृत्कोशराष्ट्रदुर्गबलानि च।
सप्ताङ्गमुच्यते राज्यं तत्र मूर्धा नृप स्मृत ।। शुक्रनीति १ ६

३ इत इतो देव अयं सुगाङ्गप्रासादः। मुद्रा० पृ० ७६

४ (क) स खलु मूर्खस्तं युष्माभिरतिसृष्टं महान्तमर्थराशिमवाप्य महता व्ययेनोपभोक्तुमारब्धवान् । मुद्रा० पृ० ६३
(ख) राक्षसोऽपि खलु .. कोषबलवानिहैवान्तर्नगरे वर्तमानो महान्तं खल्वन्तःकोपमुत्पादयेत् । वही पृ० ९२

५ भोः श्रेष्ठिन्चन्दनदास एवमयमपथ्यकारिषु तीक्ष्णदण्डो राजा। वही, पृ० ४२

६ घातितोऽर्धराज्यहरः। वही, २ १९

राज्य का सम्पूर्ण कार्यभार चाणक्य पर डाल कर निश्चिन्त रहता है।[१] चन्द्रगुप्त को राज्य की प्राप्ति अथवा स्थिरता के लिए कुछ नही करना पड़ता। यह चाणक्य जैसे अमात्य की जागरूकता के कारण सब कुछ जीत लेता है। चाणक्य मे अमात्य के उचित गुण विद्यमान है। वह अपनी भेदनीति के बल पर विना युद्ध के ही प्रबल प्रतिपक्षियो को जीतकर अपने वश मे करके चन्द्रगुप्त की राज्यलक्ष्मी को स्थिरता प्रदान करता है - विनैव युद्धादार्येण जितं दुर्जयं परबलमिति लज्जित एवास्मि।[२] चन्द्रगुप्त का मन्त्री चाणक्य कार्य के प्रति हमेशा जागरूक रहता है। इसी मन्त्रिशक्ति के बल पर वह राजाधिराज बना हुआ है।[३] जिसे शत्रुओ पर विजय के लिए केवल अपनी बुद्धि पर भरोसा है, ऐसा चाणक्य तो बुद्धिमान है ही,[४] चाणक्य के समान राक्षस भी बुद्धिमान् स्वामिभक्त एव पराक्रमी अमात्य है। चाणक्य नि स्वार्थ भाव से चन्द्रगुप्त की राज्यलक्ष्मी को स्थिर करने का प्रयास कर रहा है राक्षस भी विना किसी स्वार्थ के पूर्व सुकृत का स्मरण कर नन्दो के प्रति भक्ति के कारण अपने प्रतिपक्षियो के विनाश के लिए तत्पर है। भक्ति के लिए उसकी कोई बराबरी नही है।[५] इसीलिए चाणक्य उसको वश मे कर चन्द्रगुप्त का मन्त्री

---

१ वृषल एव केवल प्रधानप्रकृतिरस्मास्वरोपितराज्यतन्त्रभार· सततमुदास्ते। मुद्रा० पृ० २५

२ वही, पृ० १६१

३ विगुणीकृतकार्मुकोऽपि जेतुं भुवि जेतव्यमसौ समर्थ एव।
स्वपतोऽपि ममेव यस्य तन्त्रे गुरवो जाग्रति कार्यजागरूकाः।। वही, ७.११

४ एका केवलमेव साधनविधौ सेनाशतेभ्योऽधिका।
नन्दोन्मूलनदृष्टवीर्यमहिमा बुद्धिस्तु मा गान्मम। मुद्रा० १ २५

५ ऐश्वर्यादनपेतमीश्वरमयं लोकोऽर्थतः सेवते
तं गच्छन्त्यनु ये विपत्तिषु पुनस्ते तत्प्रतिष्ठाशया।
भर्त्तुर्ये प्रलयेऽपि पूर्वसुकृतासङ्गेन निःङ्गया
भक्त्या कार्यधुरां वहन्ति कृतिनस्ते दुर्लभास्त्वादृशा·।। वही, १ १४

बनाना चाहता है।[1] चाणक्य राक्षस की प्रशंसा करता हुआ एक सामान्य सिद्धान्त का प्रतिपादन करता है कि वही राज्यकार्य के लिए अमात्य या भृत्य के रूप मे उपयोगी होता है जिसमे प्रज्ञा, विक्रम एवं भक्ति इन तीनो गुणो का सामञ्जस्य हो-

अप्राज्ञेन च कातरेण च गुणः स्यात् भक्तियुक्तेन कः?

प्रज्ञाविक्रमशालिनोऽपि हि भवेत् किं भक्तिहीनात् फलम् ।

प्रज्ञाविक्रमभक्तयः समुदिता येषां गुणा भूतये

ते भृत्या नृपतेः कलत्रमितरे, सम्पत्सु चापत्सु च।।[2]

विशाखदत्त के इस विचार का आधार कौटिल्य के अर्थशास्त्र मे प्रतिपादित आचार्य बाहुदन्ती पुत्र इन्द्र का अमात्यविषयक निम्नलिखित विचार है - अभिजनप्रज्ञाशौचशौर्यानुरागयुक्तानमत्यान् कुर्वीत। गुणप्राधान्यादिति।[3]

राजतन्त्र तभी दृढ़ होता है जब मन्त्रिशक्ति एवं प्रभुशक्ति परस्पर विश्वास से कार्य करते है तथा प्रभुशक्ति अनुद्धत होती है। नन्दो के विनाश का कारण प्रभुशक्ति की उद्धतता तथा मलयकेतु के विनाश का कारण प्रभुशक्ति का मन्त्रिशक्ति के प्रति अविश्वास था। इसके विपरीत चन्द्रगुप्त की राज्यश्री की अभिवृद्धि का कारण राजा एवं सचिव मे पूर्ण विश्वास तथा प्रभुशक्ति का अनुद्धत होना था। मुद्राराक्षस मे यह भी कहा गया है कि यदि राजा एवं मन्त्री मे सामञ्जस्य होता है तो राज्यलक्ष्मी उन दोनो के समीप बनी रहती है किन्तु उन दोनो मे से राजा या मन्त्री परस्पर भिन्न मति वाले होते है

---

[1] अत एवास्माकं त्वत्संग्रहे यत्नः कथमसौ वृषलस्य साचिव्यग्रहणेन सानुग्रहः स्यात् । वही, पृ० २३

[2] वही, १.१५

[3] अर्थशास्त्र १.८

तो राज्यलक्ष्मी राज्य के भार को वहन करने मे असमर्थ होती हुई किसी एक को छोड़ देती है। इसीलिए मलयकेतु को राज्यलक्ष्मी नही प्राप्त हो पाती।[1]

मुद्राराक्षस के इस तथ्य का समर्थन कौटिल्य के अर्थशास्त्र के निम्नलिखित श्लोक से होता है कि राजा एवं मन्त्री के सहयोग से राज्यलक्ष्मी की वृद्धि होती है -

ब्राह्मणेनैधितं क्षत्रं मन्त्रिमन्त्राभिमन्त्रितम् ।

जयत्यजितमत्यन्तं शास्त्रानुगतशस्त्रितम्।।[2]

राज्यकार्य मे राजा एवं मन्त्री के महत्त्व के साथ-साथ गुप्तचरो के कार्य का भी बहुत महत्त्व होता है। गुप्तचरो मे विभिन्न गुणो का होना आवश्यक होता है। क्योकि कोई भी राजा अथवा मन्त्री अपने प्रतिपक्षी राज्य की गतिविधयो पर गुप्तचरो के माध्यम से अप्रत्यक्ष नियन्त्रण रखता है। उन्ही के द्वारा प्रतिपक्षियो मे भेद उत्पन्न करता है।

कौटिल्य के अर्थशास्त्र मे अनेक प्रकार के गुप्तचरो की नियुक्ति का विधान है। कापटिक, उदास्थित, गृहपतिक ' वैदेहक, तापस, सत्री, रसद,भिक्षुकी आदि अनेक प्रकार के गुप्तचर होते है।[3] शत्रु की गतिविधि का पता लगाने के लिए वनेचर, सन्यासी तथा तथा आटविक लोगो की गुप्तचर के रूप में नियुक्ति करनी चाहिए।[4] इन गुप्तचरो को बुद्धिमान तथा विभिन्न

---

[1] अत्युच्छ्रिते मन्त्रिणि पार्थिवे च विष्टभ्य पादावुपतिष्ठते श्रीः।
सा स्त्रीस्वभावादसहा भरस्य तयोर्द्वयोरेकतरं जहाति। मुद्रा० ४.१३

[2] अर्थशास्त्र १.८ ३

[3] उपधाभिः शुद्धामात्यवर्गो गूढपुरुषानुत्पादयेत्। कापटिकोदास्थितगृह-पतिवैदेहकतापसव्यञ्जनान् सत्रितीक्ष्णरसदभिक्षुकीश्च। वही, १.१० १

[4] वने वनचराः कार्याः श्रमणाटविकादयः।
परप्रवृत्तिज्ञानार्थाः शीघ्राश्चारपरम्पराः।। वही, १.११.५ पृ० ३५

शास्त्रो का ज्ञाता होना चाहिए।[१] अर्थशास्त्र के अनुसार ये भिन्न-भिन्न वेशो मे शत्रु राजाओ के यहाँ गुप्तचरी का कार्य करते थे- तदस्य स्वविषये कार्तान्तिकनैमित्तिकमौहूर्तिक पौराणिकक्षपणिकगूढपुरुष साचिव्यकरास्तद्दर्शिनश्च प्रकाशयेयुः।[२]

मुद्राराक्षस का क्षपणक जीवसिद्धि अर्थशास्त्र के अनुसार उदास्थित[३] गुप्तचर है। वही जब राक्षस के पास जाकर राक्षस के द्वारा शत्रुपक्ष पर आक्रमण के लिए मुहूर्त बताता है तो वहाँ वह अर्थशास्त्र सम्मत मौहूर्तिक[४] गुप्तचर है। प्रथम अङ्क मे यमपट लेकर घूमने वाला गुप्तचर कार्तान्तिक[५] गुप्तचर है। ये गुप्तचर राजा के अनुरक्त एवं अपरक्तं पुरुषो के कार्यो की जानकारी रखते थे। अर्थशास्त्र मे इसी बात को कहा भी गया है- ते ग्रामाणामध्यक्षाणां च शौचाशौचं विद्युः।[६] चाणक्य ने प्रथम अङ्क मे अपने गुप्तचरों के इसी कार्य का निर्देश किया है- प्रयुक्ताश्च मया स्वपरपक्षयोः अनुरक्तापरक्तजनजिज्ञासया बहुविधदेशभाषावेशाचारसञ्चारवेदिनो नानाव्यञ्जनाः प्रणिधयः।[७] गुप्तचरो के गुणो को स्पष्ट करते हुए कामन्दक मे भी कहा गया है-

तर्केङ्गितज्ञः स्मृतिमान् मृदुर्लघुपरिक्रमः।

---

१ ते लक्षणमङ्गकविद्यां जम्भकविद्यां मायागतमाश्रमधर्म निमित्तमन्तरचक्रमित्यधीयाना सत्रिणः संसर्गविद्यावा। वही, १ ११ १० पृ० ३२

२ अर्थशास्त्र १३ २

३ वही, १ ११

४ वही, ४ ४

५ वही, ४ ४

६ वही, ४.४

७ मुद्रा पृ० २४

क्लेशायाससहो दक्षश्चरः स्यात् प्रतिपत्तिमान् ।[१]

शुक्रनीति मे भी गुप्तचरो के गुणो को निरूपित किया गया है-

शत्रुप्रजाभृत्यवृत्तविज्ञातुं कुशलाश्च ये।

ते गूढाचारा· कर्तव्या· यथार्थश्रुतबोधकाः।[२] ·

मुद्राराक्षस मे चाणक्य एवं राक्षस दोनो अपने अपने प्रतिपक्षियो की गतिविधियो को जानने के लिए गुप्तचरो की नियुक्ति करते है। चाणक्य के गुप्तचर बुद्धिमान् है। वे ज्योतिष, दण्डनीति तथा अन्य विद्याओ मे पारङ्गत है चाणक्य का सहाध्यायी मित्र इन्दुशर्मा जो क्षपणक के वेश मे घूमता है ज्योतिष शास्त्र, एवं शुक्रप्रणीत दण्डनीति मे पारङ्गत है। उसने राक्षस के साथ इसीलिए मित्रता स्थापित करने मे सफलता प्राप्त की है।[३]

चाणक्य का गुप्तचर भागुरायण भी बुद्धिमान् है। चाणक्य के आदेश से वह मलयकेतु के साथ रहकर उसे राक्षस के विरुद्ध कर देता है। इसने चाणक्य का बहुत बड़ा कार्य किया है। राक्षस एवं मलयकेतु मे भेद के कारण ही राक्षस पराजय स्वीकार करता है। इसने अपनी बुद्धि का परिचय देते हुए राक्षस के प्राणो की मलयकेतु से रक्षा की है। सिद्धार्थक भी चाणक्य का बुद्धिमान् गुप्तचर है। वह शकटदास के प्राणो को वचाने के बहाने राक्षस का विश्वास अर्जित कर लेता है। भागुरायण मलयकेतु का विश्वासपात्र बनकर तथा सिद्धार्थक राक्षस का विश्वासपात्र बनकर दोनो चाणक्य की भेदनीतिलता का

---

१ कामन्दक १२ २५

२ शुक्रनीति २.१८९

३ अस्ति चास्माक सहाध्यायि मित्रमिन्दुशर्मा नाम ब्राह्मण· स चौशनस्यां दण्डनीत्यां चतु षष्ट्यङ्गे ज्योति·शास्त्रे च परं प्रवीण्यमुपगतः। तस्मिन्राक्षस· समुत्पन्नविश्रम्भः। मुद्रा० पृ० २५

विस्तार करने मे अपने उन गुणो का परिचय देते है जो नीतिशास्त्रो मे वर्णित है। चाणक्य एवं राक्षस के गुप्तचर नीतिशास्त्रो का अनुगमन करते हुए कपट वेश को भी धारण करते है। इन्दुशर्मा ब्राह्मण है, फिर भी बौद्ध सन्यासी बना हुआ है।[१] चाणक्य का एक गुप्तचर निपुणक यमपट लेकर भ्रमण करता है।[२] इसी प्रकार राक्षस का गुप्तचर विराधगुप्त कुसुमपुर के वृत्तान्त को जानने के लिए आहितुण्डिक के वेश को धारण करता है।[३] राक्षस भी वैतालिक के रूप मे चाणक्य से चन्द्रगुप्त को पृथक् करने के लिए स्तनकलश नामक गुप्तचर की नियुक्ति करता है।[४] इसके भी गुप्तचर चतुर है, किन्तु चाणक्य की जागरूकता के कारण पहचान लिये जाते है।

चाणक्य सम्पूर्ण नाटक में अपनी नीतियो के प्रयोग मे सफल रहा है। वह प्रथमतः प्रथम अङ्क मे उपस्थित होकर नन्दो के विनाश की सूचना देता है तथा राक्षस की उपमा अपने विनाश के लिए उद्यत शलभ कीड़े से करता है। वह कहता है। राक्षस का विनाश अवश्यंभावी है, क्योकि उसे अपने तथा अपने शत्रु के बल का अभिज्ञान नही है।[५] किसी भी विजय के लिए अपने तथा अपने शत्रु के बल का अभिज्ञान आवश्यक होता है।

---

१ स मया क्षपणलिङ्गधारी ... सर्वनन्दामात्यैः सह सख्यं ग्राहितः। मुद्रा० पृ० २५

२ ततः प्रविशति यमपटे चरः। वही, पृ० २६

३ व्यक्तमाहितुण्डिकछद्मना विराधगुप्तेनानेन भवितव्यम् । वही, पृ० ५६

४ तत्र मे प्रिसुहृद् वैतालिक व्यव्यञ्जनः स्तनकलशो नाम प्रतिवसति स त्वया मद्वचनाद् वाच्यः यथा चाणक्येन क्रियमाणेष्वाज्ञाभङ्गेषु चन्द्रगुप्तः समुत्तेजनसमर्थैः श्लोकैरुपश्लोकयितव्यः। वही, पृ० ७१

५ उल्लङ्घयन् मम समुज्ज्वलतः प्रतापं कोपस्य नन्दकुलकाननधूमकेतोः
सद्यः परात्मपरिमाणविवेकमूढः कः शालभेन विधिना लभतां विनाशम्। वही, १.१० पृ० ४८९

परात्मपरिमाणविवेक के महत्त्व को स्पष्ट करते हुए कौटिल्य के अर्थशास्त्र मे कहा भी गया है -

विजिगीषुरात्मनः परस्य च बलाबलं ... ज्ञात्वा विशिष्टबलो यायात् ।[१]

इस तथ्य का प्रतिपादन कामन्दकीय नीतिसार मे भी किया गया है-

आत्मानं च परं चैव ज्ञात्वा धीरः समुत्पतेत् ।

एतदेव हि विज्ञानं यदात्मपरवेदनम् ।।[२]

चाणक्य शत्रु के बल को समझता है वह छोटे से छोटे शत्रु की भी उपेक्षा नही करता- न युक्तं प्राकृतमपि रिपुमवाज्ञातुम् ।[३] इसीलिए वह सफल होता है। प्रथम अङ्क मे चाणक्य द्वारा शत्रुओ को वश मे करने के लिए किये गये उपायो का उल्लेख किया गया है। नान्दी के अनन्तर सूत्रधार द्वारा नटी को सम्बोधित करते समय चाणक्य द्वारा अपनायी नीति की ध्वनि प्राप्त होती है-

गुणवत्युपायनिलये स्थितिहेतोः साधिके त्रिवर्गस्य।

भद्रवननीतिविद्ये कार्याचार्ये द्रुतमुपेहि।।[४]

इसमे सन्धि, विग्रह, यान, आसन संश्रय एवं द्वैधीभाव इन छह गुणो की साम, दान, दण्ड एवं भेद इन चार उपायो की तथा धर्म, अर्थ एवं काम इस त्रिवर्ग की ध्वनि है। अर्थशास्त्र एवं शुक्रनीति मे ये गुण इस प्रकार वर्णित है-

---

१ अर्थ ९.१

२ कामन्दक ११.४१

३ मुद्रा० पृ० ३०

४ वही, १.५

सन्धिविग्रहासनयानसंशयद्वैधीभावा षाड्गुण्यमित्याचार्या।[1] एवं

सन्धि च विग्रहं यानमासनं च समाश्रय।

द्वैधीभावं च संविद्यान्मन्त्रस्यैतांस्तु षड्गुणान् ।।[2]

मुद्राराक्षस मे सप्तम अङ्क मे चन्द्रगुप्त चाणक्य द्वारा शत्रुओ के विजय के लिए अपनाए गये षाड्गुण्य की चर्चा करता है।[3] षष्ठ अङ्क मे चन्दनदास के प्राणो की रक्षा हेतु राक्षस को कुसुमपुर की ओर आता हुआ देखकर चाणक्य का गुप्तचर छहो गुणो के प्रयोग से दृढ़ तथा चारो उपायो से युक्त चाणक्य की नीति की प्रशंसा करता है।[4] इस प्रकार चाणक्य का षाड्गुण्य प्रयोग एवं उपायो का आश्रय अर्थशास्त्र सम्मत है। चाणक्य ने उपायों का भी प्रयोग किया है विशेष रूप से दण्ड एवं भेद उपायो का प्रयोग व्यापक है। मुद्राराक्षस मे दण्ड उपाय की अनेकत्र चर्चा है। चन्दनदास राक्षस का मित्र है उसने राक्षस के परिवार को अपने घर मे शरण दे रखी थी। उसका यह कार्य राज्य के विरुद्ध था इसलिए उसे मृत्युदण्ड दिया गया है।[5] इसी प्रकार राजा के विरुद्ध कार्य करने वालो को नगर से निष्कासित करने का तथा प्राण दण्ड देने का उल्लेख प्रथम अङ्क में प्राप्त होता है।[6] भेद का प्रयोग तो चाणक्य एवं राक्षस दोनो करते है। चाणक्य भागुरायण के द्वारा राक्षस एवं मलयकेतु को परस्पर भिन्न करने मे सफल हो जाता है। जब कि राक्षस वैतालिकव्यञ्जन

---

१ अर्थशास्त्र ७ १ पृ० ४५३

२ शुक्रनीति ४ ७ २३२

३ जगतः किं न विजितं मयेति प्रविचिन्त्यताम् ।
गुरौ षाड्गुण्यचिन्तायामार्ये चार्ये च जाग्रति।। मुद्रा० ७.१३

४ षड्गुणसंयोगदृढा उपायपरिपाटीघटितपाशमुखी।
चाणक्यनीतिरज्जू रिपुसंयमनोद्यता जयति।। वही, ६.४

५ वृषल एवास्य प्राणहरं दण्डमाज्ञापयिष्यति। मुद्रा० पृ० ४४

६ राजापथ्यकारी क्षपणको जीवसिद्धिः सनिकारं नगरान्निर्वास्यते। वही, पृ० ४२

स्तनकलश के द्वारा चन्द्रगुप्त को चाणक्य से पृथक् करना चाहता है। इन उपायो का प्रयोग भी अर्थशास्त्रसम्मत है।

मुद्राराक्षस के प्रथम अङ्क मे चाणक्य भेद उपाय का प्रयोग करने के लिए विना यह बताए कि चाणक्य लेख लिखवा रहा है शकटदास से लेख लिखवाने मे सफल हो जाता है। इसी लेख के कारण मलयकेतु राक्षस पर अविश्वास करने लगता है। शकटदास से लेख इसलिए लिखवाया जाता है कि उसका हस्तलेख बहुत सुन्दर है- अनेन खलु लेखेन राक्षसो जेतव्य। अहो दर्शनीयताक्षराणाम् ।[१] इस प्रसङ्ग मे भी नाटककार पर अर्थशास्त्र का प्रभाव है। अर्थशास्त्र मे उसी को लेखक बनाने का निर्देश है जिसका लेख सुपाठ्य एवं सुन्दर हो- सर्वसमयविदाशुग्रन्थश्चार्वक्षरो लेखवाचनसमर्थो लेखक: स्यात्।[२] अर्थशास्त्र के इस उद्धरण से चाणक्य द्वारा शकटदास से लेख लिखवाने का औचित्य सिद्ध हो जाता है। शुक्रनीति मे भी यह बात स्पष्ट की गयी है। कि कायस्थ ही अच्छे लेखक होते है और शकटादास भी कायस्थ ही है।[३] चाणक्य यह नही लिखवाता कि यह पत्र किसके लिए किसने लिखा है। वह उसमे यह भी उल्लिखित करवाता है कि पत्रवाहक वाचिक संदेश भी लिए हुए है, जिसे पत्र मे नही लिखवाया गया है। अर्थशास्त्र मे लिखित संदेश के साथ वाचिक संदेश भेजने का भी उल्लेख किया गया है -

लेखपरिसंहरणार्थ इति शब्दो वाचिकमस्येति च।[४]

पत्र को चाणक्य राक्षस के नाम से अङ्कित अङ्गुलीयक से मुद्रित भी करता है। यह अङ्गुलीयक चाणक्य के गुप्तचर निपुणक को राक्षस के मित्र

---

१ वही, पृ० ३५
२ अर्थशास्त्र २.१०
३ शुक्रनीति ७.९.६
४ अर्थशास्त्र, ८.६

चन्दनदास के घर के बाहर से प्राप्त होता है। वह उसे लाकर चाणक्य को दे देता है।[1] अर्थशास्त्र मे भी कहा गया है कि गुप्तचरो के द्वारा शत्रु पक्ष के बन्धु-बान्धव तथा रत्नादि अपहृत कर लेना चाहिए-

बन्धुरत्नापहरणं चारज्ञानं पराक्रम·।

समाधिमोक्षो दूतस्य कर्मयोगस्य चाश्रय।[2]

क्योकि इससे शत्रुपक्ष पर अधिकार करने मे सहायता मिलती है। चाणक्य शत्रु पक्ष के चन्दनदास के घर से प्राप्त रत्न राक्षसनामाङ्कित अङ्गुलीयक से पत्र को अङ्कित करवाता है, जिससे वह राक्षस से मलयकेतु को पृथक् करने मे सफल हो जाता है। इसी मुद्रा के प्रयोग से चाणक्य मलयकेतु एवं राक्षस को वश मे करने मे सफल होता है। अतः इस नाटक का नाम मुद्राराक्षस पड़ा।

नाटक मे चन्द्रगुप्त को एक स्थान पर असम्पूर्ण मण्डल कहा गया है- चन्द्रम् असम्पूर्णमण्डलम्।[3] वह असम्पूर्ण मण्डल है। अभी वह सम्पूर्ण अष्टादश मण्डलो से सुसज्जित नही हुआ है। इसलिए राक्षस मलयकेतु के साथ मिलकर उसका अभिभव करना चाहता है, किन्तु बुधयोग अर्थात् चाणक्य का योग उसकी रक्षा करता है[4] और उसे सम्पूर्ण मण्डल बना देता है - सम्पूर्णमण्डलेऽपि यानि चन्द्रे विरुद्धानि।[5] इसका ध्वन्यर्थ है कि चन्द्रगुप्त के सम्पूर्ण मण्डल हो जाने पर भी उसके विरोधियो का वर्ग अभी भी उसके विरुद्ध षडयन्त्र कर रहा है। सम्पूर्ण मण्डलो का उल्लेख अर्थशास्त्र मे भी

---

१ मयापि अमात्यराक्षस्य नामाङ्कितेति आर्यस्य पादमूलं प्रापिता। पृ० ३२
२ भद्र अनया मुद्रया मुद्रयैनम् । मुद्रा० पृ० ३५
३ वही, १.६
४ रक्षत्येनं तु बुधयोगः। वही, १ ६
५ वही, १.१९

प्राप्त होता है। मण्डल अट्ठारह होते है- ताः पञ्चभिरमात्यजनपददुर्गकोशदण्डप्रकृतिभिरेकैकशः संयुक्ता मण्डलमष्टादशकं भवति।[१]

नन्दो को परास्त कर जब राजा चन्द्रगुप्त नन्दाधिकृत प्रासाद पर सिंहासनाधिरूढ होने के लिए प्रवेश करता है तो विपक्षी उसकी मृत्यु के लिए शस्त्रप्रहार, विषप्रयोग, दहन आदि विभिन्न उपायो का उस पर प्रयोग करना चाहते हैं, किन्तु चाणक्य उन्ही उपायो से विपक्षियो का वध करा देता है।[२] विशाखदत्त द्वारा विपक्षियो के प्रयोगो से ही विपक्षियो के वध का जो वर्णन किया गया है वह पूर्णतः अर्थशास्त्र पर आधारित है।

राक्षस चन्द्रगुप्त के वध के लिए जिस विषमयी गूढकन्या का प्रयोग करता है चाणक्य उसके द्वारा आधे राज्य के हकदार पर्वतक को मरवाकर हत्या का आरोप राक्षस पर मढ़ देता है।[३] इससे चाणक्य के अनेक प्रयोजन सिद्ध होते है। उसका राज्य बॅाटने से बच जाता है तथा मलयकेतु भविष्य मे राक्षस से घृणा करने लगता है। राक्षस चन्द्रगुप्त की हत्या के लिए विषौषधि देने वाले अभयदत्त नामक वैद्य की नियुक्ति दूसरे उपाय के रूप मे करता है। अभयदत्त चन्द्रगुप्त के लिए योगचूर्णमिश्रित औषध का निर्माण कर उसे पिलाना चाहता है, जिससे उसकी मृत्यु हो जाय।[४] किन्तु चाणक्य पात्र के

---

१ अर्थशास्त्र ६.२

२ कन्या तस्य वधाय या विषमयी गूढं प्रयुक्ता मया
दैवात्पर्वतकस्तया स निहतो यस्तस्य राज्यार्धहृत् ।
ये शस्त्रेषु रसेषु च प्रणिहितास्तैरेव ते घातिता।। वही, २.६

३ परिहृतमयशः पातितमस्मासु च घातितोर्धराज्यहरः। मुद्रा० १.१९

४ अमात्य कल्पितमनेन योगचूर्णमिश्रितमौषधं चन्द्रगुप्ताय। तत्प्रत्यक्षे कुर्वता चाणक्यहतकेन कनकभाजने वर्णान्तरमुपलभ्याभिहितश्चन्द्रगुप्तः। वृषल। सविषमिदमौषधं न पातव्यम् । वही, पृ० ६३

बदले रङ्ग को देखकर विष के मिश्रण को समझ जाता है और चन्द्रगुप्त को उसे पीने से मना कर देता है। विषयुक्त औषधादि को पहचानने के लिए कौटिल्य के अर्थशास्त्र मे भी निर्देश प्राप्त होता है -

लौहमणिमयानां पङ्कम्लोपदेहतास्नेहरागगौरवप्रभावस्पर्शवधश्चेति विषयुक्तलिङ्गानि।[1]

चाणक्य चन्द्रगुप्त को सविष औषधपान करने से तो रोकता ही है उस सविष औषध की परीक्षा के लिए उसे वैद्य अभयदत्त को पिलवा देता है, जिससे उसकी मृत्यु हो जाती है।[2] औषध मे विष मिलाया गया है कि नही इसकी परीक्षा के लिए उसे पहले उसके निर्माता को ही पिलाना चाहिए, इस तथ्य को कामन्दकीय नीतिसार मे स्पष्ट रूप से कहा गया है -

औषधानि च सर्वाण पानपानीयमेव च।

तत्कल्पकैः समास्वाद्य प्राश्नीयाद् भोजनानि च।।[3]

मुद्राराक्षस मे वर्णित नन्दभवन मे सुरङ्ग आदि का निर्माण कराया गया था। गुप्त रूप से भित्ति के अन्दर सुरङ्ग मे राक्षस ने चन्द्रगुप्त की हत्या के लिए बीभत्सक आदि की नियुक्ति की थी।[4] किन्तु चाणक्य पिपीलिका पङ्क्ति को भात के टुकड़े लिए हुए देखकर समझ जाता है कि इस घर मे पुरुष छिपे हुए है वह आग लगाकर उन्हे जलाकर मरवा देता है क्योंकि मार्ग के अवरुद्ध होने के कारण उन्हे निकलने का रास्ता नही मिलता। अर्थशास्त्र मे राजा के

---

१ अर्थशास्त्र १.२१

२ तदेवौषधं पायितो मृतश्च। मुद्रा० पृ० ६३

३ कामन्दक ७ २७

४ अथ शयितस्य चन्द्रगुप्तस्य शरीरे प्रहर्तुमस्मत्प्रयुक्तानां राजगृहस्यान्तर्भित्तिसुरङ्गामेत्य प्रथममेव निवसतां बीभत्सकादीनां को वृत्तान्तः। मुद्रा० पृ०६३

महल मे भित्ति के अन्दर सुरङ्ग आदि के बनाने का विस्तृत उल्लेख मिलता है-

"कोशगृहविधानेन वा मध्ये वासगृहं गूढमतिसञ्चारं मोहनगृहं तन्मध्ये वा वासगृहं भूमिगृहं वा आसन्नकाष्ठचैत्यदेवतापिधानद्वारमनेकसुरङ्गासञ्चारं प्रासादं वा गूढभित्तिसोपानं, सुषिरस्तम्भप्रवेशापसारं वा वासगृहं यत्र बद्धतलावपातं कारयेत् । अतोऽन्यथा वा विकल्पयेत् सहाध्यायिभयात् ।[1]

मुद्राराक्षस मे चाणक्य की नीति मे आभूषण विक्रय का भी महत्त्वपूर्ण स्थान है। पर्वतक के आभूषणो को चाणक्य राक्षस के पास बेचने के लिए अपने गुप्तचर भेजता है।[2] जब मलयकेतु अपने पिता के आभूषणो को राक्षस के पास देखता है तो उसे यह विश्वास हो जाता है कि राक्षस ने ही मेरे पिता की हत्या करायी थी। वह राक्षस के विरुद्ध कटुवचनो का प्रयोग करने लगता है। इससे चाणक्य को शत्रुओ पर अधिकार करने मे सफलता हस्तगत होती है। शत्रु पक्ष की पराजय के लिए रत्नो एवे आभूषणो के बेचने की व्यवस्था अर्थशास्त्र मे भी आती है - शत्रुप्रख्यातं वा पण्यमविज्ञातं विजिगीषु गच्छेत् । तदस्य वैदेहकव्यञ्जनाः शत्रुमुख्येषु विक्रीणीरन् ।[3] यहाँ पर अर्थशास्त्र में चोरी आदि से प्राप्त किसी सामान को बेचकर उसकी उपस्थिति से शत्रुओ मे भेद डालने का सिद्धान्त उपस्थापित किया गया है।

शत्रुओ मे भेद उत्पन्न करने के लिए नाटककार ने कई अन्य उपायो का भी आश्रय लिया है। इनमे कृतक कलह बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। शत्रुओ को पराजित करने में कृतक कलह की घटना सबसे प्रधान है। चाणक्य राजा

---

१ अर्थशास्त्र १ १९ पृ० ६५

२ अमात्य शकटदासो विज्ञापयति एते खलु त्रयोऽलङ्कारसंयोगा विक्रीयन्ते। मुद्रा० पृ० ७१

३ अर्थशास्त्र ९.६ पृ० १२०

की आज्ञा को निषिद्ध करने के लिए कौमुदी महोत्सव का प्रतिषेध करता है। इसके कारण चन्द्रगुप्त चाणक्य से क्षोभ व्यक्त करता है। दोनो मे प्रथम अङ्क की राजनैतिक घटनाओ के लिए उत्तर प्रत्युत्तर होता है। चाणक्य का क्रोध देखकर उसके परिजन दोनो के कलह को सही मान लेते है। इस घटना का उपयोग भागुरायण राक्षस के विरुद्ध मलयकेतु को भड़काने के लिए करता है कि चन्द्रगुप्त से चाणक्य के नाराज हो जाने के कारण राक्षस चन्द्रगुप्त से मिल गया है। क्योकि राक्षस चाणक्य के विरुद्ध है, न कि चन्द्रगुप्त के मलयकेतु तथा राक्षस भी दोनो के कृतक कलह को सत्य मान बैठते है। राक्षस इसीलिए सचिवायत्तिसिद्धि चन्द्रगुप्त के लिए इस कलह को व्यसन मानता है। इस प्रकार चाणक्य कृतक कलह से शत्रुपक्ष मे मतिभ्रम उत्पन्न करता है।[१] कृतक कलह की यह कल्पना विशाखदत्त की अपनी प्रतिभा से उद्भूत है क्यो कि अर्थशास्त्र आदि मे इसका उल्लेख नही प्राप्त होता।

कृतक कलह के अवसर पर चाणक्य एवं चन्द्रगुप्त के बीच संवादो मे अर्थशास्त्र के कई सैद्धान्तिक आधार प्राप्त होते है। चन्द्रगुप्त जब चाणक्य से पूछता है कि राक्षस को पाटलिपुत्र से क्यों भागने दिया गया? इस पर चाणक्य कहता है कि राक्षस यदि पाटलिपुत्र मे रहता तो प्रज्ञा, पराक्रम, कोष, बल एवं सहायको से युक्त राक्षस अन्तःकोप उत्पन्न करता। दूर कर दिये जाने पर बाह्यकोप करता हुआ भी वह दुःसाध्य नही है। अर्थात् उसे भविष्य मे पकड़ा जा सकता है।[२] यहाँ पर विशाखदत्त ने कौटिल्य के

कृत्वा सम्प्रति कैतवेन कलहं मौर्येन्दुना राक्षसं।
भेत्स्यामि स्वमतेन भेदकुशली ह्येष प्रतीपं द्विषः।। मुद्रा० ३.१३

'राक्षसोपि खलु निजस्वामिनि स्थिरानुरागित्वात् सुचिरमेकत्र वासाच्च शीलज्ञानां नन्दानुरक्तानां प्रकृतीनामत्यन्तं विश्वास्यः, प्रज्ञापुरुषाकाराभ्यामुपेतः, सहायसम्पदायुतः, कोषबलवानिहैवान्तर्नगरे वर्तमानो महान्तं

अर्थशास्त्र के इस सिद्धान्त को अभिव्यक्त किया है कि राजा के लिए आभ्यन्तर एवं बाह्य दो प्रकार के कोप हो सकते है। घर मे रहने वाले सॉप की तरह आभ्यन्तर कोप बाह्य कोप की अपेक्षा बहुत ही अनर्थकारी होता है।[1]

चन्द्रगुप्त के यह पूछने पर कि राक्षस को जबरदस्ती क्यो नही पकड़ लिया गया? चाणक्य का निम्नकथन भी अर्थशास्त्र मे वर्णित उपायो के सिद्धान्त से परिपुष्ट होता है -

स हि भृशमभियुक्तो यद्युपेयाद्विनाशं

ननु वृषल! वियुक्तस्तादृशेनासि पुंसा।

अथ तव बलमुख्यान्नाशयेत् सापि पीडा,

वनगज इव तस्मात् सोभ्युपायैर्विनेयः।।[2]

यहॉ पर नाटककार ने बाह्यकोप उत्पन्न करने वाले राक्षस को अभ्युपायो से वश मे करने की बात कही है। इसका आधार कौटिल्य का वह अंश है जहॉ पर कोप मे साम, दान, दण्ड एवं भेद इन चार उपायो के प्रयोग के लिए कहा गया है- पश्चात् कोपे सामदानदण्डभेदान्प्रयुञ्जीत् ।[3] नाटककार ने विभिन्न स्थलो पर शत्रुओ को वश मे करने के लिए विभिन्न उपायो के प्रयोग का निर्देश किया है। राक्षस को पाटलिपुत्र से भागने देना उपेक्षा उपाय है। राक्षस से मलयकेतु को अलग करने मे भेद उपाय है,

---

खल्वन्तःकोपमुत्पादयेत् । दूरीकृतस्तु बाह्यकोपमुत्पादयन्नपि कथमप्युपायैर्वशयितुं शक्य इत्ययमत्रस्थ एव हृदयेशयः शङ्कुरिवोद्धृत्य दूरीकृतः। वही, पृ० ९२

[1] राज्ञ आभ्यन्तरो बाह्यो वा कोप इति।
अहिभयादाभ्यन्तरः कोपो बाह्यकोपात्पापीयान् । अर्थशास्त्र ८.२ पृ० ५६२

[2] मुद्रा० ३ २५

[3] अर्थशास्त्र ९.३

चन्दनदास एवं शकटदास के लिए फाँसी का आदेश दण्ड उपाय है। छठे अङ्क मे पुरुष द्वारा आत्महत्या का अभिनय ऐन्द्रजालिक उपाय है। सातवे अङ्क मे सिद्धार्थक एवं समिद्धार्थक का चाण्डालवेश मे उपस्थित होना माया है। राक्षस को अमात्य पद पर नियुक्त करना साम उपाय है तथा मलयकेतु को उसका देश वापस करना एवं चन्दनदास को नगरश्रेष्ठी बनाना दान उपाय है। इस प्रकार राक्षस मलयकेतु आदि के द्वारा उपस्थापित कोप की शान्ति के लिए नाटककार ने साम, दान, दण्ड एवं भेद इस सभी उपायो का व्यावहारिक पक्ष प्रस्तुत किया है।

कृतक कलह के ही अवसर पर चन्द्रगुप्त द्वारा चाणक्य के विभिन्न निर्णयो पर प्रश्न करने पर चाणक्य अर्थशास्त्रकार को अभिमत तीन प्रकार की सिद्धियो का उल्लेख करता है- इह खलु अर्थशास्त्रकारास्त्रिविधां सिद्धिमुपवर्णयन्ति। तद्यथा राजायत्तां सचिवायत्ताम् उभयायत्ताञ्चेति। चन्द्रगुप्त इनमें से सचिवायत्तसिद्धि है। इसीलिए उसे राज्य की चिन्ता नही है। किन्तु इस कारण उसका व्यक्तित्व पूरे नाटक मे चाणक्य से दबा ही रहता है। अर्थशास्त्र मे तीनों सिद्धियो का उल्लेख इस रूप मे प्राप्त होता है -

बलं शक्तिः। सुखं सिद्धिः। शक्तिस्त्रिविधा-ज्ञानबलं मंत्रशक्तिः, कोशदण्डबलं प्रभुशक्तिः,विक्रमबलमुत्साहशक्तिः। एवं सिद्धिस्त्रिविधैव मन्त्रशक्तिसाध्या मन्त्रसिद्धिः, प्रभुशक्तिसाध्या प्रभुसिद्धिः, उत्साहशक्तिसाध्या उत्साहसिद्धिरिति। ताभिरत्युच्छ्रितो ज्यायान् भवति। अपचितो हीनः। तुल्य शक्तिः समः।

कृतक कलह में भी गुरु के विरुद्ध बोलने मे चन्द्रगुप्त दुःखी हो जाता है उसे इस बात का खेद है कि उसने गुरु से विवाद क्यो किया-

आर्याज्ञयैव मम लङ्घितगौरवस्य बुद्धिः प्रवेष्टुमवनेर्विवरं प्रवृत्ता।।

चन्द्रगुप्त के इस पश्चात्ताप का भी आधार चाणक्य के इन सूत्रो को माना जा सकता है -

(१) मतिमत्सु मूर्खमित्रगुरुवल्लभेषु विवादो न कर्तव्यः।[१]

(२) न मीमांस्या गुरवः।[२]

इसके अतिरिक्त मुद्राराक्षस मे अन्य स्थलो पर भी अर्थशास्त्र के विवरणो को सैद्धान्तिक आधार के रूप मे प्रस्तुत किया जा सकता है। अर्थशास्त्र के अनुसार महाकुलीन, दैवबुद्धि, सत्त्वसम्पन्न, वृद्धदर्शी, धार्मिक, आदि गुण राजा के आभिगामिक गुण है। भद्रभट इत्यादि इत्यादि ने मलयकेतु के आभिगमिक गुणो को देखकर ही उसका आश्रय लिया है।

पञ्चम अङ्क मे मलयकेतु की सैन्यव्यवस्था का जो विरण प्रस्तुत किया गया है उसमे यह व्यवस्था है कि आधिकारिक व्यक्ति की अनुमति के विना कोई व्यक्ति मलयकेतु की छावनी से बाहर नही जा सकता। न ही वहाॅ प्रवेश कर सकता है।[३] यह व्यवस्था कौटिल्य के अर्थशास्त्र के अनुरूप ही है- मुद्राध्यक्षो मुद्रां माकषेण दद्यात् । समुद्रो जनपदं प्रवेष्टुं निष्क्रमितुं वा लभेत् । .. विवीताध्यक्षो मुद्रां पश्येत् । भयान्तरेषु च विवीतं स्थापयेत् ।[४]

मलयकेतु को भागुरायण यह विश्वास दिलाना चाहता है कि राक्षस ने ही पर्वतेश्वर की हत्या करायी थी। राक्षस सर्वार्थसिद्धि को राजा बनाना चाहता था पर्वतेश्वर चन्द्रगुप्त से भी बलवान् था। अतः राक्षस ने विषकन्या का प्रयोग

---

[१] चाणक्यसूत्राणि ३५

[२] वही ४२१

[३] एष खल्वस्माभिः कटकान्निष्क्रामन्नगृहीतमुद्रः सलेखः पुरुषो गृहीतः। मुद्रा० पृ० १२३

[४] अर्थशास्त्र २.५० पृ० २३९

पर्वतेश्वर को मारने के लिए किया था। अब सर्वार्थसिद्धि भी नही रहा तथा चाणक्य भी चन्द्रगुप्त से अलग हो गया है इसलिए भले ही पहले राक्षस चन्द्रगुप्त के विरुद्ध रहा हो किन्तु अर्थवशात् इस समय वह चन्द्रगुप्त से सन्धि कर रहा है -

कुमार इह खल्वर्थशास्त्रिणामर्थवशादरिमित्रोदासीनव्यवस्था न लौकिकानामिव स्वेच्छवशात् ।

मित्राणि शत्रुत्वमुपानयन्ती मित्रत्वमर्थस्य वशाच्च शत्रून्।

नीतिर्नयत्यस्मृतपूर्ववृत्तं जन्मान्तरं जीवत एव पुंस।[१]

इस अर्थावशाद् अरिमित्रोदासीनव्यवस्था के प्रतिपादन का आधार चाणक्य का निम्नलिखित सूत्र है - हेतुतः शत्रुमित्रे भविष्यत।[२] कामन्दक मे भी इसी तथ्य को इस रूप मे प्रस्तुत किया गया है -

कारणेनैव जायन्ते मित्राणि रिपवस्तथा।[३]

सप्तम अङ्क मे राक्षस जहॉ चाण्डाल के स्पर्शदोष के कारण अपने आपको अस्पृश्य मानता है[४] वह भी अर्थशास्त्रानुमत है। अर्थशास्त्र मे यह विधान है कि चाण्डालो का कुऑ अकेले उन्ही के लिए उपयोगी होता है। इसी उपमान के आधार पर राजा से मानी वर्ग को पृथक् करने की नीति का गुप्तचर पालन करता है- यथा चण्डालोदपानश्चण्डालानामेवोपभोग्यो नान्येषामेवमयं राजा नीचो नीचानामेवोपभोग्यो न त्वद्विधानामार्याणाम् ।[५]

---

[१] मुद्रा० पृ० १२३ एवं ५.८

[२] चाणक्यसूत्र ५०

[३] कामन्दक ८ ५२

[४] विष्णुगुप्त न चाण्डालस्पर्शदूषितं स्प्रष्टुमर्हसि। मुद्रा० पृ० १६०

[५] अर्थशास्त्र १.१३ पृ० ४२

इसी प्रकार नाटक के नायक चाणक्य द्वारा उद्देश्य की प्राप्ति हो जाने पर सभी को बन्धनमुक्त करने के आदेश[१] का सैद्धान्तिक आधार अर्थशास्त्र मे इस रूप मे प्राप्त होता है कि नये राज्य पर विजयप्राप्ति के दिन, युवराज के राज्याभिषेक के दिन तथा पुत्रजन्मोत्सव पर सभी कैदियो को मुक्त कर देना चाहिए।[२]

इस प्रकार सम्पूर्ण नाटक मे चाणक्य द्वारा राक्षस एवं मलयकेतु मे भेद नीति के द्वारा पार्थक्य स्थापित कर प्रतिपक्षियो को वश मे करने के लिए जिन गुणो एवं उपायो का आश्रय लिया गया है। उनका सैद्धान्तिक आधार अर्थशास्त्र मे प्राप्त होता है। राजा, अमात्य, गुप्तचर, अरिमित्रोदासीन आदि व्यवस्थाओ मे भी अर्थशास्त्र का नाटककार पर प्रभाव दृष्टिगत होता है। इसके अतिरिक्त मुद्राराक्षस के अन्य सामान्य स्थलो पर भी अर्थशास्त्रीय सैद्धान्तिक आधार प्रस्तुत किये जा सकते है। किन्तु कृतक कलह आदि की उद्भावना नाटककार की मौलिक उद्भावना है, जिसके कारण चाणक्य अपने उद्देश्य की पूर्ति मे सफल होता है।

---

१ विना वाहनहस्तिभ्यो मुच्यतां सर्वबन्धनम् ।

२ अपूर्वदेशाधिगमे युवराजाभिषेचने।
सुतजन्मनि वा मोक्षो बन्धनस्य विधीयते।। अर्थशास्त्र २.३६ पृ० २५०

उपसंहार

सस्कृत नाटको की समीक्षा प्रायः वस्तु नेता एवं रस को ही दृष्टि मे रखकर की जाती है किन्तु मुद्राराक्षस मे इन तीनो तत्त्वो मे सफलता पूर्वक नूतनता का सञ्चार किया गया है। संश्लिष्ट कूटनीतिक प्रयोग की अभिनव व्याख्या मे नाटककार ने विशुद्ध मौलिकता का परिचय दिया है।

इस नाटक की समीक्षा से यह स्पष्ट हो जाता है कि यह नाटक परम्परा मे लिखे गये अन्य नाटको से कई अर्थो मे भिन्न है। कथावस्तु की प्रस्तुति मे इसमे अपूर्वता पदे-पदे परिलक्षित होती है। इतनी संश्लिष्ट राजनीतिक कथावस्तु को कोई राजनीति विशारदं ही प्रस्तुत कर सकता है। नाटककार से यह अपेक्षा होती है कि वह अपने समय के समाज की बारीकियो को समझता हो तथा उन्हे अपनी कृति मे इस रूप मे प्रस्तुत करे कि वह सार्वकालिक यथार्थ बनकर लोक के समझ अभिव्यक्ति को प्राप्त करे।

किसी भी कृतिकार की कृति मे उत्कृष्टता तभी आती है जब कृतिकार प्रतिभाशाली होता है। लोक, शास्त्र, काव्यादि के अवेक्षण से वह व्युत्पत्ति से युक्त होता है तथा सामाजिक यथार्थ को सैद्धान्तिक स्वरूप देने मे समर्थ होता है। इस दृष्टि से विशाखदत्त एक सफल नाटककार है। इनका समय विभिन्न प्रमाणो से चतुर्थ शताब्दी के उत्तरार्ध अथवा पञ्चम शताब्दी के पूर्वार्द्ध मे स्थिर किया गया है। काव्य अथवा नाटक की प्रस्तुति के लिए सभी विद्याओ एव कलाओ का उपयोग होता है। अतः नाटककार का सभी विद्याओ से परिचित होना आवश्यक होता है। विशाखदत्त काव्यप्रतिभा के तो धनी है ही, इन्होने व्यावहारिक राजनीति के साथ सैद्धान्तिक राजनीति के चरम रहस्य को अधिगत कर अपने नाटक मे उसका संश्लिष्ट प्रयोग किया है। नाटक की

कथावस्तु की प्रस्तुति मे नाटककार की धार्मिक आस्था भी अभिव्यक्त हुई है। विशाखदत्त वैदिक धर्मानुयायी होते हुए भी सर्वधर्म-समभाव की चेतना का समर्थन कर आज के मानव के लिए प्रेरणा स्त्रोत के रूप मे काम करते है।

नाटककार ने ऐतिहासिक कथावस्तु को विलक्षण कल्पना के साथ उसे एक नए रूप मे प्रस्तुत किया है। इसके माध्यम से नाटककार ने राज्य के कल्याणकारी स्वरूप को अभिव्यक्त किया है। धनलोलुप नन्दो के विनाश की सूचना से ऐसा प्रतीत होता है कि नाटककार आज की राजनीति के पुरोधाओ को धनलोलुपता से विमुख रहने का अन्यथा अवश्यम्भावी विनाश के परिणाम को भुगतने के लिए तैयार रहने का सन्देश दिया है। चन्द्रगुप्त राज्यधर्म का पालन करने वाला है उसे धन का लोभ नही है। इसीलिए चाणक्य ने उसकी मौर्यसम्राट् के रूप मे प्रतिष्ठा की है। इस प्रसङ्ग से भी नाटककार इस सार्वकालिक सत्य का उद्घाटन करता है कि हमेशा राज्य-धर्मानुवृत्तिपर शासक की ही प्रतिष्ठा होती है। धन लोलुप एवं अत्याचारी शासक की नही। यह तथ्य आज के लिए और भी प्रेरणादायक है।

विशाखदत्त राजनीतिपरक कथावस्तु की नाटकीय प्रस्तुति मे पूर्ण सफल हुए है। कही-कही स्वगत भाषणो मे विस्तार दिखाई पडता है, किन्तु ऊबाऊ नही होने पाया है। काव्यात्मक कल्पना को भी इन्होने नाटकीयता के साथ ही प्रस्तुत किया है। कथावस्तु के सन्धियो में विभाजन, कार्यावस्थाओ तथा अर्थोपक्षेपको के प्रयोग आदि मे विशाखदत्त विशिष्ट रूप प्रस्तुत करते है।

नाटक मे वीररस अङ्गी रस है। विना युद्ध के संश्लिष्ट कूट नीति के प्रयोग से दुर्जेय रिपुबल को जीतकर चाणक्य ने जो राजनीति वीरता दिखायी है वह अद्भुत है। नाटक मे कुछ हत्याएँ हुई है किन्तु वे नगण्य है। मुख्य

प्रतिपक्षी राक्षस तो षड्गुणयुक्त राजनीति के द्वारा सामादि उपायो से ही वश मे किया जाता है रक्तपात को बचाने के ही लिए चाणक्य राक्षस को जबरदस्ती पकड़वाने की चेष्टा नही करता। वीर के साथ ही रौद्र वीभत्स, आदि अन्य रसो की भी प्रस्तुति भी नाटक मे औचित्यपूर्ण ढंग से हुई है नाटक की भाषा-शैली विषयानुरूप है। छन्दो एवं अलङ्कारो का प्रयोग उदात्ततर है गुणो एवं व्यङ्गयों का बहुतर सन्निवेश किया गया है। नाटक की भाषा मानवीय भावो को अभिव्यक्त करने मे पूर्ण समर्थ है।

यद्यपि यह नाटक राजनीतिपरक है इसलिए इसमे तत्कालीन समाज की अभिव्यक्ति कम मात्रा मे हुई है, तथापि इसमे तत्कालीन धार्मिक अनुष्ठानो देवो की उपासनाओ, शकुनो, वर्णाश्रमधर्म की स्थिति, तत्कालीन व्यवसाय, आदि की सुसूक्ष्म प्रस्तुति हुई है।

इस नाटक की सर्वोत्कृष्ट विशेषता है इसमे प्रस्तुत व्यवहारिक संश्लिष्ट राजनीति। इस राजनीति को वही व्यक्ति प्रस्तुत कर सकता था जिसने इसे अपने व्यावहारिक जीवन मे देखा हो तथा राजनीति विद्या से सम्बद्ध कौटिल्य के अर्थशास्त्र, चाणक्य सूत्र, कामन्दक नीतिसार, शुक्रनीति आदि का मर्मज्ञ हो। विशाखदत्त वस्तुत राजपरिवार से सम्बद्ध थे अत इन्हे व्यावहारिक राजनीति का तो ज्ञान था ही ये सैद्धान्तिक राजनीतिशास्त्र के भी प्रकाण्ड पण्डित थे। तभी इन्होनें राजा, अमात्य, सुहृद्, गुप्तचर आदि के गुणो का जो व्यावहारिक पक्ष प्रस्तुत किया है वह सैद्धान्तिक राजनीति का अनुपूरक तो है हीं आज की राजनीति को दिशानिर्देश देने के लिए भी उसमे पूर्ण सामर्थ्य विद्यमान है। इस रूप मे मुद्राराक्षस आज भी अत्यन्त उपयोगी होने के कारण विद्वत्समाज मे स्पृहणीय बना हुआ है।

सहायक ग्रन्थ-सूची

(क) संस्कृत ग्रन्थ

१ अभिनवभारती (नाट्यशास्त्र) अभिनवगुप्त, गायकवाड ओरियण्टल सीरीज, बड़ौदा, १९५४

२ अ०ना०शा-अभिनव नाट्यशास्त्र- आचार्य सीमाराम चतुर्वेदी, किताब महल प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद, १९६४

३ अर्थ०- कौटिलीय अर्थशास्त्र, पण्डित पुस्तकालय, वाराणसी-१, १९६४

४ कथासरित्सागर सोमदेव भट्ट, प्रका० दुर्गाप्रसाद और काशीनाथ परब, बम्बई १९३०

५. कामन्दक- कामन्दक नीतिसार, टीकाकार- पं० ज्वाला प्रसाद मिश्र, वेकटेश्वर प्रेस, बम्बई २००९ वि०

६ काव्येन्दुप्रकाश कामराज दीक्षित, चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी, १९६६

७ चाणक्य सूत्र (कौटिलीय अर्थशास्त्र) पण्डित पुस्तकालय, वाराणसी-१ १९६४

८ दशरूपक-धनञ्जय, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, १९६७

९ दशरूपावलोक-धनिक, चौखम्बा विद्याभवन,' वाराणसी १९६७

१० नाट्यदर्पण- रामचन्द्र-गुणचन्द्र, हिन्दी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, १९६९

११ नाटक परिभाषा- शिगभूपाल, सस्कृत साहित्य परिषद, १६८-९ राजा दीनेन्द्रस्ट्रीट, कलकत्ता-४, १९६७

१२ नाट्शास्त्र-आचार्य भरत, काशी संस्कृत सीरीज, वाराणसी, सं० ६०

१३ नीतिवाक्यामृत-सोमदेव सूरि, व्याख्या०-रामचन्द्र मालवीय, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी-१९७२

१४ भागवत महापुराण-श्रीधरीटीका, राजधानी एशियाटिक मुद्रणालय, मुबई, १७९८

१५ महावंश

१६ मुद्राराक्षस- व्याख्याकार -डॉ० सत्यव्रत सिंह, चौखम्बा सस्कृत सीरीज, वारासी १९६१

१७ मुद्राराक्षस- व्याख्याकार - डॉ० निरूपण विद्यालङ्कार, साहित्य भण्डार, मेरठ, १९६७

१८ मुद्राराक्षस- व्याख्याकार - डॉ० जगदीश मिश्र, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, १९७६

१९ रसार्वण सुधाकर- शिंगभूपाल, संस्कृत परिषद्, सागर विश्वविद्यालय, १९६९

२० वायुपुराण, श्री वेकटेश्वरप्रेस, बम्बई, १९३३

२१ विष्णुपुराण, गीताप्रेस, गोरखपुर, तृतीय संस्करण, २००९ विक्रम

२२ शुक्रनीति-व्याख्याकार-पं० ब्रह्मशंकर मिश्र, चौखम्बा, १९६८

२३ शृगारप्रकाश-भोजराज, कोरोनेसन मुद्रणालय, मैसूर, १९५६

२४ स्कन्दपुराण- माहेश्वर कौमारिका खण्ड, सम्पा० मनसुख राय मोर, क्लाइव रोड, कलकत्ता, १९५९

२५ साहित्यदर्पण- आचार्य विश्वविनाथ, सख्यकसूरिवर्त्मस्थ सिद्धालय यन्त्रालय, कलकत्ता, तृतीय संस्करण १३४१ बंगाब्द

(ख) हिन्दी ग्रन्थ-

२६ सस्कृत नाटक डॉ० ए० वी० कीथ, भाषान्तर डॉ० उदयभानु सिंह मोतीलाल बनारसी दास, १९७१

२७ संस्कृत साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, डॉ० रामजी उपाध्याय, द्वितीय भाग, रामनारायण लाल बेनीमाधव, इलाहाबाद, १९७३

२८ संस्कृत साहित्य का इतिहास- बलदेव उपाध्याय, शारदा मन्दिर, वाराणसी, १८७३

२९ संस्कृत साहित्य का नवीन इतिहास कृष्ण चैतन्य, अनु० विनय कुमार राय, चौखम्बा विद्याभवन, १९६५

३० संस्कृत साहित्य का संक्षिप्त इतिहास श्री वाचस्पति गैरोला, चौखम्बा विद्याभवन, १९६७

३१ संस्कृत नाटक समीक्षा- इन्द्रपाल सिंह 'इन्द्र', साहित्य निकेतन, कानपुर, १९६०

३२ सेठ गोविन्द दास अभिनन्दन ग्रन्थ, सेठ गोविन्द दास हीरक जयन्ती समारोह समिति, नई दिल्ली, १९५६

३३ हिन्दी साहित्य दर्पण- शशिकला व्याख्या- डॉ० सत्यव्रत सिंह, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, १९७०

(ग) अंग्रेजी ग्रन्थ

34. A History of Classical Sanskrit Literature - Dr. M.Krishnamachari, T.T.D. Press, Madras, 1937

35. A History of Sanskrit Literature (Classical period) Vol-I, Dr. S.N Das Gupta & Dr. S.K. De. University of Calcutta, 1962

36. A History of Sanskrit Literature- A Macdonell Munsi Ram Manohar Lal, Nai Sarak, Delhi, 1958

37 B C.Law Volume, Part I

38. Introduction to the study of Mudraraksas - Dr. G D. Devasthali, Keshav Bhikaji Dhavale, Bombay-4

39. The Mudraraksas - Explanation by M.R.Kale, Moti Lal Banarshi Das, New Delhi, 1965

40 The Mudraraksas - Explanation by K.T. Talang, Vishvavidyalaya Prakeshan, Varanasi 1968

41. The Mudraraksas - Explanation by K.H. Dhruva Oriental Book Agency, Poona, 1930